बीसवीं सदी का साहित्य : खण्ड 9

आधुनिक रूसी कहानी



अनुवाद एवं चयन

हेमचन्द्र पाँडे

आधुनिक रूसी कहानी

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

बीसवीं सदी का रूसी साहित्य (खण्ड 9)

आधुनिक रूसी कहानी

रूसी से अनुवाद एवं चयन

हेमचन्द्र पाँडे



साहित्य अकादेमी

Adhunik Russi Kahani : An anthology of stories by various writers under 20th Century Russian Literature series, Volume Nine. Edited and translated into Hindi by Hemchandra Pande, Sahitya Akademi, New Delhi

साहित्य अकादेमी 1960 ई.

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग

स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई 400 014

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कोलकाता 700 053

सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आंबेडकर वीथी, बंगलौर 560 002

चेन्नई कार्यालय

सी आई टी कैम्पस, टी.टी.टी.आई. पोस्ट, तारामणि, चेन्नई 600 113

ISBN 81-260-1834-8

शब्द संयोजक : क्वालिटी प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110 093

मुद्रक : विकास कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110 032

अनुक्रम

रूसी कहानी
बीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध

रूस के उथल-पुथल भरे इतिहास में बीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध भी कम उथल-पुथल वाला नहीं रहा है। नब्बे के दशक में सोवियत संघ का टूटना एक ऐसी घटना थी, जिसने रूसी जनमानस को तो झकझोरा ही, पूरा विश्व उसके प्रभाव को अभी तक झेल रहा है। वस्तुतः यदि 1950 से आगे के वर्षों को देखें तो समय-समय पर कुछ अन्तराल के साथ रूसी समाज मुक्ति की ओर बढ़ता रहा है। मुक्ति से पूर्व का काल वहाँ की व्यवस्था में आई जड़ता और उससे उत्पन्न जकड़न का काल रहा है। इस जकड़न और मुक्ति के द्वन्द्व का प्रभाव कलाओं पर, और विशेषकर साहित्य पर पड़ा ही है।

सन् 1953 में जोसेफ़ स्तालिन का देहावसान हुआ और उसके बाद से विस्तालिनीकरण की जो प्रक्रिया आरम्भ हुई, उसकी परिणति 14 से 25 फ़रवरी 1956 तक हुए सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के बीसवें महाधिवेशन में हुई। इसके साथ ही व्यक्तिपूजा का अन्त हुआ। साहित्य में इसे 'पिघलाव' (रूसी-ओत्तिपेल) का नाम दिया गया, जो इसी नाम के इल्या एरेनबूर्ग के उपन्यास से ग्रहण किया गया है। व्यक्तिपूजा की समाप्ति ने जड़ता से कुछ समय के लिए मुक्ति तो दिलाई परन्तु पार्टी और शासन के तंत्र की पूजा से मुक्ति तब भी नहीं मिली। प्रस्तुत संग्रह पिछले पचास वर्षों की रूसी कहानी की एक झलक प्रस्तुत करने का प्रयास है, जिसमें प्रमुख कथाकारों की उपस्थिति तो है पर समकालीन रूसी कहानी के सम्पूर्ण परिदृश्य का सम्भवतः सीमित प्रतिनिधित्व ही इसमें हो पाया है।

बीसवीं सदी के पचास के दशक में रूसी लेखक द्वितीय महायुद्ध के प्रभाव में जी रहे थे। इसलिए उस युग की कहानियाँ युद्ध की विषय वस्तु से अछूती नहीं रह सकती थीं। स्वाभाविक है कि इस प्रकार के लेखकों की सूची बहुत लम्बी है। उनमें से कुछ की रचनाओं में एक ओर तो युद्ध का घटनाप्रधान चित्रण मिलेगा और दूसरी ओर युद्ध के माध्यम से मनुष्य के चरित्र का उद्घाटन भी। कुछ कहानियाँ महायुद्ध का परोक्ष चित्र भी प्रस्तुत करती हैं। कोन्स्तान्तीन सीमोनोव, यूरी बोन्दारेव, ग्रिगोरी बक्लानोव जैसे लेखक इसी श्रेणी के माने जा सकते हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों तथा

कहानियों द्वारा युद्ध को साहित्य में सम्मिलित किया है। युद्धविषयक लेखन रूसी साहित्य का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, जो आगे के दशकों में भी जारी रहा है।

प्रस्तुत संग्रह में सम्मिलित चिंगीज़ आइत्मातोव की कहानी 'आमने-सामने' भगोड़े सैनिक के चरित्र को उद्घाटित करती है। जवानों को युद्ध के मोर्चे पर ले जा रही रेलगाड़ी जब एक छोटे-से स्टेशन पर कुछ देर के लिए रुकती है तो गाड़ी में से एक जवान अँधेरे का फ़ायदा उठाकर भाग निकलता है और किरगीज़िया की पहाड़ियों में जा छिपता है। इस्माइल नाम का यह जवान रात को चोरी-छिपे अपनी पत्नी से मिलने आया करता है। पहली बार तो उसकी पत्नी भौंचक्की रह जाती है। लेकिन धीरे-धीरे स्थिति को स्वीकार करके वह उसे भगोड़े सैनिक के रूप में न देखकर अपने पति के रूप में देखने लगती है और पूरी तरह उसकी सेवा में जुट जाती है। परन्तु सब लोगों से छिपकर रह रहे भगोड़े सैनिक की सेवा करना बड़ा जोखिम भरा काम है। पूरी कहानी इस्माइल की पत्नी सईदा में चल रहे अन्तर्द्वन्द्व के इर्द-गिर्द घूमती है जो भगोड़े पति की सेवा करने को बाध्य है। युद्ध के मोर्चे पर गये अन्य गाँववासियों और उनके परिवार की स्थिति को दिखाते हुए आइत्मातोव ने इस्माइल की स्वार्थपरता को भी पूरी तरह से उद्घाटित किया है। अन्त में इस्माइल पकड़ा जाता है और उसे आत्मसमर्पण करना पड़ता है। प्रख्यात रूसी लेखक वलेन्तीन रस्पूतिन का एक उपन्यास *'झिवी इ पोम्नि'* (इसका अनुवाद जितेन्द्र रघुवंशी ने 'भुलाए न भूले' नाम से किया है) भी भगोड़े सैनिक की कहानी पर केन्द्रित है। परन्तु इन दोनों रचनाओं का केन्द्रबिन्दु अलग-अलग है। जहाँ रस्पूतिन के उपन्यास की नायिका नास्त्योना भगोड़े सैनिक से गर्भवती होने के बाद सामाजिक कलंक के भय से आत्महत्या का रास्ता चुनकर नदी में छलाँग लगा लेती है, वहीं आइत्मातोव की नायिका सईदा तब तक अपने पति का साथ नहीं छोड़ती है जब तक कि वह आत्मसमर्पण करने को बाध्य नहीं कर दिया जाता है।

वस्तुतः स्तालिनोत्तर काल से लेकर लगभग दो दशकों तक रूसी साहित्य में आंचलिक लेखकों का वर्चस्व रहा है। फ़्योदोर अब्रामोव इस संग्रह के वरिष्ठतम कहानीकारों में से हैं। उनकी लंबी कहानी 'लकड़ी के घोड़े' रूसी ग्रामीण जीवन से हमें परिचित कराती है। जिनके लेखन को रूसी साहित्य में 'ग्रामीण गद्य' कहा गया है और जिसे हम अपने सन्दर्भ में 'आंचलिक गद्य' कहेंगे। स्वाभाविक है कि यह संज्ञा आलोचकों द्वारा गढ़ी गयी है, स्वयं लेखकों को वह चाहे अस्वीकार्य हो। फ़्योदोर अब्रामोव भी ऐसे ही एक आंचलिक रचनाकार हैं। उनकी कहानी के केन्द्र में है गाँव की एक वृद्ध महिला मिलेन्त्येव्ना, जो एक अर्से के बाद अपने बेटे मक्सीम के पास आ रही है। बेटा मक्सीम और बहू येव्गेनिया उसके आगमन की तैयारी में जुट जाते हैं। बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना ग़ज़ब की मेहनती औरत है और इस कहानी में मुख्य रूप से यही रेखांकित भी किया गया है। जिस काल की पृष्ठभूमि में यह कहानी लिखी गयी उस ज़माने में तो गाँव का जीवन

और भी कठिन था। औरतों का जीवन ऐसा था कि जवानी के दिन तो महायुद्ध के समय चौकसी रखने में ही चले गये थे। सारे जवान लड़के युद्ध के मोर्चे पर गये हुए थे। कभी तो भोजन तक दुर्लभ हो जाता था; नदी की मछलियाँ तक समाप्त हो गयी थीं; मछली की आस में महिलाएँ घंटों नदी किनारे बंसी डाले खड़ी रहती थीं।

मिलेन्त्येव्ना अपने गाँव क्या पहुँची, उसने पहले जैसी दौड़-धूप फिर से शुरू कर दी। सवेरे-सवेरे, अँधेरे में ही वह खुम्भियाँ बटोरने जंगल को चल दी, किसी को पता तक नहीं चला। खुम्भियों से भरा टोकरा लेकर आई और उन्हें साफ़ करने बैठ गयी। इससे पहले येव्गेनिया ने खुम्भियों में नमक लगाने की पूरी तैयारी करके रखी थी। पर सारा काम किया स्वयं मिलेन्त्येव्ना ने ही।

मिलेन्त्येव्ना की कर्मठता के साथ-साथ अब्रामोव ने उसके अतीत को चित्रित किया है जिसकी सोलह साल की उम्र में एक शराबी के साथ शादी कर दी गयी थी। ग़ुस्सैल तो वह था ही। पहले ही दिन जब वह जंगल से खुम्भियाँ लेकर आई तो उस गुस्सैल पति ने बन्दूक़ की गोली से उसका 'स्वागत' किया। गोली सीधे उसके मुँह पर आकर लगी थी। उसके सास-ससुर तक अपने बेटे से परेशान थे परन्तु कुछ करने में असमर्थ थे। ऐसे पति के साथ मिलेन्त्येव्ना ने पूरी ज़िन्दगी बिता दी थी, पर कभी भी न अपना सन्तुलन खोया, न अपने मृदुल स्वभाव स्वभाव को ही मलिन किया। साइबेरिया में ऐसी अनेक वृद्धाएँ मिलेंगी जो अपनी कर्मठता, चारित्रिक दृढ़ता और पुरुषार्थ के कारण सभी की श्रद्धा का पात्र बनती हैं। इस तरह का एक चरित्र साइबेरियाई आंचलिक लेखक फ्योदोर अब्रामोव की इस कहानी में उभर कर सामने आता है।

यह मात्र संयोग नहीं है कि वलेन्तीन रस्पूतिन ने भी अपनी रचनाओं में साइबेरिया की बूढ़ी महिलाओं को उनके अद्भुत गुणों के साथ चित्रित किया है। चाहे वह 'मत्योरा से विदाई' उपन्यास हो या 'अंतिम घड़ी'। इस कहानी-संग्रह की उनकी रचना 'उलीता आपा' की प्रमुख पात्र भी एक वृद्धा ही है। उलीपा आपा और लेखक की दादी घर के काम कर लेने के बाद हर रोज़ बैठकर अपने पिछले दिनों को याद करती हैं। उलीता और दादी का शायद दूर का कोई रिश्ता भी है। गाँव में कहीं-न-कहीं से रिश्ते तो निकल ही आते हैं। दोनों का गाँव बाँध बनने के कारण डूब गया था और उन्हें वहाँ से विस्थापित होना पड़ा था। विस्थापन के विषय को लेकर रस्पूतिन ने एक पूरा उपन्यास 'मत्योरा से विदाई' लिखा है, जिसका अनुवाद साहित्य अकादेमी से प्रकाशित हो चुका है। उलीता जब जवान थी तब गाँव में युवा लोग रह ही नहीं गये थे—वे सब युद्ध के मोर्चे पर जा चुके थे। बाद में तो विवाह की उम्र ही निकल गयी थी। इस तरह वह एकाकी महिला थी। फिर भी, अपने काम में इतना अधिक व्यस्त रहती थी कि विश्वास ही नहीं होता था। पेंशन से गुज़ारा नहीं होता था, इसलिए आसपास छोटे बच्चों को भी देख लेती थी। बच्चों का पालना भी उसे खूब आता था। रोते हुए बच्चे को कैसे चुप

कराया जाए—यह कोई उलीता आपा से सीखे। छोटे शिशु को भी ज़्यादा लाड़ नहीं दिखाना चाहिए—यह बात वह अच्छी तरह जानती थी। गाँव के बिगड़े और मनचले जवानों को सही रास्ते पर लाना भी इन्हीं को आता था। मृत्यु के बाद दोनों वृद्धाओं की क़ब्रें ऐसे टीले पर बनाई गयीं कि जहाँ से गाँव तो दिखाई देता ही है, अन्गारा नदी की धारा भी नज़र आती है जिस पर बना बाँध उनके गाँव को लील चुका है।

वलेन्तीन रस्पूतिन की दूसरी कहानी 'अफ़वाह' गाँव की सहकारी दुकान के भ्रष्टाचार को शराब की बिक्री में हो रही धाँधली के माध्यम से उजागर करती है। अफ़वाह उड़ती है कि शराब सस्ती होनेवाली है। शराबियों को विश्वास ही नहीं होता है। कोई कहता है कि शराब तो सस्ती होगी पर जुर्माना बढ़ जायेगा यानी फिर भी सरकार घाटे में नहीं रहेगी। दुकान खुलने से बहुत पहले ही दुकान के बाहर लम्बी लाइन लग जाती है। लेकिन लगता है कि अफ़वाह झूठी ही थी क्योंकि जब दुकान खुली तो बेचनेवाली वेरा ने वोदका के पुराने दाम लगाए जिसको लेकर इतनी बहस और तू-तू मैं-मैं हुई कि वेरा दुकान ही बन्द करके चल दी। कोई किसी पर विश्वास ही नहीं कर रहा था कि कौन सच है और कौन झूठ! सामान की बिक्री के मामले में पारस्परिक अविश्वास और असम्मान को यह कहानी बड़े ही सहज लेकिन प्रभावशाली ढंग से उद्‌घाटित करती है।

बोरीस येकीमोव की कहानी 'मकान बिकाऊ है' भी बूढ़ी औरत के बारे में ही है जिसने अपना मकान बेचने का विज्ञापन दे रखा है क्योंकि अब वह अकेली रह गयी है। मकान के ख़रीदार तो बहुत-से आते हैं पर बूढ़ी मान्या उनसे ऐसे बात कर रही है जैसे कि उसे मकान बेचना ही नहीं है। वह कहती है कि वह भी इसी मकान में रहेगी—"मैं अपने ही यहाँ रहना चाहती हूँ आख़िर तक। दो या तीन हज़ार कम कर दूँगी और यहीं कोठरी में रह लूँगी।... तुम अपने वास्ते दरवाज़ा बनवा लेना। हाँ, एक बात और भी है कि मेरी पड़ोसन नहाने इसी हमाम में आती है। मरने तक उसे आने देना। इसके बदले भी क़ीमत कुछ कम कर दूँगी। तहख़ाने में उसका आलू पड़ा रहने देना।" बूढ़ी मान्या की इतनी सारी शर्तें हैं मकान बेचने की, जो उसका सरल स्वभाव ही दिखाती हैं। वह अपनी बेटी के पास भी नहीं जाना चाहती है जो हफ़्ते में एक बार आती है और जो भी शाक-सब्ज़ी उसके काम की होती है, बटोर कर ले जाती है। इस प्रकार यह कहानी भी बच्चों और बूढ़े माँ-बाप की दूरी को उजागर करती है।

काकेशियाई मूल के अबख़ाज़ी लेखक फ़ाज़िल इस्कन्दर की कहानियाँ वहाँ के समाज से परिचय तो कराती ही हैं, उसकी आलोचना करने से भी पीछे नहीं रहती हैं और इसलिए उनमें व्यंग्य का पुट प्रायः रहता ही है। 'निषिद्ध फल' शीर्षक उनकी कहानी में बहन द्वारा किसी के घर सूअर का मांस खाए जाने और भाई के उससे वंचित रह जाने की एक घटना का अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है। भाई उसके आस्वाद

का आनन्द नहीं जान पाता है। अन्त में घर में आकर भाई अपनी बहन की शिकायत जब पिता से करता है तो उनकी ओर से भी उसे निराश तो होना ही पड़ता है, उलटे चुग़लख़ोरी करने का दण्ड भी भुगतना पड़ता है। इस कहानी को पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि फ़ाज़िल इस्कन्दर श्रेष्ठ कथाकार होने के साथ-साथ बाल मनोविज्ञान को भी बख़ूबी समझते हैं।

फ़ाज़िल इस्कन्दर की दूसरी कहानी 'शब्द' काकेशस में प्रचलित 'राक्षस-विवाह' की प्रथा के सन्दर्भ में लिखी गयी है। वहाँ पर अपनी पसन्द की लड़की उठाकर ले जाने और उससे ब्याह करने का रिवाज रहा है। और फिर दोनों जीवन भर साथ निभाते हैं। इस कहानी का नायक तेइम्राज़ भी ऐसा ही करता है। उसकी पत्नी आयशा के भाई विद्रोही और हत्यारां के रूप में कुख्यात थे। तेइम्राज़ इनसे बिल्कुल अलग क़िस्म का था। उसके भाइयों के कारण उसके बाबा को यह रिश्ता पसन्द नहीं था। ख़ैर, आयशा ने अपने सौम्य स्वभाव और सेवा-भाव से घर का वातावरण ही बदल डाला। आयशा के आने से बूढ़े पिता के घर में जान आ गयी थी। परन्तु तेइम्राज़ और आयशा का साथ बहुत अधिक नहीं रहा क्योंकि आयशा बीमार पड़ने लगी थी। उसकी मृत्यु के बाद से तेइम्राज़ का सन्तुलन बिगड़ गया था और अन्त में उसने आत्महत्या ही कर ली। इस कहानी का कथानक अबख़ाज़िया की पारिवारिक प्रथाओं के इर्द-गिर्द चलता है और यही इसका सबसे सशक्त पक्ष है।

यूरी कज़ाकोव की कहानी 'शान्ति सुबह' किशोरों के जीवन से सम्बन्धित है। इस कहानी में दो लड़के याश्का और वोलोद्या मछली पकड़ने जाते हैं। याश्का सवेरे उठकर जल्दी से तैयार हो जाता है जबकि उसका मित्र वोलोद्या न समय पर उठता है, न उसने कुछ तैयारी कर रखी है और वह मछली पकड़ने क्या जा रहा है जैसे पिकनिक पर जा रहा हो। मछली पकड़ते समय भी वह बार-बार कई ग़लतियाँ करता है। याश्का उसे समझाते-समझाते हार जाता है। अन्त में तो उसका पाँव ही फिसल जाता है और वह नदी में जा गिरता है। उसे ठीक से तैरना भी नहीं आता। तब याश्का नदी में कूदकर वोलोद्या की जान बचाता है। पूरी कहानी में अद्भुत चलायमानता, गतिशीलता है। जिस तरह फ़ाज़िल इस्कन्दर की कहानी 'निषिद्ध फल' बाल मनोविज्ञान की सशक्त प्रस्तुति है, उसी तरह इस कहानी में भी किशोरों के मनोविज्ञान को उनकी मैत्री के माध्यम से उभारा गया है।

आधुनिक युग में अपनी जड़ों से जुड़ने का मुद्दा भी कई कहानियों की विषय वस्तु में आया है। प्रस्तुत संग्रह की कहानी 'रोटी की गंध' में यूरी कज़ाकोव ने परोक्ष रूप से यही प्रश्न उठाया है जिसमें इसके विपरीत पक्ष को देखा जा सकता है। विवाह के बाद से मास्को में रह रही बेटी दूस्या का जब गाँव से तार आता है कि उसकी माँ का स्वर्गवास हो गया है तो वह निश्चय नहीं कर पाती है कि अपने गाँव जाए या न

जाए। जाड़ों में वह वहाँ नहीं जाती है। पर उसे इस बात की भी आशंका है कि वहाँ जो कुछ भी बचा-खुचा रहा होगा, रिश्तेदार ले गये होंगे। पति की सलाह पर वह गर्मियों में गाँव जाने का फ़ैसला करती है जो उसे यह भी कह देता है कि ज़्यादा झंझट मोल ना ले और जो भी बचा हो जल्दी से बेच-बाच कर आ जाए। दूस्या जब गाँव के पास पहुँचती है तो वह पुरानी यादों से घिर जाती है। वही रोटी की गंध, वही घास की सुगंध, वही खेत, वही पगडण्डी। साथ ही गाँव में बदलाव भी बहुत आ गया था। अपनी बहन से मिली तो दोनों की आँखें भर आईं और इस दृश्य को देख उसका भाँजा मीशा आश्चर्यचकित हो रहा था। एक-एक करके उसने घर का पूरा चक्कर लगाया, माँ का सन्दूक़ खोला तो उसमें से वही पुरानी गंध निकल कर आई। बहुत-सा सामान रिश्तेदार उठा ले गये थे पर मकान बचा हुआ था। जैसा कि वह मास्को से ही निश्चय करके आयी थी, उसने मकान बेच दिया। फिर माँ की क़ब्र पर गयी। साथ में मीशा था। अपनी नानी की क़ब्र पर दूस्या मौसी को सिर पटक-पटक कर रोता देखकर मीशा की आवाज़ ही नहीं निकल पा रही थी और वह उल्टे पाँव गाँव को भाग गया। दूस्या तो रोते-रोते बेहोश-सी हो गयी थी और जब वह शाम तक भी घर नहीं आई तो गाँववाले उसे ढूँढ़ने क़ब्रिस्तान पहुँचे। अगले दिन दूस्या मास्को वापस लौट गई और कुछ दिनों बाद नए लोगों ने उस मकान में रहना शुरू कर दिया। गाँव से शहर की ओर पलायन और उसके बाद अपनी जड़ों की ओर आधा-अधूरा लौटने का चित्रण करनेवाली मार्मिक कहानियाँ और उपन्यास हिन्दी में भी लिखे जा रहे हैं और इस तरह के अधिकांश लेखक अपने जीवन के पचास वर्ष पार कर चुके दिखाई देते हैं। यही वह अवस्था होती है जब जड़ों की ओर लौटने की इच्छा पैदा होने लगती है। अपनी जड़ों की याद दिलानेवाली कहानी चाहे रूसी की हो या हिन्दी की, दोनों का मूल स्वर बसई अर्थात् *पूर्व स्मृति* (नास्टेल्जिया) का स्वर है।

प्रस्तुत संग्रह में सम्मिलित कुछ अन्य कहानियाँ भी रूस के ग्रामीण अर्थात् आंचलिक गद्य से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़ी हुई हैं। वसीली बेलोव, वलेन्तीन रस्पूतिन और बोरीस येकीमोव की कहानियाँ रूस के ग्रामीण चरित्र के विभिन्न पहलुओं को उजागर करने में सफल हुई हैं।

वसीली बेलोव की दो छोटी-छोटी कहानियाँ 'रास्ते में' और 'बातचीत' गाँव की वृद्धाओं को लेकर लिखी गयी हैं। 'रास्ते में' कहानी में दो वृद्धाएँ एक ट्रकवाले से लिफ़्ट माँगती हैं और जब वह उन्हें उनके गन्तव्य तक पहुँचा देता है तो उसे रूबल के छह नोट पकड़ाती हैं। ट्रकवाला उन्हें दो-दो के तीन नोट देकर आगे चल देता है। बेचारी वृद्धाओं को समझ में ही नहीं आ पाता है कि उन्हें लिफ़्ट मुफ़्त में ही मिल गयी है क्योंकि अपने भोलेपन के कारण उन्हें कुछ देर तक ध्यान में ही नहीं आता है कि दो-दो के तीन नोट उनके द्वारा ड्राइवर को दिये गये पाँच रूबल और एक रूबल के नोट के

बराबर ही हैं। पूरी कहानी का आकर्षण उसमें निहित उसकी सहजता है। वसीली बेलोव की दूसरी कहानी 'बातचीत' की पात्र भी दो वृद्धाएँ हैं। शहर में एक पार्क में दोनों की भेंट होती है। दोनों गाँव से आई हैं। अपना-अपना दुखड़ा सुना रही हैं। कभी एक बच्चे के पास तो कभी दूसरे बच्चे के पास भटकना—यही उनकी नियति रह गयी है। उनमें से एक वृद्धा अपने बेटे के बुलावे पर गाँव का मकान तक बेच आयी थी जबकि पड़ोसियों ने उसे ऐसा करने से मना किया था। पहले तो बेटे ने उसका स्वागत किया पर जब उसने कहा कि उसके रुपये रास्ते में खो गये है तो बेटे ने जगह की कमी का बहाना बनाकर उसे दूसरे बेटे के पास भेज दिया। वहाँ भी यही कहानी दोहराई गई। फिर बेटी के पास आई। उसे भी वही बात कही पर उसने दुत्कारा नहीं, दामाद ने भी उसे खुशी-खुशी अपने पास रख लिया। तब बुढ़िया ने अपनी अंटी में से निकालकर आठ हज़ार रूबल उन्हें ही सौंप दिये। यह कहानी बदलते हुए पारिवारिक जीवन-मूल्यों को सहजता के साथ प्रस्तुत करती है।

अनातोली किम की बहुत-सी कहानियाँ भी परिवार के विषय से जुड़ी हुई हैं। उनकी कहानी 'भाई और बहन' में भाई बहुत सालों बाद अपनी बहन से जब मिलता है तो उसकी रूखी सूरत ही उसे बहुत कुछ बता देती है। शाम को बहनोई काम से लौटकर आता है। उसके व्यवहार में किसी भी प्रकार की हार्दिकता नहीं दिखाई देती है। बहनोई और दामाद की बातचीत भी कुछ इस तरह चलती है कि उसमें व्यंग्य और कटाक्ष ही अधिक दिखाई देते हैं। बहनोई अपने दामाद चित्रकार से उसके काम के बारे में पूछता है क्योंकि उसे लगता है वह अच्छा ख़ासा कमा लेता होगा। भाइ ने सोचा था कि वह यहाँ समुद्र तट पर रहते हुए कुछ चित्र वनाएगा। पर बहनोई के व्यवहार और बच्चों के शोरगुल के बीच वह काम नहीं कर पा रहा था। तब वह पड़ोस के ख़ाली घर में काम करने चला जाता है जिसकी चाबियाँ उसकी बहन की सहेली उसके पास छोड़ गयी थी। इस तरह वहीं कुछ दिन काम करने के बाद वह वापस लौट जाता है। आतिथ्यरहित आधुनिक जीवन शैली की एक झलक इस कहानी में हम देख सकते हैं।

अनातोली किम की ही दूसरी कहानी 'कोमल सम्बन्ध' में एक ऐसी परनानी के माध्यम से कथानक को प्रस्तुत किया गया है जिसका पति, बेटा, पति का भाई थोड़े-थोड़े अन्तराल के बाद काल के ग्रास बनते चले गये थे। यह एक ऐसा परिवार था, जो कोरिया से आकर रूस के सुदूर पूर्व में बस गया था। बाद में तो सारा-का-सारा परिवार कोरिया से और भी बहुत दूर कज़ाख़स्तान के किसी इलाक़े में चला आया था। परनानी को पति के कुआँरे भाई की याद आई जो रात के समय कहीं भटक गया था और कहते हैं कि किसी शिकारी द्वारा बिछाई स्वचालित रस्सी पर उसका पैर पड़ने से चली शिकारी की गोली ने उसकी जान ले ली थी। उसे ठीक से दफ़नाया नहीं गया था और उसी की भटकती आत्मा एक-एककर कई जानें ले चुकी थी। परनानी एक दिन अचानक

घर से निकलकर पति के भाई की क़ब्र ढूँढ़ने कोरियाई सीमा की तरफ़ चल दी थी। किसी तरह उसने वह क़ब्र ढूँढ़ ही निकाली और उस हँसमुख किसान को फिर से पूरे सम्मान के साथ नई जगह दफ़नाया गया। इस कहानी के पात्रों का एक अनोखा सहचर भी है और वह है साही का बच्चा। जब तक परनानी जीवित थी, साही का वह बच्चा भी घर में ही रहता था। परनानी के स्वर्ग सिधारते ही वह भी कहीं लुप्त हो जाता है। इस कहानी में मानवीय संवेदनाओं को काव्यात्मक ढंग से और अन्योक्ति के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अनातोली किम की कथा शैली की यही सबसे बड़ी विशेषता है।

व्लदीमिर सोलोऊख़िन की 'छड़ी' शीर्षक कहानी में फ़ैशन से बाहर हो चुकी छड़ी जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तु का विस्तार से वर्णन करते हुए अतीत काल में प्रचलित तरह-तरह की क़ीमती और दुर्लभ छड़ियों को पाठकों के सामने रखा गया है। छड़ियों से भी अधिक महत्त्व उनकी मूठों का रहा है जो एक-से-एक क़ीमती वस्तुओं की बनी होती थीं। कहानी के मुख्य पात्र अलेक्सेइ ने तो अपने जीवन में पता नहीं कितने प्रकार की छड़ियाँ जमा करके रखी थीं। परन्तु जब छड़ियों का ज़माना निकल गया तो छड़ियों को भी भुला दिया गया। अलेक्सेइ को तो छड़ी लेकर चलना इतना अधिक पसन्द था कि एक बार उसके सामने जीवन का सबसे बड़ा प्रश्न खड़ा हो गया था—या तो छड़ी रहेगी या उसकी प्रेमिका ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना जो सोचती थी कि छड़ी लेकर चलना लँगड़ेपन की निशानी है। छड़ी जैसी एक मामूली-सी चीज़ के मारे दोनों के रास्ते अलग-अलग हो जाते हैं। व्लदीमिर सोलोऊख़िन को हम परम्परागत शैली का कथाकार मान सकते हैं। यह कहानी उनकी रचनात्मकता का एक नमूना प्रस्तुत करती है। व्लदीमिर सोलोऊख़िन के कई उपन्यास भी चर्चा में रहे हैं।

यदि फ़्योदोर अब्रामोव, बसीली बेलोव, वलेन्तीन रस्पूतिन ग्रामीण लेखक हैं तो इस संग्रह के अन्य बहुत-से कथाकार इनसे बिल्कुल ढंग के हैं। वे किसी सीमा में नहीं बाँधे जा सकते हैं। उनकी कहानियाँ या तो शहरी जीवन पर केन्द्रित हैं या किसी विशेष परिस्थिति को लेकर लिखी गयी हैं जिनका सम्बन्ध आधुनिकता से भी माना जा सकता है। यूरी त्रीफ़ोनोव, विक्तोरिया तोकारेवा, व्याचेस्लाव पेत्सूख़, नताल्या बरान्स्काया को इस श्रेणी के कथाकारों में रखा जा सकता है। यूरी त्रीफ़ोनोव की कहानी यात्रा अपनी ही ऊब में उलझे हुए व्यक्ति की कहानी है जिसे स्वयं पता नहीं है कि उसे करना क्या है और वह सोचता रहता है कि केवल एक ही चीज़ उसे बचा सकती है और वह है *यात्रा*। पर दिन भर इधर-उधर जाकर और तरह-तरह के परिचित-अपरिचित लोगों को देखकर अन्त में उसकी समझ में आ जाता है कि वह स्वयं को ही कितना कम जानता है। यही आज के जीवन की विडम्बना है जो त्रीफोनोव की और भी बहुत-सी कहानियों में मिलेगी।

यूरी त्रीफोनोव की दूसरी कहानी 'घिसे-पिटे विषय' लेखक की उस मनःस्थिति

को दिखाती है जिसका सामना नितान्त असंवेदनशील सम्पादक से होता है और जिसे उसकी कहानी में सब कुछ घिसा-पिटा ही लगता है। वही सम्पादक लेखक को रोक कर उसी होटल में भी मिल जाता है जहाँ यह लेखक भी रह रहा था। लेखक के लिए यह सम्पादक हमेशा असगुनी ही रहा। रोम में बीस साल बाद उससे भेंट होते-होते रह गई और अच्छा ही हुआ क्योंकि लेखक की पत्नी डरती थी कि उसके सामने उनकी आपस में भेंट न हो जाए। तब तो और भी कई असगुन हो सकते थे जो पत्नी और इस सम्पादक के पहले जीवन से जुड़े हुए थे। इस तरह के टकरावों को उभारना त्रीफोनोव की कला की विशिष्टता है।

वर्तमान समय में बहुत-से लोग एकाकी जीवन जीने को अभिशप्त हैं। व्लदीमिर लीदिन की कहानी 'उपहास' में मरीया पेत्रोव्ना के एकाकी जीवन को चित्रित किया गया है, जो संग्रहालय से सेवा-निवृत्त होने के बाद भी बच्चों के ग्रुपों को संग्रहालय भ्रमण कराया करती है। अपना एकाकीपन दूर करने का यही एकमात्र साधन उसके पास है। एक दिन अचानक एक व्यक्ति संग्रहालय में उससे मिलने आता है और पता चलता है कि यह उसके पूर्व पति का बेटा है। मरीया पेत्रोव्ना के पति अलेक्स्येइ अन्द्रेयेविच सेवस्त्यानोव को दिसम्बर 1825 के आन्दोलन के बारे में किताब लिखने के सिलसिले में साइबेरिया जाने का अवसर मिला था, जहाँ के अभिलेखागारों में इस विषय की बहुत-सी अनछुई सामग्री अभी भी पड़ी हुई है। वहाँ जाकर उसे एक ऐसी सहायिका मिली जो उसकी जीवन-संगिनी ही बन गयी। सेवस्त्यानोव ने अपनी किताब पूरी की थी और उसकी इच्छा थी कि वह पुस्तक उसकी पहली पत्नी के हाथों तक पहुँचे। अपनी मृत्यु से पूर्व उसने अपने बेटे से जब यह सब कहा तो एक दिन सेवस्त्यानोव का बेटा ईगर अलेक्स्येयेविच संग्रहालय जा पहुँचा। मरीया पेत्रोव्ना को उस अनजान और अनदेखे व्यक्ति में अन्द्रेयेविच की छवि दिखाई दी। मरीया पेत्रोव्ना को ईगर से मिलकर ख़ुशी ही हुई और जब वह जाने को हुआ और अपनी पत्नी को दिखाने के लिए उनकी फोटू माँगने लगा तो वह बोली—"मेरे पास फोटू नहीं है। फोटू खिंचाए सालों बीत गये हैं। बस, इतना बता देना कि मास्को में एक बुढ़िया रहती है, बूढ़ी अम्मा मरीया पेत्रोव्ना। उसने अपनी शुभकामनाएँ भेजी हैं। इतना और कह सकते हो कि तुम्हारा आना मुझे बहुत अच्छा लगा और इस बात से भी ख़ुशी हुई कि अलेक्स्येइ अन्द्रेयेविच पूरी तरह नहीं चले गये हैं। यह जीवन की ऐसी प्यारी ख़ुशी है कि जिसे वह सब नहीं ले जा सकता।" यह कहानी मनुष्य की उन संवेदनाओं को रेखांकित करती है जिनके तार वैवाहिक सम्बन्ध समाप्त हो जाने के बाद भी किसी-न-किसी रूप में जुड़े रहते हैं।

नताल्या बरान्स्काया की कहानी 'दुनिया का छोर' भी एक दूसरे तरह के एकाकीपन को चित्रित करती है। कहानी की नायिका येलिज़ावेता निकोलायेव्ना का पति महायुद्ध के दौरान किसी खंदक में शहीद हो गया था। यूँ तो येलिज़ावेता

निकोलायेव्ना का परिवार काफ़ी बड़ा था जिसमें दो बेटे, चार बहुएँ (दो तलाक दी हुईं) और छह पोते थे। पर वह रहती थी अपनी बेटी के साथ जो अपने जुड़वाँ बच्चों के साथ अकेली रह गयी थी। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना हमेशा अपनी सन्तान और पोतों के बारे में सोचती रहती थी। सबकी अपनी-अपनी समस्याएँ थीं और कुल मिलाकर येलिज़ावेता निकोलायेव्ना के जीवन में शान्ति नहीं थी। उसके बच्चों में से किसी का दफ़्तर में झगड़ा चलता रहता था, किसी को पीने की लत थी और बेटी ने भी घर देर से आना शुरू कर दिया था। उसके जुड़वाँ बच्चों के साथ भी कम मुसीबतें नहीं थीं। ऊपर से बेटी के ताने भी बीच-बीच में सुनने पड़ते थे। यही चिन्ताएँ और परेशानियाँ उसे दुनिया के छोर पर चले जाने को कह रही थीं। इतना बड़ा परिवार भी येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को शान्ति और सुकून नहीं दे पाता है—यही है आधुनिकता का विद्रूप चेहरा।

विक्तोरिया तोकारेवा तत्कालीन सोवियत संघ के ज़माने से चले आ रहे सामाजिक अन्तर्विरोधों को छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से उकेरने में माहिर हैं। उनकी प्रत्येक कहानी किसी-न-किसी ऐसी सच्चाई को प्रकट कर देती है जो हमारे परिवेश में विद्यमान होते हुए भी हमसे कभी-कभी अनदेखी रह जाती है। उनकी कहानी 'मूड बिगड़ गया' सरकारी पॉलीक्लीनिक में डॉक्टरों और नर्सों के रूखे व्यवहार को दिखाती है जहाँ लारीसा नाम की महिला अपनी बच्ची को दिखाने आई हुई है। साथ में उसकी बेटी दाशा भी आई हुई है। यह कहानी लारीसा की झुँझलाहट की सशक्त प्रस्तुति है जिसे एक ओर तो डॉक्टरों और नर्सों के वार झेलने पड़ रहे हैं और दूसरी ओर अपनी बच्चियों के अनोखे नख़रे। इस बीच बाहर निकलते समय पता चलता है कि लारीसा का कोटघर टोकन ही खो गया है। अपना ओवरकोट प्राप्त करने के लिए लारीसा को तब तक इन्तज़ार करना पड़ा जब तक कि पॉलीक्लीनिक की छुट्टी नहीं हो गयी। इस बीच उसे कोटवाली के तथा पॉलीक्लीनिक के कर्मचारियों के ताने अलग से सुनने पड़े। आख़िर मूड बिगड़ना ही था!

विक्तोरिया तोकारेवा की ही दूसरी लम्बी कहानी 'धरती और आकाश के बीच' में तलाक के द्वारा अलग हुए पति-पत्नी की बीस साल बाद हुई मुलाक़ात के माध्यम से उनके सम्बन्धों और टकरावों को दिखाया गया है। हवाई अड्डे में विमान की लम्बी प्रतीक्षा में ख़ाली बैठी हुई नताशा के मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। बीस साल बाद भी उनका झगड़ा ठीक उसी वाक्य से शुरू हुआ जहाँ वह बीस साल पहले रुके थे, जैसे कि इस बीच कुछ बदला ही न हो। कुछ झगड़कर दोनों फिर से अपने-अपने रास्ते पर चल देते हैं। इस बीच नताशा अपने नए प्रेमी कियायेव के पास बाकू शहर जाती है जहाँ की उड़ान बार-बार स्थगित होने की घोषणा हो रही थी। विमान में जाते समय नताशा को अपने एक दूर के रिश्तेदार वालिक का ध्यान आता है जो खान में

दबकर मर गया था और उसकी पत्नी नाद्का ने एक हफ़्ते बाद ही दूसरी शादी कर ली थी और जिसको लेकर वालिक की माँ यानी नाद्का की भूतपूर्व सास सिर पीट रही थी। बस, इसी तरह तलाक के अलग-अलग रूपों को प्रस्तुत करती हुई यह कहानी अपने समाज की ज़मीनी सच्चाइयों को वायवी तर्कों के साथ आगे बढ़ाती चलती है और उसके पात्रों के तर्क-वितर्क के बीच पाठक भी धरती और आकाश के बीच में चढ़ता-उतरता चलता है।

व्याचेस्लाव पेत्सूख़ की कहानियों में व्यंग्य का तत्त्व अवश्य विद्यमान रहता है और उनमें कोई निहितार्थ भी होता ही है। 'सम्पत्ति की त्रासदी' कहानी में परोक्ष रूप से यही बताया गया है कि सम्पत्ति की चोरी युग-युगों से होती आई है और वर्तमान अर्थात् समाजवादी व्यवस्था (जो अब समाप्त हो चुकी है) में भी उसका होना जारी था। सोवियत ज़माने में भी अच्छा-ख़ासा जीने के लिए चोरी करना आवश्यक ही था। बस, जब तक चोरी पकड़ी न जाए। पुराने सामान के जाँचकर्ता के पद पर काम करनेवाला स्पिरिदोनोव पचास के दशक में जहाँ अपनी नौकरी से मुश्किल से ही गुज़ारा कर पाता था, वहीं अस्सी के दशक में—यह पेरेस्त्रोइका और ग्लासनत का दौर था—वह मालामाल हो गया था। उसकी ऊपरी कमाई अपराध क़ानून की पकड़ में आ ही नहीं सकती थी। परन्तु चोरी की सम्पत्ति जिस तरह आती है उसी तरह चली भी जाती है। यह सिर्फ़ स्पिरिदोनोव के साथ ही नहीं हुआ, उसके दादा और परदादा का भी यही हश्र हुआ था; यानी सम्पत्ति तो सम्पत्ति ही है, चाहे व्यवस्था कोई भी हो। सोवियत समाजवादी व्यवस्था के अन्त होने का एक कारण शायद यह भी रहा हो कि उस व्यवस्था में सम्पत्ति की अवधारणा ही अलग थी और आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति होना भी सम्पत्ति की चोरी जैसा माना जाता था। तभी तो स्पिरिदोनोव का पड़ोसी कहता है—"आप चाहे मुझे इसी समय क्यों न मार डालें, हम देर-सवेर आपके देशद्रोही गिरोह को नष्ट कर ही डालेंगे जो सुनियोजित ढंग से समाजवाद की जड़ों को खोखला करने में लगा है।" अन्त में वह पूरी व्यवस्था ही नष्ट हो गयी।

व्याचेस्लाव पेत्सूख़ की दूसरी कहानी 'मुझिक, कुत्ता और क़यामत' सोवियत संघ के विघटन के बाद पैदा हुई बेरोज़गारी को लेकर लिखी गई है। पत्नी तो नौकरी में थी पर उसका पति दिन भर घर में पड़ा रहता था। उसे कोई बुरी लत भी नहीं थी। परन्तु पत्नी को उसका ख़ाली बैठना क़तई अच्छा नहीं लग रहा था। तो हुआ यह कि एक दिन उनके पालतू कुत्ते ने बिल्ली के भोजन में से एक टुकड़ा खा लिया और बिल्ली ने उससे बदला लेने के लिए उसकी चटाई में मूत दिया। फिर क्या था, पत्नी को मौक़ा मिल गया और उसने अपने मुझिक (पति) को कुत्ते समेत घर से बाहर कर दिया। पत्नी ने बिल्ली का पक्ष लिया था। मुझिक ने सोचा कि रेलवे स्टेशन में रात बिता लेगा पर सिपाही ने उसे वहाँ भी टिकने नहीं दिया। बाद में उसकी मुलाक़ात एक फटेहाल बूढ़े

व्यक्ति से होती है जो उसे अपने घर चलने को कहता है। मालकिन ने उसका स्वागत किया और उसे हैरानी हुई कि इतनी ज़रा-सी बात पर पत्नी ने उसे घर-बाहर कर दिया है। कम-से-कम गुज़ारा भत्ता तो दिया होता। इसी भत्ते के लिए पति ने मुक़दमा तक दायर कर दिया और वह जीत भी गया। अपनी हार से बौखलाई पत्नी पति को घर में रखने को राजी हो गई। पर इस बीच पता नहीं क्या हुआ कि उस पति ने जज की सेक्रेटरी से ही शादी कर ली। उसे अपना और अपने कुत्ते का गुज़ारा तो करना ही था। तभी तो स्वभाव से कुत्तों को बिल्लियों का भोजन ही रास आता है। उत्तर-सोवियत काल में पति के बेरोज़गार हो जाने से पति और पत्नी के बीच में आये तनाव को व्याचेस्लाव पेत्सूख़ ने कुत्ते और बिल्ली के रूपक के द्वारा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

अलेक्सान्द्र ख़ूर्गिन की कहानी 'छँटनी' का विषय भी उत्तर-सोवियत काल में उत्पन्न बेरोज़गारी की समस्या ही है। तुलीशिन नाम का श्रमिक खराद पर ड्रिलर का काम करते हुए अच्छा कमा रहा था और 'सम्मान पदक' भी प्राप्त कर चुका था। जब सुधार का युग शुरू हुआ तो सबसे पहले एक पाली बन्द कर दी गई क्योंकि माल बिक नहीं रहा था। फ़ैक्टरी के उत्पादों की ख़रीद न होने से वेतन नहीं दिया जा सकता था और इसलिए उत्पादन कम करना आवश्यक हो गया था। इसके परिणामस्वरूप फ़ैक्टरी में मज़दूरों की संख्या कम करना भी अपरिहार्य हो गया। छँटनी हुए श्रमिकों में तुलीशिन भी था। नौकरी के लिए उसने कई जगह चक्कर लगाए, कोई काम नहीं बना। शायद नए ज़माने के कामों के लायक़ वह रह नहीं गया था और जो काम वह जानता था उसकी इस समय आवश्यकता नहीं थी। वह रोज़गार दफ़्तर को चल दिया। शहर में जगह-जगह लोगों की भीड़ देख उसे हैरानी हो रही थी कि इतने सारे लोग बेरोज़गार कैसे बैठे हैं? या उनकी रात की पाली है। उसकी यह सोच यही बताती है कि उसका अब तक का जीवन घर से फ़ैक्टरी और फ़ैक्टरी से घर तक सीमित रहा था। ख़ैर, रोज़गार दफ़्तर के रजिस्टर में अलग-अलग पेशों की नौकरी के लिए अलग-अलग पृष्ठ थे पर ड्रिलर जैसे पेशे का वहाँ कोई पृष्ठ नहीं था। उसका श्रमवीर पदक भी किसी काम का नहीं रह गया था। घर में बेटियों का हाल यह था कि उन्होंने कह दिया कि उन्हें पैसे नहीं चाहिए और वह अपना इन्तज़ाम खुद कर लेंगी। वे रात को घर देर से लौटने लगी थीं। उत्तर सोवियत काल की विडम्बनाएँ इस कहानी में स्पष्ट झलकती हैं।

ग्रिगोरी पेत्रोव की कहानी बहुरुपिये का मुख्य पात्र शिशीगिन भी बेरोज़गार है। उसकी फ़ैक्टरी के सारे लोगों को छुट्टी दे दी गई है क्योंकि वेतन देने को रुपये ही नहीं हैं। एक दिन उसकी पत्नी सर्कस के टिकट लेकर आती है। दोनों सर्कस देखने जाते हैं। सर्कस में जादूगर किसी एक दर्शक को मंच में घुसकर कटवाने के लिए बुलाता है। शिशीगिन की पत्नी जादूगर के पास ऊपर चली जाती है। जादूगर उसके दो टुकड़े

कर देता है। बाद में जब वह उसे जोड़ देता है तो बक्से में जो महिला निकलती है वह तो कोई और ही होती है, उसकी पत्नी नहीं। यानी बेरोज़गार व्यक्ति को उसकी पत्नी तक छोड़ गई। किसी ने कहा कि क्या पता जादूगर के पास चली गई हो। किसी ने सलाह दी कि कल नववर्ष की पूर्व संध्या है, लोग बहुरुपिये बनकर आएँगे, सवेरे प्रभात फेरी में भी लोग छद्मवेश में निकलेंगे, शायद उनके बीच में उसकी पत्नी मिल जाए। वहाँ भी एक नकाबपोश ने जब अपनी नकाब उतारी तो वह भी कल वाली औरत ही निकली। लोगों ने कहा कि इसी से कर लो शादी। परन्तु शिशीगिन को तो अपनी पत्नी ही चाहिए थी। बाद में और भी बहुरुपिये आये। उनमें से एक ने शिशीगिन से कहा कि उसकी पत्नी ने उसे अपवित्र शक्ति के बल से प्राप्त किया है। शिशीगिन के मन में और भी भ्रम बैठ गया। जब घर आया तो देखा कि घर में रोशनी है। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। घर के अन्दर पहुँचा तो देखा कि उसकी पत्नी घर में विराजमान है। उसे रात भर नींद नहीं आई। सवेरे ज़रा-सा ऊँघा और जब आँख खुली तो देखा कि उसकी पत्नी काम पर जा चुकी थी और बिस्तर पर कल के स्वाँग का एक बूढ़ा व्यक्ति बैठा हुआ था। यह शायद वही फ़ौजी था जिसके साथ विवाह की बात उसकी पत्नी ने रात को सच्येल्निक के समय की थी। इस कहानी में लेखक ने बहुरुपी बनने की प्राचीन रूसी प्रथा के बिम्बों को माध्यम बनाकर बेरोज़गार पति और उसकी पत्नी के तनाव को प्रदर्शित किया है। इस प्रकार के बिम्बों का प्रयोग इससे पहले के दशकों में नहीं होता था। इन्हें उत्तर-सोवियत काल के धार्मिक पुनरुत्थान से जोड़कर देखा जा सकता है।

ग्रिगोरी पेत्रोव की दूसरी कहानी 'दलदली बबुआ' में भी धार्मिक विषय घुला-मिला हुआ है। येगोर नाम का बच्चा स्वभाव से चुप्पा था। वह स्कूल की किताबें न पढ़कर 'संतकथामृत' जैसी पुस्तकें पढ़ा करता था। वह चमत्कारी भी था। कई बार मरते-मरते तक बचा था। सपने में उसे परम पवित्र देवी तक दिखाई दी थीं। स्कूल की पढ़ाई के बाद उसने धार्मिक शिक्षालय में जाने की इच्छा प्रकट की। ऐसा सुनते ही घर में कोहराम मच गया। पिताजी ने कहा—"एकदम मूर्ख है ! अपने आसपास तो देख ज़रा, ठूँठ कहीं के ! क्या कुछ हो रहा है ! आज़ादी ! लोगों ने जीना तो अब शुरू किया है। काम करने को कहो तो कहेंगे—मुझे नहीं करना। आजकल तो रातों-रात अमीर बना जा सकता है। सब किसी-न-किसी चक्कर में हैं। और तू पादरी बनेगा ! सही मायने में मूर्ख है। लगता है कि जन्म से ही ऐसा है।" माँ भी विलाप कर रही थी। येगोर ने अपनी ज़िद पूरी कर ही ली। धार्मिक शिक्षा पूरी करने के बाद उसे किसी दूर के गाँव में छोटे-से गिरजे में भेजा गया। वहाँ वह अपना काम बख़ूबी कर रहा था। पर इस बीच किशोरियों ने भी उसके ग़िरजे में आना शुरू कर दिया। महिलाएँ तो आती ही थीं। कुछ समय पाव्लीना नाम की एक महिला गिरजे के पास ही किराए के कमरे में रहने लगी थी क्योंकि

येगोर के आशीर्वाद से उसका गिरता हुआ स्वास्थ्य सुधर गया था। एक बार वह येगोर को अपने कमरे में लेकर आई। मकान मालकिन ने येगोर का स्वागत किया। मालकिन के आग्रह पर येगोर ने रात वहीं बिताई, पाव्लीना के कमरे में। सवेरे पाव्लीना के उठने तक येगोर जा चुका था। लेकिन पाव्लीना को मालूम था कि वह ऐसे ही नहीं गया है। उसने मालकिन से भी वैसा ही कहा—"अम्मा, नहीं।...यहाँ, धरती पर, अब हम उन्हें और नहीं देखेंगे..." इस कहानी का सबसे बड़ा सच शायद यही है।

बीसवीं सदी के रूप के उत्तरार्द्ध को इन कालखण्डों में बाँटकर देखा जा सकता है—युद्धोत्तर काल, स्तालिनोत्तर काल, जड़ता का काल, पेरेस्त्रोइका और सोवियत संघ का विघटन और उत्तर सोवियत काल।

रूसी साहित्य भी इन कालखण्डों से अछूता नहीं रहा है। प्रस्तुत संग्रह में इन कालखण्डों से गुज़री हुई रूसी कहानी के विविध रूपों का आंशिक परिचय पाठकों को मिल सकेगा। प्रत्येक कहानीकार अपनी विशिष्टता लिए हुए है। कहीं-कहीं विषय वस्तु की समानता होते हुए भी प्रत्येक कहानीकार का अपना वैशिष्ट्य है। रूसी कथाकार अपने कथ्य के विस्तार और उसकी बारीकी में जाने में कंजूसी और आलस्य नहीं करते हैं। इसलिए उनकी कहानियों में एक ऐसी गहराई होती है जो हिन्दी के कथा साहित्य के परिप्रेक्ष्य में कभी-कभी औपन्यासिक संरचना जैसी प्रतीत होती है। इन कहानियों में रूसी कथा-शिल्प के विविध रूपों के साथ-साथ रूस के समाज में पिछले पचास वर्षों में आए अनेक बदलावों की भी स्पष्ट एवं मुखर अभिव्यक्ति देखने को मिलेगी।

—हेमचन्द्र पाँडे

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली 110067

रोटी की गंध

यूरी कज़ाकोव

1

तार पहली जनवरी को आया था। दूस्या रसोईघर में थी, दरवाज़ा पति ने खोला था, बनियान पहने हुए नशे के प्रभाव के मारे वह बरबस उबासी ले रहा था और सोच रहा था कि अब और किसने शुभकामना भेजी है। इसी तरह उबासी भरते हुए उसने वह छोटा-सा तार पढ़ा, जिसमें दूस्या की माँ की मृत्यु का समाचार आया था। वह सत्तर साल की बुढ़िया दूर गाँव में रहती थी।

"कैसे बेवक़्त मरी!" घबराहट के साथ उसने सोचा और पत्नी को बुलाया।

दूस्या रोई नहीं, बस उसका रंग उड़-सा गया। वह कमरे में गई और मेज़पोश ठीक करके बैठ गई। पति ने धुँधली नज़र से मेज़ पर पड़ी बोतलों को देखा, जिनमें अभी भी शराब बाक़ी थी। उसने गिलास भरा और पी गया। फिर कुछ सोचकर दूस्या को भी दी।

"पी लो! पता नहीं क्या हो गया है। सर फटा जा रहा है, हा-हा-हा! ...सभी को वहाँ जाना है। तुमने क्या सोचा—गाँव जाओगी?"

दूस्या चुप रही, वह मेज़पोश पर हाथ फेरे जा रही थी, फिर गिलास ख़ाली करके अंधी-सी बिस्तर पर जाकर लेट गई।

"मालूम नहीं।" एक मिनट बाद उसने जवाब दिया।

पति ने दूस्या के पास आकर उसके सुगठित बदन को सहलाया।

"ठीक है...क्या किया जाए? कर भी क्या सकती हो?" इससे अधिक क्या कहे, उसे मालूम नहीं था। वह मेज़ के पास लौट आया, फिर और गिलास भरा, "ख़ुदा की बादशाहत है, सभी को वहाँ जाना है।"

सारा दिन दूस्या मुरझाई-सी मकान के चक्कर काटती रही, सिर दर्द कर

रहा था, निमन्त्रण पर भी नहीं गई। वह रो लेना चाहती थी, पर रोने की भी जैसे इच्छा नहीं थी, बस एक उदासी-सी थी। दूस्या को माँ से मिले लगभग पन्द्रह साल हो गए थे। गाँव तो छोड़ा ही था और फिर शायद ही कभी अपनी पिछली ज़िन्दगी में से कभी कुछ याद किया हो। यदि उसे कुछ याद आता भी था तो ज़्यादातर बचपन के शुरू के दिनों की कुछ बातें ही या फिर किशोरावस्था में जब उसे क्लब से घर विदा किया गया था।

दूस्या पुरानी बातों की छानबीन करने लगी, फिर भी रोना नहीं आया। उसे सिर्फ़ माँ का तनावपूर्ण अनजबी चेहरा, बाहर को निकली हुई आँखें और कमर में लटके हुए भारी हाथ ही याद आ रहे थे।

रात के समय बिस्तर पर लेटे-लेटे दूस्या देर तक पति से बातें करती रही और अन्त में बोली, "नहीं जाऊँगी, जाऊँ भी तो किधर? वहाँ तो अभी बहुत ठण्ड है।...जो भी बचा-खुचा रहा होगा, रिश्तेदार ले गए होंगे। वहाँ हमारे रिश्तेदारों की कमी नहीं है। नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।"

2

जाड़ा बीत गया। दूस्या माँ को एकदम भूल चुकी थी। उसका पति अच्छी नौकरी में था, वे अपना आनन्द से रहते थे। दूस्या और भी सुगठित और सुन्दर हो गई थी।

मई के आरम्भ में दूस्या को अपने भानजे मीशा की चिट्ठी मिली। सीधी लाइन वाले काग़ज़ पर चिट्ठी बोलकर लिखवाई गई थी। मीशा ने अनेकों सम्बन्धियों की ओर से शुभकामनाएँ देते हुए लिखा था कि नानी का मकान और सामान सुरक्षित पड़ा है तथा दूस्या से निवेदन किया था कि वह ज़रूर आए।

पति ने कहा, "चली जाओ। हो आओ। ज़्यादा झंझट मत मोल लेना, जो है, जल्दी से बेच डालो। नहीं तो दूसरे लोग ले जाएँगे या सब कलखोज़[1] का हो जाएगा।"

दूस्या चली गई। बहुत समय से वह कहीं नहीं गई थी, जाना ठीक ही था। उसका रास्ता भी अच्छा कटा, बहुतों से बातें कीं और परिचय हुआ।

दूस्या ने अपने आने का तार भेज दिया था, लेकिन पता नहीं क्यों, कोई उसे लेने नहीं आया। पैदल ही जाना पड़ा, पर चलने में भी दूस्या को आनन्द आ रहा था। रास्ता पक्का और सपाट था, दोनों तरफ़ अपने स्मल्येन्स्क के खेत फैले हुए से, दूर क्षितिज पर नीली-नीली झाड़ियाँ नज़र आ रही थीं।

---

1. सहकारी खेती

दूस्या को अपने गाँव तक पहुँचने में लगभग तीन घंटे लग गए। नदी पर बने हुए पुल पर रुककर वह देखने लगी। गाँव में बहुत-सी इमारतें बन गई थीं, चारों तरफ़ सफ़ेद डेरियाँ खुल गई थीं—इस तरह पहचानना ही मुश्किल हो गया था। दूस्या को यह सब बदलाव कुछ अच्छा-सा नहीं लगा।

वह चली जा रही थी, जो भी मिलता उसे घूरकर देखती कि पता चले कौन है। लेकिन वह किसी को भी ठीक से पहचान न पाई, जबकि उसको बहुतों ने पहचाना, रुके और हैरान हुए कि वह कितनी बड़ी हो गई है।

दूस्या से मिलकर उसकी बहन को बहुत ख़ुशी हुई, वह रो पड़ी और चाय के लिए समावर रख आई। दूस्या ने अपने झोले से सौगात निकाली, सौगात देखकर बहन के फिर आँसू आ गए, उसने दूस्या को गले लगा लिया। मीशा बेंच पर बैठा हैरान था कि ये दोनों रो क्यों रही हैं?

बहनें चाय पीने बैठीं। दूस्या को मालूम चला कि बहुत-सा सामान रिश्तेदार उठा ले गए हैं। मवेशी—सूअर का एक बच्चा, भेड़ के तीन मेमने, बकरी और मुर्ग़ियाँ—बहन ने ले ली थीं। पहले तो दूस्या को मन-ही-मन बुरा लगा पर बाद में भूल गई, इसलिए भी कि बहुत कुछ बाक़ी रह गया था और सबसे बड़ी बात तो यह कि मकान बचा था। जी भरकर चाय पी लेने और बातें कर चुकने के बाद दोनों बहनें मकान देखने चली गईं।

बग़ीचा जोता हुआ था। दूस्या हैरान रह गई। बहन ने बताया कि पड़ोसियों ने जोता है, ताकि ज़मीन बेकार न जाए। मकान भी दूस्या को वैसा बड़ा नहीं लगा, जैसा कि वह उसकी याद में था।

खिड़कियों में फट्टे ठोक दिए गए थे। दरवाज़ों पर ताला लटका हुआ था। उसकी बहन ने बड़ी देर तक ताला खोलने का प्रयास किया, फिर दूस्या ने कोशिश की, फिर बहन ने दुबारा कोशिश की। जब तक ताला खुल नहीं गया, दोनों काफ़ी परेशान हो चुकी थीं।

मकान के भीतर अँधेरा था, फट्टों के बीच में से थोड़ा-सा प्रकाश आ रहा था। मकान में सीलन बैठ गई थी और देखने में वह निर्जन लगता था। परन्तु वहाँ रोटी की गंध आ रही थी, यह बचपन की परिचित गंध थी। दूस्या का दिल फड़कने लगा। उसने कमरे का चक्कर लगाया, चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई, वह धुँधलके में पहचानने का प्रयास कर रही थी। छत नीची थी, गहरे भूरे रंग की दीवारों पर तस्वीरें अभी भी टँगी हुई थीं, परन्तु इकोन[1] ग़ायब थीं, एक

1. भित्ति प्रतिमाएँ।

मामूली-सी प्रतिमा को छोड़कर। चूल्हे और सन्दूकों पर की कशीदाकारी भी ग़ायब थी।

जब दूस्या अकेली रह गई तो उसने सन्दूक खोला। उसमें से माँ की गंध आई। सन्दूक में बूढ़ी माँ की गहरे रंग की स्कर्टें, सराफ़ान और भेड़ की ख़ाल का घिसा हुआ कोट पड़ा था। दूस्या ने सब कुछ बाहर निकाला, देखा और फिर मकान का एक चक्कर और लगाया, ख़ाली पड़े आँगन में झाँका। उसे ऐसा लगा कि कभी बहुत पहले उसने यह सब सपने में देखा था और अब वह अपने स्वप्न में लौट आई है।

3

बेचने की बात सुनकर दूस्या के पास पड़ोसिनें आनी शुरू हो गईं। उन्होंने सब सामान अच्छी तरह से देखा, हरेक चीज़ को छूकर देखा। दूस्या ने अधिक क़ीमत नहीं लगाई और सामान झटपट बिक गया।

मुख्य चीज़ थी मकान। दूस्या मकानों की क़ीमत के बारे में पूछताछ कर रही थी। यह जानकर कि मकानों की क़ीमतें बढ़ गई हैं, उसे आश्चर्य भी हुआ और प्रसन्नता भी। मकान के तीन ख़रीदार तुरन्त निकल आए। दो इसी गाँव के और एक पड़ोस के गाँव का। लेकिन दूस्या ने मकान तुरन्त नहीं बेचा। उसे चिन्ता लगी हुई थी कि माँ रुपये भी छोड़ गई है। तीन दिन से वह उन रुपयों को ढूँढ़ रही थी। दीवारों को ठक-ठक करके देखती, गद्दों में हाथ फेरकर ढूँढ़ती, तहख़ाने में जाकर देखा, टांड पर चढ़कर खोजा, पर कुछ भी नहीं मिला।

मकान के ख़रीदारों से सौदा करके दूस्या ज़िला कार्यालय में गई, नोटरी के पास जाकर मकान की बिक्री की औपचारिकता पूरी करके रुपये बैंक में डाल दिए। लौटते हुए बहन के लिए सौगात लेती आई और फिर मास्को लौटने की तैयारी शुरू कर दी। शाम को बहन डेरी फ़ार्म में गई तथा दूस्या माँ की क़ब्र पर। उसके साथ मीशा भी गया।

दोपहर के बाद आसमान ढँक गया था, धुँधलका छा गया था, परन्तु शाम तक बादल छँट गए। केवल क्षितिज के पास, उस तरफ़ जिधर दूस्या और मीशा जा रहे थे, वहाँ धूसर-गुलाबी बादलों का एक टुकड़ा लटक रहा था। वह टुकड़ा इतनी दूर और अस्पष्ट था कि सूरज के भी पीछे दिखलाई पड़ रहा था।

गाँव से लगभग दो किलोमीटर पर नदी का गोल फंदा-सा बन गया और इस फंदे में ऊँचे दाएँ तट पर—जैसे कि कोई प्रायद्वीप हो—गाँव का क़ब्रिस्तान था। पहले उसके चारों ओर पक्की दीवार हुआ करती थी तथा अन्दर जाने

के लिए ऊँचा मेहराबदार दरवाज़ा था। लेकिन महायुद्ध के बाद टूटी दीवार की ईंटें दूसरी जगह लगा दी गईं, पता नहीं क्यों, सिर्फ़ द्वार को छोड़ दिया गया था, और इस तरह चारों ओर से क़ब्रिस्तान के लिए पगडंडियाँ खुल गई थीं।

रास्ते में दूस्या मीशा से उसके स्कूल के बारे में, श्रम-दिवसों के बारे में, फ़सल के बारे में पूछे जा रही थी। वह स्थिर और शान्त थी। इतने में पुराना क़ब्रिस्तान दिखाई पड़ा जो डूबते हुए सूरज की लाली से चमक रहा था। उसके छोरों पर जहाँ पहले कभी बाड़ हुआ करती थी और जहाँ जंगली गुलाब की झाड़ियाँ होती थीं वहाँ विशेष रूप से पुरानी क़ब्रें थीं, जो क़ब्र की सूरत में नहीं रह गई थीं। उनके साथ झाड़ियों में नया रंग की हुई बाड़ें थीं जिनमें लकड़ी के कम ऊँचे सूच्याकर स्तम्भ—ओबेलिस्क—लगे हुए थे। ये सामूहिक कब्रें था।

दूस्या और मीशा मुख्य द्वार को छोड़कर पहले दाएँ मुंड़े, फिर बाएँ—खिलते हुए भूर्ज के पेड़ों से होकर तीखी गंधवाली झाड़ियों के बीच में से। दूस्या का रंग उड़ा जा रहा था और उसका मुँह अधखुला था।

"यह रही नानी की क़ब्र... ।" मीशा ने बताया। दूस्या ने देखा कि एक दबा-सा टीला है, जिस पर कहीं-कहीं तेज़ गंधवाली घास उगी हुई है। घास के बीच में से दुम्मट (चिकनी मिट्टी) दिखलाई दे रही है। धूसर रंग का छोटा क्रास, जिसे जाड़ों से ठीक नहीं किया गया था, टेढ़ा हो रहा था।

दूस्या का रंग एकदम उड़ गया था, अचानक किसी ने जैसे उसकी छाती में चाकू गड़ा दिया हो, उस जगह, जहाँ दिल होता है। उसके मन में भयंकर उदासी छा गई, साँस एकदम अटक गई, वह बुरी तरह काँपने लगी, भयंकर रूप से चिल्लाई और गिर पड़ी, घुटनों के बल रेंगकर क़ब्र के पास तक आई। रोते समय पता नहीं ऐसे-ऐसे शब्द उसके दिमाग़ में आए कि मीशा घबरा गया।

"ऊँ.ऊँ.ऊँ!" मद्धम स्वर में क़ब्र पर सिर पटक-पटककर और गीली मिट्टी में उंगलियाँ गड़ाकर वह धीरे-धीरे विलाप कर रही थी, "अम्मा, प्यारी...मेरी प्यारी अम्मा!...अब तुझे कैसे देखूँगी। ऊँ-ऊँ-ऊँ...अब इस दुनिया में हम कभी नहीं मिलेंगे, कभी नहीं मिलेंगे! मैं तेरे बिना कैसे रहूँगी, मुझे कौन स्नेह देगा, कौन ढाढ़स बँधाएगा? अम्मा, यह क्या कर डाला तूने?"

"दूस्या मौसी...दूस्या मौसी," डर के मारे मीशा की आवाज़ नहीं निकल पा रही थी। वह मौसी को बाजू से खींचे जा रहा था और जब दूस्या, गला बैठ जाने के बाद झुककर क़ब्र पर सिर पटकने लगी तो मीशा उल्टे पाँव गाँव को भाग गया।

क़रीब एक घंटे बाद जब शाम का धुँधलका गहरा हो चुका था, गाँव से लोग दौड़े-दौड़े आए। दूस्या वहीं पड़ी हुई थी। बिलकुल बेहोश-सी, वह न रोने की हालत में थी, न बोल सकती थी, न सोच सकती थी, बस भिंचे हुए दाँतों के बीच में से कभी-कभार कराह रही थी। मिट्टी लगने के कारण उसका चेहरा मैला और भयानक दिखाई दे रहा था।

लोगों ने उठाकर उसकी कनपटी को रगड़ा। उसे ढाढ़स देने लगे, समझाया-बुझाया और घर लाए। दूस्या को कुछ समझ नहीं आ रहा था—वह उनको अपनी बड़ी-बड़ी सूजी हुई आँखों से देखे जा रही थी। उसे जीवन रात की तरह लग रहा था। जब उसे बहन के घर लाए तो वह चारपाई पर लुढ़क पड़ी—मुश्किल से वहाँ तक पहुँची और उसी क्षण उसे नींद आ गई।

अगले दिन मास्को जाने की तैयारी लगभग पूरी कर्के उसने अन्तिम बार अपनी बहन के साथ बैठकर चाय पी। वह प्रसन्न दिखाई दे रही थी। अपने मास्को के फ़्लैट और उसकी सुविधाओं की तारीफ़ कर रही थी।

इस तरह वह चली गई। प्रसन्न और शान्त, मीशा को दस रूबल भी देती गई। दो हफ़्ते बाद बूढ़ी माँ के मकान को खोला गया। फ़र्श धोया गया, सामान लाया गया और उसमें नए लोगों ने रहना शुरू कर दिया।



साभार : यूरी कज़ाकोव - ज़ापाख़ ख़्ल्येबा (रोटी की गंध) मास्को, 1965.

शान्त सुबह

यूरी कज़ाकोव

जब याश्का की नींद खुली तब उनींदे मुर्ग़े ने बाँग दी ही थी, मकान में अभी अँधेरा ही था, माँ ने गाय को दुहा नहीं था और गड़ेरिए ने भेड़ों को चरागाह में नहीं छोड़ा था।

वह बिस्तर पर बैठ गया। उसकी आँखें ओस से भींगी हल्की-नीली खिड़कियों और धुँधलाए सफ़ेद-से चूल्हे पर टिकी हुई थीं। पौ फटने से पहले की नींद बड़ी मीठी होती है, सिर तकिये पर झुका जाता है और आँखें बन्द हुई जाती हैं। पर याश्का ने अपने को सँभाला। लड़खड़ाते हुए स्टूलों और कुर्सियों को पकड़-पकड़ कर मकान के भीतर घूमते हुए वह अपनी पुरानी पतलून और कमीज़ ढूँढ़ रहा था।

दूध-डबलरोटी खाकर याश्का ने मछली पकड़ने की बंसी उठाई और बाहर बरामदे में आया। गाँव कोहरे से इस तरह ढका हुआ था जैसे उसके ऊपर रोएँदार कंबल पड़ा हो। सब कुछ ओझल हो गया था, छिपा हुआ था।

याश्का बरामदे से नीचे उतरा। उसने टाँगों में लिपट आए मुर्ग़े को बंसी से डराकर भगाया और मस्त चाल में सायबान की ओर झटपट चल दिया। वहाँ फट्टे के नीचे से गँड़ासा निकालकर वह मिट्टी खोदने लगा। तुरन्त ही लाल और बैंगनी रंग के छोटे-छोटे कीड़े निकलने लगे। ये मोटे और पतले कीड़े नरम मिट्टी के अन्दर जल्दी-जल्दी चले जा रहे थे पर याश्का उनको पकड़े भी जा रहा था और जल्दी ही उसकी शीशी लगभग भर गई थी। कीड़ों के ऊपर ताज़ा मिट्टी डालकर वह सायबान के अन्दर घुसा, जहाँ उसका नया दोस्त वलोद्या सो रहा था।

याश्का ने मिट्टी से सनी उँगलियों को मुँह में डालकर सीटी बजाई। फिर थूका। वह कान लगाकर सुनने लगा। चारों ओर शान्ति थी।

"वलोद्‌या! उठ!" उसने पुकारा।

वलोद्‌या फूस पर लेटे-लेटे हिला, बहुत देर तक वहीं घास पर सरसराता रहा और आख़िर जब अजीब ढंग से उतरा तो खुली हुई डोरियों में उसके पाँव उलझ गए। अभी-अभी उठने के कारण उसके भारी-से चेहरे में न कोई भाव था, न गतिशीलता। नीचे याश्का के साथ खड़ा होकर वह अपनी पतली गर्दन को बार-बार सीधा कर रहा था, कंधों को हिला रहा था और पीठ खुजलाए जा रहा था।

"अभी तो जल्दी है।" उसने कुनमुनाते हुए कहा, उबासी ली और धक्का-सा खाकर सीढ़ी का सहारा लिया।

याश्का को बड़ा गुस्सा आया—ख़ुद वह एक घंटा पहले उठा, खोदकर कीड़े जमा किए, बंसियाँ लाया...और सच कहा जाए तो आज वह इसी लीचड़ की वजह से उठा था, उसे दिखाना चाहता था कि मछलियाँ कहाँ-कहाँ पकड़ी जाती हैं, और अब कृतज्ञता और प्रशंसा के बदले सुनने को मिल रहा है, 'जल्दी है!'

"किसी के लिए जल्दी है और किसी के लिए जल्दी नहीं भी है।" याश्का ने गुस्से से भरकर कहा और उपेक्षा के भाव से सिर से पाँव तक उस पर नज़र डाली।

वलोद्‌या ने बाहर देखा, उसका चेहरा खिल उठा, आँखों में चमक आ गई, वह जल्दी-जल्दी जूतों के फ़ीते बाँधने लगा। परन्तु याश्का का तो सवेरे का सारा मज़ा किरकिरा हो चुका था।

"क्या तू जूते पहनकर जाएगा!" उसने हिकारत से पूछा और अपने नंगे पाँव की फूली हुई उँगली को देखा, ऊपर से रबड़ के जूते नहीं पहनेगा?"

वलोद्‌या चुप रहा, फूलकर लाल हो गया और दूसरा जूता पहनने लगा।

बंसियों को दीवार के सहारे खड़ा करते हुए खिन्न स्वर में याश्का ने फिर कहा, "अरे, हाँ...तुम्हारे मास्को में तो नंगे पाँव नहीं चलते हैं...।"

"तो क्या हुआ!" वलोद्‌या ने याश्का के व्यंग्य से भरे हुए दुष्टतापूर्ण चौड़े मुँह पर नज़र डाली।

"वह बात नहीं...दौड़कर घर से ओवरकोट ले आ...।"

"दौड़कर ही जाऊँगा!" वलोद्‌या ने दबे स्वर में कहा। वह और भी लाल पड़ गया था।

याश्का ऊबने लगा था। व्यर्थ ही इस चक्कर में पड़ा। झेन्का वरन्कोव और कोल्का वरनकोव क्या बढ़िया मछलीमार हैं, लेकिन वे भी मानते हैं कि

उससे बढ़िया मछलीमार पूरे कलखोज़ में और कोई नहीं है। बस, ज़रा चलकर दिखा दो—पके आम की तरह टपकने लगेंगी। और यह महाशय...कल पधारे हैं, तमीज़दार... ।—"कृपया, ऐसा कीजिए... ।"— गर्दन में एक जमाऊँ तो पता चले। इस मास्कोवाले के साथ क्या पड़ी थी जाने की, जिसने अपनी आँखों से मछली शायद देखी ही नहीं है और मछली पकड़ने चला है जूते पहनकर... ।

"टाई भी पहन ले।" याश्का ने व्यंग्य किया और कर्कश स्वर में हँस दिया, "हमारी मछलियों को अगर बिना टाई के छुओ तो वे बुरा मान जाती हैं।"

वलोद्या ने जूते पहन लिए। मारे गुस्से के नथुने फुलाते हुए एकदम सीधे अनदेखी नज़रों से सायबान से बाहर निकल गया। वह यह कहने को तैयार था कि मछली पकड़ने नहीं जाएगा और दहाड़ें मारकर रोने को था। पर इसी सुबह की तो इतनी प्रतीक्षा थी। उसके पीछे-पीछे बेमन से याश्का भी बाहर निकला। दोनों एक-दूसरे को अनदेखा किए सड़क पर चल दिए। वे गाँव से होकर जा रहे थे। उनके आगे से कोहरा हटता जा रहा था और सामने नए-नए मकान, सायबान, स्कूल और फ़ार्म की दूधिया सफ़ेद इमारतों की लम्बी क़तारें दिखाई दे रही थीं... ।

वलोद्या बुरी तरह परेशान था। उसे अपने पर गुस्सा आ रहा था कि याश्का को बदतमीज़ी से जवाब दिया, उसे याश्का पर भी गुस्सा आ रहा था और वह ख़ुद अपने आपको अजीब और दयनीय महसूस कर रहा था।

वह अपनी इस बेचैनी पर शर्मिंदा था और इस अप्रिय भावना को जैसे-तैसे दबाने के लिए वह निष्ठुर होकर ऐसा सोच रहा था—"अच्छा, जाने दो।...उड़ा ले मखौल, इन्हें भी पता चल जाएगा कि मैं कौन हूँ। मैं भी इनको हँसने नहीं दूँगा। सोच रखा है कि नंगे पाँव जाने में ही बड़ाई है।"—लेकिन उसी समय उसने ईर्ष्या से और साथ ही प्रशंसात्मक दृष्टि से याश्का के नंगे पैरों की ओर देखा। याश्का के धूप में तपे हुए शरीर और उसकी चाल से उसे ईर्ष्या हो रही थी।

कुएँ के पास से गुज़रते समय याश्का ने गुस्से में कहा, "रुक! पानी पी लें ज़रा!"

वह कुएँ के पास गया, ज़ंजीर लगी बाल्टी को नीचे उतारा, पानी से भरी बाल्टी बाहर निकाली और उससे एकदम चिपक गया। उसे प्यास तो नहीं लगी थी पर उसके ख़याल से इससे अच्छा पानी और कहीं नहीं है। इसलिए हर बार इस कुएँ के पास से गुज़रते हुए वह इसका पानी बड़े शौक से पीता था।

बाल्टी के किनारे से बहकर पानी उसके नंगे पाँवों पर गिर रहा था, वह पाँवों को सिकोड़े पानी पीए जा रहा था, बीच में एकाध बार रुककर ज़ोर-ज़ोर से साँस भी ले रहा था।

"ले, पी ले!" आस्तीन से होंठों को पोंछते हुए उसने वलोद्या से कहा।

वलोद्या को भी प्यास नहीं लगी थी, लेकिन याश्का और अधिक नाराज़ न हो, इसलिए वह आज्ञापूर्वक बाल्टी से चिपक गया। छोटे-छोटे घूँट लेकर वह तब तक पानी पीता रहा, जब तक कि पीछे से सिर ठंड से अकड़ नहीं गया। जब वलोद्या कुएँ के पास से हट गया तो याश्का ने आत्मसन्तोष की भावना से जानना चाहा—

"कैसा है पानी?"

"बढ़िया है!" वलोद्या जवाब देकर सिमट गया।

"मास्को में तो ऐसा नहीं होता होगा?" याश्का ने ज़हर भरी आँखें मिचमिचाईं।

वलोद्या ने कोई जवाब नहीं दिया, केवल भिंचे हुए दाँतों के बीच में से साँस अन्दर ली और सुलह की भावना से मुस्कुरा दिया।

"तूने कभी मछली पकड़ी है क्या?" याश्का ने पूछा।

"नहीं।...मस्कवा नदी में लोगों को मछली पकड़ते हुए केवल देखा ही है।" वलोद्या ने दबे स्वर में स्वीकार किया और झेंपकर याश्का की ओर देखा। उसकी आत्म-स्वीकृति के बाद याश्का कुछ नरम पड़ गया था।

याश्का ने कीड़ों वाली शीशी को छूकर जैसे यूँ ही कह दिया, "कल हमारे क्लब के मुखिया को प्लिशान की खाई में शीट मछली दिखाई दी थी।"

वलोद्या की आँखें चमक उठीं, "बड़ी थी क्या?"

"तूने क्या सोचा है। कोई दो मीटर लम्बी होगी।...हो सकता है कि पूरे तीन मीटर की रही हो—अँधेरे में ठीक से पता नहीं चला। विश्वास नहीं है क्या?"

"तू झूठ बोल रहा है।" वलोद्या ने जोश में आकर साँस छोड़ी और कंधे झटक दिए। उसकी आँखें कह रही थीं कि उसे सब सच लग रहा है।

"मैं झूठ बोल रहा हूँ?" याश्का ने बड़े आश्चर्य से पूछा, "शाम को पकड़ने चलेगा? बोल?"

"जा सकते हैं क्या?" वलोद्या ने आशान्वित होकर पूछा। उसके कान गुलाबी पड़ गए थे।

"तो क्या?..." याश्का ने पूछा और आस्तीन से नाक साफ़ की, "कील-काँटा सब मेरे पास है, रात को अलाव जला लेंगे।...चलेगा?"

वलोद्या को असाधारण आनन्द आने लगा। अब जाकर उसे लगा कि सवेरे-सवेरे घर से बाहर निकलना कितना रमणीक है। साँस लेने में कितना अच्छा और हल्का महसूस हो रहा है, ख़ुशी से उछलते और शोर मचाते हुए इस गुदगुदे रास्ते पर पूरी रफ़्तार से भागने का कितना मन हो रहा है।

"खेत में इतने ज़ोर से यह क्या खड़खड़ाया? मोटर साइकिल है क्या?" वलोद्या ने याश्का को प्रश्नभरी दृष्टि से देखा।

"ट्रैक्टर है!" याश्का ने कहा।

"ट्रैक्टर है क्या? तो ऐसे खड़-खड़ क्यों कर रहा है?"

"स्टार्ट हो रहा है।...अभी स्टार्ट हो जाएगा।...सुन। देखा?...सुनाई दिया? हार्न बजा। अब चल देगा।"

जहाँ से ट्रैक्टर का शोर आ रहा था उस तरफ़ देखकर वलोद्या ने पूछा, "तुम्हारे यहाँ हमेशा ऐसा कोहरा रहता है क्या?"

"नहीं तो। वैसे, कोहरे में मछलियाँ ज़्यादा फँसती हैं—जितनी खींच सको।"

"तुम्हारे यहाँ कौन-कौन-सी मछलियाँ हैं?"

"मछलियाँ? सभी तरह की हैं। क्रूशियन भी है, पाइक है और ये तुम्हारी कवाई है, रोच है, ब्रीम है।...रेंच भी है। रेंच जानता है? घेंटुले[1] जैसी होती है। एकदम मोटी। मैंने ख़ुद पहली बार पकड़ी थी तो देखता रह गया था।"

"ढेर सारी पकड़ी जा सकती हैं क्या?"

"हूँ।...मौक़े की बात है। कभी पाँच-पाँच किलो मिल जाती हैं तो कभी इतनी कम कि बिल्ली का ही पेट भरे।"

"यह क्या सनसना रहा है?" वलोद्या ने रुककर सिर ऊपर उठाया।

"ये? ये तो क्लीट उड़ रही हैं...।"

"अच्छा।...और यह क्या है?"

"चिलचिले चहचहा रहे हैं...तूने कभी चिलचिलों को पकड़ा है?"

"कभी नहीं।"

"मीश्का कयूनेन्को के पास जाल है, ज़रा ठहर जा, हम चलेंगे पकड़ने।...बड़े मज़ेदार होते हैं चिलचिले...। एक मेरे पास पूरे जाड़े भर रहा था, तरह-तरह की आवाज़ें निकालता था—कभी स्टीमर की जैसी, कभी आरे की जैसी।"

जल्दी ही गाँव पीछे छूट गया, सामने जंगल की हल्की झलक दिखाई देने लगी थी।

---

1. सुअर का नन्हा बच्चा।

"अभी और कितना चलना है?" वलोद्या ने पूछा।

"बस थोड़ा और है...पास ही है।" हर बार याश्का का एक ही जवाब होता था।

एक टीला सामने आया। वे दाईं ओर मुड़े, नीचे उतरे, क्षौम (फ़्लैक्स) के खेत को पार किया और वहीं एकदम अचानक सामने नदी नज़र आई। नदी छोटी थी, जिसकी गहरी उदास खाइयों में अक्सर बाढ़ आ जाती थी।

आख़िर धूप निकल आई। चरागाह से घोड़े के हिनहिनाने की पतली आवाज़ आई। एकाएक, झटपट उजाला हो गया, चारों ओर गुलाबी-सी छा गई। देवदार के वृक्षों और झाड़ियों पर पड़ी हुई चमकीली ओस और भी साफ़ दिखाई देने लगी, कोहरा हटने लगा, वह घटता जा रहा था, क्रमशः पूले नज़र आने लगे, जो अब निकट आ गए थे। जंगल की धुँधली पृष्ठभूमि में काले-काले-से लग रहे थे। खाइयों में से बीच-बीच में ज़ोर से छपकने की आवाज़ आ रही थी।

वलोद्या अभी से मछली पकड़ने को आतुर था, पर याश्का नदी के किनारे-किनारे आगे चला जा रहा था। ओस में वे लगभग कमर तक भींग गए थे। इतने में याश्का ने फुसफुसाकर कहा, "यहाँ!" और फिर उसने पानी में उतरना शुरू किया। अचानक उसका पाँव लड़खड़ा गया, मिट्टी के गीले ढेले उसके पाँवों के नीचे से सरकने लगे। वलोद्या ने सूखे होंठों को चाटकर याश्का के पीछे-पीछे छलाँग लगा दी। जब उसने चारों ओर घूमकर देखा तो इस खाई में व्याप्त खिन्नता को देखकर हैरान रह गया। यहाँ, पानी के पास, नमी, उदासी और ठंडक छाई हुई थी।

याश्का ने आँखों को गोल घुमाकर पूछा, "तुझे मालूम है कि यहाँ कितना गहरा है? यहाँ तो तल का भी पता नहीं चलता...।"

सामनेवाले किनारे पर मछली के टकराने की आवाज़ को सुनकर वलोद्या काँपा और पानी से ज़रा दूर हट गया।

"इस खाई में हमारे यहाँ कोई नहीं नहाता है।"

"क्यों?" वलोद्या ने दबे स्वर में पूछा।

"अन्दर खींच लेती है।...पाँव अन्दर डालते ही काम तमाम...। पानी बर्फ़ जैसा है और अपनी तरफ़ खींचता है।"

याश्का ने बंसियों को खोलना शुरू किया। वह अधीर होकर पानी को देखे जा रहा था। जब कभी मछली के छपकने की आवाज़ आती उसके चेहरे

में एक साथ तनाव और कष्ट का भाव आ जाता। बंसियों को खोलने के बाद एक उसने वलोद्या को पकड़ा दी। एक माचिस की डिबिया में थोड़े-से कीड़े डालकर उसे दे दिए और आँखों से इशारा करके बता दिया कि मछलियाँ कहाँ पकड़नी हैं। याश्का ने चारा फेंका और हाथ से बंसी को थामकर अपनी नज़र तिरेंदे[1] पर गड़ा दी।

उसी समय वलोद्या ने भी अपना चारा फेंक दिया पर ऐसा करने में उसकी छड़ सफ़ेद विलो में फँस गई। याश्का ने गुस्से से वलोद्या को देखा, फुसफुसाते हुए उसे डाँटा और जब उसने दुबारा बंसी पर नज़र डाली तो उसकी जगह फैलते हुए भँवर दिखाई दिए। याश्का ने तुरन्त ज़ोर लगाकर फँसी मछली को खींचा और धीरे-धीरे दाईं ओर को मोड़ा। उसे बड़ा मज़ा आया कि मछली कहीं गहराई में खिंचती चली जा रही है। पर डोरी का खिंचाव अचानक टूट गया और पानी में से ख़ाली कँटिया बाहर आई। याश्का गुस्से से थरथराने लगा।

"चली गई, है न? गई।..." उसने धीमे से कहा और गीले हाथों से कँटिया में दूसरा कीड़ा बाँधने लगा।

उसने चारा फिर फेंका और एक बार फिर छड़ को हाथ से पकड़े-पकड़े तिरेंदे पर आँखें गड़ाए रहा कि कोई मछली चारे में आकर फँसे। लेकिन फँसी नहीं और न ही छपाक-छपाक की आवाज़ सुनाई दी। याश्का का हाथ थोड़ी देर में थक गया और उसने छड़ को बड़ी सावधानी से तट की मुलायम मिट्टी में गाड़ दिया। वलोद्या ने याश्का को देखकर अपनी छड़ भी उसी तरह गाड़ दी।

सूरज ऊपर चढ़ता जा रहा था। आख़िर धूप इस उदास खाई पर भी आ गई। पानी एकदम चौंधियाकर चमकने लगा और पत्तों, घास तथा फलों पर पड़ी ओस की बूँदें झिलमिलाने लगीं।

वलोद्या ने आँखें अधबन्द कर अपने तिरेंदे पर नज़र डाली, फिर मुड़कर हिचकिचाते हुए याश्का से पूछा, "क्या मछली दूसरी खाई में भी जा सकती है?"

याश्का ने झल्लाकर कहा, "अब समझ आया। फँसी हुई मछली छूट गई और उसने बाक़ी सबको डरा दिया। ज़रूर मोटी-तगड़ी रही होगी...। मैंने जब खींचा तो मेरा हाथ झट नीचे को जाने लगा था। एक किलो की तो रही होगी।" याश्का को ज़रा झेंप आ रही थी कि उससे मछली छूट गई थी, पर जैसा अक्सर

---

1. बंसी का तैरनेवाला हिस्सा।

होता है, वह अपनी ग़लती वलोद्या पर मढ़ने को तैयार था, "क्या मछलीमार मिला है मुझे!"—वह मन-ही-मन सोच रहा था। वह वलोद्या के ऊपर कोई चोट करना चाहता था, लेकिन अचानक ही उसने अपनी बंसी पकड़ ली। तिरेंदे में कुछ हलचल हुई थी। उसने धीमे से छड़ को मिट्टी में से निकाला और उसे लटकाए रखकर ज़रा-सा ऊपर को उठाया। तिरेंदा फिर हिला और एक तरफ़ को झुक गया, थोड़ी देर इसी तरह रहा और फिर से सीधा हो गया। याश्का ने गहरी साँस लेकर छोड़ी, तिरछी आँखों से वलोद्या को देखा, जिसका रंग उड़ा जा रहा था। वह धीरे-धीरे उठ रहा था। याश्का को गरमी लगने लगी थी। उसकी नाक में और ऊपर के होंठ के पास पसीने की छोटी-छोटी बूँदें जमा हो गई थीं। तिरेंदे में फिर हलचल हुई, वह एक तरफ़ को चला गया, आधा डूब गया, आख़िर ग़ायब ही हो गया। उसके पीछे पानी का छोटा-सा भँवर रह गया था। पहले की तरह याश्का ने छड़ को दूसरे हाथ से पकड़ लिया। उसे लगातार तेज़ धक्के लग रहे थे। उसने हाथ को हल्के से दाईं ओर घुमा दिया। वलोद्या याश्का के पास खिसक आया था और अपनी गोल आँखों को चमकाते हुए पतली आवाज़ में चिल्लाया, "ला, इधर दे!"

"परे हट!" याश्का ने फुनककर कहा। वह पंजों के बल खड़ा हुआ था और पाँवों को बार-बार बदल रहा था।

एक क्षण को मछली पानी से बाहर निकली, उसने गुलाबी छींटों का फ़व्वारा छोड़ा और दोबारा ठंडे और गहरे पानी में कूद गई। याश्का पीछे हटते हुए ज़ोर लगाए जा रहा था और चिल्ला रहा था, "झूठी कहीं की! बच नहीं पाएगी!"

आख़िर डूबती हुई मछली को उसने किनारे तक खींच ही लिया और ज़ोर से उसे घास पर पटक दिया। वह तुरन्त पेट के बल उसके ऊपर जा लेटा। वलोद्या का गला सूखा जा रहा था, उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था।...घुटनों के बल बैठा वह पूछे जा रहा था, "क्या है तेरे पास! दिखा तो सही क्या है?"

"ब्रीम है!" उसने बेहद खुश होकर कहा।

याश्का ने बड़ी सावधानी से पेट के नीचे से बड़ी और ठंडी ब्रीम निकाली। ख़ुशी से भरा अपना चौड़ा मुँह वलोद्या की तरफ़ मोड़ा; वह हँसने को ही था कि उसकी मुस्कराहट अचानक ग़ायब हो गई। उसकी आँखें डर के मारे वलोद्या की पीठ के पीछे किसी चीज़ पर टिक गईं। वह सिकुड़ गया और आह भरकर चिल्लाया, "अरे बंसी!...देख तो सही!"

वलोद्या ने मुड़कर देखा कि उसकी बंसी मिट्टी को गिराकर धीरे-धीरे पानी में खिसक रही है और कोई चीज़ ज़ोर से डोरी को खींच रही है। याश्का कूदा, ज़रा लड़खड़ाया और घुटनों के बल बंसी की तरफ़ बढ़कर उसे खींच ही लिया। बंसी की छड़ काफ़ी मुड़ गई थी।

"ले पकड़!" याश्का ने ज़ोर से कहा।

लेकिन इसी क्षण जिस जगह वलोद्या खड़ा था वहाँ की मिट्टी खिसकने लगी। वलोद्या का सन्तुलन बिगड़ गया, बंसी उसके हाथ से छूट गई। उसने अजीब ढंग से, जैसे गेंद पकड़ रहा हो, दोनों हथेलियों को जोड़कर आवाज़ की और ज़ोर से चिल्लाया—आ-आ-आ...। वह पानी में जा गिरा।

"बेवकूफ़ कहीं का!" याश्का ने चिल्लाकर कहा।

लेकिन जब याश्का की नज़र पानी पर गई तो उसकी साँस ही रुक गई—वलोद्या तट से तीन मीटर की दूरी पर छटपटा रहा था, पानी में हाथ मारे जा रहा था, उसने अपना सफ़ेद मुँह आसमान की ओर कर रखा था, आँखें बाहर को आ रही थीं, दम घुटा जा रहा था। पानी में डूबते हुए वह कुछ कहने की कोशिश कर रहा था पर एक ही आवाज़ निकल रही थी—ऊ-ऊ-आ-आ...।

"डूब रहा है"—याश्का यह सोचकर घबरा गया—"इसे पानी खींच रहा है।"—वह दौड़कर ऊपर वापस गया, पानी से दूर।...उसके पाँवों के नीचे की मिट्टी खिसक रही थी, वह काँपते हुए हाथों से सहारा ले रहा था और बिलकुल जैसे सपने में, बहुत मुश्किल से ऊपर चढ़ने लगा, बड़े अजीब ढंग से।

याश्का कूदकर चरागाह मे निकला और गाँव की ओर दौड़ा। पर अभी दस क़दम भी नहीं गया होगा कि ठिठककर रुक गया। जैसे कि उसे ख़याल आया हो कि यहाँ से भागना असम्भव है। आसपास कोई नहीं था, किसी को सहायता के लिए भी नहीं पुकारा जा सकता था।...याश्का ने बेचैन होकर जेबों में और झोले में टटोलकर देखा कि शायद कोई गून (रस्सी) ही मिल जाए पर कुछ मिला नहीं। उसका रंग उड़ गया था, उसने खाई की ओर खिसकना शुरू किया। खड़ी चट्टान के पास आकर उसने नीचे झाँका, उसे किसी भयानक बात की आशंका थी, साथ ही ऐसी आशा भी थी कि सब कुछ जैसे-तैसे टल गया होगा। इतने में उसे वलोद्या फिर दिखाई दिया। अब वह छटपटा नहीं रहा था, वह क़रीब-क़रीब सारा पानी के अन्दर चला गया था, बस ऊपर का हिस्सा ही नज़र आ रहा था। कभी डूब जाता, कभी निकल आता, डूबता और निकलता दिखाई दे रहा था।

याश्का की नज़र ऊपर को निकलते हुए हिस्से पर टिकी थी, उसने पतलून

खोलनी शुरू की, फिर चीख़कर नीचे को दौड़ा। पतलून फेंक दी। क़मीज़ और कंधे में लटके झोले के साथ ही उसने पानी में छलाँग लगा दी। वह दो बार में ही वलोद्या के पास पहुँच गया और उसे हाथ से पकड़ लिया।

वलोद्या झट याश्का से चिपट गया। उसकी क़मीज़ और झोले से चिपककर जल्दी-जल्दी हाथों को चलाते हुए वह उसी के ऊपर गिरा जा रहा था। याश्का के मुँह में तेज़ी से पानी भर गया। उसने मुँह पानी से बाहर निकालने की कोशिश की, पर काँपता हुआ वलोद्या उसी के ऊपर चिपट्टा जा रहा था। ऐसी हालत में उसे घबराहट होने लगी। स्पष्ट था कि वलोद्या उसे डूबो देगा, कि अब उसकी मृत्यु आ गई है। पूरा ज़ोर लगाकर उसने अपने को छुड़ाया। उसने उल्टे-सीधे हाथ-पाँव मारने शुरू कर दिए और वैसी ही अजीब भयानक चीख़ निकाली, जैसी अभी-अभी वलोद्या ने निकाली थी। उसने वलोद्या के पेट में लात जमाई और पानी से ऊपर आकर वह तेज़ी से तट की ओर आ गया। जब उसने तट पर लगी नरकट घास का सहारा ले लिया तब जाकर उसे होश आया और उसने पीछे मुड़कर देखा। गढ़े का पानी शान्त हो रहा था, उसकी सतह पर कोई दिखाई नहीं दे रहा था। उसकी गहराई से हवा के कुछ बुलबुले निकले। याश्का के दाँत किटकिटाने लगे। उसने चारों ओर नज़र घुमाई, तेज़ धूप निकली हुई थी, झाड़ियों और सफ़ेद विलो के पत्ते चमक रहे थे, फूलों के बीच की दूरी में फैला मकड़ी का जाला चमचमा रहा था। सब कुछ वैसा-का-वैसा था, जैसा कि हमेशा रहता है, सब कुछ शान्त-प्रशान्त साँसें ले रहा था, और इस बीच बिलकुल अभी-अभी, कुछ ही देर पहले, एक भयानक घटना हो चुकी है—अभी-अभी एक व्यक्ति डूब गया है और उसे डुबानेवाला यही याश्का है, जिसने उसे लात मारी थी।

याश्का ने आँखें झपकाईं, नरकट को छोड़ दिया, गीली क़मीज़ के नीचे से कंधों को घुमाया, रुक-रुककर लम्बी साँसें खींचीं और फिर गोता लगा दिया। जब उसने पानी के अन्दर आँखें खोलीं तो पहले उसकी समझ में कुछ नहीं आया। वह और नीचे गया, हाथ और मुँह से घास को हटाते हुए थोड़ा और आगे बढ़ा और तब जाकर उसे वलोद्या दिखाई दिया।

याश्का को दम घुटने का अन्देशा हुआ। वह वलोद्या की ओर झपटा, अपने हाथ से उसे पकड़कर और आँखें भींचकर वलोद्या के शरीर को तेज़ी से ऊपर खींचा और जिस तरह आसानी से और पीछे-पीछे वह चला उससे उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पानी से सिर निकालने के बाद वह बुरी तरह हाँफ रहा था।

वलोद्या की क़मीज़ को जकड़े हुए वह उसे तट की ओर खींचने लगा। तैरने में कठिनाई हो रही थी। जब पाँवों के नीचे तल महसूस हुआ तो पहले याश्का पानी से बाहर आया और फिर उसने वलोद्या को बाहर खींचा। वलोद्या को घुमाकर पीठ के बल लिटाया फिर उसके हाथों को बार-बार फैलाया, पेट को बार-बार दबाया और नाक में हवा की। याश्का हाँफ रहा था, उसे कमज़ोरी हो रही थी और इधर वलोद्या वैसा-का-वैसा सफ़ेद और ठंडा पड़ा हुआ था। मर गया! याश्का यह सोचकर डर गया। वह भयाक्रांत था। कहीं भाग जाना चाहिए, छिप जाना चाहिए।

भय से त्रस्त होकर याश्का सिसक उठा, वह उठ खड़ा हुआ। उसने वलोद्या को टाँग से पकड़ा और पूरा ज़ोर लगाकर उसे सीधा खड़ा कर दिया और इतने ज़ोर-ज़ोर से हिलाने लगा कि ख़ुद लाल पड़ गया और ठीक उसी क्षण जब याश्का एकदम शक्तिहीन और हताश होकर सब छोड़-छाड़ कर कहीं भी भाग जाना चाह रहा था, तभी वलोद्या के मुँह से ढेर सारा पानी बाहर निकला और वह कराहने लगा। याश्का ने वलोद्या की टाँगों को छोड़ दिया और आँखें बन्द करके वहीं बैठ गया।

वलोद्या ने अपने कमज़ोर हाथों का सहारा लिया, ज़रा-सा उठा, जैसे कि कहीं भाग जाने को तैयार हो रहा हो, पर फिर से गिर पड़ा। याश्का एक तरफ़ खिसक गया और ढीला पकड़ वलोद्या को देखने लगा। इस समय वह वलोद्या से अधिक और किसी को नहीं चाहता था, इस पीले पड़े हुए, आतंकित और पीड़ाग्रस्त चेहरे से अधिक और कुछ उसे प्रिय नहीं था। याश्का के नेत्रों में एक संकोची, प्रेमाकुल मुस्कुराहट चमक रही थी, वह वलोद्या को कोमल भाव से देखे जा रहा था और बेमतलब पूछ रहा था, "कैसा है? क्यों? कैसी तबीयत है?"

वलोद्या थोड़ा होश में आ गया था। उसने हाथ से अपना मुँह पोंछा, पानी पर नज़र डाली और एक अपरिचित, भर्राए स्वर में बड़े प्रयत्न के साथ अटक-अटककर उसने पूछा "मैं कैसे डूबा..."

तब याश्का ने अचानक भौंहे सिकाड़ लीं और आँखें भींच लीं। उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। वह दहाड़ें मार-मारकर रोने लगा। रोना रुक नहीं रहा था। सारा शरीर काँप रहा था और घिग्घी बँध गई थी। अपने ही आँसुओं पर उसे शर्म महसूस हो रही थी। वह ख़ुशी के मारे रो रहा था। वह अभी-अभी अनुभूत भय के मारे रो रहा था और इसलिए रो रहा था कि अन्त अच्छा ही हुआ।

वलोद्या की आँखों के आगे अँधेरा छा गया, मुँह ज़रा-सा खुला, वह याश्का को भय और घबराहट के साथ देख रहा था।

"तुझे क्या हुआ?" बड़ी मुश्किल से उसके मुँह से निकला।

याश्का ने अपनी रही-सही शक्ति न रोने की कोशिश में लगा दी और पतलून से आँखों को पोंछते हुए बोला, "हाँ। तू...डूबा और...मैंने तुझे बचाया।..."

ऐसा कहकर वह और भी ज़ोर से और अधिक करुण स्वर में रोने लगा।

खाई का पानी बहुत देर से शान्त हो चुका था, वलोद्या की बंसी से मछली छूटकर निकल गई थी, बंसी आकर तट से लग गई थी। धूप निकली हुई थी, ओस से भींगी झाड़ियाँ चमक रही थीं। सिर्फ़ खाई का पानी पहले की तरह गहरा रंग लिये हुआ था।

हवा गरम हो गई थी, उसके गरम झोंकों में क्षितिज काँप रहा था। दूर खेतों से, नदी के उस पार से, गरम हवा के झोंकों के साथ-साथ फूस और मीठी तिपतिया की गंध भी आ रही थी। इससे भी अधिक दूर की, पर अधिक मीठी, जंगल की गंध से मिलकर यह गंध और यह हल्की तथा गरम हवा जागी हुई धरती की साँस-जैसी थी। उस धरती की, जो नए दिवस के आगमन पर प्रसन्न थी।



साभार—यूरी कज़ाकोव—आर्कतूर—गोन्चो प्यौस (शिकारी कुत्ता आर्कतूर)

शब्द

फ़ाज़िल इस्कन्दर

पुरानी छोटी फ़ोटो में से एक लड़की झाँक रही है। उसके मोटी वेणी है, गाल चौड़े, आँखें बड़ी-बड़ी और मुँह भी बड़ा। यह मेरी मौसी आयशा है। आयशा मौसी के नाम के साथ एक करुण कहानी जुड़ी हुई है, जो मैं कई कई बार सुन चुका हूँ।

कभी-कभी जब निकट के लोगों में से कोई उसके बारे में बता रहा होता तो मैं इस फ़ोटो को घूरने लगता था कि उसके नाक-नक़्श में उस मोहक आकर्षण को ढूँढ़ सकूँ, जिसकी उन सबको याद थी। पर मरे हुए लोगों की फ़ोटो में तो एक उदासी होती है, उसके अतिरिक्त उसके चेहरे में मुझे और कुछ नहीं मिलता था।

मुझे यह भी लगता है कि अगर ये बड़ी-बड़ी काली आँखें उसके नहीं होतीं तो वह शायद कुरूप ही दिखाई देती, क्योंकि उसके नाक-नक़्श ऐसे बेढंगे ही थे। पर जब चेहरा ऐसी बड़ी-बड़ी आँखें लिये हो तो बाक़ी आकृति की ओर ध्यान नहीं जाता है और बाद में वे चेहरे को एक असुरक्षा का भाव प्रदान करती हैं, जो नारीत्व का अमर अस्त्र है। वैसे हो सकता है कि यह सब मेरी कपोल-कल्पना ही हो।

मेरी माँ कहती है कि उनके बड़े परिवार में आयशा सबकी चहेती थी। परिवार में अकेले बच्चे ही—भाई-बहन मिलाकर—दस थे।

उन दिनों बाबा के घर में घाटी के कई रिश्तेदार और परिचित भी जमा हुआ करते थे। वे गर्मियों में आराम करने, पहाड़ की हवा में साँस लेने आया करते थे, और ख़ास बात यह थी कि कलखीदा में फैली बीमारी से बचने को वहाँ आ जाया करते थे। लड़कियों की यानी मौसियों की और माँ की भी अच्छी

गत बनती थी। इतने बड़े भीड़-भड़क्के को खिलाना-पिलाना, सुलाना और कामकाज भी देखना पड़ता था। मेरे विचार से इस कष्टपूर्ण जवानी की बदौलत ही, जिसमें उसने अपने को अपमानित महसूस नहीं किया और न उसका ऐसा स्वभाव ही था, मेरी माँ बाद में बहुत कुछ ऐसा झेल सकी, जिससे वह टूट भी सकती थी।

लोगों का कहना था कि लगभग पन्द्रह साल की उम्र में आयशा जैसे अचानक ही पूरी तरह खिल गई थी। उसकी ओर नज़रें उठने लगी थीं, पड़ोस के बड़े और सम्पन्न गाँव में उसकी चर्चा थी। उसके भाई उस पर नज़र रखते रहते थे, क्योंकि उसे पसन्द करने का मतलब था कि कोई उसे चुरा भी ले जा सकता था[1] और ऐसा निश्चित रूप से वही करेगा जिसके साथ लड़की वालों का परिवार रिश्ता नहीं बनाना चाहता होगा, क्योंकि लड़की के परिवार को वह व्यक्ति अगर इतना ही पसन्द आता तो फिर लड़की चुराने की उसे ऐसी ज़रूरत ही क्यों पड़े!

पर हुआ यह कि पड़ोस के गाँव के एक साधारण युवक को उससे प्रेम हो गया। वह रिश्तेदार भी लगता था, दूर का ही सही। नाम था तेइम्राज़।

वह बाबा के घर में आराम करने आया हुआ था क्योंकि उसे मलेरिया हुआ था और हो सकता है कि आयशा का प्रेम नारी के दया-भाव का ही एक दूसरा रूप था। वह उसकी सेवा-टहल कर रही थी। जैसा कि ऐसे में होता है, कोई उसकी बीमारी को गम्भीरता से नहीं ले रहा था। न रोगी के रूप में, न रिश्तेदार के रूप में, न इस रूप में कि वह इतना जवान है और न इस रूप में ही कि उसमें कोई विशिष्ट बात भी नहीं थी। बीमारी तो अस्थाई ही रही, रिश्तेदारी भी सापेक्ष रही, और जहाँ तक जवानी का सवाल है, वह तो प्रेम के मार्ग में कभी भी व्यवधान बनकर नहीं आई है।

बताते हैं कि जब बाबा को उनके विवाह करने की मंशा के बारे में मालूम हुआ तो उन्होंने अपनी बेटी देने से साफ़ मना कर दिया। उन्होंने कहा, "अपनी रिश्तेदारी में हम दो गाँठें नहीं बाँधेंगे, नहीं तो बाद में काटनी पड़ेंगी।"

"उसने ऐसा क्या चुरा लिया है?" भाइयों ने यह पूछते हुए तिरस्कार के साथ कंधे उचका दिए।

उन दिनों हमारे इलाक़े में मर्दों की बहादुरी इस बात से जाँची जाती थी कि किसी दूसरे के घोड़े को, भेड़ों के झुंड को या और कुछ नहीं हो तो गाय

---

1. काकेशस में लड़की को इस तरह उठा ले जाने का रिवाज़ था।

को ही कौन कितनी अधिक दिलेरी से चुराकर ले जा सकता है। यह पूर्वी देशों का अपने ढंग का सभ्य खेल था। इसमें यह होता था कि मालिक को चोरी का पता चल जाए तो वह अपमान करनेवाले का पीछा किया करता और बिना किसी चेतावनी के उस पर गोली चला देता। यह खेल अभिजात तो था पर ख़तरनाक भी था। इसीलिए अपने घोड़े को दिखाते हुए पहाड़ी आदमी सारे फ़रिश्तों की क़सम खाकर कहता कि उसका यह चोरी का घोड़ा है, ख़रीदा या किसी का भेंट किया हुआ नहीं है। कभी-कभी बाद में मालूम चलता था कि घोड़ा ख़रीद या भेंट में मिला हुआ है और ऐसे में डींगबाज़ के कलंक का टीका तब तक नहीं मिटता था, जब तक कि वह पूरी तरह प्रमाणित दिलेरी से उसे मिटा नहीं देता था।

तेइम्राज को इनकार करते हुए बाबा ने कहा था कि हम तो रिश्तेदार हैं। पर मेरे विचार से यह मात्र बहाना था। तेइम्राज की सौतेली माँ बाबा की बहन लगती थी। बस इतनी ही रिश्तेदारी थी। अबख़ाज़ लोगों के कठोर-से-कठोर रिवाज़ों के अनुसार भी किसी तरह के रक्त-मिश्रण का सन्देह इस मामले में नहीं किया जा सकता था।

लगता है कि साफ़ बात तो यह थी कि बाबा को तेइम्राज़ से कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन उसके भाई उन्हें पसन्द नहीं थे, जो अबख़ाज़िया में विद्रोही और हत्यारों के रूप में कुख्यात थे। उनके बीच में तेइम्राज़ हालाँकि पतित जैसा था— यानी न क़िसी की जान लेता था, न किसी को उठाकर या भगाकर ले जाता था फिर भी बाबा उनके परिवार से बहुत करीबी रिश्ता नहीं बनाना चाहते थे। तेइम्राज़ से ऐसे दुस्साहसों से बहुत दूर था—सबसे अचरज की बात तो यही थी। बहुत लम्बा उसका जीवन था, बहुत-सी इधर-उधर की नौकरियाँ कीं और तरह-तरह के साहसिक काम किए। अबख़ाज़ों के विस्थापन के समय दो बार तुर्की चला गया था, दो बार नये सिरे से ज़िन्दगी शुरू की थी। उसके आसपास विद्रोहियों की गोलियाँ सनसनाती थीं, अपहरण की हुई भेड़ों के झुंड रोते-मिमियाते थे, ख़ूनी अपनी क्रूर शपथ को वास्तविकता में बदलते थे और तेइम्राज़ को यह सब जैसे दिखाई ही नहीं देता था।

मामला बहुत उलझा हुआ था, बाबा को तेइम्राज़ का जो गुण पसन्द था, वह आयशा के भाइयों को नापसन्द था और जो भाइयों को पसन्द था, वह बाबा के लिए असह्य था।

लेकिन तेइम्राज़ के भाइयों से झगड़ना ख़तरे से ख़ाली नहीं था। इसलिए जब बाबा को विश्वास हो गया कि दोनों का प्रेम सच्चा है और यह छोकरा पीछे हटनेवाला नहीं है तो उन्होंने अपनी सहमति दे ही दी।

शादी हो गई। युवा दम्पत्ति तेइम्राज़ के घर में रहने लगे। बताते हैं कि उसके पिता को अपनी बेटियों से भी अधिक आयशा पसन्द आई, क्योंकि वह सौम्य, आकर्षक और सेवा-भाववाली थी। आयशा के आने से बूढ़े पिता के घर में जान आ गई थी, घर चमक उठा था। इससे पहले उनके बेटे यदा-कदा ही उनके पास आते थे, चाहे पास ही में क्यों न रहते हों। वे इस बात से नाखुश थे कि उनके पिता ने माँ के मरने के बाद दूसरी शादी कर ली थी। बूढ़े बाप के पड़ोसी उनके बेटों के डर के मारे उनसे दूर रहते थे। आयशा ने सम्बन्धों की सारी कटुता को समाप्त कर दिया था। भाइयों और पड़ोसियों का घर में आना शुरू हो गया था। जैसे अच्छी-भली पुरानी चक्की फिर से चल पड़ी हो।

एक दिन की बात है कि आयशा की पड़ोसिन एक बुढ़िया उसके बग़ीचे में मिर्च तोड़ने आई। दो क़दम दूर फ़्रासबीन के झाड़ में उसे एक कुत्ता दिखाई दिया। बुढ़िया उस पर चिल्लाई पर कुत्ता भागने के बदले अचानक दाँत दिखाने लगा। बुढ़िया को गुस्सा आ गया। वह उसे लात मारना चाहती थी, पर उलटे कुत्ता ही उसके पाँव में काटकर भाग गया। तब जाकर उसे पता चला कि वह कुत्ता नहीं, लोमड़ी थी। बुढ़िया आश्चर्यचकित हो रही थी। घाव में थूक लगाया, फ़्रॉक में मिर्च लपेटकर घर लौट आई।

काटे का घाव नहीं के बराबर दिखाई दे रहा था, जैसे काँटेदार काली अंची (ब्लैकबेरी) का काँटा चुभा हो। शाम को उसने घर के लोगों को बग़ीचे की घटना सुनाई। घाव की ओर किसी का ध्यान नहीं लगा। सब इसी से हैरान थे कि लोमड़ी को और वह भी चितराला (मार्टेन) को इतना साहस हुआ कि आदमी को काट बैठी।

बीसेक दिन बाद बुढ़िया बीमार पड़ गई। रिश्तेदार और पड़ोसी दिन-रात उसके पास रहते थे। आयशा तो उसके पास से बिलकुल भी नहीं हटी। उसके कपड़े बदलना, फटे दूध में भिंगोया गीला तौलिया उसके माथे पर रखना, उसे खाना देना—यह सब आयशा ही कर रही थी। जल्दी ही स्पष्ट हो गया कि बुढ़िया को जलांतक यानी अलर्क रोग हो गया है। कुछ दिन बाद वह चल बसी। नीम हकीमन को बुलवाया गया, जिसने मरीज़ की देखभाल करनेवालों के लिए एक आसव तैयार करके दिया।

जिस दिन हकीमन अपना तैयार किया हुआ आसव लेकर आई, उस दिन आयशा बिस्तर पर पड़ी हुई थी। उसे मामूली-सा बुख़ार था, पेट से होने पर ऐसी सामान्य कमज़ोरी सभी जवान औरतों को महसूस होती है। शायद इसी कमज़ोरी के कारण उसने आसव पीने से इनकार कर दिया था। उस पर किसी

तरह का ज़ोर नहीं चला। आख़िरकार रिश्तेदार इस नतीज़े पर पहुँचे कि ये गर्भवती महिला के सामान्य नखरे हैं और उसे चुपचाप छोड़ दिया। यह बात भी थी कि न दवा पर, न इस तरह अलर्क रोग फैलने की सम्भावना पर किसी को विश्वास ही था। फिर भी पी ही लिया था। शायद काम आ जाए।

पर जब तेइम्राज़ को पता चला कि आयशा ने आसव नहीं पीया तो उसे घबराहट होने लगी। उसने तय किया कि पिलाकर ही रहेगा। सुना कि वह सारा दिन उसे मनाता रहा, कई बार ख़ुद पीकर दिखाया कि यह कितना आसान है। लेकिन वह भी अड़ी रही। वह जैसे ही आसव का गिलास उसके होंठों के पास लाता, वह उसे दूर कर देती।

"मैं नहीं पी सकती।" यह कहते हुए वह गिलास को हटा देती थी।

"अगर पी ही लेगी तो क्या मर जाएगी? इतना क्यों डरती है?" लोग बताते हैं कि तेइम्राज़ ने आयशा को ऐसे कहा था।

"हाँ, मर जाऊँगी।" उसने गम्भीर होकर कहा था और फिर अपनी बड़ी-बड़ी काली आँखों से उसकी आँखों में झाँका था।

बताते हैं कि इन शब्दों को सुनकर तेइम्राज़ का रंग उड़ गया था। फिर भी उसने ज़िद से गिलास उसकी ओर बढ़ाया।

"पी! अगर मर गई तो मैं तेरे पीछे-पीछे आ जाऊँगा।" उसने कहा था।

लोगों ने बताया कि इस बार उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से तेइम्राज की ओर देखा और कुछ बोली नहीं, बिना बोले उसका हाथ पकड़ लिया।

इतने में सौतेली माँ वहाँ आ धमकी। बोली, "यह क्या मूर्खता है! पेटवाली औरतों की बातों में पड़ना क्या आदमियों को शोभा देता है?"

जिन्होंने भी आयशा और तेइम्राज़ की बातें सुनी थीं, उन्हें कुछ अजीब-सा महसूस हुआ था। उनका विश्वास था कि उनकी बातों से तभी कुछ पूर्वाभास हो गया था। मेरे विचार से बात पूर्वाभास की नहीं थी, बात यह थी कि दोनों प्रेमी शब्दों को उनका वास्तविक अर्थ दे रहे थे। यही बात थी जो उपस्थित लोगों को विचित्र और असामान्य लग रही थी।

कहते हैं कि सास की आवाज़ सुनकर आयशा थोड़ा उठी और एक हाथ से पति का हाथ पकड़े-पकड़े दूसरे हाथ में गिलास ले लिया। उसके होंठ ज़रा गुलाबी पड़ रहे थे। भौंहों को सिकोडे बिना वह आसव पी गई और यह कहकर कि सोने की कोशिश करेगी, वह दीवार की तरफ़ करवट बदलकर लेट गई।

अगले दिन से उसे तेज़ बुख़ार आना शुरू हुआ और कोई दस दिन बाद वह ज़िन्दगी और मौत के बीच थी। बाबा शहर जाकर बड़ी मुश्किल से एक

डॉक्टर को लिवा लाए। कुछ फ़ायदा नहीं हुआ। डॉक्टर का कहना था कि उसके खून में बीमारी फैल गई है और कि वैसी हालत में उसे आसव नहीं पीना चाहिए था। आयशा ने मरे बच्चे को जन्म दिया और कुछ घंटों बाद ख़ुद भी चल बसी। तेइम्राज़ जैसे पथरा गया था।

रिश्तेदारों ने उसे टेढ़ी नज़रों से देखना शुरू कर दिया, क्योंकि अबखाज़ी रिवाज यह है कि चाहे कितना भी भारी दुःख क्यों न हो, उसे पति को औरों की नज़रों से छिपाना ही चाहिए।

दफ़नानेवाले दिन मुर्दा लाश को लपेटकर बाहर दालान में रखा गया था, ताकि लोग उससे अन्तिम विदाई ले लें। क़ब्र के पास उसका व्यक्तिगत सामान पड़ा हुआ था और घोड़ा भी खड़ा था, जिसकी लगाम आयशा के भाई ने पकड़ रखी थी, जो अभी बच्चा ही था।

एकाएक मातम करनेवाली महिलाओं को धकेलता हुआ तेइम्राज़ अपना पूरी तरह कसा हुआ घोड़ा लेकर वहाँ आया और उसे पत्नी के घोड़े के साथ खड़ा कर दिया।

रिश्तेदारों को और पड़ोसियों को इस अनोखे रिवाज़ को देखकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि दिवंगत पत्नी के घोड़े के साथ जीवित पति के घोड़े का खड़ा किया जाना किसी ने सुना भी नहीं था। मेहमानों में फुसफुसाहट शुरू हो गई कि वह कहीं पागल तो नहीं हो गया है या कहीं उनका मख़ौल तो नहीं उड़ा रहा है। भाइयों ने उसका घोड़ा हटाने को कहा। वह प्रतिरोध करने लगा। बेकार की कहा-सुनी हुई और बेमतलब की खलबली मच गई। आख़िर भाइयों ने अपनी बात मनवा ही ली।

"इसके लिए तुम्हें पछताना पड़ेगा।" उसने दाँत पीसकर कहा और अपना घोड़ा मातम करनेवाली औरतों के बीच में से बाहर निकाल लिया।

दफ़नाने के बाद हमारे सारे लोग अपने-अपने घोड़ों पर बैठकर गाँव की चल दिए। मेरी माँ, जो तब किशोरावस्था में थी, तेइम्राज़ के साथ गई। मेरी माँ बताती है कि वह अजीब-अजीब बातें शुरू कर देता था। उसकी बातें उसकी समझ में बिलकुल नहीं आ रही थीं—कभी वह रोने लगती और कभी उसे समझाने लगती।

वे शरत्कालीन उपवन से होकर जा रहे थे, जिसमें बीच-वृक्ष के रुपहले तने चमक रहे थे। ज़मीन पर सुनहरे पत्ते बिछे हुए थे। उपवन में नई मदिरा जैसी सुगन्ध और ताज़गी फैली थी। जेगेर्दा से आखुत्सा तक का यह रास्ता

मेरे लिए परिचित है, अभी भी उसमें वैसी ही खूबसूरती है। लेकिन उस समय वह रास्ता अनन्त और उदास प्रतीत हो रहा था। आख़िर घर पहुँच ही गए।

भोजन तैयार किया गया। तेइम्राज़ को बड़ी मुश्किल से मेज़ पर बैठने को राज़ी किया गया। वह बैठ तो गया था पर भोजन को छुआ तक नहीं, केवल दो गिलास मदिरा पी। इसके बाद वह उठा, सबसे विदा ली और बाहर दालान में आ गया। शाम हो रही थी। उसे घर में रोकने की कोशिश की गई। पर उसने घोड़े को खोलकर अचानक घुड़साल के करतब दिखाने शुरू कर दिए।

कभी घोड़े को पिछले पैरों पर खड़ा करता, कभी सरपट दौड़ाता, कभी चेराज़ करता यानी घास पर रेंगाता तथा और भी बहुत-से करतब दिखा रहा था।

बताते हैं कि इस घुड़चाल में कुछ भयानक-सा था। सुन्न पड़े दालान में गोली छूटने जैसी चाबुक़ की आवाज़ और घोड़े को हाँक लगाते हुए घुड़सवार का कठोर स्वर ही गूँज रहा था। अनावश्यक और अजीब-से करतब दिखाता हुआ वह बहुत भयानक लग रहा था। चेहरा एकदम पीला पड़ा हुआ था और दाढ़ी मातमी पट्टी-जैसी दीख रही थी। वह बहुत प्रभुत्वशाली और ज़िद्दी नज़र आ रहा था।

इसके बाद वह बाड़ को फाँदकर अपने गाँव की तरफ़ चला गया।

उसका लज्जाजनक व्यवहार समझ में नहीं आता था। पत्नी के दफ़नाने के लिए घुड़चाल दिखाना और वह भी उसके पिता के घर में—यह अकल्पनीय बात थी।

"इसी नीच को मैंने अपनी बेटी ब्याही भी।"...बाबा ने अपने शोक संतप्त स्वर में कहकर थूक दिया।

कोई दो घण्टे बाद तेइम्राज़ उसी दिन घर आ गया था। उसका इन्तज़ार नहीं हो रहा था। सोचा था कि वह हमारे रिश्तेदारों के यहाँ रह लेगा, पर वह वापस आ गया था। कोई विशेष बात उसमें नहीं दिखाई दी थी।

उसने खाना खाने से इनकार कर दिया था, कहा कि अभी हमारे वहाँ खाकर आया है। अनुमान लगाया जा सकता है कि युवा पत्नी के दफ़नाने के बाद अपना ही घर उसे कितना ख़ाली-ख़ाली और सर्द लगा होगा।

अगले दिन सुबह मौसम बहुत बढ़िया और सुहावना था, जैसा हमारे अबखाज़िया में अंगूर जमा करने के दिनों में होता है। तेइम्राज़ के पिता ने अंगूर की टोकरी में रस्सी बाँधी और बाग़ को चल दिए। उन्होंने बेटे को भी साथ चलने को कहा, पर उसने कह दिया कि उसे कुछ काम पूरे करने हैं।

जैसे ही पिता बाग़ को चले गए तेइम्राज़ ने माँ से साफ़ कपड़े माँगे। कहा कि लम्बी यात्रा पर जाने से पहले नहा लेना चाहता है। माँ ने यह जानने की ज़रूरत नहीं समझी कि कौन-सी और कहाँ की यात्रा? उसका विचार था कि अभी कहीं और ध्यान बँटाना ही उसके लिए सबसे अधिक लाभदायक होगा।

तेइम्राज़ को पिता की पुरानी बन्दूक़ साफ़ करते हुए देखकर माँ ने कहा, "ज़रा ध्यान रखना, बेटे!"

"जो हो चुका है उससे बुरा तो नहीं होगा।" उसने जवाब में कहा था।

इसके बाद तेइम्राज़ ने उस्तरा तेज़ किया, दाढ़ी बनाई, भगोने में पानी गर्म किया और नहाया। तब तक सौतेली माँ बरामदे में बुनाई लेकर बैठी रही। पिता ने उसे कई बार बाग़ से आवाज़ दी थी कि वह रस्सी से नीचे की हुई टोकरी को पकड़ ले, जिसके लिए उसे बार-बार बाग़ में जाना पड़ रहा था।

इसके बाद वह पत्नी की क़ब्र पर गया, कुछ देर वहाँ खड़ा रहा, झुका और नए बनाए गए टीले में से उठा-उठाकर कंकड़-पत्थर फेंकने लगा।

"बिलकुल जैसे बग़ीचे की मेंड़ तैयार कर रहा हो।" पेड़ पर से उसकी ओर देखते हुए पिता ने मन-ही-मन कहा। जो भी हो, बाद में उन्होंने यही बताया था। हमारे यहाँ निकटस्थ मृतकों को सामान्यतः घर के पास ही दफ़नाया जाता है।

तेइम्राज़ कुछ देर दालान में खड़ा रहा। फिर चुपचाप सौतेली माँ के पास आकर बोला, "माँ, मेरा रास्ता बड़ा ख़तरनाक है। अगर कुछ हो गया तो मेरा घोड़ा बेच देना और हम दोनों की याद में मृत्यु-भोज साथ-साथ ही करना।"

बुढ़िया ने हाथ झटक दिया, रो-रोकर कहने लगी, "क्या अभी कम दुःख है, अब और क्या करने का इरादा है!"

तेइम्राज़ को उस पर बड़ी दया आई। उसके और पास आकर गले लगा लिया।

"जा, चला जा, कूढ़, बदक़िस्मत!" कहकर वह दूर हट गई, "बूढ़ों की जान क्यों खाता है!"

शरद की धूप और इन दिनों की कड़वी थकान के कारण बुढ़िया को बीच-बीच में झपकी आ रही थी। झपकी के बीच ही उसे लगा कि तेइम्राज़ जो-जो कर रहा है, वह विचित्र-सा है, जैसे कि सब कुछ उलटा ही कर रहा है। ऐसा उसने बाद में बताया था। जैसे ही झपकी आती उसे दिखाई देता कि तेइम्राज़ ने पहले दाढ़ी बनाई, फिर उस्तरा तेज़ किया, पहले साफ़ कपड़े पहने, फिर पानी गरम करने बैठा, पहले बन्दूक़ में गोली भरी और फिर उसकी सफ़ाई करने बैठा।

वह ऐसा सब ग़ैर-इंसानी ढंग से क्यों कर रहा है?"

बुढ़िया नींद के बीच में ही सोचती थी और नींद खुलने पर इधर-उधर नज़र दौड़ाती थी। चारों ओर देखने पर लगता कि सब ठीक-ठीक है पर मन में कुछ अच्छा-सा नहीं लगता था। फिर से झपकी आ जाती और दुबारा वही सब घटित होता और इतने में जैसे उसे धक्का लगा हो। वह आख़िर जाग ही गई।

"वह जाने को तैयार खड़ा है और घोड़े को अभी तक नहीं पकड़ा? ऐसा कहाँ सुना है? पहले घोड़ा पकड़कर घर में लाना चाहिए और तब जाने की तैयारी करनी चाहिए।" वह उसे आवाज़ देकर बुलाना ही चाहती थी कि उसे ऐसा सुनाई पड़ा जैसे कि किसी ने कोठरी में ज़ोर से बन्दूक़ का ढक्कन बन्द किया हो।

"तेइम्राज़, क्या तू है?" उसने चिल्लाकर पूछा पर कोई जवाब नहीं मिला।

अचानक रसोईघर का दरवाज़ा खुला और वहाँ से तेइम्राज़ बाहर आता हुआ, बल्कि दौड़ता हुआ दिखाई दिया।

"तुम्हारे दुश्मनों के बच्चों के लिए तक दुआ नहीं माँगती कि इस तरह रसोईघर से बाहर निकलते हुए आएँ।" बुढ़िया कहे जा रही थी।

पहले उसकी समझ में कुछ नहीं आया। पता नहीं क्यों, तेइम्राज़ हथेलियों से छाती मल रहा था और दौड़कर दालान के बीच में आ रहा था। बाद में उसे दिखाई पड़ा कि उसकी क़मीज़ जल रही है, जिसे वह बुझाने की कोशिश कर रहा है।

"तेइम्राज़, यह तुझे क्या हुआ?" वह अजीब स्वर में चीख़ी।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं।" सौतेली माँ की आवाज़ से डरकर उसने कहा। जो घटित हो चुका था, जैसे उसकी शर्म के मारे वह धुआँ निकालती हुई क़मीज़ को हथेलियों से छिपाने का प्रयास कर रहा था।

और फिर उँगलियों के बीच से खून की धार निकलने लगी, तेइम्राज़ लड़खड़ाया, पर अभी उसमें घास पर लेट जाने की शक्ति थी।

पिता को अपनी अभिशप्त दाखबारी (अंगूर के बाग़) में चीख़ने-चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी। किसी अशुभ की आशंका से वे कूदकर अपने बेटे की ओर दौड़े गए।

"कैसी बात है! अगर किसी और मौके पर इतनी ऊँचाई से कूदा होता तो उठ भी नहीं पाता, पर यहाँ अभी एक खरोंच तक नहीं लगी।" बाद में आश्चर्य में भरकर उन्होंने कहा था।

तेइम्राज़ अखरोट के पेड़ की छाया में लेटा हुआ था और लगभग बुझ चुकी क़मीज़ को खुरचे जा रहा था। उसकी उँगलियों को अभी भी याद था कि इस छोटी-सी आग को बुझाना है पर ख़ुद उसे समझ नहीं थी कि यह क्या कर डाला था अपने आप को। वह मर चुका था।

तेइम्राज़ के भाइयों को उसकी आत्महत्या के कारण पर लज्जा हुई। उसे उसी दिन झटपट दफ़ना दिया गया। किसी को ख़बर नहीं की गई। पड़ोस के गाँवों में ग़मख़्वारों—शोकसन्देश वाहकों—को नहीं भेजा गया, जैसा कि रिवाज के अनुसार होना चाहिए था।

चालीस दिन बाद पिता ने चेहलुम का आयोजन किया। दोनों को बिलकुल एक साथ याद किया गया। दोनों को पास-पास ही दफ़नाया गया था।

मैंने न आयशा को, न तेइम्राज़ को कभी देखा था। पर मुझे लगता है कि कभी-कभी निकट सम्बन्धियों की त्रासदी जैसे सहज उदासी की मन्द पड़ती हुई धड़कनों के रूप में हमारे पास तक आ जाती है।

कोई मूर्ख ही सोचेगा कि मैं आत्महत्या का गुणगान कर रहा हूँ, पर मनुष्य की मित्रता, मानवीय निष्ठा और प्रेम के शब्दों का क्या मूल्य रह जाता, अगर समय-समय पर वे इस भयानक और सच्चे रूप में वास्तविक रक्त से सिंचित न हों, उस रक्त से जो उस ज़माने में भी नीच लोगों को पुराने फ़ैशन का लगता था।



साभार : फ़ाज़िल इस्कन्दर—ज़प्रेत्नी प्लोद (निषिद्ध फल) लेनिनग्राद, 1966

निषिद्ध फल

फ़ाज़िल इस्कन्दर

पूर्वी प्रथा के अनुसार हमारे घर में सूअर का मांस कभी नहीं खाया गया था। बड़े तो खाते ही नहीं थे, बच्चों के लिए भी सख़्त मनाही थी। वैसे मुहम्मद साहब के दूसरे उपदेश—मद्यनिषेध—का निर्बाध रूप से उल्लंघन किया जाता था—यह बात मुझे अब समझ में आने लग गई है। लेकिन सूअर के गोश्त पर लगे प्रतिबन्ध में कोई ढील नहीं थी।

इस निषेध के फलस्वरूप मुझमें एक उत्कट चाह और अकड़ पैदा हो गई थी। मैं सूअर के गोश्त का स्वाद चखने के स्वप्न देखने लगा। सूअर के भुने हुए गोश्त की महक से मैं पागल-सा हो जाता। दुकानों के बाहर खड़े होकर मोटे-मोटे झुर्री पड़े धब्बेदार सासेजों को घण्टों देखा करता। मन-ही-मन मैं उनके छिलके उतारता और फिर उनके रसीले लचकदार गूदे को अपने दाँतों से काटता। सासेज का स्वाद मेरी कल्पना में इतना स्पष्ट था कि बाद में जब मैंने वास्तव में उसे चखा तो मुझे अपनी कल्पना पर बड़ा आश्चर्य हुआ था।

हाँ, नर्सरी स्कूल में या कभी किसी के यहाँ सूअर के गोश्त को खाने के मौक़े तो आते थे, परन्तु मैंने कभी भी नियम का उल्लंघन नहीं किया।

मुझे याद है कि जब कभी नर्सरी में हमें सूअर के मांसवाला पुलाव दिया जाता था तो मैं मांस के टुकड़ों को अलग कर-करके दोस्तों को दे दिया करता था। इच्छाजन्य कष्ट पर परहेज के सुख की जीत होती। मित्रों की तुलना में मैं स्वयं अपने को आदर्श-सम्पन्न समझता। अपने अन्दर एक पहेली लिए ऐसा लगता था कि मैं औरों से ऊँचे धरातल पर हूँ क्योंकि मुझे एक ऐसी चीज़ मालूम है, जो अन्य लोगों के लिए दुर्लभ है। साथ ही पापपूर्ण मोह का स्वप्न भी उतना ही बढ़ता गया।

हमारे पड़ोस में एक नर्स रहा करती थीं। उन्हें हम सोन्या काकी कह कर बुलाते थे। उन दिनों, न मालूम क्यों, हम सब समझते थे कि वह डॉक्टर हैं। वास्तव में जैसे-जैसे हमारी उम्र बढ़ती जाती है वैसे-वैसे इन काका-काकियों और चाचा-चाचियों की हैसियत घटती जाती है।

सोन्या काकी अधेड़ उम्र की थीं, उनके बाल छोटे कटे थे। चेहरा गहरे शोक में डूबा हुआ। सोन्या काकी हमेशा धीमे स्वर में बोला करती थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वह बहुत पहले ही जान चुकी थीं कि जीवन में ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए ऊँचे स्वर में बोला जाए।

हमारे यहाँ पड़ोसियों के आपस में होनेवाले झगड़ों में सोन्या काकी का स्वर शायद ही कभी ऊँचा उठा हो। इसलिए विरोधियों की कठिनाई बढ़ जाती थी, क्योंकि उनके आखिरी शब्दों को स्पष्ट न सुन पाने के कारण झगड़े का सूत्र टूट जाता था और इमसे उसकी तेज़ी में कमी आ जाती थी।

हमारे परिवारों के आपसी सम्बन्ध बड़े मधुर थे। मेरी माँ कहा करती थीं कि सोन्या काकी ने मुझे मृत्यु के ग्रास से बचाया था। एक बार मैं गम्भीर रूप से बीमार हुआ था। तब माँ के साथ-साथ सोन्या काकी ने भी एक महीने तक मेरी देखभाल की थी। पता नहीं क्यों, इस जीवन-रक्षा के लिए मैंने कभी-भी उनके प्रति कृतज्ञता का अनुभव नहीं किया था, लेकिन जब कभी इस विषय पर बात होती तो सोन्या काकी के प्रति आदर की भावना के कारण मुझे इस बात पर प्रसन्नता होती कि मैं जीवित तो हूँ।

शाम के समय सोन्या काकी हमारे यहाँ आकर बैठा करतीं और अपने जीवन की कहानी सुनातीं, अधिकतर गृहयुद्ध में मारे गए अपने पहले पति के विषय में। यह कहानी मैं कई बार सुन चुका था। फिर भी उस स्थल पर आकर मैं आतंकित हो जाता, जब वह हताहत लाशों के बीच अपने प्रियतम के शव को ढूँढ़ निकालने के प्रयास का वर्णन करतीं। इस स्थल पर आकर वह अक्सर रोने लगतीं और उनके साथ मेरी माँ और बड़ी बहन के भी आँसू ढुलकने लगते। माँ और बहन सोन्या काकी को चुप करातीं, बिठाकर चाय पिलातीं या ठण्डा पानी पीने को देतीं।

मुझे सदा इस बात पर बड़ा आश्चर्य होता कि इसके बाद कितनी जल्दी वे सारी महिलाएँ शान्त हो जातीं और दुनिया भर की बातें बड़े आनन्द और नये उत्साह के साथ करने लगतीं। फिर सोन्या काकी वापस लौट जातीं क्योंकि उनके पति के काम से लौट आने का समय हो जाता। उनके पति का नाम था—शूरा काका।

शूरा काका मुझे बहुत पसन्द थे। उनके काले बिखरे बालों वाला सिर, माथे पर लटकती लट, मज़बूत हाथों पर बड़ी सफ़ाई से ऊपर तक चढ़ी क़मीज़ की बाँहें और उनका झुका हुआ शरीर तक मुझे पसन्द थे। यह झुकाव दफ़्तर की मेज़ पर बैठने से होनेवाले कूबड़-जैसा नहीं था, बल्कि उसमें स्वाभाविकता और श्रेष्ठता थी, जो कि पुराने, अच्छे मज़दूरों में मिलती है हालाँकि वह न तो पुराने पड़े थे, न मज़दूर ही थे।

शाम को काम से लौटकर हमेशा कुछ-न-कुछ मरम्मत करने में लगे रहते—टेबल लैम्प, बिजली की इस्त्री, रेडियो और घड़ियाँ तक। ये सब चीज़ें पड़ोसी ले आया करते थे और, स्वाभाविक ही, यह सब काम धर्मार्थ होता था।

सोन्या काकी मेज़ के दूसरी ओर बैठी सिगरेट पीतीं और उन्हें ताने देती रहतीं कि अपना काम तो करते नहीं, कुछ नहीं बनने का इन सबसे और ऐसे ही बहुत कुछ बोलती जातीं।

"देखते हैं, कैसे नहीं बनने का।" शूरा काका दाँतों को दबाए बोलते, क्योंकि मुँह में सिगरेट होती। वह बड़े आराम से और आत्मविश्वास के साथ मरम्मत की चीज़ को हाथ में लेकर घुमाते, उसकी धूल झाड़ते और अचानक उसका किसी ओर से निरीक्षण करने लगते, जो हमारी समझ के बाहर होता।

"देख लेना, बनेगा ही नहीं, उलटे खिसियाकर रह जाओगे।" सोन्या काकी जवाब देतीं और बड़े अभिमान के साथ मुँह से धुआँ छोड़ती हुई उदास-सी चोगे को कसकर लपेट लेतीं। आख़िर शूरा काका घड़ी में चाबी भर ही देते, रेडियो से संगीत बजने लगता और मेरी ओर आँखें मिचकाते हुए वह पूछते, "देखा, बना कि नहीं?"

उनकी सफलता पर मुझे हमेशा प्रसन्नता होती और अपनी मुस्कुराहट के द्वारा मैं उन्हें बता देता कि इस मामले से मेरा कोई मतलब नहीं है। परन्तु मेरे लिए इस बात का बहुत महत्त्व है कि वह मुझे अपने साथ रखते हैं।

"अच्छा, अच्छा, बहुत डींग न मारो। अब उठो यहाँ से, मैं चाय लाती हूँ।" सोन्या काकी कहतीं।

फिर भी मैं उनके स्वर में निहित गूढ़ और गहरे अभिमान को भाँप जाता और मुझे शूरा काका पर प्रसन्नता होती। मुझे ऐसा लगता है कि वह गृहयुद्ध के उस योद्धा से बुरे नहीं हैं, जिसे सोन्या काकी किसी भी तरह भुला नहीं पाती थीं।

एक दिन मैं हमेशा की तरह उनके यहाँ बैठा हुआ था। किसी काम से मेरी बहन वहाँ आई और उन्होंने उसे चाय पीने के लिए बिठा लिया। सोन्या

काकी ने मेज़ पर सामान रखा, गुलाबी-गुलाबी रंग की चर्बी के टुकड़े काटे, चटनी रखी और चाय डाली। इससे पहले भी वे अकसर चर्बी खाया करते, मुझे भी देते और मैं सदा दृढ़तापूर्वक मना कर देता। इस पर शूरा काका को, पता नहीं क्यों, बड़ा आनन्द आता। इस बार भी मुझे चर्बी दी, परन्तु विशेष आग्रह नहीं किया। शूरा काका ने डबलरोटी के स्लाइस पर चर्बी के कुछ टुकड़े रखकर बहन को खाने को दिए। थोड़ी आनाकानी करने के बाद उसने उस घृणास्पद सैंडविच को स्वीकार कर ही लिया और खाने लगी। चाय का घूँट, जिसे मैं अभी अन्दर कर ही रहा था, मारे नाराज़गी के गले में अटक गया और बड़ी कठिनाई से मैं उसे अन्दर ले सका।

"देखा, महात्मा जी!" शूरा काका बोले।

बहन के खाने के आनन्द को मैं अनुभव कर रहा था। यह वैसे भी दिखाई दे रहा था, क्योंकि काफ़िरी चटोरेपन से वह अपने होंठों से रोटी के टुकड़ों को पूरी सफ़ाई से चाट रही थी। और प्रत्येक टुकड़े को लालच के साथ धीरे-धीरे निगल रही थी, जैसे कि मुँह और गले में उससे होनेवाली प्रक्रिया को बड़े ध्यान से सुन रही हो। चर्बी के टुकड़े बराबर नहीं कटे हुए थे। जहाँ से वह उन्हें काट रही थी, उधर से वे पतले थे। उसके आनन्द का इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता था, क्योंकि सभी सामान्य बच्चे बड़े लाभ को हमेशा बाद में खाने के लिए बचाए रखते हैं। यानी कि सब कुछ स्पष्ट था।

अब वह सैंडविच पर रखे चर्बी के टुकड़े के सबसे मोटे अंश की ओर बढ़ रही थी और उसका आनन्द भी धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। साथ ही, वह स्त्री-सुलभ कपट के साथ एक पुरानी घटना भी सुनाती जा रही थी, जब मेरे भाई के व्यवहार की शिकायत करने उसकी अध्यापिका घर पर आई थीं और वह खिड़की से कूदकर बाहर भाग गया था। इसके पीछे उसके दो उद्देश्य थे। एक तो यह कि जो वह स्वयं अभी कर रही थी, उससे लोगों का ध्यान हटाना चाहती थी और दूसरे बड़ी सफ़ाई के साथ मेरी ख़ुशामद कर रही थी क्योंकि सभी को मालूम था कि अध्यापिका मेरी शिकायत लेकर नहीं आई थीं और फिर ऐसा कोई कारण भी नहीं था कि मैं उनके डर से खिड़की के रास्ते भाग जाता।

अपनी कहानी सुनाते हुए बहन मेरी ओर भी देखे जा रही थी कि मैं अभी तक उसी पर नज़र रखे हूँ या कि उसकी कहानी में मग्न हुआ मैं भूल गया हूँ कि इस समय वह क्या कर रही है। परन्तु मेरी दृष्टि स्पष्ट रूप से यह बतला रही थी कि मैं पूरी सतर्कता के साथ उस पर नज़र रखे हूँ। इसके

उत्तर में वह मेरी ओर आँखें फाड़कर देख रही थी जैसे आश्चर्य प्रकट कर रही हो कि पता नहीं कैसे मैं ऐसी छोटी-छोटी बातों की ओर इतनी देर तक ध्यान लगाए रख सकता हूँ। मैं भी मुस्कुराते हुए बाद में मिलनेवाले दण्ड का अस्पष्ट-सा संकेत दे रहा था।

एक क्षण मुझे प्रतीत हुआ कि दण्ड मिल ही गया, क्योंकि गले में कुछ अटकने से वह खाँसने लगी। मैं विशेष उत्सुकता के साथ इस घटना का अनुसरण करने लगा। शूरा काका ने उसकी पीठ थपथपाई, वह लाल पड़ गई और उसकी खाँसी बन्द हो गई अर्थात् यह तरीक़ा काम कर गया। इस घटना से उसके लिए जो अजीब-सी स्थिति पैदा हो गई थी, उसका उतना महत्त्व नहीं था। लेकिन मुझे ऐसा लग रहा था कि गले में अटका हुआ टुकड़ा अभी भी ज्यों-का-त्यों पड़ा है।...ऐसे बनकर कि सब ठीक हो गया, उसने सैंडविच को दाँत से फिर काटा। 'चबा, और चबा, देखता हूँ, कैसे निगलती है।' मैंने मन-ही-मन कहा।

परन्तु लगता था कि भगवान ने दण्ड देना स्थगित कर दिया था। बहन इस टुकड़े को बड़े आराम से निगल गई, बल्कि उसके साथ शायद पहलेवाले टुकड़े को भी अन्दर धकेल दिया, क्योंकि इसके बाद उसने आराम की साँस ली और हँस दी। अब तो वह और भी ध्यानमग्न होकर चबाते हुए हर ग्रास के बाद होंठों को बड़ी देर तक इस तरह चाट रही थी कि अपनी जीभ-से मुझे चिढ़ाती भी जाती थी।

आख़िर वह सैंडविच के उस अन्तिम अंश तक पहुँच गई, जहाँ चर्बी का सबसे बड़ा टुकड़ा बचा हुआ था। उस बड़े टुकड़े को मुँह में डालने से पहले उसने स्लाइस के उस कोने को काटा, जिस पर चर्बी नहीं थी। इस प्रकार अन्तिम टुकड़े का स्वाद उसके लिए और भी बढ़ गया।

आख़िर वह अन्तिम टुकड़े को भी होंठों को चाटते हुए निगल गई। होंठों को चाटकर उसने पूरे आनन्द का एक बार फिर स्मरण कर लिया और यह भी प्रकट कर दिया कि अधःपतन का कोई चिह्न शेष नहीं रह गया है। इस पूरी प्रक्रिया में इतनी देर नहीं लगी थी, जितनी कि मुझे बतलाने में लग रही है और बाह्य रूप से तो यह सब इतना स्पष्ट भी नहीं था। जो भी हो, शूरा काका और सोन्या काकी ने तो मेरे विचार से इसमें ऐसा कुछ नहीं देखा।

सैंडविच खाने के बाद बहन इस तरह चाय पीने लगी, जैसे कि कोई विशेष बात हुई ही नहीं। जैसे ही उसने चाय पीनी शुरू की मैंने अपनी चाय झट से पी डाली, ताकि हम दोनों में किसी प्रकार की भी समानता न रहे। मैंने बिस्कुट भी नहीं लिये, ताकि पूरी तरह कष्ट भोगता रहूँ। मैं चाहता ही नहीं

था कि उसकी उपस्थिति में मैं किसी प्रकार का आनन्द भोगूँ। साथ ही मैं शूरा काका से कुछ नाराज़ भी था, क्योंकि वह मेरी उतनी ख़ातिर नहीं कर रहे थे, जितनी कि बहन की। मैं चाहता तो चाय भी नहीं पीता लेकिन बहन के लिए तो यह महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक प्रश्न था।

संक्षेप में कहा जाए तो मेरा मूड ख़राब हो गया था और चाय पीते ही मैं घर चल दिया। मुझे रुकने को कहा गया, लेकिन मैं नहीं माना।

"मुझे स्कूल की तैयारी करनी है।" मैंने ऐसी धर्मनिष्ठ वाणी में कहा जैसे कि और सब अशिष्ट कार्यों में लगे हों, जिनकी मैं उन्हें पूरी स्वतन्त्रता दे रहा हूँ।

सबसे अधिक आग्रह बहन ने किया। उसे पूरा विश्वास था कि घर जाकर सबसे पहले मैं उसकी चुग़ली करूँगा, इसके अलावा रात को अकेले जाते उसे डर भी लगता था।

घर आकर मैंने झट से कपड़े उतारे और लेट गया। मैं इस ईर्ष्यापूर्ण और मधुर विचार में डूबा हुआ था कि किस प्रकार बहन ने अपना धर्म भ्रष्ट कर दिया। एक-से-एक विचित्र दृश्य मेरे सामने आने लगे। मैं लाल छापामार अपने विरोधी श्वेतों के द्वारा क़ैद कर लिया गया हूँ, जो मुझे ज़बरन सूअर का मांस खिलाना चाहते हैं। यातना मिलने पर भी मैं नहीं खाता। अफ़सर मुझे देखकर हैरान हैं, सिर हिला देते हैं—अजीब लड़का है। मुझे खुद अपने ऊपर आश्चर्य होता है, लेकिन मैं भी ऐसा अड़ गया हूँ कि बस, नहीं खाता। चाहो तो मार डालो, लेकिन जबरदस्ती मत खिलाओ।

इतने में दरवाज़ा खुलने की आवाज़ सुनाई दी, बहन कमरे में आई और मेरे बारे में पूछा।

"सो गया। पता नहीं उदास-सा था। कुछ हुआ तो नहीं।" माँ ने पूछा।

"कुछ भी नहीं।" यह कहकर वह मेरे पलंग की ओर आई।

मुझे सन्देह था कि अब वह मुझे मनाना शुरू करेगी और फिर वही सब बातें। माफ़ करने का तो सवाल ही नहीं उठता था, साथ ही मैं अपनी स्थिति को भी बदलना नहीं चाहता था। इसलिए मैंने सोते रहने का बहाना किया। वह कुछ देर खड़ी रही और फिर धीमे-से मेरे सिर पर हाथ फेरा। किन्तु मैंने यह दिखाने को करवट बदल ली कि जैसे मैं नींद में भी विश्वासघाती के हाथ के स्पर्श को पहचान रहा हूँ। थोड़ी देर और खड़ी रहकर वह चली गई। मुझे ऐसा लगा कि उसे पछतावा हो रहा है और अब उसे समझ में नहीं आ रहा था कि किस प्रकार अपने पाप को धोए।

मुझे उस पर थोड़ी दया आई जो व्यर्थ ही प्रतीत हुई। एक मिनट बाद वह फुसफुसाते हुए माँ से कुछ कहने लगी। बीच-बीच में वे दोनों हँस देते, लेकिन बहुत धीमे-से जैसे कि उन्हें मेरी चिन्ता हो। धीरे-धीरे वे दोनों शान्त हो गईं और सोने की तैयारी करने लगीं।

स्पष्ट था कि बहन आज की घटना से सन्तुष्ट थी। चर्बी भी खाई, मैंने कुछ कहा भी नहीं और माँ का भी मनोरंजन कर दिया। ख़ैर, कोई बात नहीं, मैंने सोचा, मेरी बारी भी आएगी।

अगले दिन की बात है, हम सब लोग खाने को बैठे हुए थे। पिताजी की प्रतीक्षा थी। वह देर से आए और माँ पर नाराज़ भी हुए कि उनके लिए इतना इंतज़ार करते की ज़रूरत नहीं थी। कुछ दिन से दफ़्तर में उनके साथ कुछ ठीक नहीं चल रहा था और वह अक्सर उदास और खोए-खोए से रहते थे।

इससे पहले तक मैं बहन के अपराध के विषय में खाने के समय बताने की तैयारी कर रहा था, किन्तु अब देखा कि मौक़ा ठीक नहीं है। फिर भी मैं बीच-बीच में बहन की ओर नज़र उठाकर ऐसा भाव बनाता कि अभी बताता हूँ। मैं मुँह तक खोल देता, किन्तु कुछ और कह डालता। जैसे ही मैं मुँह खोलता, वह आक्रमण को झेलने की तैयारी में आँखें और सिर झुका देती। मैं ऐसा अनुभव कर रहा था कि रहस्य खोलने की अपेक्षा उसका डर बनाए रखना अधिक अच्छा है।

कभी उसका रंग उड़ जाता, कभी साँस फूलने लगती। कभी अहंकारपूर्वक सिर झटक देती, लेकिन तुरन्त ही विनयपूर्ण नेत्रों से ऐसी उद्दण्डता के लिए क्षमा माँग लेती। खाना भी ठीक से नहीं खाया। सूप की प्लेट को तो लगभग छुआ भी नहीं और वैसे ही हटा दिया। माँ उसे मनाने लगी कि सूप को तो ख़त्म कर दे।

"हाँ, और क्या!" मैंने कहा, "कल शूरा काका के यहाँ इतना खाया कि..."

"क्या खाया तूने?" भाई ने हमेशा की तरह बिना समझे पूछा।

माँ ने मेरी ओर घबराते हुए देखा और इस तरह सिर हिलाया कि पिताजी को पता न चले। बहन चुपचाप प्लेट को अपनी ओर सरकाकर सूप समाप्त करने लगी। मैंने अपनी प्लेट में से उबले हुए प्याज़ का सूप उसकी प्लेट में उँड़ेल दिया। उबले प्याज़ बचपन में किसे अच्छे लगते हैं! हम सभी को नापसन्द थे। माँ ने मेरी ओर कड़ी और सवालिया निगाह से देखा।

"इसे प्याज़ पसन्द है।" मैंने कहा, "ठीक है न, तुझे प्याज़ पसन्द तो है?" मैंने बड़े प्रेम से बहन से पूछा।

उसने कोई जवाब नहीं दिया, बस अपनी प्लेट की ओर और भी नीचे को झुक गई।

"अगर पसन्द है तो मेरे हिस्से का भी ले ले।" भाई ने कहा और अपने सूप में से प्याज़ निकालकर उसकी प्लेट में डालने लगा, लेकिन इस बीच पिताजी ने उसकी ओर ऐसे देखा कि उसका हाथ बीच में ही रुक गया और आधे रास्ते से डरते हुए वापस लौट गया।

सूप के बाद मुझे एक नया मखौल सूझा। मैंने एक स्लाइस उठाया, उसके ऊपर सलाद में से निकालकर खीरे के टुकड़े रखे और फिर दाँत से काट-काटकर अपने हरे सैंडविच का आनन्द लेने लगा। अपने आनन्द को दिखाने के लिए मैं बीच-बीच में रुक भी जाता था। मुझे प्रतीत हो रहा था कि बहन के निकृष्ट पतन के चित्र को मैं बड़े कौशल से प्रस्तुत कर रहा हूँ। वह मेरी ओर हैरानी के साथ देख रही थी, जैसे कि उसे कुछ समझ में ही नहीं आ रहा हो और न उसे यह स्वीकार था कि वह इतनी गिर गई थी। उसका विरोध इससे आगे नहीं बढ़ा था।

संक्षेप में यह कि खाने का समय बड़े मज़े से बीता। सदाचार ने अपने प्रभाव से पाप का सिर नीचे रखा। खाना खाने के बाद हमने चाय पी। पिताजी ऊपरी तौर पर प्रसन्नचित्त दिखाई दे रहे थे, उनके साथ हम भी हँसी-मज़ाक़ करने लगे, बहन को विशेष ख़ुशी थी। उसके गाल लाल हो गए और आँखें भी चमकने लगीं। वह स्कूल की कोई घटना सुनाने लगी और बीच-बीच में मुझे भी उसका गवाह बनाती, जैसे कि हमारे बीच और कुछ घटित ही न हुआ हो। इस प्रकार की घनिष्टता का मुझ पर कुछ उल्टा ही असर हो रहा था। मैं सोच रहा था कि उसके जैसे व्यक्ति का व्यवहार विनयशील होना चाहिए, ऐसी क्या जल्दी थी, वही घटना और अधिक सुपात्र व्यक्ति भी तो कभी सुना करते थे। मैं उसे छोटा-सा दण्ड देने की सोच ही रहा था कि पिताजी ने नयी कॉपियों का दस्ता निकाला, जो उन्होंने समाचार-पत्र में लपेट रखा थीं।

आपको यह बता दूँ कि युद्धपूर्व के दिनों में वस्त्रों और खाद्य पदार्थों की तरह कापियों की भी कमी रहती थी। और ये थीं सबसे बढ़िया चमकदार का!पियाँ, जिनमें लाल हाशिया साफ़ खिंचा हुआ था। पन्ने भी मोटे-मोटे ठण्डे-से, हल्के-से नीले रंग के, दूध की तरह।

कुल नौ कॉपियाँ थीं। पिताजी ने सबको बराबर-बराबर तीन-तीन बाँट

दीं। मुझे लगा कि मेरा मूड बिगड़ने लगा है। इस प्रकार की बराबरी मेरी दृष्टि में घोर अन्यायपूर्ण थी।

बात यह है कि मैं पढ़ने में अच्छा था, कभी-कभी प्रथम भी आता था। सम्बन्धियों और परिचितों को ऐसे बताया जाता था, जैसे कि मैं हमेशा ही प्रथम आता हूँ, ताकि मेरे भाई की ख़ामियों का धब्बा तो मिट जाए।

स्कूल में सब उसे परम आलसी के रूप में जानते थे। उसके अध्यापक के अनुसार वह अपने कृत्यों का मूल्यांकन करने में बहुत पीछे रहता था। मेरी कल्पना में उसका स्वभाव एक छोटे बदमाश शैतान के जैसा था, जो कि हमेशा आगे दौड़ रहा हो और मेरा भाई किसी भी तरह उसके पास तक पहुँचने में असमर्थ हो। सम्भवतः उसे पकड़ने के इरादे से वह चौथी कक्षा से ही ड्राइवर बनने के स्वप्न देखने लगा था। काग़ज़ के हर टुकड़े पर वह नौकरी के प्रार्थना-पत्र लिखता रहता, जो उसने कहीं पढ़े होते—

"सेवा में,

निदेशक

परिवहन कार्यालय

मान्यवर,

कृपया मुझे अपने मान्य संगठन में उचित नौकरी देकर अनुग्रहीत करें। मैं तीसरी श्रेणी का ड्राइवर हूँ।"

बाद में उसे अपने इस सुखद स्वप्न को पूरा करने में सफलता भी प्राप्त हो ही गई। एक मान्य संगठन ने उसे गाड़ी भी सौंप दी। परन्तु बाद में पता चला कि अपने स्वभाव का पीछा करने के लिए उसे गाड़ी बेहद तेज़ चलानी पड़ती है, परन्तु इतना तेज़ चलाने की अनुमति नहीं है। अन्ततः उसे अपना पेशा बदलना पड़ा।

मेरी—सर्वश्रेष्ठ छात्र की—बराबरी ऐसे भाई से की गई, जो कि अन्तिम पृष्ठ से शुरू करके इन सुन्दर कॉपियों को अपने मूर्खतापूर्ण प्रार्थना-पत्रों से भर डालेगा।

या फिर मेरी बराबरी ऐसी बहन से की गई जो कल तो सूअर का मांस हड़प कर गई थी और आज उसे उपहार मिल रहा है, जिसका उसे कोई अधिकार नहीं है। मैंने कॉपियों को अलग हटा दिया और मुँह फुलाकर बैठा रहा। भारी और अपमानजनक आँसू गले में अटक रहे थे। पिताजी ने मुझे समझाया-बुझाया और वचन दिया कि मुझे पहाड़ी नदी में मछली पकड़ने के लिए ले जाएँगे। लेकिन फिर भी बात नहीं बनी। मुझे जितना चुप कराते मैं उतनी ही तेज़ी से यह अनुभव करता कि मेरे साथ अन्याय हुआ है।

"मेरी कॉपी में दो ब्लाटिङ् पेपर हैं।" अचानक अपनी एक कॉपी को खोलते हुए बहन चिल्ला पड़ी।

यह आख़िरी चोट थी। यदि उसके पास यह एक अतिरिक्त ब्लाटिङ् पेपर न निकला होता तो शायद वह घटित नहीं होता जो आगे चलकर हुआ।

मैं उठ खड़ा हुआ और काँपती हुई आवाज़ में पिताजी को बता ही दिया— "कल इसने सूअर का मांस खाया... ।"

कमरे में अप्रिय सन्नाटा छा गया। मैं ऐसा डर गया कि लगा कुछ गलत काम कर गया। या तो मेरे कहने में अस्पष्टता थी या मुहम्मद साहब के महान उपदेशों तथा दूसरे की कॉपियाँ प्राप्त करने की क्षुद्र भावना के बीच कोई संगति नहीं थी।

पिताजी ने सूजी हुई पलकों के नीचे से मेरी ओर भारी नज़र डाली। उनकी आँखों में धीरे-धीरे क्रोध उमड़ रहा था। मैं समझ गया कि उनकी इस दृष्टि का परिणाम मेरे लिए अच्छा नहीं होगा। स्थिति को सुधारने और उनके क्रोध को उचित दिशा में मोड़ने का मैंने एक और अन्तिम प्रयास किया।

"कल इसने शूरा काका के यहाँ सूअर का मांस खाया था।" मैंने निराश स्वर में स्पष्ट किया। मुझे लग रहा था कि मेरी कोशिश बेकार जा रही है।

अगले क्षण पिताजी ने मेरे कान खींचकर ज़ोर से मेरा सिर हिलाया और इस विश्वास के साथ कि वह अलग होकर गिर नहीं जाएगा मुझे उठाकर ज़मीन पर पटक दिया। अब क्या बताऊँ कि मुझे कैसी तीव्र पीड़ा हुई और मेरे खींचे गए कान कैसे गूँज रहे थे।

"कुत्ते की औलाद!" पिताजी चिल्लाए, "मुझे इस घर में ऐसे विश्वासघाती नहीं चाहिए।"

अपनी चमड़े की जैकेट लेकर वे बाहर चले गए। दरवाज़ा इतने ज़ोर से बन्द किया कि दीवार से पपड़ी उतर आई। मुझे याद है कि पीड़ा या उनके शब्दों से मैं उतना नहीं डरा था, जितना कि मेरे कानों को उमेठते समय उनके चेहरे पर जो घृणा और वितृष्णा थी उससे। चेहरे पर ऐसा भाव तो साँप को मारते समय आता है।

इस घटना पर चकित हुआ मैं देर तक ज़मीन पर पड़ा रहा। माँ मुझे उठाने का प्रयत्न कर रही थी। मेरा भाई अपने क्रोध की उमंग में मेरे चारों ओर दौड़ रहा था और मेरे कानों की ओर इशारा करते हुए बड़े चाव से चिल्ला रहा था, "क्लास में अव्वल आएगा!"

मैं पिताजी को बहुत प्यार करता था। उन्होंने पहली बार मुझे दण्ड दिया।

इस घटना को कई साल हो गए हैं। मैं सूअर का सर्वसुलभ मांस भी खाने लगा हूँ। हालाँकि ऐसा लगता है कि इससे कोई अधिक सुखी नहीं हो गया हूँ। परन्तु मुझे जो शिक्षा मिली, वह व्यर्थ नहीं गई। मैं जीवन भर के लिए समझ गया कि ऊँचे-से-ऊँचे सिद्धान्त का सहारा लेकर भी हम नीचता और विश्वासघात का औचित्य सिद्ध नहीं कर सकते तथा किसी भी प्रकार का विश्वासघात क्षुद्र घृणा की रोएँदार सूँडी के समान है, चाहे वह कैसे भी सिद्धान्तों के आवरण में क्यों न ढका हो।



साभार : फाज़िल इस्कन्दर—ज़प्रेत्नी प्लोद (निषिद्ध फल)
लेनिनग्राद, 1966

यात्रा

यूरी त्रीफ़ोनोव

एक बार अप्रैल महीने में अचानक मेरी समझ में आया कि केवल एक ही चीज़ मुझे बचा सकती है—वह है यात्रा। कहीं चले जाना ज़रूरी था। चाहे कहीं भी और चाहे जैसे भी हो—विमान से, स्टीमर से, घोड़े पर, उलटाऊ ट्रक में—बस तुरन्त चले जाना चाहिए। मेरी ऐसी हालत क्यों हो गई थी—इसकी अलग कहानी है, बहुत लम्बी और उससे कोई मतलब भी नहीं है। बस एकाएक सूर्योदय के समय जब मैं अनिद्रा और साँस की तकलीफ़ के मारे परेशान था—डॉक्टरों के अनुसार ऐसा वर्धी विक्षिप्ति (वजिटेटिव न्यूरोसिस) के कारण था, पर मुझे ही मालूम था कि बात कुछ और है, हो सकता है कि ऐसा हो कि कहीं तूफ़ान मँडरा रहा है, कि गर्म हवा की लहरें पदोल्स्क तक पहुँच गई हैं और मास्को की ओर बढ़ रही हैं—मुझे लगा कि मेरा दम घुटा जा रहा है, कि मेरा मस्तिष्क रक्तविहीन हो गया है, कि यदि इस सूखे पलस्तर, अमूर्त चित्रोंवाले वालपेपर, पालिशदार बुकशेल्फ़ों, जिल्दों, पनीर-चिल्लों[1], तरल चाय, अख़बारों, बातों, घंटियों, रसीदों, बीमारियों, नाराज़गियों, आशाओं, थकानों और सुन्दर चेहरों के पिंजरे से मैं कल ही नहीं निकल भागा तो—मर जाऊँगा।

यह समझाना कठिन है कि सूर्योदय के समय, अप्रैल में, मनुष्य की क्या हालत होती है जब खिड़की का खुला हुआ पल्ला हवा के झोंके से हलके से झूम जाता है और किनारों में अभी तक लगी काग़ज़ की पट्टी[2] चरचराती है।

---

1. पनीर ओर मैदे से बना पकवान।
2. कड़ाके की सर्दी में—घर की चौखट और पल्लों के बीच ख़ाली जगह को बंद करनेवाली काग़ज़ की पट्टी।

दिन निकल आया था। बदली-सी छाई हुई थी। कुछ देर बाद ही पता चला कि आकाश नीला है और बादल नहीं हैं। इस साल पहली बार मैं बिना टोप के बाहर निकला और एक अख़बार के सम्पादकीय कार्यालय को चल दिया, ताकि वहाँ से बाहर का कुछ काम लेकर तुरन्त चले जाऊँ। एक बार इस अख़बार से मुझे दौरे पर जाने का प्रस्ताव मिला था, परन्तु इस समय उन लोगों की समझ में नहीं आया कि मैं क्या चाहता हूँ। अख़बार के उद्‌योग-विभाग के प्रमुख ने, जो नाटा और बीमार-सा तथा जर्सी-क़मीज़ पहने हुए था—मुझे बताया कि सलिकाम्स्क और कन्दापोगा में काग़ज़ के कारख़ाने बड़ी तेज़ी से स्थापित किए जा रहे हैं तथा त्युम्येन ज़िले में खनिज तेल के नये स्रोतों की खोज हुई है। इनसे भी अधिक रोचक बातें इर्कूत्स्क ज़िले में घटित हो रही हैं जहाँ नयी औद्योगिक बस्ती बन रही है। यदि रसायन उद्योग की बात करें तो नवाईन्स्क के रासायनिक कारख़ाने का उल्लेख किए बिना नहीं रहा जा सकता, जहाँ अमोनिया, सिन्थेटिक और रूपान्तरण के विभाग निर्धारित समय से पहले ही चालू हो गए हैं।

मैंने कहा कि यह सब कुछ मेरे लिए एक बराबर है। लेकिन इसीलिए तो...कुछ छाँटना भी मेरे लिए मुश्किल है। मैंने संकेत किया कि मैं लोगों की जीवन-प्रक्रिया तथा जीवन के प्रति विविध दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करनेवाली प्रतिद्वन्द्विताओं, उत्तेजनाओं तथा उत्पादन की नाटकीयता-जैसी बातों से परिचित होना चाहता हूँ।

"यह सब तो कहीं भी मिल सकता है।" विभाग के प्रमुख ने झट से जवाब दिया। उसके चेहरे पर एक विचित्र दोहरा-सा भाव अंकित हो गया था—उदासी और दंभ दोनों एक साथ। मेरे साथ बातें करते हुए वह अपनी सिक्का भरने वाली विदेशी पेन्सिल को उँगलियों से मेज़ पर घुमाए जा रहा था।

उसे धन्यवाद देकर तथा 'सोचूँगा' कहकर मैं बाहर चला आया। हमारी बातचीत के दौरान वहीं पर चुपचाप खड़ा एक नौजवान भी मेरे साथ ही गलियारे में निकल आया। हम सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे।

"आपको किसी तरह के प्रभाव की ज़रूरत है न?" नौजवान अचानक पूछ बैठा।

मैंने कहा—"और नहीं तो! यही तो बात है कि मुझे प्रभाव की ज़रूरत है, चाहे जैसे भी हो। मैं तो प्रभावहीन होकर रह गया हूँ। सुनने में यह हास्यास्पद लगता है, पर बात ऐसी ही है।"

मुझे कुछ शर्म-सी महसूस हुई, जैसे कि यह स्वीकार करते हुए कि मेरी जेब ख़ाली हो गई है, मैं उधार माँग रहा हूँ। पर वह नौजवान दिल से मेरी

मदद करना चाहता था, यह मैं देख रहा था।

उसने कहा— "यदि आपको कोई प्रभाव ही चाहिए तो इतनी दूर त्युम्येन या इर्कूत्स्क जाने की ज़रूरत बिलकुल नहीं है। यहीं कहीं पास ही कूर्स्क या लिप्येत्स्क चले जाओ। क़सम से कहता हूँ, ये स्थान साइबेरिया से कम रोचक नहीं होंगे।"

"तो आपका यह विचार है?" मैंने मन-ही-मन खुश होकर पूछा।

उसने मेरे मन की बात कह डाली थी, "हाँ, आपका कहना ठीक ही है, बात दूरी की नहीं है...।"

जब मैं बाहर आया तो दोपहर की धूप पूरी तेज़ी पर थी। सिनेमा हाल के बाहर भीड़ जमा थी। मैं भीड़ के बीच में से होते हुए गया, फिर बायें मुड़कर एक स्मारक के सामने से गुज़रा, जिसके निकट लम्बे ओवरकोटों में कुछ क़स्बाई अपने हाथों में कैमरे थामे खड़े हुए थे। वहाँ से मैं नीचे चौड़ी सड़क पर चल दिया। सामने से वसन्तकालीन भीड़ झुण्ड-के-झुण्ड में धीमे-धीमे चली आ रही थी। मैं उन चेहरों को घूर रहा था, जो लगातार मेरे सामने प्रकट हो रहे थे और पीछे को, पीठ की ओर, बिना कोई छाप छोड़े लुप्त होते जा रहे थे कि फिर कभी मेरे जीवन में प्रकट नहीं होंगे; मैं इस सोच में था कि कूर्स्क या लिप्येत्स्क जाकर क्या करना, जबकि मैं अभी मास्को के आसपास की जगहों को भी ठीक से नहीं जानता हूँ। मैं कभी नारा-फ़मीन्स्क भी नहीं गया, मितीश्शि क्या है—नहीं मालूम। मास्को में ही ऐसी सड़कें और बस्तियाँ हैं, जो मेरे लिए सर्वथा अपरिचित हैं।

आधा घंटे बाद मैं अपने घर के पास ट्राली बस से उतरा। 'फ़्तराया पिशनाया मार्ग' के नुक्कड़ में, जहाँ स्वास्थ्यवर्द्धक आहार का सामान मिलता है, रुककर चारों ओर नज़र दौड़ाई—छोटे-से पार्क में नंगे पेड़ दिखाई दिए जिनकी गीली टहनियाँ धूप में चमक रही थीं। फ़व्वारे के चारों ओर लगे बेंचों पर सूरज की ओर मुँह करके कोई चालीस-एक पेन्शनर—बूढ़े स्त्री-पुरुष—बैठे हुए थे। वे लोग सटकर बैठे थे। एक बेंच पर पाँच-पाँच। मैं उनमें से किसी को भी नहीं जानता था। उनकी लटकी हुई और झुर्रीदार पुरानी ख़ाल को धूप सहला रही थी। कुछ बूढ़े मुस्कुरा रहे थे, कुछ के चेहरे पथराए और जड़वत् दीख रहे थे और कुछ ऊँघ रहे थे।

कुछ देर खड़ा रहने के बाद मैं अपने घर के मुख्य द्वार की ओर बढ़ा और लिफ़्ट में चढ़कर छठी मंज़िल को चल दिया। वहाँ, छठी मंज़िल पर, सामने वाले फ़्लैट से मेरा पड़ोसी दाशेन्किन बाहर निकला। हमेशा काँपता हुआ अपना

हाथ उसने चुपचाप मेरी तरफ़ बढ़ाया और दौड़कर सीढ़ी से नीचे चला गया। वह हमेशा जल्दी में रहता था, कंधे झुकाकर चलता था तथा उसकी आँखों में घोर चिन्ता मानों छाई रहती थी। वह ट्राम डिपू में क़लईगर का काम करता था। सामुदायिक आवास वाली उसकी पड़ोसिन उसे पागल समझती थी और उसने मनोविकृति के आरोग्य-केन्द्र के अधिकारी को आवेदन भेजकर लिख दिया था कि उसे ले जाएँ। कुछ दिन पहले वह मेरे पास आई थी और मुझसे भी अर्जी लिखने के लिए कहा था या मैं कम-से-कम इतनी पुष्टि ही कर दूँ कि दाशेन्किन अपनी पत्नी और तीसरी कक्षा में पढ़ रही थी बेटी के साथ झगड़-झगड़कर उनकी नाक में दम किए रहता है। उनके घर में होने वाले झगड़ों और काण्डों का शोर मेरे आवास में अक्सर सुनाई देता है; कभी-कभी तो यह पड़ोसिन, उसका पति और दाशेन्किन चीख़ते-चिल्लाते हुए सीढ़ियों के बरामदे में आ जाते थे, जिसकी मैंने पुष्टि भी कर दी थी। बाद में अचानक मुझे ख़याल आया कि मैंने ऐसा क्यों किया। दाशेन्किन को सचमुच ही ले जा सकते हैं। उसी शाम मैं पड़ोसिन के पास गया कि वह मेरी हस्ताक्षर की हुई चिट्ठी वापस कर दे लेकिन उसने कहा कि वह तो भेज भी दी है। उसने मुझे समझाया कि दाशेन्किन को नहीं ले जाएँगे, बस ज़रा डरा देंगे। शायद चिट्ठी का असर अभी शुरू नहीं हुआ था, क्योंकि दाशेन्किन ने मुझसे हाथ इस तरह मिलाया, जैसे किसी अच्छे दोस्त से मिलाया जाता है। भारी बूटों से खट-खट करते हुए उसके नीचे दौड़ने की आवाज़ मुझे सुनाई दे रही थी और चौथी या तीसरी मंज़िल में कहीं ज़ोर में खँखारकर उसने सीढ़ी पर थूक दिया था। बाहर जाने तक का धैर्य उसमें नहीं होता था।

चाबी से दरवाज़ा खोलकर मैं अपने फ़्लैट के अन्दर गया। रसोई में 'नवागा' मछली भूनी जा रही थी। नीचे, पाँचवीं मंज़िल में, जहाँ कोई बहुत बड़ा परिवार रहता था—दस लोग होंगे—कोई पिआनो बजा रहा था। आईने में एक मन्द और अजनबी चेहरे की झलक दिखाई दी। मुझे लगा कि मैं ख़ुद को कितना कम जानता हूँ।



साभार : यूरी त्रीफ़ोनोव—पोवेस्ति ई रस्काज़ि (उपन्यासिकाएँ और कहानियाँ) मास्को, 1971

घिसे-पिटे विषय

यूरी त्रीफ़ोनोव

एक बार, कभी बहुत पहले, मैं एक प्रसिद्ध पत्रिका के पास कुछ कहानियाँ लेकर पहुँचा, कहानियाँ छोटी थीं। कोई भी कहानी पाँच पृष्ठ से अधिक लम्बी नहीं थी। कुल मिलाकर लगभग तीस पृष्ठ थे, बहुत तुच्छ-सी पांडुलिपि थी। और इसलिए भी तुच्छ कि कई सालों से मैंने ढंग का कुछ भी नहीं लिखा था। मेरी ओर कोई ध्यान भी नहीं देता था। लम्बे अन्तराल के बाद कहानियों का यह गुच्छा पहली रचना थी, मेरे लिए इसका बड़ा महत्त्व था। पन्नों की इस पतली-सी ढेरी को देखकर कोई समझ नहीं सकता था कि मेरे लिए इसका कितना महत्त्व है, मैं किसी को समझा भी नहीं सकता था, क्योंकि भला समझाया भी जा सकता है—और, इसके अलावा, मनुष्य अपने भाग्य को उसके निर्माण होने के समय में नहीं समझ पाता है। समझ तो पूर्वघटना होती है, मुझे बस ऐसा लग रहा था कि एक क्षण भी भाग्य-विधायक होता है, मैं ज़रा काँप-सा रहा था, आतंक और अधैर्य के कारण मैं ठिठुर रहा था, और अब उत्तर प्राप्त करने को मैं मास्को की सबसे पुरानी सड़क की एक अँधेरी-सी इमारत में आ पहुँचा था। पत्थर की सीढ़ियों से होकर मैं धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रहा था और अपने फड़कते हुए दिल को थामने का प्रयास कर रहा था। ऊपर के बरामदे में रुककर शायद एक मिनट तक खड़ा रहा। मैं बिलकुल नहीं दिखाना चाहता था, जैसा कि मैं वास्तव में था।

आख़िर मुझे महसूस हुआ कि अब मैं धकेलकर दरवाज़ा खोल सकता हूँ। और आराम से गलियारे से होकर जिस कमरे में मुझे जाना है, उसका दरवाज़ा यूँ ही खटखटाने की स्थिति में हूँ। भाग्य का चेहरा बदसूरत था—पीला-सा धब्बेदार, गाल धँसे हुए, बाल छोटे और पके हुए, दृष्टि उदास भी और साथ ही निर्दय

भी। लकड़ी की पाइप रं। बाहर निकली हुई सिगरेट के धुएँ से घिरे हुए और मेज़ को दूसरी तरफ़ आधा झुककर बैठे हुए व्यक्ति ने कहा, "वही घिसे-पिटे विषयों को लिया है।"

मैं आक्रमण झेलने के लिए तैयार हो गया। पर आक्रमण नहीं हुआ। सब कुछ वैसे ही स्पष्ट था—प्रसिद्ध पत्रिका में ये कहानियाँ इस कारण प्रकाशित नहीं होंगी, क्योंकि इनके विषय घिसे-पिटे हैं। मुझे चले जाना चाहिए था, लेकिन मैं वहीं मेज़ के पास खड़ा रहा, फिर सोफ़े पर बैठ गया, सिगरेट निकालकर पीने लगा, जो भी मैं कर रहा था, निरर्थक था, लेकिन मैं अपने को रोक न सका, एक टाँग को दूसरी टाँग के ऊपर रखा और पूछा, "घिसा-पिटा क्या होता है?"

मेज़ के दूसरी तरफ़ बैठे व्यक्ति ने नीले होंठों को टेढ़ा करके कहा, "बनने की कोशिश मत कीजिए। आपको अच्छी तरह मालूम है कि बात क्या है।"

मैंने कहा, "मुझे नहीं मालूम। कृपा करके बताइए तो सही।"

"चलो जाने दो। रहने दो। क्या समझाना।"

"लेकिन मैं वास्तव में कुछ नहीं समझ पाया।"

"इसमें नहीं समझने की बात क्या है?" मेज़ के दूसरी तरफ़ बैठे हुए व्यक्ति ने कन्धे उचका दिए। उसकी सूरत ऊबाऊ क़िस्म की थी और घृणास्पद भी "घिसे-पिटे का मतलब है घिसा-पिटा। अगर जानना ही चाहते हो तो... उदाहरण के लिए...।"

बाईस साल बीत गए। जाड़ों में रोम के 'फ़ीनिक्स' होटल के स्वागत-कक्ष में मुझे एक पर्ची दी गई—इस होटल का स्वागत-कक्ष काँच के एक बहुत चौड़े गलियारे में स्थित है, जो दो भवनों को जोड़ता है, लेनिनग्राद के शीतोद्यान की तरह है। काँच के उस पार कटी हुई हरी-भरी घास का दालान दिखाई देता है, घास शीतकालीन नहीं है, दालान में ताड़ के पेड़ लगे हुए हैं, वह ईंट की दीवार से घिरा हुआ है और उसके ऊपर गहरे नीले रंग के आसमान का टुकड़ा है—उस पर्ची में यह लिखा हुआ था कि अमुक व्यक्ति रोम में है और मुझसे मिलना चाहता है। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ—जब हमने घिसे-पिटे विषयों की बात की थी, तब से बीस साल हुए हमने कभी एक शब्द भी आपस में नहीं बोला था। नहीं, इसलिए नहीं कि हमारी एक-दूसरे से शत्रुता हो गई थी, बल्कि इसलिए कि हमारे बीच कुछ भी न हुआ था—हम अजनबी ही रहे। मिलने पर अभिवादन हो जाता और तुरन्त ही एक-दूसरे को भूल भी जाते थे। मेरे परिचितों

की सूची में उसका स्थान तीसरे सैंकड़े में था और उसके परिचितों की सूची में मेरा नाम पाँचवें सैकड़े में। परन्तु किसी वजह से हम जुड़े भी हुए थे—वह वजह थी, एक प्रसिद्ध पत्रिका, जहाँ उसने कभी नौकरी की थी और जहाँ मेरी रचनाएँ कभी छपती थीं। ख़ैर, यह सम्बन्ध इतना औपचारिक तथा दूर का था कि रोम में आकर एक-दूसरे को ढूँढ़ना अत्यन्त विचित्र था। हे भगवान्, उसे मेरी ज़रूरत क्या आ पड़ी? पर अचानक मालूम हुआ कि मेरी पत्नी भी उसे जानती थी। उसने भयभीत होकर पूछा था— "वह छोटे क़द का है न? चेहरा साँवला-सा है क्या? बाल छोटे कटे हुए? हम एक ही ब्लॉक में रहते थे। मुझे उससे डर लगता है।"

"क्यों?"

"वह असगुनी था। जब भी मैं उससे दालान में या बाहर कहीं मिलती तो हमेशा कुछ-न-कुछ घटित हो जाता था।"

"जैसे?"

"एक बार उससे भेंट होने पर उसी दिन हमारा कुत्ता वल्चोक गाड़ी के नीचे आ गया। अगली बार वह मिला तो मेरी पटकथा की छुट्टी हो गई। इसके बाद भी बहुत कुछ हुआ, कई बार। एक बार लिफ़्ट में आ पड़ा तो एक घण्टे बाद वल्येरी की मृत्यु का तार आ गया। उसे टेलीफ़ोन मत करो। उससे मिलने का तुम्हारा फ़र्ज़ नहीं बनता है।"

हम ठण्डे कमरे में बैठे थे, यहाँ कमरों को शाम होने पर गरम करना शुरू किया जाता था। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। टेलीफ़ोन की पर्ची चारपाई पर पड़ी थी। दरवाज़े पर दस्तक देकर एक मोटी चैम्बरमेड अन्दर आई, उसने मुस्कुराते हुए एक बड़ा-सा पीला डिब्बा दिखाकर इतालवी में कुछ पूछा। ज़्यादा गहराई में जाए बग़ैर मैंने कह दिया 'ठीक है' और छुट्टी पाई। चैम्बरमेड फ़र्श पर पाउडर छिड़कने लगी। पाउडर में गंध नहीं थीं। मुझे सन्देह होने लगा—निर्गंध पाउडर से चींटियाँ तो भला क्या मरतीं। यहाँ पर ढेर सारी छोटी-छोटी चींटियाँ थीं, रात में बिस्तर पर चढ़ आती थीं। डिब्बे में से पाउडर छिड़कते हुए चेम्बरमेड इतालवी में कुछ व्यंग्यात्मक-सा बके जा रही थी, शायद कुछ अभद्र भी था, क्योंकि वह हमारी ओर शरारती नज़रों से देखे जा रही थी।

मेरी पत्नी ने बतलाया कि असगुनी लोगों को इटली में 'पोर्तो नेरो' कहते हैं, जिसका अर्थ है 'अशुभ वाहक'। और 'पोर्तो नेरो' नाम कभी ऊँचा नहीं बोलना चाहिए। हर तरह कोशिश यह होनी चाहिए कि संकेत से पता चल जाए

कि किसके बारे में कहा जा रहा है, बस नाम न लिया जाए, क्योंकि उन्हें नाम से बुलाया जाना पसन्द नहीं है। यह सब बकवास उसने कभी पढ़ी थीं, जो उसे याद रह गई थी। वह मुझसे अधिक पढ़ती थी।

मैंने पूछा, "तुम्हारा उससे परिचय है?"

"ऊपर-ऊपर से। एक-दूसरे को नमस्ते कर देते थे, बस। फिर मैंने उससे बचना शुरू कर दिया।"

"तुम्हारी किसी मुलाक़ात को उसने गड़बड़ा दिया होगा। तुम मुलाक़ात को दौड़ी जा रही होगी, वह बाहर मिल गया होगा, सब गड़बड़ा गया होगा।"

पत्नी बोली, "तुम होगे दौड़नेवाले। तुम्हें ही हमेशा देरी होने का डर लगा रहता था। हमेशा परेशान रहते थे, मुझे तो दया आती थी।"

"तुम जो अधिक दौड़ती थीं।"

"मैं कभी नहीं दौड़ती थी, मैं तो गाड़ी में जाती थी।"

हम कुछ देर चुप रहे, मैं पत्नी के अन्तिम वाक्य को लेकर कुछ सोच रहा था। जब चैम्बरमेड चली गई तो मैंने कहा "टेलीफ़ोन करूँ ज़रा। देखूँ उसे मेरी क्या ज़रूरत है।"

"हाथ जोड़ती हूँ, उसे फ़ोन मत करो। हमारा सब ठीक-ठाक चल रहा था... ।"

"अच्छा, नहीं करता। कोई ऐसा संकट नहीं खड़ा हो जाएगा। कहीं उसे कोई मदद तो नहीं चाहिए?"

"उसने की थी तुम्हारी सहायता?"

"हूँ-अ, यह तब की बात है... ।"

"तो मैं जाती हूँ।" पत्नी ने कहा "मैं उसकी सूरत नहीं देखना चाहती। मैं घूमने जा रही हूँ, तुम अकेले उससे मिलना। मैं मोन्ते पिंचो जा रही हूँ।"

अपमानजनक-सा लगा कि वह तो मोन्ते पिंचो चली जाएगी, सम्भवतः बोर्गेज़े के बँगले में, और मैं यहाँ, इस बोर होटल में बैठकर उस अधभूले हुए और अपने ज़माने के हेकड़ीबाज़ और अब अनावश्यक व्यक्ति की प्रतीक्षा करूँ।

एक घण्टे से ज़्यादा हो गया था। महाशय बड़ी दूर से आ रहे थे। कुछ देर बाद मेरी समझ में आया कि वह त्रास्तेवेरे से पैदल आ रहा होगा, जैसा कि लीरा बचाने के लिए मैं भी कभी किया करता था। उसका चेहरा पहले की तरह चितकबरा, ढीला-ढाला और घृणास्पद था, पर चेहरे का अक्खड़पन ग़ायब हो गया था। वह चेहरा ख़ाली पड़ गया था, जैसे कोई पुराना चौक साँझ पड़ने पर ख़ाली हो जाता है। हमने ऐसा चौक लुक्के में देखा था, ठीक शाम

के समय चौक गोल, शान्त और धूसर-सा नज़र आ रहा था, न लोग थे, न गाड़ियाँ, चारों ओर सब कुछ स्थिर-सा हो गया था, ज़िन्दगी से थका हुआ-सा, केवल धूसर दीवारों पर लगी रस्सियों पर टँगे कपड़े ही अदृश्य जीवन की ओर ध्यान दिला रहे थे। इस पथरीले मैदान के साथ लगे मार्ग में चहल-पहल थी, लेकिन वहाँ विशेष कुछ नहीं था, केवल सामान ही था। सामान के अलावा कुछ नहीं। सामान को आँखों से हज़म करती हुई भुक्खड़ भीड़ की चक्करदार पट्टी मकानों के ब्लॉकों के साथ सटी पड़ रही थी। आगन्तुक का चेहरा लुक्के के इस चौक, उसकी शान्ति तथा पुरानेपन की याद दिलाता था।

हाथ फैलाकर और माफ़ी-सी माँगते हुए उसने कहा, "देखा, ऐसा हुआ..."

उसकी पहली पत्नी पन्द्रह साल पहले ख़ून की बीमारी के कारण गुज़र गई थी। दूसरी पत्नी का भी ऐसा ही दुर्भाग्य रहा। अब यह उसकी तीसरी शादी है, अब की पत्नी अपनी पहली शादी के बच्चों को बहुत चाहती है, उनके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकती, इसीलिए वैसा हुआ। और कोई रास्ता नहीं था। उसकी लड़की और पति (दामाद) तीन साल पहले चले गए थे, उनके एक बेटी है, उसे कोई गम्भीर स्नायविक रोग हो गया था, पत्नी बेचैन रहने लगी थी कि वे वहाँ अकेले हैं। उसे उनसे अत्यन्त मोह है। अस्वाभाविक-सा। सब कुछ अजीब ढंग से उलझ गया था। बात यह है कि इस समय अतलान्ता शहर में विद्यमान इस युवती का पिता जो उसकी पत्नी का पहला पति था, वही व्यक्ति है, जिसके द्वारा मेरे अतिथि को सबसे अधिक दुःख भोगना पड़ा। तो इस प्रकार उसकी पोतियों के कारण कष्ट झेलने के साथ-साथ जीवन का पुनर्निर्माण भी करना पड़ रहा है। वह अपने पिता को लेनिनग्राद में छोड़ आया था—पिता इक्यानवे साल के हैं। सब गड्ड-मड्ड हो गया था। क्या रात को मैं कोलोसियम नहीं गया हूँ? कोलोसियम रात में ज़रूर देखना चाहिए। मैंने पूछा कि वह मुझे यह सब क्यों बता रहा है? हमारा इतना परिचय तो नहीं है।

उसने आपत्ति करते हुए कहा, "कैसे नहीं है? हमारा परिचय है। मुझे याद है कि याल्ता में हमने छुट्टियाँ एक साथ बिताई थीं। फिर एक बार ग्रादोव परिवार के यहाँ मिले थे। मैं आपकी पत्नी के पहले पति को जानता था। हाँ, उसे मेरा नमस्कार कहिएगा।"

"कह दूँगा। सब उलझ गया है, आप ठीक ही हैं।"

रेस्तराँ के तलघर में हम रात के दस बजे तक बैठे रहे। पत्नी अभी नहीं लौटी थी। हमें गोली बारी की आवाज़ सुनाई दी। बैरे ने आकर बताया कि गोरित्सिया मार्ग पर घेरा डाला गया है, अस्त्रों का गुप्त भंडार मिला है। शायद

नव-फ़ासिस्टों का है। कोई पकड़ा भी गया है, नोमेन्ताना से लगा सारा मोहल्ला घेर लिया गया है, किसी को जाने नहीं दिया जा रहा है। रेस्तराँ में हम दो के अलावा सारी मेज़ें ख़ाली पड़ी थीं। रसोइया और बैरे टीवी के सामने बैठे साइकिल दौड़ देख रहे थे। मुझे चिन्ता होने लगी। मेरे मेहमान को जल्दी नहीं थी। उसने बोलोन्याई स्पगेति दो बार खा ली थी। उसके बाद हमने ख़रबूजा खाया, चाय पी और धूम्रपान किया। जैसे-जैसे हमारे बैठने का समय बढ़ता जा रहा था वैसे-वैसे उसका चेहरा पुराना रूप ग्रहण करता जा रहा था—भयावह जल्लाद का रूप।

उसने पूछा, "आप बोर तो नहीं हो गए?"

"क्या कहा?"

"हमेशा लिखना-लिखना। क्या अभी भी दुनिया को अचंभित करने की उम्मीद लिये हो? क्या ऐसा सोच रखा है कि आपकी महान रचना पढ़कर संसार एक दिन टर्र बोल जाएगा? इस जलन के लिए मुझे माफ़ करना। मुझे जलन इसलिए है, क्योंकि मैं अब जा रहा हूँ। हाँ, यूरोप से भी विदा ले रहा हूँ। इसीलिए तो मैंने कहा कि कोलोसियम रात में ज़रूर जाना चाहिए क्योंकि न तो मुझे और न आपको यह मौक़ा फिर कभी मिलेगा। वैसे मैं अपने बारे में कह रहा हूँ... ।"

उसने दोनों हथेलियों से मुँह ढँक लिया और ऐसे ही बैठा रहा। मैं उठकर बाहर आया और कुछ देर होटल के द्वार के पास खड़ा रहा। दो कार्बाइनधारी पटरी पर चक्कर काट रहे थे, हमारे रिसेप्शन की खिड़कियों से आ रही बिजली की रोशनी उनके चेहरों पर पड़ रही थी, जो तनाव के कारण अकड़े हुए थे और जिनमें एक ग्रामीण लाली थी। उस जगह जहाँ हमारी गली नोमेन्ताना को निकलती थी, लोगों का झुण्ड जमा था, ब्रेक के चरमराने की आवाज़ हुई और गाड़ी आकर रुकी। पटरी खुदी हुई थी, खुदी हुई जगह से कोई फाँदा।

कार्बाइनधारी मुड़कर उस तरफ़ झपटे। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि पत्नी चिल्ला रही है, "छोड़ दो!" मैं दौड़ा, देखा कि असैनिक वर्दी पहने हुए लोग गाड़ी में किसी औरत को धकेल रहे हैं, वह औरत प्रतिरोध कर रही थी। भीड़ में से एक दूसरी औरत चिल्ला रही थी। नोमेन्ताना में रोशनी कम थी, मैं धकिया कर और आगे को गया, ताकि पता कर लूँ कि कहीं मेरी पत्नी तो यहाँ नहीं है। जब मैं रेस्तराँ वापस आया तो देखा कि महाशय अभी तक वहीं बैठे हुए थे, मुँह को दोनों हाथों से ढँक रखा था।

अगले दिन की बात है, मैं सपत्नीक मिलान जा रहा था। रेल सुरंग के

बीच में रुक गई। बीच-बीच में बत्ती जा रही थी। जब बत्ती फिर आई तो मैंने बहाना बनाया, जैसे कि पत्रिका पढ़ रहा हूँ। डिब्बे में जलने की तीखी गंध आने लगी। हमने खिड़कियाँ बन्द कर दीं। कूपे में हम दो ही थे। पत्नी का चेहरा डर के मारे सिकुड़ गया, उसके चेहरे का रंग उड़ गया। उसने फुसफुसाकर कहा, "मैंने कहा था न कि तुरन्त ही कोई मुसीबत आ पड़ेगी। उससे मिलना नहीं चाहिए था।"

इसके बाद मैंने बताया, "अब तुम्हारे बारे में मुझे सब पता चल गया है। तुम्हारे पहलेवाले पति को वह जानता था।"

वह मेरी ओर आँखें गड़ाए हक्का-बक्का-सी देख रही थी, जैसे कि यह अन्दाज़ लगा रही हो कि क्या मैं उसके बारे में वास्तव में ही सब कुछ जानता हूँ। मैंने पत्नी का आलिंगन किया। बहुत दूर उत्तर में साइबेरिया के किसी इलाके में हमारा घर था, इस समय वहाँ पाला पड़ रहा होगा, सड़कें बर्फ़ से पटी होंगी, सवेरे बुलडोज़र बुलाना पड़ता होगा और छत के रास्ते सफ़ेद धुएँ के रूप में घर की गरमी बाहर निकल रही होगी।



साभार : नोवी मीर,
अंक 7, 1981

बातचीत

बसीली बेलोव

लगभग ग्यारह बजे सवेरे इतवार को शहर के पार्क में पूरी शान्ति है। कोई नहीं है, बस एक जोड़ा आकर बबूल की झाड़ियों के पीछे के बेंच में बैठ गया है। बिन्दियोंवाला छींट का ब्लाउज़ पहने एक बूढ़ी औरत नाच करने के फ़र्श के पास के बेंच पर बैठी है।

गम्भीर चेहरा लिये एक और बूढ़ी औरत, मोटी और पके बालोंवाली, अपने 'तमाशे' खोल रही है—पींगवाला तथा घूमनेवाला झूला। लेकिन जब तक झूलने वाले नहीं आ जाते तब तक दोनों बूढ़ी औरतों की इच्छा होती है कि दो बातें ही कर लें। दोनों ज़रा पास सरककर बैठ जाती हैं।

"अलग से क्यों बैठा जाए... ।"

दो-चार शब्दों का आदान-प्रदान हो जाने के बाद दोनों वृद्धाओं की बातों में जान आने लगती है। गठिया और अनिद्रा से शुरू होकर उनकी बात ताज़े टमाटरों से बहुओं, बहुओं से दामादों और बच्चों तक जा पहुँचती है।

"तुम यहीं की हो क्या?" झूलेवाली ने पूछा।

"नहीं, बहन, यहाँ की नहीं हूँ, गाँव से आई हूँ।" बिन्दीदार ब्लाउज़ वाली बुढ़िया ने कहा।

"मैं तो शुरू से यहीं रह रही हूँ। पेंशन के अलावा थोड़ा-बहुत और भी कमा लेती हूँ। बस इसी तरह जी रही हूँ। बच्चों पर कोई उम्मीद नहीं रखी है।"

"उन पर क्या आशा रखना।"

"बुढ़ियों को पसन्द नहीं करते हैं, यह नहीं सोचते कि हमारी भी ऐसी हालत होगी।"

"जब होगी तब पता चलेगा। मेरे भी दो लड़के और एक लड़की है—बुलाने लगे कि यहीं आकर रह, बस।"

"ख़ुद लिखकर बुलाया?"

"ख़ुद ही तो बुलाया। मैं तो गाय भी पालने की हिम्मत रखती थी। पर उनके बुलावे पर बुलावे आ रहे थे। मैं भी जाने को तैयार हो गई। गाँव का मकान पुराने आठ हज़ार रूबल में बेच दिया। पड़ोसी ने आकर समझाया—रुपये उन्हें मत देना। जाकर देख तो ले कि कितना रह सकेगी, रुपये काम आएँगे। तो मैं मान्का के पास आ गई...।

"अपने बेटे के पास?"

"हाँ, बहन, बेटे के पास। स्वागत किया—आहा, अम्मा, आ गई! मकान बेच दिया क्या?—मैंने कहा—हाँ, बेच दिया बेटा! पर रुपये रास्ते में खो गए। कहने लगे—अम्मा, बात यह है कि हमारे पास जगह की कमी है। तू देख ही रही है। वान्का के पास चली जा, अच्छा रहेगा। रात काटकर वानका के पास चल दी। उन्हें भी बड़ी ख़ुशी हुई—आहा, अम्मा आ गई। मैंने कहा—अरे, आ तो गई, बेटा, पर ख़ाली हाथ। मकान बेचकर जो रुपए मिले थे रास्ते में खो गए।—एक रात और काटी, वो कहने लगे—अम्मा, हमारे यहाँ तो सोने की जगह भी नहीं है। मैंने कहा—मैं ज़मीन पर ही सो जाऊँगी। बोले—ज़मीन पर ही सही, पर तेरे ऊपर से कोई कैसे जाएगा? मान्का के पास चली जा। उसका कमरा भी बड़ा है—मान्का मेरी बेटी है। मैं मान्का के पास चली आई।—आहा, मेरी अम्मा आ गई। वोवा, जाकर पापा को बुला ला बाहर से, एक साथ खाना खाएँगे। तेरी नानी आई है।—दामाद बाहर पासों से दोमिनो खेल रहा था। वह आ गया तो मैंने कहा—सुनो, मैंने मकान बेच दिया और रुपये खो दिये। लगता है रेल में किसी ने निकाल लिए। मेरी बदक़िस्मती है।—दामाद बोला—इसमें क्या बदकिस्मती! यह तो किसी के साथ भी हो सकता है। दुःख मत करो। ग़लती हो ही जाती है। अपना घर समझकर आराम से रहो। चलो, चाय पीते हैं।—मैंने कहा—बेटा, तेरा बहुत धन्यवाद! कितनी अच्छी बात कही है। बुढ़िया को नाराज़ नहीं किया।—मैंने अण्टी में से आठ हज़ार रूबल निकालकर उसे सौंप दिए। इस तरह मैं दामाद के साथ रहने लगी। बेटों के पास नहीं।"

"नाती तो है?"

"चार हैं।"

"मेरा अपना कमरा है। हाँ। आवास-विकास वालों से मिला है। निकालनेवाली बात नहीं है। अकेली रहती हूँ, कहीं नहीं जाऊँगी।"

"अकेली?"

"हाँ, अकेली। बेटे के पास भी रही, फिर दो महीने दामाद के पास। दामाद ने पहेलियाँ बुझाना शुरू कर दिया। पूछता है—अच्छा, मुर्ग़ा क्यों बोलता है?—मैंने कहा—क्यों बोलता है? बोलता है, इसलिए बोलता है। मुर्ग़े को और कुछ करने को नहीं है।—दामाद बोला—नहीं। वह क्यों बोलता है? इसलिए बोलता है क्योंकि वह अकेला है। अनब्याहा है।"

"वाह, वाह, क्या कहने!"

"तरह-तरह की पहेलियाँ बुझानी शुरू कर दीं। मैं भी समझ रही थी कि सब मेरे बारे में हैं। मैं लड़कों के पास चली गई। लेकिन उनकी बहुएँ मेरे आने से बिलकुल भी ख़ुश न थीं। साँस लेते भी डर लगता था। उनके कमरों में भी कौन घुसता। मन-ही-मन सोच रही थी कि लिखकर दरवाज़े पर टाँग देते—"सावधान, ख़तरनाक कुत्ता है।"

मैंने अपने आप से कहा—"नहीं, बहुत हो गया, अब अकेली ही रहूँगी।"

"बुढ़ियों को पसन्द नहीं करते हैं। चाहे मर ही क्यों न जाओ।"

"नहीं पसन्द करते, मत पूछो।"

इतने में एक युगल जोड़ी ने झूले में बैठने का फ़ैसला कर लिया। बुढ़िया कराहते हुए अपने काम को चल दी। धीरे-धीरे पार्क सैरवालों से भरने लगा।



साभार : बसीली बेलोव–दिआलोग (संवाद)
पेत्रोज़वोद्स्क, 1982

रास्ते में

बसीली बेलोव

"कहाँ जा रहे हो? 'ज़ोर्या' कलखोज़ तो नहीं जा रहे?" मोटी औरत ने तीसरी बार ट्रक के पास आकर पूछा। उसके हाथ में बुनी हुई टोकरी थी। पीछे ट्रक के डाले में बैठे हुए लौंडे ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। दूसरा कुली आगे केबिन में बैठा हुआ था।

क़स्बे के शहर की पुरानी सड़कों में धूल उड़ रही थी। दफ़्तरों के पास मुर्ग़ियाँ घूम रही थीं, बत्तखें रुक-रुककर चीख़ते हुए गर्दनों को आगे कर रही थीं। छोटे-छोटे बग़ीचे गर्मी के मारे मुर्झा गए थे।

"क्या चाहिए तुझे?" उस लौंडे ने अलसाए स्वर में पूछा, "यहीं की है क्या?"

"हाँ-हाँ, यही की हूँ। 'ज़ोर्या' जाना है।"

"हम 'ज़ोर्या' नहीं जा रहे।"

"क्या कहा 'ज़ोर्या'?" अधसुने में ही आपा खुश हो गई।

"ठीक है, 'ज़ोर्या' ही सही।...'ज़ोर्या' होकर ही जाएँगे।" उस लौंडे ने थूककर हाथ झटक दिया।

आपा पीछे डाले में चढ़ गई। गाड़ी में सूत की कतरनों की दो गठरियाँ, कुछ भारी-से पुर्ज़े और डीज़ल का जरीकैन लदा हुआ था।

जब ट्रक चल दिया तो आपा ने पूछा, "'ज़ोर्या' में रहता है क्या? सुना है कि वहाँ सूअर के बच्चे मिल रहे हैं।"

'ढेरों।" लौंडे ने जवाब दिया।

"क्या कहा?"

"कहा कि ढेरों हैं। हर नस्ल के हैं।"

"काश कि मैं ख़रीद सकती! तीन दिन से 'क्रास्नी पाखार' के बेकार चक्कर काट रही हूँ—बिक रहे थे, हाथ से निकल गए। तो, 'ज़ोर्या' में हैं न?"

"और क्या?"

"मैं तुझे... । अगर मुझे सही जगह पहुँचा दे तो मैं तुझे पव्वा ख़रीद दूँगी।"

आधा घण्टे बाद 'ज़ोर्या' पहुँच गए, दुकान के पास आकर रुके। आपा ने ढाई सौ ग्राम की पाउच ख़रीदकर लौंडे को थमा दी।

"यहीं गाड़ी के पास इन्तज़ार कर। साहब आ रहा है।" लौंडे ने कहा।

ड्राइवर ने साहब से कुछ बात की। उसके बाद लौंडे ने पिछला फट्टा खोलकर उसमें से दो गठरियाँ नीचे उतार दीं। साहब चला गया। तीनों घास में बैठ गए। गिलास निकाले।

आपा दुकान के पास सब्र से इन्तज़ार कर रही थी। इतने में कुली आया जो कह रहा था कि सूअर के वच्चे का जुगाड़ करवा देगा।

"तो ऐसा है। बात हो गई है। मिल जाएगा।"

"आहा, तेरा बहुत-बहुत धन्यवाद!" आपा को बड़ी ख़ुशी हुई।

"काम हो जाएगा, जैसे कि राइकिन[1] कहा करता है। लेकिन, बहन, थोड़ी देर और लगेगी। तुझे तो मालूम ही है... ।"

"यह राइकिन साहब का नाम है क्या?"

"हूँ। ठीक... ।"

आपा अप्रसन्न मुद्रा लिये दुकान में गई।

"हाँ, ज़रा ध्यान रहे कि... 'क्रास्नी पाखार' के मैंने यूँ ही चक्कर काटे। तूने पहले ही...इधर आने को कह दिया होता।"

"बात पक्की है! क्यों? मैं तेरा क्या लगता हूँ? मुझे बकबक करना पसन्द नहीं है। बस काम बन जाएगा।"

इतना कहकर वह मैदान की ओर भाग गया। लौंडों की बातें फिर शुरू हो गईं। दूसरी बोतल भी उड़ा दी। आपा को चिन्ता होने लगी।

लौंडों के पास आकर पूछा, "अरे, छोकरो, काम का भी ख़याल है ना?"

"क्या? अच्छा, चलते हैं।"

"किधर?"

"चलते हैं, अभी चलते हैं।"

---

1. एक विदूषक।

वह लौंडा आपा का हाथ पकड़ कर दुकान के उस हिस्से में ले आया जहाँ युद्ध के बहादुरों की सूची टँगी हुई थी और एक सुन्दर-सा छपा हुआ पोस्टर लगा हुआ था।

"ये-ए-ह! कोई भी छाँट ले! ये वाला, चाहे ये वाला!"

पोस्टर में मक्की की गुल्ली बनी हुई थी। गुल्ली का हरेक दाना सूअर के प्यारे बच्चे की थूथनी जैसा बना हुआ था।

गाड़ी स्टार्ट हो गई थी, आपा को नमस्ते करके लौंडा पीछे कूद गया।

"राक्षस कहीं के! एक लीटर पिला दी, पूरा एक लीटर! धोखेबाज़! मैं तुम्हें पकड़ के रहूँगी। अभी नम्बर नोट करती हूँ।"

आपा चीख़ती हुई ट्रक के पीछे-पीछे दौड़ी। फिर वापस हो गई। आगबबूला हुई आपा ने जब बेचनेवाली के पास आकर नम्बर नोट करने के लिए उससे काग़ज़-पेंसिल माँगा तो उसने बताया, "यह तो जंगलात की गाड़ी है, कलख़ोज़ की नहीं है।"

आपा को सुध-बुध नहीं रह गई थी, वह दफ़्तर में आ धमकी, "कामरेड राइकिन! एक लीटर...पूरा एक लीटर पिला डाली। सूअर का बच्चा दिलवाने की कहता था।"

साहब ने उसकी ओर मुड़कर पूछा, "क्या? किसने कहा था? हम तो सूअर के बच्चे, नहीं बेचते हैं। इवान सव्येल्येविच, स्टोरकीपर से कह दो कि घोड़े की जीन कस दे और कतरनों की गठरी को ले जाए। ख़र्च के ऑर्डर की ज़रूरत नहीं है।...नहीं, नहीं सूअर के बच्चे बिक्री के नहीं हैं। साफ़-साफ़ कह दिया,...एक लीटर से क्या मतलब है? कोई सुअर के बच्चे नहीं हैं।"

...आख़िर सूअर के एक बच्चे की बिक्री की अनुमति उसे देनी ही पड़ गई जब आपा ने शोर मचाते हुए काग़ज़ का वह पुर्ज़ा दिखाया, जिसमें गाड़ी का नम्बर उतारा हुआ था। बात यह थी कि गाड़ी से उतारी हुई कतरनों की गठरी की वजह से लौंडों ने आपा के दो पव्वे नहीं, वास्तव में एक लीटर पी डाली थी।

ग्राम डिपो का भोजनालय गाँव के बीच में स्थित है। गाँव से होकर एक बड़ा रास्ता जाला है। गाड़ी रुकी।

"कुछ खा-पी लिया जाए।" गाड़ी की केबिन में से सुनाई दिया।

खाने को चल दिए।

ड्राइवर, दूधवाले, बढ़ई जूतों की खट-खट करते हुए अन्दर आ-जा रहे

थे। दुआ-सलाम हो रही थी। मेन्यू था—'खेत की सब्ज़ियों का सूप', 'बछड़े का चटनीदार मांस'' और चाय। सूप और चाय की माँग अधिक थी। धर्म-प्रचारक की-सी गंजी खोपड़ी वाले बाबाजी ने चाय के छह गिलास लिए। चमड़े का ख़ुद का बनाया हुआ झोला कुर्सी की पीठ पर टाँगकर बाबाजी चाय पी रहे थे।

"बाबाजी, तुमने चाय बहुत ले ली है।"

"हाँ?"

"मैंने कहा कि चाय फ़ालतू तो नहीं है"

लेकिन बाबाजी ने बात आगे नहीं बढ़ाई।

दो आपाओं ने चाय पी ली थी। सिर के स्कार्फ़ खोल दिए थे, और बैठी हुई ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रही थीं।

"तो उसने किससे शादी की?"

औरतों की बातों का कोई अन्त नहीं, सारे पहचानवालों का खाता खोल देती हैं और उनके रिश्तेदारों का भी।

चीकटदार जैकेट पहने एक हट्टा-कट्टा छोकरा सिगरेट पीता हुआ अन्दर आया। सिगरेट बाज़ू की तरफ़ छिपा रखी थी।

"मिकोलाइ, बाहर हो जा! बाहर जाकर पी!" भोजनालयवाली ने उसे देख लिया था।

सब अपने ही लोग थे, सब एक-दूसरे को जानते थे।

"तो प्याज़ का सूप बना है क्या?"

"खेत की सब्ज़ियों का...।"

"कोई बात नहीं। तीन सौ ग्राम डबल रोटी, एक चाय।"

"चाय शराब बिना, पी ले मेरे बिना।"

"सुट्टा लगाने को है या नहीं?"

"माशा, तू...ये जो गिलास है न...इसे छोड़ दे।"

"मिकोलाइ, सुनाई नहीं दिया? यहाँ सिगरेट मत पी!"

"मैं कोई लम्बे कश नहीं ले रहा हूँ।"

मशीन आपरेटर ने मेज़ पर बिखरी चाय को डबल रोटी की पपड़ी से पोंछ दिया और बाबाजी ने डबल रोटी के चूरे को मुट्ठी में डालकर मुँह में फाँक लिया।

गाड़ी फिर से दौड़ती हुई रास्ते में लड़खड़ाती जा रही है। सामने से बूढ़ों की हड़बड़ चाल में किसी की दादी-अम्मा चली आ रही हैं। उनके हाथ में झोला

है—शायद बेटे या बेटी के पास गाँव के पास की बस्ती को चल दी हैं। दादीजी से बस छूट गई लगती है। इसीलिए मुड़-मुड़कर देख रही हैं कि शायद कोई पहुँचा दे। और सचमुच ही, पहले कहीं दूर से हवा के साथ इंजन की गूँज सुनाई दी और फिर गाड़ी भी नज़र आ गई। दादी जी बेचैन हो उठीं, रुककर पीछे देखा और जोश में, जैसा कि किसी सभा में मतदान के समय होता है, पहले से हाथ ऊपर उठा लिया। अपने साथ शहरी गंध बुढ़िया के ऊपर बिखेरकर गाड़ी रुक गई और एक झटके के साथ बन्द हो गई।

ड्राइवर ने गाड़ी को स्टार्ट करते हुए दरवाज़ा खोला, जैसे कह रहा हो—चल बुढ़िया, बैठ फटाफट!—दोनों मस्त कुली अब एक साथ डाले में बैठे जा रहे थे।

दादी अम्मा गरम रेडियेटर के पास से झट से निकलकर दायीं तरफ़ दौड़ी।

"मुझे भी ले चल, बेटा!"

"चल, आ जा।" ड्राइवर ने हड़बड़ी में सिर हिला दिया।

"बेटा, धन्यवाद!"

गाँव के उस पार भूर्ज के पेड़ और नालियों में आल्डर की झाड़ियाँ नज़र आ रही थीं। ड्राइवर बस्ती के पास आकर रुक गया और दरवाज़ा खोल दिया। दादी अम्मा निकलकर सड़क के किनारे आ गई।

"कितने दूँ बेटा?"

ड्राइवर ने सिर ऊपर किया, होंठ चौड़े किए, आँखों को भौंहों की ओर सरकाया। जैसे कि बन रहा हो। फिर गम्भीर होकर बोला,

"चार रूबल, दादी अम्मा!"

"बहुत ज़्यादा है, बेटा!"

ख़ैर, दादी अम्मा ने निचले सफ़ेद स्कार्फ़ की गाँठ दाँत से खोली।

"अच्छा, तुझसे दो हीले लेता हूँ।" लौंडे ने मुस्कुराते हुए कहा, "जाना किधर है?"

"बेटा, मेरे पास पाँच का नोट है। एक रूबल और भी है।"

"तो रूबल और पाँच का नोट मुझे दे। मैं भुना देता हूँ।"

दादी अम्मा ने रुककर, ज़रा अविश्वास के साथ, एक रूबल दे दिया, फिर उसी तरह रुककर, अविश्वास के साथ, पाँच का नोट भी थमा दिया।

"बेटा, खुले नोट तो दे दे...।"

"देता हूँ। देता हूँ। ये ले...दो तीन-तीन के।"

डाले में बैठे कुली अनन्त ऊँचाई का गीत गा रहे थे। ड्राइवर ने हँसी रोककर फुफकार निकाली और गाड़ी की स्पीड छोड़ दी। गाड़ी ने भी फुफकार भरी, दादी अम्मा पर गरम हवा फेंकी और चल दी। गाड़ी बस्ती के बाहर लुप्त हो गई।

दादी अम्मा पीछे देखती रह गई। चिल्लाई, "धोखा दे गया, शैतान कहीं का। धोखा दे गया। छह रूबल दिए थे। छह क्यों दे डाले! उस मुए को एक रूबल ही काफ़ी था।"

खड़ी-खड़ी रूबल गिनती रही। परेशानी के मारे बहुत देर तक समझ नहीं पाई कि कितने हैं—ड्राइवर के भुनाए तीन-तीन के दो नोट।



साभार : बसीली बेलोव–दिआलोग (संवाद), पेत्रोज़वोदुस्क, 1982

अफ़वाह

वलेन्तीन रस्पूतिन

जाड़ों में जिस गाँव में मैं रह रहा था, वहाँ अचानक यह अफ़वाह उड़ गई कि पहली फ़रवरी से वोदका सस्ती होनेवाली है। अफ़वाह तो आख़िर अफ़वाह ही ठहरी, जीवन की सीख भी यही है कि अफ़वाहों पर विश्वास मत करो। फिर भी गाँव के लोग चक्कर में आ गए। चक्कर में इसलिए आए, क्योंकि अफ़वाह के पीछे एक आधार भी था—सुनने में आया कि वोद्का तो सस्ती होगी, दाम काफ़ी कम हो जाएँगे पर साथ ही सख़्त जुर्माना भी शुरू होगा। नई प्रणाली के अन्तर्गत काम पर न आने पर हर बार पचास रूबल जुर्माना भरना पड़ा करेगा। मतलब यह कि सरकार घाटे में नहीं रहेगी—शराब की बिक्री से होने वाला नुक़सान बड़े आराम से ग़ैरहाज़िरी के जुर्माने से पूरा हो जाएगा। इस तरह लोगों को सज़ा भी मिल जाएगी कि अच्छी आदत बिगाड़ी। चिल्लाते थे कि महँगी है, जेब में हाथ डालो तो पता चलता है—तो लो, पी लो, सस्ती है। पीओ, लेकिन काम का ख़याल रखो। और तो और, 'प्शिनीचनाया' वोदका की नई क़ीमत सिर्फ़ तीन सत्तर सुनने में आ रही थी।

सन्देह करनेवाले लोग भी थे। उनकी चिन्ता पहली फ़रवरी को लेकर थी। इस तिथि में गम्भीरता नहीं थी। याद आया कि दाम घटाने की तारीख़ पहले कुछ और होती थी—पहली अप्रैल हुआ करती थी। अफ़वाह से उत्साहित लोगों का कहना था कि इस बार की क़ीमतों की कटौती की तुलना पिछली कटौतियों से नहीं की जा सकती है, इसलिए तारीख़ भी अलग रखी गई है। फिर वोद्का की गिनती तो सामान्य श्रेणी के खाद्य पदार्थों में नहीं है, यह तो गिरी हुई चीज़ है। इसलिए हर तरह से ख़ास ही रहनी चाहिए। अगर बात इस कमबख़्त वोदका की है तो पहली अप्रैल के पीछे क्यों पड़ा जाए, जो हर तरह से विधिसम्मत बना हुआ है।

यह अफ़वाह इतनी पक्की हो गई थी कि सोचा ही नहीं जा सकता था कि वह सच नहीं निकलेगी। शुरू में तो मुझे भी सन्देह था कि ऐसा कैसे हो सकता है परन्तु बाद में मुझे भी लगने लगा था कि ये भी कोई मज़ाक़ है?

तो पहली फ़रवरी आ गई। छुट्टी का दिन नहीं था। परन्तु एक तो वनोद्योग विभाग में ड्यूटी चार्ट बदलता रहता है, और दूसरे यह कि निचले गोदाम से गाँव तक की दूरी अधिक नहीं है और फिर खनखनाती ट्रॉलियों के साथ लकड़ी के ट्रकों की सवेरे से ही सड़क पर क़तार भी बँध गई थी। जब यह पता चला कि दुकान बन्द है और सामान बेचनेवाली व्येरा रेस्तराँ महकमे के दफ़्तर गई हुई है तो बेचैनी और विश्वास ा दूना हो गया। यह दफ़्तर तीस किलोमीटर दूर वनोद्योग विभाग की केन्द्रीय बस्ती में स्थित था। किसलिए गई है? साफ़ बात है कि नई क़ीमतों और नए आदेश के सिलसिले में गई होगी। इतने में एक नई अफ़वाह और आ गई कि लोग अंधाधुंध न पीएँ. इसलिए शुरू के दिनों में एक आदमी को एक बोतल से अधिक नहीं मिलेगी।

जब व्येरा रेस्तराँ महकमे में जाती थी तो वह दुकान भोजन के बाद दिन में तीन बजे खोलती थी। तब तक मैं भी उधर चल दिया था—मेरे मन में उत्सुकता भी थी और कुछ खाने का सामान भी लेना था। मैं अकेला रहता था, घर में जमा करके नहीं रखता था, क्योंकि दुकान में भी सामान नहीं रहता था और चाहे-अनचाहे हर बार जब दुकान में नया सामान आता था, तब मैं भी औरों के पीछे हो लेता था।

जब मैं वहाँ पहुँचा तो बरामदे में भीड़ का शोर मचा हुआ था—ज्यादातर गाँव के लोग थे, सब-के-सब बदसूरत-से, चेहरे पर झुर्रियाँ थीं और बाल गौरैया की तरह ऊपर को उठे हुए थे। उनकी ऐसी हालत या तो पाले में देर तक खड़े रहने से हो गई थी या जैसा कि ठीक ही कहते हैं, वे ठिठुरन के मारे सिकुड़ गए थे। पर वहाँ औरतें भी तो थीं, जो आजकल किसी भी बात में मर्दो से पीछे नहीं रहती हैं। सड़क के बीच में खड़े थे लकड़ी ढोने के दो ट्रक, पानी का टैंकर, एक बस और 'झिगुली' कार। अभी मैं पहुँचा ही था और दुआ-सलाम की ही थी कि दरवाज़ा खुल गया और लोग ख़ास धक्का-मुक्की किए बग़ैर अन्दर घुस गए और लाइन में खड़े हो गए। मुझे सबसे ज़्यादा हैरानी इस बात की हुई कि उन्होंने धकमपेल नहीं की, जैसे कि उनके ऊपर की जानेवाली इस महती कृपा से वे अभिभूत थे और अवसर की गम्भीरता को समझ रहे थे।

नहीं, वह अवसर अपनी चरम पराकाष्ठा और कीर्ति को तो अब जाकर पहुँचा था।

लाइन में सबसे आगे कोल्का नोवीझीलव खड़ा था जो 'क्राज' ट्रक के कारख़ाने में काम करता था। चालीस साल उम्र थी उसकी, पर बूढ़े और जवान सब उसे कोल्का कह कर बुलाते थे।

"व्येरा अफ़ानास्येव्ना, एक को कितनी मिलेगी?" कोल्का ने सबसे पहली बात बेचनेवाली से पूछी, जो अभी तैयार भी नहीं हुई थी और अपने विशाल वक्ष पर चोगे की तनियों को कस रही थी।

"क्या कितनी?" बेचनेवाली ऐसे बनी जैसे कि वह समझी नहीं हो।

"क्या से क्या मतलब? मेरा मतलब 'कलाचिकी' वोद्का से है।"

'प्शिनीचनया' वोदका को यहाँ 'कलाचिकी' कहते हैं। काफ़ी समय से और कोई मिल भी नहीं रही है।

भीड़ साँस रोककर उसका उत्तर सुनने को अभी तैयार भी नहीं हुई थी कि व्येरा ने शान्त भाव से कहा, "जितनी चाहे ले जाओ। मुझे कोई बचानी थोड़े है।"

लोगों में खुसुर-फुसुर होने लगी—देखा, झूठ बोल रही है। झूठी है। इतनी छूट नहीं मिल सकती कि लोग नशे में ही डूबे रहें।

"तो...तो फिर..." कोल्का असमंजस में पड़ गया था और निश्चय नहीं कर पा रहा था। "अच्छा...पाँच दे दो।"

व्येरा ने एक झटके में पाँच बोतलें उठाकर उसके सामने खन्न से रख दीं और गिनतारे की गोटियों को सरका कर हिसाब कर दिया—इकतीस रूबल।

"तुझे क्या हो गया है?" कोल्का बड़बड़ाया।

"तुझे क्या हो गया है?" बेचनेवाली ने उसे घूरकर देखा।

"क्या हिसाब लगाया है? अपना ये खेल बाद में दिखाना।"

"अन्धा है क्या? दिखाई नहीं देता?"

"न अन्धा हूँ, न बहरा। पढ़ा-लिखा हूँ। एक कितने की लगाई है?"

"तू तो ऐसे कह रहा है, जैसे पहली बार देखी हो। मालूम नहीं है क्या?"

"नए दाम कहाँ गए?"

"कौन-से नए दाम?"

"सरकारी रेट। और कौन-से?' आज क्या तारीख़ है?"

व्येरा ने काउंटर से बोतलें समेटकर अपने पाँवों के पास कहीं रख लीं।

"तुझे क्या हो गया है?" कोल्का ने चिल्लाकर कहा और समर्थन प्राप्त

करने को भीड़ की तरफ़ मुड़कर बोला, "ये क्या कर रही है? ये तो कल के यानी पुराने रेट से बेचना चाहती है। देखो भाई।"

"दफ़ा हो जा।" व्येरा ने उसे बीच में काट दिया और बहस में नहीं पड़ी। बोली, "अगला कौन है?"

"दफ़ा हो जा' कहनेवाली तू कौन होती है? कोल्का ने चीख़कर कहा। "आज क्या तारीख़ है? सारे देश में नए दाम लागू हो गए हैं और एक तू है। किसे बेच रही है? भेड़ समझ रखा है हमें? बेशर्मी की हद होती है। जब सारा देश नए रेट से पी रहा है तो हम क्यों ज़्यादा दें? छह बीस के हिसाब से।"

"आगे किसकी बारी है?" व्येरा छाती की आवाज़ को गले तक लाकर चिल्लाई।

अगली बारी थी पेंशनर इवान दिम्यानोविच कर्नाऊखोव की जिसे लोग उसके तकिया कलाम 'काबित' (जैसे कि) के नाम से बुलाते थे। वह शान्त स्वभाव का और शान्त क़िस्म का आदमी था। सारी ज़िन्दगी रात की चौकीदारी में बिता दी थी। इवान दिम्यानोविच ने जैसे तुतलाते हुए कहा, "मुझे भी नए दाम से तीन सत्तर के हिसाब से दे दो।"

"तुम्हारा दिमाग़ तो नहीं फिर गया क्या?" व्येरा ने गुस्से में दोनों हाथों से कमर बाँध ली और ध्यान से लाइन को देखने लगी। वह समझ गई थी कि उसके सामने जो लोग खड़े थे, सब एक ही विचार के थे।

"कहाँ के तीन सत्तर? अक़्ल ठिकाने तो है ना या वो भी पीकर उड़ा दी?"

क्यू में से आवाज़ आई, "अफ़वाह उड़ी थी।"

"पता नहीं लोग क्या-क्या उड़ा देते हैं। तुम क्या अफ़वाह के चक्कर में यहाँ आए हो?"

"अफ़वाह नहीं, ख़बर थी। मैंने खुद सुनी है।" किसी का दबा स्वर बीच में से सुनाई दिया। पर ऐसे मौक़ों पर दबी आवाज़ कान में नहीं पड़ती है।

सबके सब चिल्ला पड़े, "ताइगा[1] में रहते हैं हम लोग, इसलिए कुछ भी हो सकता है। माल कम पहुँच सकता है, लूट भी हो सकती है।"

"जैसे हम ग़ैरइन्सान हो। जैसे कोई क़ानून ही नहीं है।"

"क़ानून को घोड़ा समझ रखा है—जिधर चाहो, उधर घुमा दो।"

---

1. साइबेरिया के जंगली इलाके।

"ऊँह, बड़ी मोटी हो गई है।" कोल्का नोवोझ़ीलोव फिर बीच में पड़ गया जो दाम गिरने की कच्ची ख़बर से सबसे ज़्यादा परेशान था। "पुराना दाम भी चैक करना चाहिए कि क्या है, पता भी नहीं कब बढ़ाए गए थे।"

अब तो व्येरा का धैर्य टूट गया, "मैं अभी तुझे ठीक करती हूँ।" और वह कोल्का की तरफ़ बढ़ी। कोल्का पीछे को भागा।

"चैक करेगा। तू आगे भी तो आएगा मेरे पास, और भी लेने आएगा। और कौन चैक करना चाहता है?" उसने चिल्लाकर पूछा, "किस-किसको ठगा है मैंने? पागल हो गए हो। अक़्ल मारी गई है, एक तो मैं तुम्हारे लिए ठोकरें खाती हूँ, दौड़-धूप करती हूँ, पीछे पड़-पड़ के झूठ-सच बोल के माल लाती हूँ। और उसके बदले में ये सुनना पड़ रहा है।"

लाइन में खड़े लोग चुप हो गए। व्येरा से डरते थे—उससे कोई बहस नहीं कर सकता था। ज़रूरत पड़ने पर वह दो हाथ भी जमा सकती थी। होने को ऐसा हुआ भी था। गाँव में कोई भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। वैसे भी बराबरी करने से अच्छा था, तुरन्त अपनी हार मान लेना। परन्तु व्येरा की असली ताक़त का कारण यह था कि वह काउंटर पर खड़ी होती थी, जो आजकल के जमाने में डाइरेक्टर के पद से कम नहीं था।

"मुझे छह बीस वाली दे दो।" इवान दिम्यानोविच ने रुपये बढ़ाते हुए घुटने टेक दिए।

"बस, ख़त्म।" व्येरा ने बीच में ही काट दिया और काउंटर से हट गई। "मैं न छै वाली दूँगी न बीस़वाली। बहुत हो गया।"

इवान दिम्यानोविच पशोपेश में पड़ गया, "ऐसा कैसे हो सकता है? लेक्सेइ का आज चेहलुम है। मनाना ज़रूरी है। पुरानी क़ीमत से ही दे दो।"

"नहीं देती। जाओ, ख़बरें सुनो। अपने-अपने रेडियो खोलकर सुनते रहो।" व्येरा आगबबूला हो रही थी, "जब तक ख़बरों में नहीं कह देते, नहीं दूँगी। मेरे ऊपर विश्वास नहीं है तो ना सही। बिना विश्वास के मैं काम नहीं कर सकती।"

"तुझे दुकान बन्द करने का कोई हक़ नहीं है।" कोल्का नोवाझीलोव ने चीख़ कर कहा। वह दरवाज़े के पास खड़ा रहा।

"है। मैं तो तेरी भी ख़बर ले सकती हूँ। तू मेरे हाथों बच्चों की तरह मरोड़ दिया जाएगा।" यह कह कर उसने कोल्का को आख़िरी धमकी दे डाली। "एकदम सही कहती हूँ। अब सब अपना-अपना रास्ता नापो। जो-जो बोतल के लिए आए हैं बाहर हो जाएँ। एड़ियाँ रगड़ लो चाहे—फिर भी नहीं देने की।"

स्थिति को सँभालने के उद्देश्य से मैंने पास जाकर नूडल और डिब्बाबन्द सामान माँगा। व्येरा ने दोनों चीज़ें मुझे थमा दीं और अचानक बड़ी तेज़ी से और चीख़ती-चिल्लाती हुई अन्दर के कमरे की तरफ़ दौड़ी। रुपये भी नहीं लिये उसने। मैं असमंजस में कुछ देर खड़ा रहा, समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। फिर सोचा कि रक़म ऐसी अधिक नहीं है, कल भी ला सकता हूँ।

मैं अभी ज़रा दूर ही गया था कि पीछे से शोर सुनाई पड़ा और लोग गोलियों और तीरों की तरह दुकान से बाहर निकलने लगे। उनके निकलते ही दरवाज़ा धड़ाम से बन्द हो गया और अन्दर से सिटकनी लगने की आवाज़ आई। अपनी जबान से एक-से-एक चुनी हुई रूसी गालियों को निकालते हुए कोल्का नोवोझीलव दरवाज़े के पास आया और वहाँ लात जमाकर लँगड़ाते हुए गाड़ी की तरफ़ तेज़ी से चला गया।

देख लिया कैसे दाम घटे हैं, ले जाओ तीन सत्तर की।

कोई डेढ़ घण्टे बाद मेरे पास एक प्रतिनिधिमंडल आया। इवान दिम्यानोविच उनका नेता बनकर आया था। उनके साथ कोन्स्तान्तीन बान्शिकोव को आया देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। वह गम्भीर क़िस्म का आदमी था और गाँव में उसे मानते भी थे। तीसरा था एक ख़ूबसूरत-सा कोमल चेहरेवाला नौजवान जिसे मैं जानता नहीं था। जैसा कि बाद में पता चला वह यूक्रेन से आए गुत्सूलों में से था जो लकड़ी को बहाकर भेजने का काम ठेके पर करते थे। इवान दिम्यानोविच ने निवेदन करते हुए कहा, "ग्रिगोरिच, हमारी आशा एक तुम्हीं पर टिकी हुई है। वो तो पागल हो गई है। तुम्हारी बात वो ज़रूर सुनेगी। हम लोगों की तरफ़ से उससे बात तो करो। लेक्सेइ का चेहलुम है। लोग आएँगे, मैं उन्हें क्या मुँह दिखाऊँगा।" कोन्स्तान्तीन बान्शिकोव ने अजीब ढंग से हँसते हुए इतना और जोड़ दिया, "लड़के का तार आया है। लाम से छुट्टी पर आ रहा है, कभी भी पहुँच सकता है।" यह कहकर उसने बड़े सुन्दर ढंग से हाथ लटका दिए।

गुत्सूल परेशान-सा चुप रहा।

क्या करता? मैं चला गया। नूडल और डिब्बाबन्द के रुपये भी देने थे। प्रतिनिधिमण्डल आधे रास्ते में मुझसे अलग होकर लकड़ी के लट्ठों पर बैठ गया जहाँ से दृश्य भी अच्छा खुलता था। दुकान के पास की अशान्त भीड़ की ओर सहज ही ध्यान चला गया। मेरी ओर लोग इस तरह देख रहे थे, जैसे कि मैं मुक्तिदाता ईसा बनकर आया हूँ। मेरे आने के उद्देश्य के बारे में उन्हें पता चल चुका था। सम्भवतः मेरे लिए प्रार्थनाएँ भी की जा रही थीं।

जाने कौन-से चमत्कार से व्येरा ने भी पूर्वानुमान लगा लिया था कि मेरे आने का उद्देश्य क्या है। मैंने दुकान की देहली लाँघी ही थी कि वह चिल्ला पड़ी, "न माँगना और न मैं दूँगी। हूँ-अ, खूब सोचा, मिल गया भेजने को। जाके आराम करें, बेशरम कहीं के। कह दिया—नहीं देने की। नहीं दूँगी।"

वह ज़ोर-ज़ोर से चीख़ रही थी, कान फटे जा रहे थे। बक्स पर बैठी बुढ़िया ने तो सिर झुका कर कान बन्द कर लिये थे। फिर भी मुझे उसकी आवाज़ में ज़रा-सा कंपन महसूस हुआ। कहना होगा कि व्येरा को खुद ही अपनी करतूत से डर लग रहा था। कंपन ज़रा-सा था। बस, मामूली-सा महसूस हुआ था। अपना विध्वंसक काम शुरू करने के लिए मुझे इतना ही सहारा काफ़ी था। संक्षेप में बात इस तरह ख़तम हुई कि मैंने रुपये निकालकर कहा, "छह बीसवाली।"

"लेकिन कोल्का नोवोझीलव से कह दो कि होश में रहे।" व्येरा ने मानो आर्डर चलाते हुए कहा।

"ठीक है।"

जब मैं हाथ में बोतल लेकर दुकान से बाहर निकला तो डूबता हुआ सूरज गाँव के वास्ते फिर से आसमान में चढ़ गया। इवान दिम्यानोविच एक झटके में लट्ठे से उठा, जैसे कि किसी ने उसे उछाला हो। वह जल्दी-जल्दी दुलकी चाल में मेरे सामने से जैसे गाते-गाते दौड़कर निकल गया, "जैसे कि, जैसे कि, जैसे कि..."

उस दिन गाँव में ऐसा उत्साह छा गया था कि जैसे चर्च के संरक्षक सन्त की जयन्ती हो। बाद में लोगों ने बतलाया कि 'कलाचिकी' का हफ़्ते भर का स्टॉक दो घण्टे में ख़तम हो गया। शाम को अनुग्रहशील गाँव के लोग बड़ी देर तक मेरे पास बैठे रहे। उनमें कुछ ऐसी बातें हो रही थीं—

"अच्छा ही हुआ कि दाम नहीं घटाए। पुराने ही ठीक हैं। जुर्माने के साथ घटाना तो महँगा पड़ता। न लेना, न देना, पचास रूबल जुर्माना। यानी आठ 'कलाचिकी' नाली में गईं। धत् तेरे की!"

गाँववालों को अपने पर ज़्यादा भरोसा नहीं था।



उलीता आपा

वलेन्तीन रस्पूतिन

कभी-कभी पुरानी यादें, ऐसा लगता है, बस यूँ ही, बिना किसी बाहरी कारण के, प्रकट हो जाती हैं और अपने ही किसी जीवन के नियमों के अधीन हो जाती हैं। मुझे अगस्त महीने की एक बहुत पुरानी शाम और अंगारा के डूबने के कारण बसाए गए नए गाँव के हमारे निःस्वार्थ अहाते और बरामदे में बैठीं दो बूढ़ी औरतों की याद अक्सर आती रहती है। उन दिनों धूप अच्छी निकली हुई थी और हवा में भी एक उल्लास था। तब मैंने काम करना शुरू नहीं किया था और अगस्त महीने में गाँव आकर जंगल से झड़बेरियाँ और खुम्भियाँ इकट्ठा करके लाना मुझे अच्छा लगता था। उन वृद्धाओं में से एक थी, मेरी दादी। वह स्वभाव से दृढ़ और न्यायशील थी, साइबेरियाई गुण उसमें कूट-कूटकर भरे हुए थे, बिना किसी मिलावट के। रूस के उत्तरी भाग से यूराल पर्वतमाला के पार जाने पर भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया था, बल्कि स्थानीय खुले वनों में विचरते हुए उसमें और भी दृढ़ता आ गयी थी। मेरी दादी सामान्यतः बहुत स्नेहशील और गुरुतुल्य थी। उसकी नाक ऐसी विशिष्ट थी कि किसी अशांत चित्त की भनक उसे अपने आप लग जाती थी और तुरन्त ही उसके कान खड़े हो जाते थे। अगर ऐसे में कोई उसे शान्त करने की कोशिश करने लगता तो उसका जोश और भी बढ़ जाता था और तब केवल काम करके ही या एकान्त में रहकर ही वह शान्त हो पाती थी, क्योंकि वह स्वयं ही फ़ैसला करती थी कि उसके स्वभाव के अनुरूप क्या है और क्या नहीं है।

दूसरी वृद्धा थी सड़क पार की हमारी पड़ोसिन उलीता आपा, उलीता येफ़ीमोव्ना। मेरी दादी और उसका दूर का कोई रिश्ता था। रिश्ता इतनी दूर का था कि स्वयं उनकी समझ के बाहर था। वैसे, हमारे पुराने गाँवों में हर कोई किसी-न-किसी का सम्बन्धी होता ही था। वैसे तो सभी गाँव अपने-अपने

'घोंसलों' में सिमटे हुए थे, परन्तु एक घोंसले से दूसरे घोंसले को जोड़नेवाले सूत्र भी निकलते थे, जो पुराने और नए ज़मानों को मिलाने का काम करते थे। लेकिन वृद्धाओं की मित्रता केवल इस रिश्ते के ही कारण नहीं थी, उनकी यह आदत बनी हुई थी कि चाहे कितनी भी व्यस्त क्यों न हों, हर रोज़ कुछ क्षण आपस में बैठकर बतिया लेती थी।

आज यह क्षण कुछ लम्बा खिंच गया था। अगस्त महीने की यह शान्त संध्या बहुत ही सुहावनी और तनिक गर्म थी, किसी भी प्राणी के लिए विशेष अनुकूल जैसी थी। ऐसा लग रहा था जैसे कि स्वयं संध्या इस धरती को छोड़ना नहीं चाह रही हो, इसलिए वह इस सोच में रुक गयी थी कि कुछ ऐसा भला काम किया जाए, जिससे कि अगले दिन हल्का महसूस हो। दोनों वृद्धाएँ अलग-अलग सीढ़ियों पर बैठी हुई थीं—मेरी दादी ज़रा ऊँची बैठी थी, उलीता आपा उससे नीचे बैठी थी और मैं उन दोनों से हटकर चटाई पर बैठा था। हम सब ख़ाली बैठ-बैठे पक्षियां को—मुर्ग़ियों, कबूतरों और गौरैयों को—दाना चुगते देख रहे थे। मेरी दादी अपने फ्राक के घेर में रखे दाने उठाकर बीच-बीच में उन पक्षियों की ओर फेंक रही थी और पक्षी बिना डरे फुदक कर आते और शान्त हो जाते। यह शान्ति सिर्फ़ तब भंग हुई, जब उनकी मित्रतापूर्ण व्यस्तता के बीच अचानक मुर्गे को अपनी श्रेष्ठता की याद आयी और वह मुर्ग़ी पर झपट पड़ा; थोड़ी देर पीछा करने के बाद उसने मुर्ग़ी को पकड़ ही लिया। तब दादी ने मुर्गे पर क्रोध प्रकट करते हुए चिल्लाकर कहा, "ओफ़, अन्द्रियाशा! ओफ़, अन्द्रियाशा!"

मैंने हँसकर पूछा—"अन्दियाशा क्यों? किसलिए?"

"इसलिए कि इतनी छोटी मुर्ग़ी की कैसी बुरी हालत कर दी है इसने! देख तो सही। इसकी पूँछ और गर्दन उधेड़कर रख दी है। इसमें अन्द्रिशाया कहाँ से आ गया—यह तू उलीता से पूछ।"

उलीता आपा ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने अपनी सूरत ऐसी बना ली जैसे कि उसे समझ ही नहीं आ रहा हो कि बात क्या है।

"क्या तुझे क्रिवोलूत्स्कोये वाले हमारे अध्यक्ष अन्द्रियाशा की याद नहीं है?"—दादी ने मुझसे पूछा। "याद नहीं है क्या कि वह कैसा था? युद्ध के बाद के दिनों में वह भी इसी तरह औरतों के पीछे पड़ा रहता था। अगर किसी पर उसकी नज़र पड़ गयी तो समझो कि गाँव से भाग जाने पर भी वह उसका पीछा छोड़ता नहीं था। पूरा दम लगाकर, बिना मुड़े ऐसा पीछा करता था कि छोड़ता ही नहीं था। उलीता, बता, क्या मैं ग़लत कह रही हूँ।"

"तू तो वहाँ रही ही नहीं, साल में एक बार ही तो आती थी। तुझे तो ज़रूर मालूम होगा!" उलीता आपा ने समान रूप से सहमत और असहमत होते हुए कहा। "हमारे मामलों की जानकारी तुझे ही अधिक होनी चाहिए ना!"

"हाँ-हाँ, इस बात को लेकर तो उन दिनों कुत्तों ने भी भौंकना छोड़ दिया था।"

"सच कहा जाए तो औरतों को भी अपना अन्द्रियाशा, अपना वह अध्यक्ष पसन्द आता था।" दादी ने यह सोचकर कि कहीं वह हास्य की पात्र न बन जाए इतना और जोड़ दिया, "पता नहीं, उन्हें उसमें ऐसा क्या दिखाई देता था कि उसे पसन्द करने लगी थीं। असल बात तो यह थी कि एक वही सबका रक्षक और सबका अन्नदाता था, पूरे गाँव में वही तो अकेला आदमी बचा था। गाँव के सारे आदमियों को तो छाँट-छाँटकर ले गये थे। वसीली आया था, पर कुछ समय ही रहा...। ऐसा आया था कि उसमें जान ही नहीं थी...। वह शायद एक साल भी जीवित नहीं रहा था।"

"ज़िन्दा तो शायद एक साल से ज़्यादा रहा था लेकिन कुछ फ़ायदा नहीं था। वह चारपाई से तक उठ नहीं सका था।"

"और ये शैतान! पता नहीं ऐसा कैसे हुआ? अपने तीरों की बौछार से सवेरे के समय सबको दौड़ाता रहता था। मान्का-इधर आ, सान्का—उधर जा, उलीता—इधर तो आ...।"

"तुझे यह सब कैसे मालूम है? तू क्या वहाँ जाती थी? सवेरे की हमारी दौड़म-भाग तूने देखी है क्या? वहाँ का शोरोगुल क्या तूने खुद सुना है? 'तीरों की बौछार' देखी है क्या? तीरों की बौछार वह नहीं करता था, बल्कि उस पर होती थी। हमसे झगड़ना...उस युद्ध से कुछ बढ़कर ही था।"

"तो दिन में भी लड़ो और रात में भी लड़ो..."

"इसके बारे में मुझे कुछ नहीं मालूम।"

दादी ने उलीता आपा की ओर टेढ़ी नज़र से ऐसे देखा, जैसे कि कुछ कहना चाह रही हो।

"फिर उन्हें यानी अपने फ़ौजियों को घोड़ों पर सवार करा देता।...तुझे अपने वहाँ तीन कोस से सुनाई देता था—मामाइ दौड़ा जा रहा है! ओफ़, कहीं जाकर बचना होगा—मामाइ अपनी फ़ौज के साथ दौड़ा जा रहा है! सब एक ही स्वर में चिल्लाते थे। उन दिनों कोई त्यौहार था। क्या कहते हैं उसे?...नए च-च-च..."

"च-च-च क्या है?" मेरी समझ में नहीं आया।

"अरे, डिब्बों में क्या डालते थे?"

"चुनाव से मतलब है तेरा?"

"हाँ, ठीक कहा। चुनाव का त्यौहार था।"

"सारे डिब्बे हमारे ही गाँव में रखे गये थे, क्योंकि ग्राम-पंचायत यहीं बैठती है। बाक़ी गाँवों के लोगों को भी इकट्ठा करके यहीं लाया गया था। सब लोग सज-धजकर और एक साथ क़तारों में बँधकर आए थे। कहाँ-कहाँ से नहीं आये थे—फिलिप्पोव्स्कोये से, बरानोव्स्कोये से। कोई कुल्हाड़ी लिये आ गया था, तो कोई शोर मचाते हुए आया था। बच्चों के लिए तो घोड़ों की कमी पड़ गयी थी। वे बाद में अकेले ही झुण्ड बनाकर अन्दर घुस आये थे। परन्तु औरतें तो सब-की-सब घोड़ों में बैठकर आयी थीं, अन्द्रियाशा के साथ। मुझे मालूम है, उलीता, कि तेरा तो एक घाव अभी तक भरा नहीं है। बिना जीन के घोड़े में बैठ गयी थी। जीनों की भी तो कमी पड़ गयी थी।"

"अब बस भी कर!"

"ओफ़, कैसे दौड़ी जा रही थी। घर के पीछे की क्यारियों में जाकर अभी छिपी भी नहीं थी कि अन्द्रियाशा ने घोड़े को पिछली टाँगों पर खड़ा कर दिया था और घोड़े ने अपनी अगली टाँगों को कन्धे के पीछे की ओर लटका दिया था। वह स्वयं जैसे कि कोड़े मारते हुए खिड़कियों के पास से निकलते हुए चिल्लाए जा रहा था—'मार्या! मार्या!' वे सब भी उसके पीछे-पीछे भद्दे ढंग से चिल्ला रही थीं—'मार्या-मार्या!'।—'अगर तुरन्त इसी समय तूने हमारे क्रिवोलूत्स्कोये के लोगों को एक-एक पौआ पेश नहीं किया तो तेरे मकान की एक-एक बल्ली उखाड़कर फेंक देंगे।' उन्होंने भी इसी तरह चिल्लाकर कहा।"

"तो क्या उसने लाकर दी थी?" मैंने पूछा।

"हाँ, दी थी। या तीन बार ऐसा हुआ था। और कोई रास्ता भी तो नहीं था! मकान की बल्लियाँ तो शायद ही उखाड़ पाते। लेकिन पीछे हटनेवाले भी नहीं थे। हमारे सारे ढोर-डंगरों को डरा-डराकर उनकी ऐसी हालत कर देते कि बाद में उनसे न ऊन मिल पाती और न दूध ही। वो देख, हमारी गैया कैसी चुपचाप वहाँ बैठी हुई है। अगर इसे पहले देखा होता तब मुझे पता चलता। आँखें भभकती हुई थीं, बाल काँपते रहते थे, कानों और नथुनों से धुआँ निकलता रहता था, ऐसी हालत हो गयी थी कि बस पूछो मत! लगता था कि पता नहीं इसका क्या हो जाएगा? सारे ढोर ऐसी हालत में थे, कोई कम नहीं था। इसीलिए लाकर देनी पड़ी थी। आख़िर जीना तो था ही।"

"ज़रा इसकी बातें तो सुनो।" उलीता आपा ने हल्का-सा खेद प्रकट करते हुए उसकी बात उड़ा दी। पुरानी बात याद आने से—चाहे दूसरे के शब्दों में कहे जाने से उसमें कुछ अन्तर आ गया था—उसमें गर्मी आ गयी, उसकी सूरत जैसे कि तुरन्त ही कोमल हो गयी और उसमें लाली आ गयी। वह बोली, "सुन, यह गप्पें हाँक रही है। यह खुद ही फाटक से बाहर जाकर गयी और उसे पुकार रही थी। हमारा मामाइ त्योहार के दिनों में घूमने का शौकीन था, वह घोड़े को घुमाकर ले आता था...।"

"मैंने खुद उसे बुलाया था क्या?"

"तो क्या मैंने बुलाया था? मैं अतलांका में नहीं रह रही थी, मैं तो तेरे पास मिलने आयी थी।"

"जब चाहो मिलने आओ। अन्गारा नदी के तल के नीचे ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर कहो।"

"जब चिल्लाना था चिल्ला लिए, मज़े में। तेरे पास तो सब कुछ तैयार रखा है, तू तो सवेरे से ही इन्तज़ार में बैठी है।"

"ओफ़!" दादी ने आह भर समर्थन के लिए मेरी ओर मुड़कर देखा और कहा, "मेरा तो परिवार भूखा पड़ा था और मैं उनके लिए, उनकी पूरी फ़ौज के लिए बनाकर देती! ऑफ़्! क्या कहने!"

"तू तो हमेशा से ही ऐसी थी।"

"ऐसी कैसी?"

"भोली-भाली।"

दादी चुप रही। वह फ़ैसला नहीं कर पा रही थी कि गुस्सा करना उचित होगा कि नहीं। असमंजस में पड़कर उसने आधे-अधूरे ढंग से अपनी बात पूरी की, "घर को वापस भी इसी तरह एक टुकड़ी में सरपट दौड़ती थीं, किसी एक को भी पीछे छोड़कर नहीं आती थीं। वह स्वयं तो बेहद थक जाता था, उसका सिर लटक जाता था और बाक़ी सब उसके चारों ओर, उसके आसपास...। घोड़े को सब तरफ़ से सँभालते हुए कोई उसका हाथ, तो कोई उसकी टाँग को पकड़े रहती। अगर कहीं वह गिर पड़ता तो ये सब एक-दूसरे के बालों को ही न नोंच डालतीं!"

"ठीक ही तो है। वही तो उनका मुखिया था।"

"उसके सामने तो इनका व्यवहार सामान्य औरतों-जैसा नहीं रहता था। पता नहीं, इनका व्यवहार किसके जैसा ही होता था, बस, अपने जैसा नहीं रहता था।"

"उसके सामने हम अपने काम में लगी रहती थीं। मार्या, मैं तुझे क्या बताऊँ कि हम कितना सारा काम करती थीं। इतना काम तो मैंने स्वयं आगे कभी नहीं किया और न किसी को करते ही देखा है। कई सालों तक एक ही धुन में काम करती चली आ रही थीं, फिर बाद में तो, क्या बताऊँ...गृहस्थी के साथ और भी कयी तरह के झंझट लग गये थे। बाद में तो समझो कि ठण्ड में सिकुड़ते रह गये थे।"

यह सब कह रही थी उलीता आपा, जिसने जीवन भर एक भी दिन कठोर परिश्रम के बिना नहीं गुज़ारा था, जो अपनी ज़िन्दगी के सत्तर से भी अधिक सालों में अपनी गाय से कभी अलग नहीं हुई थी और जिसने उसकी सेवा-टहल बिना किसी की सहायता के की थी, जो अपने घर के बाड़े की साग-सब्ज़ियों की देखभाल खुद करती थी, ताकि पतझड़ समाप्त होते-होते दसियों बार नदी-तट पर जाकर और बजरेवाले के साथ तय करके शहर में अपनी बहनों और भतीजियों के लिए आलू और अन्य सब्ज़ियाँ भिजवा सके। सब कुछ बोरों में भरकर अपनी पीठ पर लादकर ले जाती थी, औरों की भी मदद करती थी, जो उसी बजरे से अपने लोगों को सामान भिजवा रहे होते थे और फिर बजरे को विदा करके उसके पीछे से क्रूस बनाते हुए झट से दूसरे काम के लिए दौड़ पड़ती थी। इतना कम है कहने को, लोग उसे शिशुओं की देखभाल के लिए भी बुला लेते थे, जिससे वह कुछेक रुपये कमा लेती थी, क्योंकि केवल कलखोज़ की पेंशन से, जो बस नमक और माचिस के लिए मुश्किल से पूरी पड़ती थी, शहर में पढ़ रही भतीजी के लिए फ़ैशनेबुल सैण्डिल भेजना सम्भव नहीं था। उलीता आपा शिशुओं की देखभाल जिस तरह करती थी, वह तो केवल देखनेवाला ही जान सकता था। मैंने तो पड़ोसी होने के नाते यह सब देखा था, जो मैं कभी भी भूल नहीं सकता हूँ। मैंने देखा था कि युवा माता-पिता के पास से बच्चे को लेकर, जिसे अभी एक साल भी न हुआ होगा, उलीता आपा ने उसकी लँगोट बदली, ताकि कुछ खराब न कर दे, फिर, अपने बचपन को याद करते हुए, डबलरोटी के छोटे-छोटे टुकड़े करके उन्हें दूध में डाला और बच्चे को दलिया खिलाने के बाद भगोना उसके हाथ में थमाकर ढोरों को देखने दौड़ी गयी। अचानक सामनेवाले घर से किसी की चिल्लाहट को सुनकर मैं उठ खड़ा हुआ। पहले तो यह चिल्लाहट बहुत तेज़ और उत्तेजित थी, फिर वह दयनीय कराह में बदलती गयी। मैं सड़क पार करके गया और मैंने सामनेवाले घर में झाँककर देखा—ठीक दहलीज़ के पास एक छोटा शिशु दिखाई दिया, जो उस दहलीज़ को इसलिए पार नहीं कर पा रहा था क्योंकि रोते-रोते वह अशक्त पड़ चुका था। दहलीज़

के पास से उसे हटाकर मैंने उसे चुप कराने की कोशिश की, परन्तु यह असम्भव-सा प्रतीत हुआ। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुझे उलीता आपा जानवरों के गोठ में जाकर मिली, जहाँ वह कुछ ठीक करने में लगी हुई थी।

"उलीता आपा, वह रोए जा रहा है। तुमने उसे ऐसे ही छोड़ दिया क्या? कैसी दाई हो!"

सीधी खड़ी होकर उलीता आपा ने कान लगाकर सुनने की कोशिश की और बोली, "रो रहा है क्या? तू जाकर दरवाज़ा बन्द कर दे। तब उसकी आवाज़ ही सुनाई नहीं देगी।"

"पर वह तो रो रहा है।"

"तो क्या हो गया? रोने दे। इसमें उसका ही भला है, नींद अच्छी आएगी।"

दूसरे दिन बच्चा कम रोया और तीसरे दिन जब मैंने उत्सुकतावश उसके घर में झाँका तो पाया कि उलीता आपा क्यारियों में गोड़ाई कर रही है और वह शिशु अपने सामने रखे भगोने से ऐसे खेल रहा है, जैसे कि कुछ जाँच कर रहा हो। बीच-बीच में उसमें से कुछ ढूँढ़ निकालने पर वह ज़ोर से आवाज़ कर रहा था। क्या कहा जाए—वह, निश्चय ही अच्छी नींद सो रहा था।

मुझे एक और बात की याद है। घासकटाई के दिनों में मैं उलीता आपा के साथ घास इकट्ठा करने दौड़ा जा रहा था। दोपहर की गर्मी में हम दौड़े चले जा रहे थे। हम शायद इसलिए दौड़ रहे थे, क्योंकि मैं तो नीचे गाँव की ओर डबलरोटी के लिए जा रहा था और नानबाई के वहाँ उसके तैयार होने की प्रतीक्षा में था, जबकि उलीता आपा को गाय के लिए देरी हो गयी थी।

तभी नदी के पास से गुज़रते समय मैंने गहरी साँस लेकर कहा, "आह, नहाने का मन कर रहा है। ...उलीता आपा, आपने, लगता है, बहुत समय से नहाया नहीं है।"

"बेटा, मैं तो वैसे भी कभी भी नहाई नहीं हूँ।" उसने उत्तर दिया।

मुझे आश्चर्य हुआ, "क्या कभी भी नहीं नहाई हो? ऐसा क्यों?"

"समय ही नहीं मिला। एक बार कुछ लड़कियों ने मुझे कपड़ों समेत पानी में धकेल दिया था। मैं एक झटके में बाहर निकल गयी थी और सीधे अपना हँसिया लेकर चल पड़ी थी। हम लोगों को नहाने का वक़्त ही कहाँ था?!"

तब मैंने पूछा, "अच्छा, उलीता आपा, यह बताओ कि आपने शादी क्यों नहीं की?"

"किससे करती? लड़ाई के बाद शादी करने के लिए कोई था ही नहीं। फिर कुछ युवक और बड़े हो गये थे, परन्तु तब तक मेरी भी उम्र निकल चुकी थी। किसी दूसरे गाँव में जाने की इच्छा नहीं हुई।"

एक बार गर्मियों में खुम्भियाँ इकट्ठा करने के दिनों में मैं अपने एक पड़ोसी के साथ दिन में दो-दो बार नदी पार खुम्भियाँ ढूँढ़ने चला जाता था। यहाँ पर, क्रिवोलेत्स्कोये के चीड़ के जंगलों के पास के खुले मैदानों में, खूब सारी खुम्भियाँ होती थीं। एक बार जब शाम होने को थी मैं अपनी टोकरी भर कर जंगल से बाहर खुले में आया जिसके दूसरे छोर पर खाड़ी की चमक दिखायी दे रही थी और वहीं हमारी नाव भी खड़ी हुई थी। ज़ाहिर है, मैं चुपचाप निकल आया था, क्योंकि मेरी ओर, बल्कि यों कहना चाहिए कि क्रिवोलूत्स्कोये के खेतों की ओर मुँह करके पेड़ के कटे तने पर बैठी हुई उलीता आपा को अपने आँसू पोंछने का अवसर तक नहीं मिल पाया था। उसने उन्हें पोंछना शायद ज़रूरी भी नहीं समझा और मुझसे बोली, "अगर मैं मर गयी तो, तू समझता होगा कि मैं क़ब्र में लेटी रहूँगी? नहीं, बेटा, मैं यहीं चक्कर काटती रहूँगी।"

"बिना किसी काम के?"

"कोई-न-कोई काम मिल ही जाएगा। देख लेना।"

जाड़ों में उलीता आपा स्वर्ग सिधार गयी।

उसकी मृत्यु से तीन दिन पहले मैं गाँव आया था। मैंने चूल्हा गरम किया था और धुएँ को देखते ही सबसे पहले उलीता आपा ही मेरे पास आयी थी! हमारी बातें कम ही हुई थीं क्योंकि वह हमेशा की तरह कहीं जाने की जल्दी में थी। "आपा, कैसी हो?"—"बस, यूँ ही हूँ। मेरी क्या ख़ैर ? कुछ नहीं हो रहा है।" उसने बुलाया तो था 'बतियाने' को। पर उसी शाम खाट पकड़ ली थी। लोग बता रहे थे कि जमकर बर्फ़ बन गये पानी के डोल को वह क्यारी की ओर लुढ़काकर ला रही थी, ताकि जमी हुई बर्फ़ के टुकड़े हो जाएँ (उसने देखा ही नहीं कि पानी की गाड़ी आकर कब पानी भर गयी थी और पानी जम चुका था)। पर तभी उसके 'सीने में कुछ' हो गया। दो दिन पड़ी रही। वह ख़ाली नहीं लेटी हुई थी—मृत्यु से एक दिन पहले शाम को जब मैं उसके पास गया था तो देखा था कि उसके वहाँ दो लड़के पेड़ के कटे हुए तने के टुकड़े करने में लगे हुए थे। वह बीमार थी, किसी को भी मालूम नहीं था कि कितनी बीमार है, फिर भी जितना हो सका, उसने उन्हें नाश्ता दिया। जब वे चले गये, तब दरवाज़ा बन्द करके लेट गयी और फिर नहीं उठी।

दोनों वृद्धाएँ वहीं पर लेटी हुई हैं—एक-दूसरे से बहुत दूर नहीं हैं। मेरी दादी गाँव के मध्यवर्ती भाग में है और उलीता आपा ऊपरले भाग में है। गाँव अब बढ़ गया है और शान्त भी हो गया है। क़ब्रिस्तान ऊँचाई पर है, मानों

उसके आस-पास जो कुछ भी है, उस सबसे ऊपर उठा हुआ हो। क़ब्रिस्तान की ऊँचाई से पूरी तरह उफनती हुई अन्गारा का दृश्य देखते ही बनता है, और यदि पानी की तरफ़ मुँह करके खड़ा हुआ जाए तो दाईं ओर क्रिवोलूत्स्कोये के ऊँचे मैदान और बाईं ओर अतालांका के, 'दादी के ऊँचे मैदान' नज़र आएँगे।



कोमल सम्बन्ध

अनातोली किम

मेरी परनानी ने अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्षों में शोक की सफ़ेद पोशाक कभी भी नहीं उतारी थी अर्थात् वह बहुत पहले से ही मृत्यु के लिए तैयार होकर बैठी थीं और शान्त भाव से उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं। परनानी कभी कुछ बोली हों मुझे याद नहीं आता, अपने सारे दिन परनानी ने दूरवाले कमरे में चुपचाप बिताए थे जहाँ वह अकेले में ताँबे का लम्बा हुक्का पीती रहती थीं। एक वार उन्होंने गर्मियाँ हमारे यहाँ बिताई थीं, बाद में उन्हें कहीं और ले गए थे। उनके गीले-से पके बालों का जूड़ा, शान्त आँखों के ऊपर चढ़ी उदास घनी भौंहें और स्वच्छ पोशाक—सफ़ेद ब्लाउज़ और स्कर्ट, होज़री के सफ़ेद मोजे—इन सबकी बर्फ़ीली चमक मेरी स्मृति में समाई हुई है।

मुझे यह भी याद है कि उस साल गर्मियों में मेरे पास एक साही का बच्चा आ गया था। मालूम नहीं, कहाँ से आ टपका था, हमारे बरामदे में पड़ा हुआ था। उसकी पीठ पर मुलायम-मुलायम परों की पंक्तियाँ चमक रही थीं, जिनसे नुकीली सलाइयाँ बननेवाली थीं। साही अन्धा निकला। वह चिड़िया के बच्चे की तरह किकियाता था। मैंने उसे मुलायम कपड़े में लपेटा और चम्मच से एक-एक बूँद करके डालते हुए उसे गरम-गरम दूध पिलाने लगा। अब हर समय मैं साही के बच्चे के पीछे लगा रहता था, घण्टों गत्ते के डिब्बे के पास बैठा रहता था, जहाँ उसके रहने के लिए घोंसला-सा बना दिया था। वहाँ से दूध तथा पशु-शावक की मीठी-मीठी गंध आती थी।

शीघ्र ही साही के बच्चे की आँखें खुल गईं और वह दौड़ने-भागने लगा। उसके पर नुकीली सलाइयों में बदल गए, थे भी बहुत सारे, उँगली में चुभ सकते थे। रात के समय डिब्बे में से मुझे उसकी धड़कनें और छींक सुनाई पड़ती थीं।

मैं सोचता था कि बड़ा होकर वह सिखाए हुए कुत्ते की तरह मेरे पीछे-पीछे भागा करेगा।

घर के बड़े लोग दिन भर काम से बाहर रहते थे, परनानी और मैं अपने-अपने सपनों की दुनिया में जीने के लिए मुक्त रहते थे। घर में शान्ति होती थी। हथेली में दी थपकी की तरह परनानी की सूखी खाँसी की आवाज़ दूरवाले कमरे से कानों में पड़ती थी या बुझे हुए हुक्के को जलाने के लिए दियासलाई की चिर्र सुनाई देती थी। परनानी इतनी बूढ़ी हो चुकी थीं कि किसी को उनमें रुचि नहीं थी। उन दिनों बुजुर्गों से उनके बारे में मैंने एक कहानी सुनी थी, वह कहानी बड़ी भयानक थी, इसलिए भी मैं परनानी से दूर ही रहने का प्रयास करता था।

उनके पति और बेटे की मृत्यु एक ही साल में हुई थी। तब वे लोग सुदूर पूर्व में रहते थे, जहाँ वे कोरिया से आकर वसे थे। उनका चौंतीस साल का बेटा अर्थात् मेरे नाना, सात बच्चों के पिता, अचानक बीमार पड़कर चल बसे थे। कुछ महीनों बाद उसके शोक में परनाना ने भी चारपाई पकड़ ली और प्रयाण कर गए। एक बच्चा भी मर गया था। तब ओझा को बुलवाया गया—उसने बताया कि परिवार में मृत्यु होने का कारण यह है कि घर के ऊपर कोई क्रुद्ध अदृश्य भूत चक्कर काट रहा है। वह अभी बहुतों की जान लेगा, क्योंकि बहुत नाराज़ है। वह किसी सम्बन्धी का भूत है, जो इसलिए नाराज़ है कि उसे ठीक तरह से दफ़नाया नहीं गया था।

तब वृद्धा को याद आया कि उनके पति का एक भाई था, हँसमुख कुँवारा किसान। एक दिन वह घूमते-घूमते भटककर पड़ोस के गाँव में पहुँच गया था। वहाँ से रात के समय घर की ओर चला। छोटे रास्ते से जाने की सोची, इसलिए सीधे जंगल के रास्ते चल दिया। जानवरों के रास्ते से जाते हुए उसका पाँव किसी शिकारी के द्वारा बिछाई हुई स्वचालित रस्सी पर पड़ गया, जो एक राइफ़ल से जुड़ी हुई थी। सनसनाती हुई गोली किसान के बग़ल को बींध गई। सबेरे शिकारी आया, सुन्न पड़ी हुई लाश को देखकर वह घबरा गया, उसे पगडण्डी से हटाकर वहीं कहीं गाड़ दिया। फिर भय और ग्लानि के मारे वह शिकारी परिवार से विदा होकर भाग गया। कहीं दूर चीन की तरफ़ से उसने चिट्ठी भेजी, जिसमें अपना अपराध स्वीकार करते हुए उसने मृतक के सम्बन्धियों से निवेदन किया था कि मेरे निरपराध—परिवार से बदला न लें। किसी ने बदला नहीं लिया। मृतक को कहाँ दफ़नाया गया था, यह अज्ञात ही रहा। उसके सम्बन्धियों के लिए यह करुणा का विषय था।

और फिर शीघ्र ही उन्हें रूस जाना पड़ा, उस हँसमुख किसान की अन्तिम पार्थिव शरण भूमि अज्ञात ही रह गई। पन्द्रह साल तक किसान धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करता रहा—अन्ततः विस्मृत भाई और सम्बन्धी का भूत रुष्ट हो ही गया। मेरी कल्पना में वह भूत जंगल के ऊपर से उठकर धधकती हुई आँखों को चमकाते हुए उड़ता था। मुझे उससे डर लगता था, मेरे मन में यह विचार आता था कि अपने सगे भाई, भतीजे तथा एक लड़की की जान लेने की उसे ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई थी? इससे अच्छा तो उड़कर चीन चला जाता और उस शिकारी को ढूँढ़कर उससे कहकर अपने को दूसरी जगह गड़वाता, यदि वनप्रदेश की अपनी इस क़ब्र में लेटे रहने की ऐसी ही अनिच्छा थी।

दूसरे कमरे में बैठी मेरी परनानी भूत के इस क्रूर व्यवहार का कारण मुझे समझा सकती थीं, लेकिन मैंने उनके साथ कोई बात नहीं की थी : जीवन की तुलना में मृत्यु मुझे इतनी बुरी लगती थी कि बीते हुए दिनों की इन सब उदास बातों को जानने की मेरी इच्छा ही नहीं थी।

उन बुरे दिनों में गृहस्वामी और उसके बड़े बेटे की मृत्यु के बाद—जिसके घर में वह रहती थीं—उस बड़े परिवार की मुखिया के रूप में वह वहीं रह गई थीं। बहू अपने बच्चों के साथ, जिनमें से सबसे बड़े को चौदह साल पूरे हुए थे, शोक झेल रही थी। वह मृतप्राय-सी हमेशा आँसू बहाती रहती थी। सास, जो तब साठ साल की हो चुकी थी, परिवार की रक्षा करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकती थी।

किसी को कुछ कहे बिना एक दिन वह घर से निकल पड़ी और कोरियाई सीमा की ओर चल दी। यह 1920 के दशक की बात है। सीमा पूरी तरह बन्द थी। वृद्धा ने रात के समय सीमान्त नदी को तैरकर पार किया। भींगी स्कर्ट का गुब्बारा बनाकर उसका सहारा लिया था। नदी के बीच में पहुँचने के बाद गुब्बारा फट गया था, वह डूबते-डूबते बच गईं, तैरकर बाहर निकलीं। दूसरे किनारे पर जापानी सैनिकों की आवाज़ें सुनाई दी। उन्होंने वृद्धा का सिर ही उड़ा दिया होता।

वृद्धा पहाड़ी गाँव तक पैदल पहुँची और वहाँ उसने शिकारी का घर ढूँढ़ ही निकाला। उसे परदेस से लौटे बहुत समय बीत चुका था। खेती-बाड़ी करता था। वृद्धा ने उससे पूछा कि एक निरपराध व्यक्ति के प्राण ले लेने के बाद क्या उसकी यह इच्छा है कि सारा-का-सारा परिवार ही बर्बाद हो जाए?

नहीं—शिकारी ने कहा। उन्होंने एक साथ प्रार्थना की। उसके बाद वह शिकारी उस अनाम क़ब्र को ढूँढ़ने चल पड़ा। एक हफ़्ते तक खोज करने के

बाद वह क़ब्र मिल गई। हड्डियों को खोदकर निकाला और किरमिच के स्वच्छ कपड़े में लपेटकर उन्हें दूसरी जगह ले गया। दफ़नाने के लिए एक सुन्दर-सी कम ऊँची पहाड़ी को चुना गया। वहाँ चीड़ के कुछ पेड़ उगे हुए थे, उनके सुनहरे तनों के बीच में उस हँसमुख किसान की हड्डियों को दुबारा गाड़ दिया गया।

इसके बाद वृद्धा अपने घर वापस लौट आई थीं और अब, तीस साल बाद, हमारे गाँव के मकान के दूरवाले कमरे में बैठी हुई थीं—कज़ाख़्स्तान के किसी इलाक़े में, जहाँ सन् 1930 के दशक में हमारा सारा परिवार चला गया था। उनकी एक पोती मेरी माँ बनी। रूखी-सूखी, नाटी-ठिगनी वृद्धा के सामने अपने शरीर को वह हमेशा सीधा और रोबीला बनाए रखती थी। मेरे लम्बे-तगड़े मामे और मुटल्ली मामियाँ सब उसके सामने झुककर चलते थे। सहकारी खेतों की बूढ़ी औरतें घर आया करती थीं, हुक्का पीतीं, रंगीन जापानी ताश से खेलतीं, लेकिन हमारी परनानी कभी भी उनकी बातों में शामिल नहीं हुईं, ताश को छुआ तक नहीं। वह निर्लिप्त बैठी रहती थीं, कुछ उदास-सी, लगता था जैसे सोच रही हों कि जीवन का सबसे बड़ा काम पूरा कर लेने के बाद अब लोगों के बीच मुझे कुछ करने को है या नहीं। और लोग भी शायद इसलिए कि उन्होंने अभी तक इस तरह का कोई बड़ा काम नहीं किया था, उनकी ओर सम्मान और अपराध-लाभ से देखते थे। कम-से-कम मुझे ऐसा ही लगता था।

लेकिन उस दिन मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब रूई के सफ़ेद अस्तर वाले मोजे पहने वह चुपचाप कमरे से बाहर निकलकर मेरे पास आ गईं। मैं फ़र्श पर बैठा हुआ था और झुककर सरकण्डे से साही के बच्चे को छेड़ रहा था। परनानी की घनी मुड़ी हुई भौंहें आँसुओं से भरी आँखों की उसी उदास ऊँचाई पर विद्यमान थीं, एक शब्द भी नहीं बोलीं लेकिन ध्यान लगाकर साही को दौड़ते हुए देख रही थीं। पास ही धीमे से बैठ गईं और अपने छोटे-से कमज़ोर हाथों को घुटनों पर लपेट लिया। और मैं परिश्रमपूर्वक सरकण्डे से साही को भगाने में लग गया।

उस दिन के बाद से हम अक्सर एक साथ ही साही के बच्चे के साथ मज़े करते थे। मैं बेधड़क उनके कमरे में घुस जाता, साही को फ़र्श पर छोड़ देता और फिर पूरे कमरे में उसके पीछे-पीछे रेंगता। वह साही बहुत अच्छा था, बड़ा हो गया था। मैंने उसे काग़ज़ की गाड़ी ढोना सिखलाया, जिस पर मैं अधिक-से-अधिक सामान लाद देता था। जब उसके लिए भार बहुत बढ़ जाता था तो वह क्रोध में आकर अपने परों को समेट लेता था, मेहनत से कतराता था। परनानी, जो पुरानी कृषक-महिला थीं, साही की भार ढोने की क्षमता जानना

चाहती थीं। एक बार उन्होंने हुक्के की लम्बी नली के छोर से उस गाड़ी में से लकड़ी का एक चौकोर टुकड़ा बाहर फेंक दिया, फिर धागे की रील भी फेंक दी। मेरी उम्र छह साल की थी, मैं हैरान था कि पके बालोंवाली वृद्धा, जो बेचैन होकर कब से अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा में बैठी हैं, मेरे साथ बच्चों के खेल खेल रही हैं। हमारे अस्तित्व का प्रमुख रहस्य यहीं छिपा हुआ था। पर उस समय मुझे यह समझ में नहीं आया था।

मुझे मालूम नहीं कि परनानी को हमारे पास से कब ले गए, न मुझे याद है कि साही का बच्चा मेरे पास से कब ग़ायब हो गया। हो सकता है कि मेरे पास से भागकर अपनी माँ के पास चला गया हो, जो मकान के नीचे रहती थी। उस साल मैंने स्कूल जाना शुरू किया था। बहुत सारे नये काम-काज, खेल-खूद और हँसी-मज़ाक़ देखने को मिले।...और फिर जैसे कि दीर्घकालीन शान्ति और विस्मृति छा गई।...तब से तीस साल गुज़र गए हैं।

मैं दौरे पर सखालिन गया हुआ था। झरने के निकट एक भीगे पत्थर पर खड़ा था। यह सुन्दर विशाल झरना सखालिन द्वीप के दक्षिणी भाग में है। हाथ में कैमरा लिये मैं फ़ोटो खींचने की तैयारी कर रहा था। झरने की धारा एक चौड़े पारदर्शी पर्दे की तरह चट्टान से नीचे को गिर रही थी और पत्थरों से टकराकर शोर पैदा कर रही थी। उसकी स्वच्छ सफ़ेद झाग उबलने का आभास देती थी। अर्धवायवी इन्द्रधनुषी स्तंभ झरने से ऊपर को उठता हुआ अपने ऊपरी छोर के साथ आकाश की ओर कहीं उड़ता जा रहा था।

मैं इस इन्द्रधनुष को तथा झरने के गाढ़े सफ़ेद उबाल को देख रहा हूँ, पानी के छींटे मेरे मुँह से टकरा रहे हैं। आँखों के सामने दृश्यमान समस्त अनिन्द्य सौन्दर्य का रहस्य धीरे-धीरे मेरी समझ में आने लगता है और कैमरे के साथ मेरा हाथ अपने आप ही नीचे आ जाता है। यह एक अनुपम सौन्दर्य था।...

उस दौरे की याद के रूप में मैं अपने साथ ले गया था—सतरंगा इन्द्रधनुष, भींगी चट्टान, जिसके साथ प्यासी मधुमक्खियाँ और ततैये चिपट रहे थे—और मेरे साथ थी—झरने के नीचे से उठती हुई असाधारण सफ़ेदी की याद।

और अब, जब मैं सखालिन के उस झरने की सफ़ेदी के अनुभव की किसी भी चीज़ से तुलना करने लगता हूँ तो सबसे पहले मुझे याद आते हैं स्वच्छ आकाश में छाए सफ़ेद बादल, फिर याद आती है बर्फ़ की वह टोपी, जिसे गाँव के मकान की छत फ़रवरी में पहने होती है, फिर याद आते हैं, किर्गीज़िया के खेतों में विलुप्त कपास के फूल, सफ़ेद ग्लैडिओलाइ—और मुझे हमेशा याद

आता है अपनी परनानी का शोक-परिधान। इसके बाद—मुझे याद आती है, उनके जीवन और उस साही के बच्चे की कहानी, जिसे मैंने पाला-पोसा था और गँवा भी दिया था, और भी बहुत कुछ याद आता है, और मुझे लगता है कि मुझे सब कुछ याद आ सकता है। तब ऐसा सोचने की इच्छा होती है कि इस संसार में मेरा अमरत्व भी क्या है, वह तो मुझसे पहले के और मेरे बाद के जीवन में समा रहा है। मेरा काम यह है कि कोमलता की करीनेदार कड़ी के द्वारा उन्हें आपस में मिला दूँ।



साभार : अनातोली किम—सलावीनये एखा (बुलबुल की गूंज)
मास्को, 1980

भाई और बहन

अनातोली किम

1

हमें मिले इतना समय बीत चुका था कि मुझे अब लगता ही नहीं था कि वह मेरी बहन है। एकदम सूखी हुई औरत मेरी ओर दौड़कर आई और उसे मैंने गले लगा लिया।

"रास्ते में तकलीफ़ तो नहीं हुई?" आँसू निकले जा रहे थे, हमेशा की तरह।

"बहुत अच्छा रहा।"

मैंने देखा कि वह अस्त-व्यस्त है, बाल पकने शुरू हो गए हैं और हाथ में खिलौनेवाली पिस्तौल लिए हुए है। दो भानजे जिनकी आँखें रोते-रोते सूज गई थीं, चुपचाप मुझे देख जा रहे थे। तीसरा दूर वाले कमरे से अपनी रोबीली आवाज़ में कुछ कह रहा था।

"कुछ दिन तो रहोगे ना?"

"मालूम नहीं। जैसा बन पड़ेगा।"

शाम को बहनोई काम से लौटे। हम दोनों ने ज़रा मदिरापान किया। उन्होंने मुझे अगले दिन मछली पकड़ने के लिए चलने को मना लिया। मैं शुक्रवार को पहुँचा था। शनिवार से मूसलाधार बारिश होने में थी। खाड़ी की ओर से ठण्डी हवा आ रही थी। दो दिन तक मौसम ख़राब रहा। रविवार को बहनोई सोफ़े में लेट कर अख़बार पढ़ते रहे। बीच-बीच में शोर मचाते हुए बच्चों को झिड़क देते थे। मैं भी दूसरे कमरे में लेटा हुआ अख़बार पढ़ रहा था। बहन नाश्ता तैयार कर रही थी। फिर दिन के भोजन की तैयारी में लग गई। बीच-बीच में मेरे पास आ जाती और चारपाई के किनारे में बैठकर बिना कुछ बोले आँसू बहाती और फिर दुबारा दौड़कर रसोईघर में चली जाती थी। उसके हाथ बहुत

पतले थे, जो बिना बाजू के ब्लाउज़ की बहुत चौड़ी काट के बाहर झूल रहे थे। मेरी याद में तो वह हमेशा से बड़ी मांसल, गोरी और हँसमुख थी।

सोमवार को बहुत अच्छी धूप निकल आई थी। पूरी खाड़ी में प्रशान्त जल की सफ़ेद-सफ़ेद पट्टियाँ चमक रही थीं। तट से होकर मैं बन्दरगाह तक गया, इसमें मेरा सारा दिन निकल गया। दूर खाड़ी में मछुआरों की किश्तियाँ छोटे-छोटे धब्बों-सी नज़र आ रही थीं। खुले समुद्र की ओर जाते हुए स्टीमर दिखाई दे रहे थे, भोंपुओं का गहरा और उदास स्वर गूँज रहा था।

इसके अगले दिन मैं कहीं नहीं गया। घर में बैठा रहा, चापेक[1] के दो खण्ड पढ़ता रहा—बिल्कुल यही मेरे पास मास्को में थे। बहनोई काम से लौटे, हमने शतरंज खेला और एक बार फिर थोड़ी सी शराब पी। पता नहीं क्यों, बहनोई को यह खटकता था कि मैं चित्रकार हूँ। उनका विचार था कि चित्रकार लोग आसानी से अन्धाधुन्ध रुपये कमा लेते हैं—मैंने इस मामले में विवाद नहीं किया। उनके विचार से आजकल के चित्रकार निरे निठल्ले होते हैं—इस बात से मैं तुरन्त ही सहमत हो गया और तब बहनोई अपने को रोक नहीं सके—अगर मैं सब समझता हूँ तो चित्रकार बनने की क्या पड़ी थी!

"नाम कमाने की इच्छा हुई होगी? या ऐश की ज़िन्दगी की?" वह तो मेरे पीछे ही पड़ गए थे।

"जवानी की उम्र थी, इसलिए।" मैंने क़बूल किया।

"तो कैसा रहा? बात बन रही है क्या?" उन्होंने पूछा।

"बहुत तो नहीं।" मैंने जवाब दिया और झट से इतना और जोड़ दिया, "ठीक ही कमा लेता हूँ।"

"यानी थोड़ा-बहुत लीपा-पोती चल रही है।"

"कभी-कभी लीपा-पोती भी करनी पड़ती है।"

बहन को पति का ऊँचा स्वर सुनाई दिया और रसोईघर के दरवाज़े के शीशे के पीछे से उसका घबराहट भरा चेहरा प्रकट हुआ। मैंने चुपके से उसे हाथ से इशारा कर दिया, वह वहाँ से हट गई।

बुधवार के दिन मैंने पूछा कि खूँटी के पास की कील में ये कैसी चाबियाँ लटक रही हैं। बहन ने बताया कि उसकी सहेली चाबियाँ छोड़ गई है। पति के साथ छुट्टी पर गई है, कह गई थी कि जब गरम पानी आएगा तो उनके घर में जाकर देख ले। तभी मुझे यह सूझा कि क्यों न वहीं जाकर काम किया

1. चेक लेखक।

जाए? बहन को आश्चर्य तो हुआ ही। थोड़ा बुरा भी मान गई—घर में क्यों नहीं काम करता? मैंने कहा कि बच्चे बाधा डालते हैं। तो बच्चों की तो दो ही दिन की बात है—रोगनिरोधन के दिन पूरे हो जाएँगे तो वह उन्हें नर्सरी में छोड़ आया करेगी।

"नाराज़ मत होओ!" मैंने उसके बालों को अस्त-व्यस्त करते हुए कहा और उसके ठोस तथा छोटे-से पश्चकपाल को हथेली से पकड़ा, "तो मैं भी दो ही दिन वहाँ रहूँगा, ठीक है?"

"ऐसा ही सही।" बहन बेमन से मुस्कुरा दीं।

उसी दिन मैं पाँचवीं मंज़िल में स्थित एक कमरेवाले पराए मकान में चला आया। पूरी इमारत बहुत लम्बी थी और उसकी खिड़कियाँ बहुत बड़ी-बड़ी थीं। सबसे पहले मैंने खिड़की खोली—बन्द मकान में हवा भी रुकी हुई थी, घुटन हो रही थी। यहाँ से बड़ा शानदार दृश्य दिखाई देता था। ऊँचाई से 'ज़लातोइ रोग' नामक खाड़ी बिलकुल सामने ही दिखाई पड़ती थी। यह रूसी सान फ्रांसिस्को पहाड़ियोंवाले सीढ़ीदार समुद्र तट से ऊपर को जाकर अपनी कंपायमान छाया में डूब रहा था। धूप की चमक से आँखें जल रही थीं और चौंधिया रही थीं। आकाश तथा पानी में धूप का स्पष्ट प्रतिबिम्ब पड़ने से उनकी गहराई में धूप एक असाधारण शक्ति प्राप्त कर रही थी।

दूर बन्दरगाह दिखाई पड़ रहा था और लंगरगाह में ऊपर को उठे हुए मस्तूलवाले स्टीमर नज़र आ रहे थे। शानदार चमकदार लाइनर जहाज़ धीरे-धीरे अपनी सफ़ेद आग्नेय परछाई के आगे-आगे मुड़ रहा था। धूसर-नीले रंग के दो युद्ध-पोत लंगर डाले स्थिर और उदास खड़े थे। मछुआरों के जहाज़ खाड़ी में इस तरह रेंग रहे थे, जैसे चरागाह में मच्छर।

कमरे के पालिश किए हुए फ़र्श पर धूल बिखरी हुई थी। गुसलख़ाने में मुझे चिलमची और पोंछा मिल गया, जिससे मैंने फ़र्श साफ़ किया। हल्के पीले रंग की ताज़ी परत तुरन्त चमक उठी, चमकीली पट्टियाँ नज़र आने लगीं, कुर्सियों की टाँगों की छाया फ़र्श पर फैल गई और जैसे वे और लम्बी हो गईं। मकान में घूमकर मैंने उसके मालिकों से पहचान करने की कोशिश की। मुझे कहीं कोई तस्वीर नहीं मिली, इसलिए यह अनुमान नहीं लगा सका कि वो कैसे होंगे। आसपास पड़ी चीज़ें यथासम्भव कुछ बता रही थीं।

अपना निश्शब्द सर्वेक्षण पूरा कर लेने के बाद मैं ठण्डे-ठण्डे और स्वच्छ फ़र्श पर लेट गया। 'रमान-गज्येता' नामक उपन्यास-पत्रिका की जिल्दों के ढेर का मैंने सिरहाना बना लिया था। कमरे में सोफ़ा नहीं था, बस एक पलंग था,

जिसके ऊपर एक गुलाबी पलंगपोश बहुत करीने से बिछा हुआ था, जो सुरुचि का परिचय देता था। पलंग पर आसपास दो तकिये पड़े हुए थे जैसे कि उनमें हवा भरी हो। उनके कान अकड़े हुए और ऊपर को उठे हुए थे। तकिये इतने चिट्ट सफ़ेद थे कि उन्हें छूते हुए भी डर लगता था।

फ़र्श पर लेटे-लेटे सिगरेट की राख सर्पाकार समुद्री शंख में डालते हुए मैं धूम्रपान में मग्न था। सिरहाने के नीचे से रमान-गज़्येता की एक जिल्द निकाल कर पढ़ने की कोशिश की और आख़िर मुझे नींद ही आ गई । नींद बहुत बढ़िया आई थी। आँख खुली तो अँधेरा हो चुका था। शहर हज़ारों बत्तियों की रोशनी से जगमगा रहा था और प्रकाश सीधे मेरी आँखों में पड़ रहा था। अँधेरी खाड़ी में स्टीमरों का प्रकाश दिखाई दे रहा था और उसका प्रतिबिम्ब पानी में पड़ रहा था। बिना बत्ती जलाये मैं बाहर चला आया।

मकान से नीचे ढलान पर जाती हुई अँधेरी पक्की सड़क से होकर मैं टीले के नीचे तक पहुँच गया—उसके आगे रोशनीदार चौड़ी सड़क थी। यहाँ पर पटरी की जगह सीमेंट की सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। सीढ़ी में एक जगह गँवारू कपड़े पहने एक लड़की मछली बेच रही थी। उसने मछली प्लास्टिक की शीट में अपने पाँवों के पास रखी हुई थी। वह किसी वजह से अशान्त थी और वार-बार बेचैनी से सिर का स्कार्फ़ ठीक कर रही थी और स्कार्फ़ के नीचे से बिखरे हुए बालों को सँवार रही थी। वह लड़की मुझे अपनी बहिन से मिलती हुई लगी। मैं रुककर ध्यान से मछलियों को देखने लगा—कुछ छुटकी-सी हेरिङ मछली के बराबर छोटी-सी थीं, कुछ चाँदीली लाल पंखों वाली क्रास्नाप्योर्का—थीं जो सड़क की रोशनियों के बीच में धुँधली-सी चमक रही थीं। लपेटी हुई आस्तीन वाली सफ़ेद क़मीज़ पहने एक छोटा लड़का मेरे पास आकर खड़ा हो गया। उससे यूडीकोलोन की सुगन्ध आ रही थी। मैंने घड़ी देखी—दस के आसपास का समय हो गया था। घर में सम्भवतः काफ़ी देर से मेरा इन्तज़ार हो रहा होगा, मुझे भूख लग आई थी।

2

दूसरे के मकान पर क़ब्ज़ा किए मुझे दो नहीं, दस दिन हो चुके थे। बच्चों ने कब से नर्सरी में जाना शुरू कर दिया था। मेरी बहिन और बहनोई सवेरे काम पर चले जाते थे। मैं चाबियाँ लेकर इधर आ जाता था कि खिड़की से बाहर समुद्र का दृश्य देख लूँगा या फ़र्श पर लेटकर सिगरेट पीते हुए रमान-गज़्येता पढ़ लूँगा, या फिर एक कोने से दूसरे कोने में टहलने को ही इधर मिल जाएगा।

पहले मैंने काम करने की कोशिश की—'ज़लातोइ रोग' खाड़ी का जलरंगचित्र बनाने का प्रयास किया। पर एक-दो दिन उलझने के बाद रंगों से पुता काग़ज़ उठाकर फाड़ डाला और रंगों को दूर छिपा दिया। खाड़ी के ऊपर के आकाश का चित्र बनाना असम्भव था, जो पकड़ में ही नहीं आता था और जिसका रूप लगातार बदलता रहता था—कभी सफ़ेद, नीला और चमकदार होकर उड़ता नज़र आता था, तो कभी धुन्ध के मोती जैसे तलछट से ढक जाता था, कभी एकदम सलेटी, पूरा-का-पूरा मख़मली दिखाई देता था। मेरी इच्छा हुई कि लगातार देखता ही रहूँ—काम करने की अपेक्षा देखते रहने में मुझे अधिक आनन्द आ रहा था। चित्रकार के रूप में अपनी असहाय स्थिति के आगे मैं दबा हुआ था और इसलिए भी कि सामने दिखाई देता दृश्य मेरे पूरे अस्तित्व से अधिक महत्व का प्रतीत हो रहा था। धैर्यपूर्वक चित्र की रूपरेखा बनाने की अपेक्षा मैं भविष्य के चित्रों का स्वप्न ले रहा था जो जीवन के समानार्थक होंगे।

कभी मैं ट्रॉलीबस में बैठकर शहर घूमने को चला जाता था और अगर अपने उपनगर जल्दी लौट आता था तो फिर से पहाड़ी पर चला जाता था, जहाँ से मीनारों जैसे ऊँचे-ऊँचे घरों की बड़ी अच्छी संयोजना बनती थी। वहाँ से अपने परिचित पाँच मंज़िले भवन को चला जाता था, जो सैर-सपाटे की नाव जैसा था। सीढ़ियों से दौड़ता हुआ पाँचवीं मंज़िल में पहुँच जाता था और आत्मिक शान्ति से दरवाज़े के दो ताले खोलता था। दरवाज़े के दूसरी तरफ़ अदृश्य मालिक मेरा स्वागत करते थे जो वैसे बड़े बढ़िया लोग थे। मकान का गृहस्वामी खूँटी में टँगी हुई जैकेट में वहाँ मौजूद था। जैकेट पुरानी थी, जिसकी आस्तीन के किनारे घिस चुके थे। कोट के भूरे चमड़े में बुढ़ापे की झुर्रियों का जाल बना हुआ था। गृहस्वामी इंजीनियर था, उसे सब अपने हाथों से बनाना पसन्द था, तरह-तरह की चीज़ें बनाने का शौक़ था। बिजली के बरमे से दीवार में छेद करना हो, आरी से फट्टा चीरना हो या पर्दे के लिए स्टेनलेस स्टील की पाइप काटनी हो—वह हमेशा अपनी चमड़े की जैकेट और घुटनों से उठे हुए ट्रैक सूट का नीला पाजामा पहन कर काम करता था।

मैं हाथ धोने को गुसलख़ाने के भीतर जाता तो वहाँ मालकिन से भेंट होती थी—वह रंग-बिरंगा रेशमी गाउन पहने होती थी। सोच-समझकर कम जगह में एक साथ बनाए गए प्रसाधन-कक्ष (पाख़ाने-गुसलख़ाने) में वह मज़े से घूमती थी। मैं अपने अतिक्रमण के लिए उससे विनयपूर्वक माफ़ी माँग लेता था। मेरे हाथों से बेसिन में बहते हुए गँदले झाग के कारण मुझे उसके सामने झेंप आती थी। इस वाशबेसिन और गुसलख़ाने की टाइलों तथा शीशे का अन्य सामान

चमकाकर इतना साफ़ किया गया था कि उनसे और ज़्यादा सफ़ेद जीवन में मैंने और कुछ नहीं देखा था। कई खानों और शेल्फ़ों पर पड़ी सारी शीशियों, गत्ते के डिब्बों का मैं पूरा-पूरा ध्यान रखता था। और कपड़ों के लिए रखी जस्ते की चिलमची को एक बार भी टाँग नहीं लगाई थी।

अपने तौलिये से हाथ पो कर मैं तीन क़दम की नाप के गलियारे में बाहर आ जाता था और अगर सिर उठाता तो दरवाज़े के ऊपर जालीदार आले में रखी हुई दो जोड़ा स्की दिखाई देती। स्की की दोनों फट्टियों के बीच में धार को तेज़ करने के लिए उभार की जगह में फ़ोम प्लास्टिक लगाया गया था और खूबसूरत स्की के सिरे अच्छी क्वालिटी के फीते से बाँधे गए थे।

इस फ़्लैट के निवासी दो ही थे—एक पुरुष और एक स्त्री, नवविवाहित। तीसरा मैं, बाहरी और बिन बुलाया, उनके लिए एकदम अनावश्यक था, यह मुझे मालूम था। पर भला हुआ कि किसी ने मुझे यहाँ से भगाया नहीं। मैं कमरे में प्रवेश करता, दम्पति के स्वच्छ बिस्तर की ओर से नज़र झट हटा लेता और अपराधी कुत्ते की तरह फ़र्श पर लम्बा पड़ जाता था। मुझे तुरन्त शान्ति मिलती थी। मुझे सिर्फ़ इस बात का खेद होता था कि मन पसन्द पुस्तकें मेरे पास नहीं हैं—गृहस्वामियों ने रमान-गज़्येता को छोड़कर और कुछ अपने पास नहीं बचा रखा था। सुन्दर झाड़फ़ानूस को देखता हुआ मैं बेमतलब की बातें सोचने लगता था। धत् तेरे की! छत की ओर धुआँ छोड़ते हुए मैं बड़े मज़े में गालियाँ देता था। क्या कारण है, जो मैं भी इसी तरह नहीं रह सकता, अपने लिए ऐसा ही फ़ानूस और इसी तरह का टी-सेट मैं क्यों नहीं ख़रीद लेता? मैं सपने ले रहा था कि अपने सामुदायिक घर में लौटकर सबसे पहले कमरे के फ़र्श को रँगूँगा, खिड़की में गुलदस्ता सजाऊँगा और अपनी कार्यशाला में पुराने क़ालीन और सुन्दर झालरदार पर्दे टाँगूँगा।

पौ फटने तक मैं ऊँघता और सपने लेता रहता था। फिर उठकर खुली हुई खिड़की के पास बैठकर चाय पीता था। मैंने मालकिन का एक लाल कप, चाँदी की चम्मच और केतली ले ली थी; सेव, टाफ़ियाँ और डबलरोटी मैं अख़बार के थैले में लपेटकर अपने साथ ले आता था। खिड़की के पास खड़ा होकर वहाँ के पुराने निवासी की तरह मैं नीचे घटित हो रहे जीवन को काफ़ी समझने लगा था। साइकिलनुमा स्लेज़ में बैठकर बच्चे घर के कोने से खड़-खड़ करके शोर मचाते हुए बाहर निकले—उनके आगे वही घुँघराले बालोंवाला 'दादा' है, निक्कर पहने। इतने में मुझे कँपकँपी हुई—जानी-पहचानी जुड़वाँ बहनें सामने से निकलीं।

मोटी और पूरी तरह एक जैसी पोशाक में। हाथ पकड़े, आँखें झुकाए और किसी को देखे बिना सड़क पर जा रही हैं। वे कन्धे से कन्धा मिलाए जा रही हैं। लम्बे सफ़ेद मोज़ों में उनकी टाँगें चमक रही हैं, राख के रंग की उनकी दो चोटियाँ पीठ के पीछे उछल रही हैं। इन लड़कियों को देखकर मैं हमेशा काँप जाता था और चाय पीने लगता था। उनकी मादक अर्धमुस्कान में और उनकी नीचे झुकी हुई आँखों में और मुख्यतः उनकी पूरी-की-पूरी समानता में मुझे कुछ अस्वाभाविकता दिखाई देती थी।

बाहर को निकले हुए गोल होंठों से साँस छोड़ते हुए लाठी लिये एक मोटा अपंग व्यक्ति धीरे-धीरे पहाड़ पर चढ़ रहा था। उसके सामने से नीला स्वेटर और गुलाबी स्कर्ट पहने एक लड़की धीरे-धीरे कूल्हे मटकाती आ रही थी। उसने हाथ आगे की तरफ़ स्कर्ट की जेबों में डाल रखे थे। रोड़ी के ढेर के पीछे से नौवहन शिक्षालय का एक तगड़ा-सा छात्र उसकी ओर आ रहा था। वे दोनों ढलान से चुपचाप नीचे को जा रहे थे।

सीधी कमर और घने, पके बालों वाली दुबली बुढ़िया अभी घर से निकलेगी जो पहली क्लास की छात्रा जैसी दिखाई देती है और इसलिए उस पर दया आती है। वह बेंच के कोने में बैठ जाएगी, जो बेढंगे तरीक़े से जोड़ी गई मेज़ के पास, ज़मीन में गड़ा हुआ है। वह अन्य बूढ़ी औरतों से अलग बैठेगी, जो ज़ोर-ज़ोर से अपने-अपने क़िस्से सुना रही होंगी।

दूसरे लोग भी वहाँ से गुज़रेंगे और सब-के-सब मुझे परिचित लगेंगे। अकेले में शाम का समय काटते हुए मैं उनकी तरफ़ देखता रहूँगा। बीच-बीच में ठण्डी हुई चाय के घूँट लेता जाऊँगा। एकाध बार ही खाड़ी में बहुत दूर तक आत्मसन्तुष्ट दृष्टि डालूँगा, जहाँ इस समय दिन शान्त होकर समाप्त हो रहा होता है और रात में बदल रहा होता है।

इस तरह यहाँ से हटने का और बहन के पास जाने का मेरा मन नहीं करेगा। न ही बहनोई को बर्दाश्त करने की इच्छा होगी, जिसको मुझसे, पता नहीं क्यों, वैर-भाव है और न अपना मुँह बन्द रखकर बहन की शिकायतें सुनने का मन होगा—रसोईघर के धुँधलके में उसकी निराश फुसफुसाहट! फिर भी मैं जाऊँगा, अँधेरे में अपने परिचित रास्ते पर शान्त इलाक़ों से होता हुआ जाऊँगा और एक बार मुझे दो भरे हुए थैले लिये एक औरत मिलेगी। मैं उसकी सहायता करने को कहूँगा। पहले वह मुझसे डर जाएगी और फिर एक थैला मुझे पकड़ा देगी। मैं उसके घर तक ही उसे छोड़ आऊँगा। रास्ते में हम मज़े से बातें करते जाएँगे। इतने में एकदम अचानक, जल्दी में, मैं उसे अपने बारे में बताना शुरू

कर दूँगा। बाद में मैं अकेला रह जाऊँगा और उसे जाते हुए देखूँगा। वह जाती जाएगी और फिर कभी मुझे नहीं मिलेगी। वह अकेली रोशनी के नीचे के प्रकाश से निकलकर अँधेरे में ग़ायब हो जाएगी। मैं वहीं बहुत देर तक सोच में डूबा खड़ा रहूँगा कि किस दिशा में जाऊँ?

पर इस अन्तिम शनिवार को मैं अपने प्रिय मित्रों के पास चला आया और एकाएक मुझे ऐसा महसूस हुआ कि सब समाप्त होना चाहिए। मेरे मकान में तम्बाकू की बू फैली थी। मालकिन का लाल कप मुझसे टूट गया था। और फिर इन लोगों के धैर्य को मैं बिन बुलाया मेहमान अब और कितना सह सकता था? मैं खिड़की से बाहर शहर और खाड़ी की तरफ़ देख रहा था—वहाँ बुलबुलेदार पानी की चमकती हुई चौड़ी पट्टियों को हवा धकेल रही थी, लम्बे बैंगनी बादल आकाश में छाए हुए थे। सुन्दरता के इस अपार समूह को मैं देखे जा रहा था और सोच रहा था कि यह मेरा नहीं है। अब यहाँ से चल देना चाहिए। और हमेशा के लिए यहीं, इसी मकान में, रहने की मेरी प्रबल इच्छा हुई, जो दुनिया की सुन्दरतम खाड़ियों के ऊपर विराजमान था। मेरी इच्छा हुई कि मेरी आत्मा भी ऐसी ही स्वच्छ और आरामदेह हो, कि मेरी मेज़ पर भी हल्के बैंगनी रंग के पतले काँच का गोल गुलदान पड़ा हो और जो द्विफल (मैपल) के लाल-लाल पत्तों से सजा हो।

मैं फ़र्श पर लेट गया, अपनी पुरानी जगह पर। पर लेटने में आराम नहीं मिल रहा था—सारा बदन दर्द कर रहा था। सख़्त फट्टों पर बिताए दिन याद आ रहे थे। मैं उठा, परेशानी में थोड़ी देर तक एक कोने से दूसरे कोने के चक्कर काटे। फिर खिड़की को ज़रा-सा बन्द करके बाहर चला आया।

मैं स्टेशन तक गया, बिजली की गाड़ी में बैठा और किसी स्टेशन में उतर गया। पार्क को पार करके मैं समुद्र के स्नान-तट पर आ गया, अमूर खाड़ी के तट पर। वहाँ इतने सारे निर्वस्त्र लोगों को देखकर आश्चर्य में डूब गया। सितम्बर लग चुका था, हवा भी अच्छी नहीं थीं, शरद ऋतु की जैसी ठण्डी हवा थी। खाड़ी का पानी बोतल के रंग का हो रहा था और दूर का पहाड़ी छोर नीला नज़र आ रहा था। तट से कुछ दूरी पर दो-तीन सिर नज़र आ रहे थे, किश्ती में स्त्री-पुरुष नौका-विहार कर रहे थे।

मैं पानी के साथ-साथ टहलते हुए विचित्र मुड़ी हुई सीपियाँ जमा कर रहा था और उन्हें इकट्ठा करके फेंके जा रहा था। पता नहीं क्यों, मैं ऐसा कर रहा था, यहाँ क्यों आया था? इस तरह मैं क्यों टहल रहा था? आसपास के लोगों के बारे में मैं कुछ भी तो नहीं जानता था, जिन्हें ऐसी ठण्ड में नग्न घूमने

और नहाने में आनन्द आ रहा था। खाड़ी के दूर के छोर की बस्ती का नाम तक मुझे मालूम नहीं था।

खड़े बालोंवाला एक व्यक्ति हाथ में झाड़ू और कूड़ा जमा करने की कचरिया लिये बड़बड़ाते हुए तट के चक्कर लगा रहा था और बेढंगे तरीक़े से तथा बड़ी कोशिश करके रेत में से सिगरेट के टुर्रों को और आइसक्रीम के काग़ज़ों को उठा रहा था। सारा जमा किया कचरा सीमेंट के कूड़ेदान में डालते हुए वह ज़ोर-ज़ोर से भद्दी गालियाँ दिए जा रहा था। मैं बूझने की कोशिश कर रहा था कि यह व्यक्ति कौन है? मैं उसकी ओर आँखें गड़ाए देख रहा था। मैं सत्तर लाख की आबादी वाले शहर से आया था—सत्तर लाख सवाल थे, जिनका सही-सही जवाब देना बड़ा मुश्किल था।

इस स्नान-तट पर उदासी थी, ऐसी उदासी कि मैंने इस दिन को भूल जाने का निश्चय कर लिया और कि फिर कभी इसकी याद नहीं करूँगा, जैसे कि और भी हज़ारों दिन भुला दिए हैं।

3

इतवार को बहनोई के साथ गाली-गलौज़ हो गई। मछली पकड़ने का और ज़िक्र नहीं हुआ—मैं घर देर से लौटता था, जब उनके सोने का समय हो जाता था। इस तरह आज के दिन तक सब कुछ शान्तिपूर्वक चल रहा था। पर इतवार के दिन हम उलझ ही गए।

जब बहनोई ने कमरे में प्रवेश किया उस समय मैं अपने तीन भानजों के साथ लगा हुआ था। उन्होंने बच्चों को भगा दिया और सोफ़े पर विराजमान हो गए। हम दोनों ने थोड़ा मदिरापान किया। मोटे बहनोई जल्दी-जल्दी साँस ले रहे थे और उदास दृष्टि से देख रहे थे। मैं बच्चों की कुर्सी पर बैठा हुआ था।

बहनोई ने पूछा, "तुम्हारी छुट्टी कब ख़तम हो रही है?"

मैंने जवाब में कहा कि मेरी छुट्टियाँ नहीं होती हैं, क्योंकि मैं कहीं नौकरी नहीं करता हूँ।

"बड़े मज़े हैं।" बहनोई ने कहा।

"ठीक ही है।" मैंने प्रतिवाद नहीं किया।

इतने में अचानक हमारी गाली-गलौज़ शुरू हो गई।

अभद्र ढंग से गर्दनें आगे को करके और एक-दूसरे की अनसुनी करते हुए हम चीख़े-चिल्लाए। कुर्सी से उठकर मैंने बहनोई को घूँसा बस जड़ ही दिया

था। उन्होंने सामने से पकड़कर बनियान के नीचे मेरी कमज़ोर और दुर्बल छाती को मसला और ख़ून से लाल-पीली आँखें दिखाईं। उन्होंने मुझे परजीवी, स्वार्थी और निठल्ला कहा और मैंने उन्हें नौकरशाह, हैवान और भी पता नहीं क्या-क्या कहा। पारस्परिक घृणा से हम काँप रहे थे।

बाद में मुझे होश आया, मैं बैठक से दौड़कर अन्तर्द्वार में आया और जूते पहनने लगा। मेरे जूतों के पास बहन की चप्पलें भी पड़ी थीं, पुराने फ़ैशन की, एड़ी से घिसी हुईं और अभागी। बहन मेरी ओर झपटी और मुझसे चिपट गई।

"क्या हुआ?" उसने फुसफुसाकर पूछा। वह दयनीय दृष्टि से मुझे देख रही थी। और रोने लगी थी।

"क्या हुआ?"

मैंने धीरे-से उसके हाथों को हटाया और बाहर निकल आया।

ट्रॉलीबस में बैठकर मैं अन्तिम स्टॉप तक गया और बन्दरगाह पर पहुँच गया। प्रतीक्षालय में जाकर स्टॉल से सिगरेट ख़रीदी और फिर लंगर में चला गया—भीड़ में धक्का-मुक्की के लिए।

तट से कोई सौ मीटर पर स्टीमर जा रहा था। विशालकाय। उसके पार्श्व का रंग उखड़ गया था। मैं तो यह सोचने को था कि वह तट से आकर लग रहा है कि इतने में हरी फ्राक पहने हुए एक रोती हुई वृद्धा दिखाई दी। वह रूमाल हिला रही थी। मैं समझ गया कि स्टीमर आ नहीं, जा रहा है, कहीं दूर।

बन्दरगाह की दीवार के साथ सेना के जवान अपना अलग झुण्ड बना कर बैठे हुए थे। पसीना, तम्बाकू और चमड़ी का गहरा मिश्रण, पुरुषों के कठोर जीवन की गन्ध जवानों के आसपास की गरम हवा में फैली हुई थी। मैं उनके पास से निकला, मुझे लगा कि उनकी चमकीली और काली, चमचमाती, प्रसन्न तथा भावहीन आँखें मेरी ओर देख रही हैं।

बन्दरगाह के निकट मैं ट्राम में बैठा और फिर से आख़िर तक चला गया। वहाँ, ट्राम के अड्डे पर नीले खोखों के पास कुछ लोग जमा थे। खाड़ी वहाँ से भी, अभी तक हरे बाग़ों के बीच में से, बिजली की लाइनों के काले तारों के जाल के बीच में से भी नज़र आ रही थी। स्टीमर अभी तक खाड़ी में से निकल नहीं सका था। दूर से वह जहाज़ सुघड़ लग रहा था और उसकी बनावट भी अच्छी दिखाई दे रही थी।

मुझे भूख लग आई थी। मैंने खोखे से दो भरवाँ पिरष्की[1] ख़रीदीं। हाथ

में पिरष्की लिए मैं आगे चल दिया और जल्दी ही एक अजीब जगह पहुँच गया। जैसे कि मैं नदी के तट पर पहुँच गया था, पत्थर की मुँडेर के दूसरी तरफ़, बस पानी की कमी थी। नीचे रेलवे लाइन थी। कंक्रीट के सूखे तल से होकर चमकती हुई पटरियाँ दोनों तरफ़ को जा रही थीं।

मेरे नीचे पटरियों के पास काले मोबिल ऑयल का डबरा चमक रहा था। मैंने ज़रा-सा दाँत से काटकर बाक़ी पिरष्की डबरे में फेंक दी—एक मैंने खा ली थी, दूसरी नहीं खाई गई क्योंकि उसके अन्दर से बास आ रही थी। मैं खड़ा-खड़ा चारों तरफ़ नज़र दौड़ा रहा था, समझ नहीं आ रहा था कि आगे जाऊँ या नहीं।

शुष्क और मन्द आकाश में एक कबूतर अपने सफ़ेद पंख फड़फड़ा रहा था। वह आगे बढ़ते हुए उल्लासपूर्वक गोते लगा रहा था। उसके उल्लास का मैं अनुमान नहीं लगा पा रहा था। मुझे अपने चित्र याद आ गए। उनकी उदास और असहाय स्थिति, उनके सामने और उनके साथ का मेरा एकाकीपन मुझे याद आया। कठोर मायूसी ने मुझे जकड़ लिया था। अचानक कबूतर हवा में तैरते हुए पंख फैलाकर मुड़ा और नीचे पत्थर की मुँडेर के पास आकर उतर गया। बस, क्षण भर के लिए उसने मेरे ऊपर नज़र टिकाई और फिर अशान्त भाव से गर्दन मोड़कर नीचे तेल के डबरे को देखने लगा।

मैंने उससे कहा, "उधर किधर देख रहा है, बुद्धू परिन्दे? तू पिरष्की लेना चाहता है क्या? ऐसा करने की हिम्मत मत करना, अभागे। वहाँ मोबिल ऑयल का डबरा है, तेरे सफ़ेद पंखों में धब्बे लग जाएँगे। कबूतर, नीले आकाश में उड़, वहीं तेरी दुनिया है। अपना भोजन कहीं और जाकर ढूँढ़। मुझे मालूम है कि तू हमेशा भूखा रहता है। तुझे कूड़ेदानों को टटोलना पड़ता है। पर तू सफ़ेद और सुन्दर है। इसी में तेरी सच्ची पहचान है। इसीलिए इस डबरे से दूर चला जा, उड़ जा, प्यारे कबूतर।"

कबूतर ने मेरा कहा मान लिया और वहाँ से उड़ गया।

आसपास कुछ नहीं बदला था। पहले जैसी ठण्ड बहाल थी, मुड़ी हुई तलवारों के घावों की जैसी। रेल की पटरियाँ चमक रही थीं। स्टीमर अभी तक खाड़ी में से बाहर नहीं निकल सका था। अभी वह सीमेंट के स्तम्भ के पास दिखाई दे रहा था, जिसमें से उच्च वोल्टवाले के तार जा रहे थे। काले डबरे में पड़ी पिरष्की पीली-पीली दिखाई दे रही थी।

---

1. बड़े या पैटी जैसा एक खाद्य।

मैं ट्राम के अड्डे पर वापस लौट आया। गाड़ी में बैठा और शहर को चल दिया। ट्राम ख़ाली थी। महिला-कंडक्टर माथा सिकोड़े और सिर लटकाए चुपचाप कुछ गुनगुनाए जा रही थी।

मैं किसी सीढ़ी पर ऊपर चढ़ रहा था। इस शहर में सीढ़ियाँ बहुत थीं। मैं किसी बड़ी सड़क पर आ गया था। शहर और समुद्र रात की रोशनियों में चमक रहे थे। इतने में मैंने पीछे मुड़कर देखा तो एक भव्य जुलूस जाता दिखाई दिया। सब-के-सब युवा थे। सब चुपचाप और शान से चले जा रहे थे। मैंने कभी इतने लम्बे युवकों और इतने अच्छे ढाँचे की बलिष्ठ कन्याओं को नहीं देखा था। सब बहुत अच्छे कपड़ों में थे—महँगे और उजले स्वेटर पहने और पतली सिन्थेटिक बरसातियाँ ओढ़े। ये किसी और ही नस्ल के भीमकाय लोग थे। कैसे तो चेहरे थे और कैसी थीं उनकी आँखें। कितना अभिमान और शान्तिमयता थी! उनकी दृष्टि में कैसा प्रशान्त प्रकाश था! यह क्या है?—मैंने अपने आप से पूछा। मैं किस दुनिया में आ गया हूँ? ऐसे लोग कहाँ से आ गए? इन्हें मेरे सफ़ेद कबूतर, मेरी बहन और मुझसे क्या लेना-देना है? पर मुझे वे पसन्द आ रहे थे, मुझे उनमें आनन्द आ रहा था। उनके गर्वीले संसार का इस बात से कुछ रहस्यपूर्ण सम्बन्ध था कि मुझमें रंग की ऐसी बुरी समझ नहीं थी, कि मैं स्वयं अपना बड़ा चित्र बना सकता था।

पर अचानक मैं सिहर गया—मुझे अपनी ओर आती हुई जुड़वाँ बहनें दिखाई दीं। उन्होंने एक-दूसरे के हाथ पकड़ रखे थे, दोनों एक जैसी पीली बरसातियाँ ओढ़े थीं और भारतीय देवताओं की तरह आँखें झुकाए हुए थीं। वे बाईं तरफ़ से मेरे पास से गुज़रीं। जब मैं मुड़ा तो मुझे दो एक जैसे पश्चकपाल दिखाई दिए। वहाँ मोटी चोटियाँ लटक रही थी। मुझे दो बिलकुल एक जैसी पीठें दिखाई दीं।...

यह दृश्य एक क्षण में लुप्त हो गया। अचानक शहर की रोज़मर्रा की भीड़ ने, शाम की भीड़ ने मुझे झकझोर दिया। काम करने की वर्दी पहने एक नौसैनिक सोडावाटर पी रहा था। सफ़ेद सूती कोट पहने बेचनेवाली बिना नज़र उठाए उबासियाँ लेते हुए गिलास धो रही थी।

बहनोई को मुझसे अपार घृणा थी, जिसे सहन करने का धैर्य अब मुझमें नहीं रह गया था। मेरे बहनोई शक्की क़िस्म के थे और उनका शायद यह ख़्याल

हो कि मैं उनके भीतर झाँक रहा हूँ, कि स्लीपर पहने और सिगरेट पीते हुए मैं विद्वेषपूर्ण आनन्द के साथ ऊपर से नीचे तक उनका मुआयना करता रहता हूँ, जब वह सीढ़ियों पर लड़खड़ाते हुए गिरते-पड़ते आते हैं और नशे में सीढ़ियों के जंगले का सहारा लिए रहते हैं। मुझसमें कोई विद्वेष नहीं था। मुझे मालूम था कि वोदका पीकर वह अपना दिमाग़ कितना भी क्यों न ख़राब करें, कितना भी स्वयं अपने से विमुख क्यों न हों और केवल किताबी सच्चाइयों को ही पसन्द क्यों न करें, जो उन्हें बग़ैर सोचे-समझे, बिना चिन्तन के जीने का अवसर देती हैं, फिर भी अपनी अनन्यता से वह मुक्त नहीं हो सकती हैं, उसी तरह जिस तरह अपने जन्म और अपनी मृत्यु से। चिन्तनहीनता कालान्तर में पीड़ादायक दुर्गुण बन जाती है

अपनी अनन्यता की पीड़ा को कम करने का कुछ अवसर चित्रकार को प्राप्त होता है, जो उसके चित्रों में प्रतिबिम्बित और प्रतिस्थापित होता है—आख़िरी साँस में भी चाहे अफसलता ही हो और जीवन भर कोरे काग़ज़ के सामने असमंजस स्थिति में एकाकी ही क्यों न बैठना पड़े—पर मैं उनसे ज़्यादा ही सुखी था। तो क्या किसी की निन्दा करने का मुझे अधिकार था? मेरे प्रति उनका क्या दोष था?

पर एक दिन ऐसा हुआ कि ज़रा नशे में आकर बहनोई साहब किताब ही फाड़ने पर उतारू हो गए। यह किताब थी मोदिल्यानी के बारे में एक मोनोग्राफ़, जिसमें उसके रंगीन चित्रों की प्रतिकृतियाँ दी हुई थीं। यह पुस्तक मुझे किताब-कबाड़ी के यहाँ अचानक ही मिल गई थी। मैंने फाड़ने का मौक़ा नहीं दिया और किताब उनके हाथ से झपट ली। वह चिल्लाए कि यह सरासर ज़ुल्म है—इस तरह लोगों को विकृत करना जैसे कि इस चित्रकार ने किया है। छाती पीटते हुए वह चिल्लाए जा रहे थे—"मुझे नहीं ज़रूरत ऐसे चित्रों की।" मैंने सुलह के भाव से कहा—"तुम्हारे बच्चों को बड़ा होने पर इनकी ज़रूरत होगी।" पर वह आगबबूला हुए जा रहे थे। उन्हें इससे कोई मतलब नहीं था कि कला का सौन्दर्य इसी बात में ही तो है कि वह सौन्दर्य अनन्य होता है, कि कलाकार बाह्य जगत से केवल आधा ही ग्रहण करता है, शेष आधा उसकी आत्मा में छिपा होता है और प्रत्येक की आत्मा की दृष्टि अलग-अलग होती है। वह चिल्लाकर कह रहे थे—"भाड़ में जाए आत्मा! तुम ऐसा करो कि मुझे समझ में आ सके।" वह किताब को फाड़ डालना चाहते थे, पर मैंने बचा ली। मैंने उसे दूसरे कमरे में ले जाकर सूटकेस के तले में सबसे नीचे छिपा दिया। उनकी दृष्टि में वास्तव में ही मैं औरों के लिए अहितकर और व्यर्थ का इंसान था। दूसरी ओर मेरा विचार था

कि नामहीन पंछी के तक आत्मा होती है और वह मुझे उसी कबूतर के रूप में दिखाई देती थी—जो चिट्ट सफ़ेद और बेदाग़ था तथा जिसकी छाती और पंखों में शानदार और स्पष्ट रेखाएँ खिंची हुई थीं।

मैं बहन के पास देर से लौटा। घण्टी का बटन दबाया ही था कि बहन ने दरवाज़ा खोला।

"उन्होंने झगड़ा तो नहीं किया?" मैंने धीमे स्वर में पूछा।

"नहीं तो। छाती में दर्द होने लगा था। सो गए हैं।" बहन ने गुस्से में जवाब दिया।

मुझे ख़ुद ही अन्दाज़ हो गया था कि वह सो रहे है—खर्राटों की आवाज़ आ रही थी। रसोईघर में आकर बहन ने पूछा, "क्या किया उन्होंने तुम्हें? तुम्हारी आपस में बिलकुल भी बनती क्यों नहीं है? कुछ खाओगे?"

"नहीं। दीदी, कल मैं चला जाऊँगा।" मैंने कहा।

"वाह!" इतना कहकर वह रोने लगी। उसका रोना बहुत स्वाभाविक था, "क्या कहने मेहमानी के! कितने सालों से नहीं मिले थे!"

"दीदी, तुम्हारा कोई दोष नहीं है। और मेरा भी शायद कोई दोष नहीं है।"

'तुम्हें किसने दोष दिया है? अब कब मिलेंगे?...हे भगवान, हे भगवान!" वह विलाप कर रही थी।

"दीदी...।" मैं कुछ कहते-कहते रुक गया।

सफ़ेद कबूतर का विषाद मुझमें अभी भी गूँज रहा था। मैंने बहन को अपनी तरफ़ खींचा और उसके दुबले कंधों को सहलाया, पर ढाढ़स देने को दिमाग़ में कुछ नहीं सूझा। मैंने कहा, "वहाँ एक लाल कप मुझसे टूट गया है। तुम उसके लिए मेरी तरफ़ से उन लोगों से माफ़ी माँग लेना। अगर कहीं दिखाई दे तो बिलकुल वैसा ही ख़रीद देना।... अपने पति के साथ मज़े से रहो।... वह बुरे आदमी नहीं है। मेरा विश्वास करो। उन्हें ज़रा और सुखी बनने में मदद दो। और तुम ख़ुद भी ज़रा और खुश नज़र आओ। जीवन को उदास लोग पसन्द नहीं हैं। दीदी, जीवन में अच्छाई न देखना असह्य है, अन्यायपूर्ण है, अनुचित है। और जहाँ तक हो सके रोया मत करो।"

यह कहकर मैं वहाँ से चल दिया। फ़िलहाल मैं उसके लिए और कुछ नहीं कर सकता था, मैं उसे केवल प्यार कर सकता था। अभी तो मुझे अच्छा चित्रकार बनने के लिए जी-तोड़ मेहनत करनी थी।

सोमवार को जब हम सब—बहन, बच्चे, और मैं—अहाते में टैक्सी के पास खड़े हुए थे तो बहनोई हाँफते हुए वहाँ पहुँचे। दफ़्तर से छुट्टी माँगकर आए थे। हमने कसकर आलिंगन किया।

जो भी हो, वह ऐसे व्यक्ति थे, जिनसे मैं जीवन में अब और शायद ही मिलूँ और...मेरे लिए वे सर्वथा निर्दोष थे।

दो भानजे मुझे पीछे से हाथ हिलाए जा रहे थे, तीसरा—छुटका—बहन की गोद में था।



साभार : अनातोली किम—सलावीनोये एखो (बुलबुल की गूँज) मास्को, 1980

सम्पत्ति की त्रासदी

व्याचेस्लाव पेत्सूख़

प्रूदों के अनुसार सम्पत्ति चोरी है। प्रूदों निश्चय ही ठीक था। वह निश्चित रूप से इसलिए ठीक था, क्योंकि उसकी बात तब भी सही बैठती है, जब सम्पत्ति वास्तव में चोरी का परिणाम नहीं होती है। उदाहरण के लिए, यह सम्पत्ति इस बात का परिणाम होती है कि आपकी कमाई बहुत ज़्यादा है और चूँकि मुल्क में समय तो सीमित मात्रा में है और यदि आप बहुत अधिक कमा रहे हैं तो निश्चय ही कोई बहुत कम कमा रहा होगा। तो यह चोरी से मिलता-जुलता ही हुआ। वस्तुतः उक्त विचार अपने आप में विचार उतना नहीं है, जितना कि श्लेष अलंकार है। वास्तव में बात इस प्रकार है—लिखने-पढ़ने, उठने-बैठने, खाने-पीने और ढँकने-ओढ़ने की कोई भी सुविधा यदि हमारे सामाजिक अस्तित्व से उत्पन्न उपयोगिता के सही अनुपात में होती है तो वह वैध है, जायज़ है और प्राप्त की जा सकती है। बाक़ी सब कुछ निरी चोरी है, चाहे वह किसी को दूर तक भी न छूए।

यह विषयान्तर सिद्धान्ततः आवश्यक था, क्योंकि कुछ समय से हमारे यहाँ ऐसा धोखे का विचार प्रचलित हो गया है कि यदि कोई व्यक्ति चोरी करता है, परन्तु उसे जेल की सज़ा नहीं दी जा सकती तो यह चोरी नहीं है। ऐसे दृष्टिकोण का पर्दाफ़ाश करना जरूरी है, परन्तु इसके लिए केवल इतना कहना ही पर्याप्त नहीं होगा कि 'चोरी करना बुरा है', न यह कि 'चोरी करना बुरा है, चाहे वह कितनी भी आसान क्यों न हो' और न यह कि 'जब तक हो सके करते जाओ।' चोरी के बारे में तो ऐसी साफ़गोई की ज़रूरत है कि समझदार-से-समझदार और मूर्ख-से-मूर्ख भी पूरी तरह आश्वस्त हो जाए कि चोरी करना लाभदायक नहीं है, मूर्खता है, इसलिए चोरी न करने में ही अधिक समझदारी

और लाभ है! ख़ैर, जो भी हो, हमारी परिस्थिति में, सोवियत संघ की भौगोलिक सीमा के अन्दर, यहाँ की विशिष्ट जीवन-शैली और जातीय स्वरूप के कारण अनुपात से अधिक सम्पत्ति का होना तो त्रासदी है, दुर्भाग्य है और एक बोझ है। अकाकी अकाकियेविच को ही लो, जिसने जैसे-तैसे एक नया ओवरकोट जोड़ा था और उसे प्राप्त करते ही चल बसा।

इसमें तो कोई कहने की बात ही नहीं है कि क्लासिकल श्रेणी के चोर को कुछ सिद्ध करके नहीं दिखाया जा सकता, वह किताबों से दूर ही रहता है और क्योंकि बहुत पहले से ही हमारे देश में ऐसा रहा है कि या तो कोई पढ़ेगा ही या चोरी ही करेगा। लेकिन जो चोरी करता है—सामान्य बुद्धि यही कहती है—वह अच्छा-ख़ासा जीता है और जब चोरी नहीं करता, तब कभी-कभार हाथ में किताब भी ले लेता है। यह बात एकदम स्पष्ट है। तो उन्हीं के लिए यह प्रमाण प्रस्तुत है कि हमारे यहाँ की परिस्थितियों में चोरी न करने में ही अधिक बुद्धिमानी और लाभ है।

मास्को की निकीतिन्स्किये वरोता नामक बस्ती के एक नए विशाल भवन में एक अपेक्षाकृत जवान व्यक्ति रहता है, जिसका नाम है, स्पिरिदोनोव। वह पुराने सामान की ख़रीद के दफ़्तर में सामान के जाँचकर्ता के पद पर काम करता है। पचास के रूमानी दशक में जब इस तरह के पेशे से लोग बचा करते थे और पुराने सामान को कबाड़ कहा करते थे जाँचकर्ता की नौकरी से गुज़ारा मुश्किल से हो पाता था। अस्सी के बदले हुए दशक में वही स्पिरिदोनोव इसी नौकरी में खूब रुपये बना रहा है। वह ऐसा कैसे कर लेता है!...एक : वह बटन बेचता है। दो : पुरुषों के पुराने बेकार हुए सूटों को थोक में बेचता है, जिन्हें प्राइवेट धन्धा करनेवाले हाथों-हाथ ले लेते हैं और उनसे टोपियाँ बनाते हैं। तीन : रद्दी के बहाने लाई गई किताबों से भी उसकी अच्छी आमदनी है। चार : उसने एक औरत रख रखी है, जो उसे ऊनी सामान लाकर देती है और अलग से भी वह ऊन बेचता है।...इत्यादि-इत्यादि। कुल मिलाकर स्पिरिदोनोव के पास ऊपरी कमाई के इतने तरीक़े हैं कि उनकी संख्या एक दर्जन तो होगी ही। परन्तु सबसे विशिष्ट बात यह नहीं है, सबसे बड़ी विशिष्टता तो यह है कि अपराध क़ानून की दृष्टि से उक्त सब कुछ तो दूर तक भी किसी को छू नहीं सकता और यह कि स्पिरिदोनोव को जेल में डालना सम्भव ही नहीं है।

उसके हेराफेरी के कामों का नतीज़ा सामने है : उसके पास दाचा है, चीनी मिट्टी के दाँत हैं, गाड़ी है, खूबसूरत पत्नी है और पालदार नौका है, जिसे उसने यारोस्लावूल के निकट रखा है। अभी कुछ समय पहले तो उसके मकान में जाते भी डर लगता था—प्रवेश द्वारवाले गलियारे की दीवार में कीमुख़्त की

ख़ाल मढ़ी थी, बैठक की एक दीवार शीशे की थी, दूसरी भी शीशे की और तीसरी दीवार में क्योतो के राजकीय महल का विशाल दृश्य चित्रित था, शयन-कक्ष में क्रीम कलर का रेशम लगा हुआ था, स्नानागार में बाँज के वृक्ष की लकड़ी लगी हुई थी, शौचालय नक़ली डालरों से सजा हुआ था और रसोईघर जहाज़ के कप्तान के उपाहार-गृह जैसा था।

अब स्पिरिदोनोव के पास केवल चीनी के दाँत और यारोस्लाव्ल के निकट पड़ी पालदार नौका ही बची है, बाक़ी सब कमो-बेश मिट्टी में मिल गया है। मज़ेदार बात तो यह है कि स्पिरिदोनोव के ख़ानदान में ऐसा दिवाला पहले भी निकल चुका था। स्पिरिदोनोव के परदादा को जिनकी बिसात की मिल महान अक्तूबर क्रान्ति में जाती रही थी, उसकी मृत्युपर्यंत अखोत्नी र्याद के इलाक़े में सिगरेट बेचते देखा जा सकता था। स्पिरिदोनोव के दादा ने ख़ानदानी शान को फिर से बनाने की शुरुआत की थी और यों कहना होगा कि उनका तरीक़ा एकदम अनोखा था—वह नज़राना लिया करते थे। सन् 1926 में जब स्पिरिदोनोव के दादा बाइकाल पार के क्षेत्र में बोर्ज़्या स्टेशन से दो सौ किलोमीटर दूर जंगल के पहरेदार लगे थे, तब एक बार उनका सम्पर्क एवेंक जनजाति के लोगों से हुआ जो इतने नेक और सरल स्वभाव के थे कि उनको धोखा देना उन्हें बड़ा सहज मालूम हुआ। उन्होंने अपने को बाइकाल पार के गाँवों का कमिस्सार बताकर नज़राना वसूल करने का आदेश दिया। तीन साल बाद धोखे का पर्दाफ़ाश हुआ और यह झूठा कमिस्सार तब रूस की तरफ़ भागता गया। व्लादीमिर ज़िले के मुरोम स्टेशन पर उनका रुपयोंवाला बक्सा चोरी चला गया। उसमें एवेंक लोगों से ऐंठे हुए रुपये पड़े थे। चोरी के आघात को वह सह नहीं सके और वहीं मुरोम के अस्पताल में स्नायविक तनाव के कारण वह चल बसे। इस तरह स्पिरिदोनोव के पिता को भी शून्य से ही शुरू करना पड़ा। उसकी शुरुआत ऐसे हुई—उसने अपना जलाशय खुदवाया और उसमें कुछ चमकीली शफ़री मछलियाँ डलवा दीं। दो साल बाद जब शफ़री वज़नदार हो गईं, तब उनसे उसने दस हज़ार रूबल बना लिए, तीसरे साल पन्द्रह हज़ार रूबल, परन्तु चौथे साल आसपास के खेतों में कोई ऐसा विनाशक उर्वरक डाला गया कि सारी मछलियाँ एकाएक मर गईं। इसके बाद तो स्पिरिदोनोव के पिता को पीने की ऐसी लत लग गई कि उसने अपने बेटे के लिए, समझो, कुछ भी नहीं छोड़ा, सिवाय उन एक हज़ार रूबलों के, जो उसने अपने बेटे को माध्यमिक स्कूल पास करने पर उपहारस्वरूप दिए थे। इन्हीं रुपयों से स्पिरिदोनोव ने पुराने सामान के जाँचकर्ता की नौकरी हासिल की थी, जहाँ वह ख़ूब रुपए बनाने में लगा है।

अब अचानक एक अप्रत्याशित मोड़ आता है। उसी भवन में एक और लगभग युवा व्यक्ति रहता है, दो मंज़िल ऊपर। दोनों के घर का प्रवेश एक ही रास्ते से है। उसका नाम है बुरुन्दुकोव। वह स्वचालित नियन्त्रण प्रणाली का विशेषज्ञ है। बुरुन्दुकोव को गम्भीर, किन्तु कुछ अस्पष्ट कारणों से स्पिरिदोनोव से बहुत पहले से ही नफ़रत रही है। पहला कारण : बुरुन्दुकोव को स्पिरिदोनोव की अनुपात से अधिक समृद्धि से चिढ़ थी, जो स्वाभाविक बात थी, क्योंकि पढ़ा-लिखा साधारण सोवियत व्यक्ति नेक क़िस्म का इन्सान होता है, यहाँ तक कि कुछ-कुछ कवियों जैसा, जो और कुछ नहीं तो इतना तो करता ही है कि ढाई सौ रूबल की सीमा से बाहर जो भी हो उसे शंका के साथ टेढ़ी नज़र से देखता है। दूसरा कारण : वह स्पिरिदोनोव की छिपी हुई प्रसिद्धि से तथा उसकी सामान्य रंग-ढंगवाली सूरत से चिढ़ता था, जिस पर लिखा था—"मूर्खो, जीना सीखो।" तीसरा कारण : स्पिरिदोनोव कुछ-कुछ उजड्ड भी था। और चौथा तथा अन्तिम कारण यह था कि बुरुन्दुकोव को स्पिरिदोनोव की पत्नी से लगाव था बल्कि उससे अधिक कुछ और भी। इस बात को इसलिए भी नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता क्योंकि जब भी बुरुन्दुकोव की अचानक स्पिरिदोनोव की पत्नी से भेंट होती थी तो वह आँखों-आँखों में उसे अपनी बात अवश्य कह देती थी—"हो सकता है कि तुम अच्छे मुझिक हो, पर बड़े कामों में तुम मुझिक नहीं हो।"

इससे बुरुन्दुकोव आपे से बाहर हो जाता था। ऐसा सोचना भी उसके लिए असह्य था कि महीने के डेढ़ हज़ार रूबल बनानेवाले धूर्त को मुझिक माना जाए, सम्मान दिया जाए और सम्भवतः पूजा भी जाए और दूसरी ओर वह है—स्वचालित नियन्त्रण प्रणाली का विशेषज्ञ—जिसे मुझिक नहीं माना जाता है क्योंकि वह हेरा-फेरी करना नहीं जानता और अपनी साधारण हालत की जिसे चिन्ता नहीं है। परिणामस्वरूप उसके पास केवल वह है, जो पढ़ा जाता है, जिस पर बैठा जाता है, खाया जाता है, जिससे शरीर को ढँका जाता है। हाँ, इसमें शायद सभ्यता की प्रतीक कुछ छोटी-मोटी चीज़ों की भी गिनती हो सकती है, जैसे 'स्तार्त' टेलीविजन, जिसमें पता नहीं क्यों केवल शैक्षिक प्रोग्राम ही आते हैं और 'ख़ार्कोव' साइकिल, जिसकी ब्रेकें ही ख़राब होती रहती हैं। अन्ततः इन विचारों के मारे बुरुन्दुकोव ने एक ऐसी करतूत कर डाली, जो अप्रत्याशित तो थी ही, पूरी तरह उचित भी नहीं कही जा सकती थी—किसी कड़वे क्षण में उसने स्पिरिदोनोव की पत्नी को लिफ़्ट में झट से दबोच डाला।

जब स्पिरिदोनोव की पत्नी ने अपने पति से चौथी मंज़िल में रहनेवाले मूर्ख की शिकायत की तो स्पिरिदोनोव ने उसी क्षण एक गिलास कोन्याक गटकी, पेंचकस हाथ में लिया और लिफ्ट का बटन दबाकर बदला देने को चल दिया। उसने बुरुन्दुकोव के घर की घण्टी दबाई और मन में सोचने लगा—"मैं इसकी ऐसी-की-तैसी करके रख दूँगा, चाहे जेल ही क्यों न जाना पड़े!"

बुरुन्दुकोव पट्टीदार चड्ढी और बुना हुआ ऊनी स्वेटर पहने दरवाज़ा खोलने आया।

"नमस्ते, कुत्ते के बच्चे! मैं अभी तेरी ऐसी-की-तैसी करता हूँ।" स्पिरिदोनोव ने कहा।

"आइए!" बुरुन्दुकोव ने जवाब दिया। निर्लिप्त भाव से कहे गए 'आइए' ने स्पिरिदोनोव पर कुछ-कुछ ऐसा प्रशमनकारी प्रभाव डाला कि उसकी बदला लेने की इच्छा ही ग़ायब हो गई। यहाँ तक कि उसने ऐसा प्रयास भी किया कि चेहरे का प्रचण्ड भाव लुप्त न हो। इस तरह वह अन्दर प्रविष्ट हुआ।

"घर में कोई नहीं है—जैसे कि जान-बूझकर ऐसा हुआ है।" यह कह कर बुरुन्दुकोव ने इतना और जोड़ दिया, "इसलिए तुम अपनी बात शुरू कर सकते हो।"

"कौन-सी बात?" स्पिरिदोनोव ने पूछा। उसके चेहरे का प्रचण्ड रूप सामान्य गुस्सेवाला हो गया था।

"कौन-सी बात? तुम तो मुझे—मालूम नहीं, तुम उसे क्या कहोगे—जान से मारने आए थे।...तो मार डालो! वर्ग-संघर्ष तो ख़ून की बात है।"

"कौन-सा वर्ग-संघर्ष? आपका मतलब क्या है?" स्पिरिदोनोव ने कहा। अब वह 'तुम' से आप पर आ गया था।

"एकदम असली वर्ग-संघर्ष, जिसके मोर्चे के एक तरफ़ मज़दूर हैं यानी हम लोग और दूसरी तरफ़ हैं बदमाश यानी, आप लोग। आप चाहे मुझे इसी समय क्यों न मार डालें, हम देर-सवेर आपके देशद्रोही गिरोह को नष्ट कर ही डालेंगे, जो सुनियोजित ढंग से समाजवाद की जड़ों को खोखला करने में लगा है।"

स्पिरिदोनोव ने कहा, "देखिए आप अपनी उत्तेजनात्मक बातों को अपने पास ही रखिए। मैं कहाँ का वर्ग-शत्रु हो गया? धत्! मैं तो बिजनेसवाला आदमी हूँ। समझे? अगर मेरे जैसे लोगों को ज़िम्मेदारी के पदों पर रखा जाता तो दस साल बाद अमेरिका पूर्व के देशों के साथ आर्थिक सहयोग के लिए संघर्ष कर रहा होता।"

बुरुन्दुकोव बोला, "ये तो कहने की बातें हैं। बिजनेसमैन तो धन्धा करता है, आप तो रुपये बनाते हैं। वास्तव में आप सब दिमाग़ी मरीज़ हैं। समझे?"

"आपने हमें दिमाग़ी मरीज़ यानी पागल कैसे कह डाला?" स्पिरिदोनोव ने बुरा मानकर पूछा और कुर्सी के एक सिरे पर बैठ गया।

"उदाहरण के लिए, इसलिए कि समय-समय पर आपको रुपयों के कारण जेल जाना पड़ता है। कोई पैसे की वजह से जेल चला जाए—ये तो, भई, हँसी की बात है। आपको यह बात समझ में कैसे नहीं आती? एक और भी उदाहरण ले लो—आप सबको इस बात का पूरा विश्वास है कि आप जीना जानते हैं, पर असलियत यह है कि आपको यही नहीं मालूम कि जीना किसे कहते हैं। आप बच्चों-जैसे हैं, जिनकी दुनिया एक छोटी-सी खिलौना बाल्टी और बच्चा गाड़ी तक सीमित होती है जबकि दुनिया को दालान में या सड़क में या शहर अथवा पूरे देश में बाँधकर नहीं नापा जाता।..."

स्पिरिदोनोव ने जेब से रूमाल निकालकर नाक पोंछी और फिर कहा—

"यह तो आदर्शवाद है और जीवन से बिलकुल कटा हुआ है। सच बात तो यह है कि दर्शन की बातें बिना बोतल के समझ में नहीं आती हैं। वैसे, आपके पास बोतल तो होगी ही?"

"मैं नहीं पीता।" बुरुन्दुकोव ने गुर्राकर कहा और टेढ़ी नज़र से देखा—वास्तव में वह पीता था।

स्पिरिदोनोव को कुछ अच्छा-सा नहीं लगा।

"सुनो, भई। 'आप' के बदले 'तुम' कहना ज़्यादा अच्छा रहेगा।" उसे ऐसा लग रहा था कि मामला बिगड़ता जा रहा है, इसलिए उसने ऐसा प्रस्ताव रखा है। "तुम्हें किस नाम से बुलाते हैं, भलेमानस?"

"पावेल।" बुरुन्दुकोव ने उत्तर दिया।

"मुझे सेर्योगा कहते हैं।"

बुरुन्दुकोव ने एक मिनट तक स्पिरिदोनोव पर नज़र जमाए रखी, जैसे कि वह हमेशा के लिए उसका काम तमाम कर देने की सोच रहा हो। फिर वह रसोईघर में गया और वहाँ से वोदका की आधी ख़ाली बोतल और फ्राइङ् पैन में रखे तले आलू लेकर अचानक आया।

"गरम करूँ या ऐसे ही चलेगा?" आलू की तरफ़ इशारा करके उसने पूछा।

"चलेगा।" स्पिरिदोनोव ने हाथ हिलाकर कहा।

दो-दो गिलास पीने और कुछ आलू खाने के बाद बुरुन्दुकोव ने चिढ़ाने के लिए कहा,

"सेर्योगा, मुझे तुम पर बड़ी दया आती है कि अमूल्य जीवन को तुमने यूँ ही गवाँ दिया।"

"शायद नहीं भी।" स्पिरिदोनोव ने अपनी ओर से आपत्ति की।

"नहीं, सेर्योगा। यह सुनिश्चित है। आम आदमी के लिए और चाहे जो हो, पैसा ही सब कुछ नहीं होता। संग्रह का साधन, भुगतान का साधन, दुनियादारी—लेकिन सब कुछ फिर भी नहीं। इसीलिए तो कहता हूँ कि सेर्योगा, तुमने अपने को बर्बाद कर डाला है। बिना चाकू के काट डाला है और ज़िन्दा दफ़ना दिया है।"

"नहीं, तुम्हारी ज़िन्दगी बेकार रही है।"

"क्या कहा—बेकार? मैं आपकी बात समझा नहीं।..."

"आपकी या तुम्हारी?"

" 'तुम्हारी'। बेकार से क्या मतलब है तुम्हारा?"

"सभी कुछ तो। तुम शायद मेरी आलोचना करने में इसलिए लगे हो, क्योंकि तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं।"

"सरासर झूठ है!..." बुरुन्दुकोव ने सिर हिलाते हुए उत्तेजित होकर कहा। "अगर मेरे पास रुपए होते तो, बताऊँ, मैं उनसे क्या करता? मैं एक ट्रक भर का टॉफ़ी ख़रीदता। किसी चौराहे पर खड़ा होकर मास्कोवासियों को यूँ ही टॉफ़ियाँ बाँटता। प्रसिद्ध लेखक इल्फ़ इसका सपना देखा करता था।"

"तुम सोचते हो कि मैं ऐसा नहीं कर सकता?" स्पिरिदोनोव ने कहा।

"बिलकुल नहीं कर सकते, क्योंकि तुम झूठे और बदमाश हो और केवल मीन-मेख ही निकाल सकते हो।"

"इसीलिए तो ऐसा कर सकता हूँ।"

"नहीं, तुम नहीं कर सकते!"

"मैं तुम्हें अभी सिद्ध करके दिखाता हूँ। दिखा दूँगा कि कर सकता हूँ। तुम सोचते होगे कि मेरे लिए सामान-वामान ही सब कुछ है, कि रूसी आत्मा मेरे अन्दर नहीं है।..."

"तुम्हारे पास एक पर्स के अलावा और कुछ नहीं है, आत्मा-वात्मा कुछ नहीं है।"

"नहीं, नहीं, ये सब तो बहाने हैं। चलो कोई शर्त लगाकर देखते हैं।"

"कोई से क्या मतलब?"

"एक हज़ार रूबल की।"

"ज़रा सोचो तो सही—मेरे पास एक हज़ार रूबल कहाँ से आएँगे।"

"सही है।...तो मैं बिना एक हज़ार रूबल के भी अपनी बात सिद्ध कर सकता हूँ। तुम्हारे पास सब्बल है क्या?"

बुरुन्दुकोव ने ज़रा सोचकर कहा, "नहीं है।"

"कोई मज़बूत डण्डा तो होगा?"

"वह भी नहीं है। ये वाली पेलमेट निकाली जा सकती है।" बुरुन्दुकोव ने सिर से पेलमेट की ओर इशारा किया, जिसमें पर्दे टँगे हुए थे।

स्पिरिदोनोव ने पेलमेट को ध्यान से देखा, पेचकस लेकर उसे उतारना शुरू किया। जब काम पूरा हो गया, तब उन्होंने पेलमेट को कंधों पर रखा और चौथी मंज़िल से सीढ़ियों के रास्ते नीचे उतरना शुरू किया। वैसे अधिक-से-अधिक आधे मिनट का काम था, किन्तु पेलमेट जगह-जगह टकरा रही थी। इसलिए उन्हें कम-से-कम आधा घण्टा लग गया। सहन में आकर स्पिरिदोनोव ने बुरुन्दुकोव के हाथ से पेलमेट ले ली और उसे अपनी 'नीवा' गाड़ी में बोनट के ऊपर ऐसे पटक दिया जैसे कि मूसल हो और चिढ़ाते हुए बोला, "मतलब, मैं नहीं कर सकता?"

"नहीं।" बुरुन्दुकोव ने पुष्टि की।

पेलमेट गाड़ी के बोनट पर ऐसे टकराई कि वह बीच से चिपक गई।

"मतलब, मैं नहीं कर सकता?" स्पिरिदोनोव ने फिर पूछा और उत्तर की प्रतीक्षा किए बग़ैर पेलमेट को बग़ल के शीशे में दे मारा।...

वह और दस मिनट तक गाड़ी को पीटता रहा, जब तक कि बुरुन्दुकोव के मुँह से यह नहीं निकला—"ठीक है, सेर्योगा, मैं मान गया। अब मेरा फ़्लैट तोड़ने चलते हैं, नहीं तो न्याय नहीं होगा।"

स्पिरिदोनोव ने आपत्ति की, "उसे क्या तोड़ना! वह वैसे ही टॉम काका की कुटिया है। मेरा तोड़ने चलते हैं। अच्छा रहेगा। वहाँ मेरे लिए काम ही काम है।"

"नहीं भई, तुम्हारी पत्नी बुरा मान जाएगी।"

"वह तो इधर है।" स्पिरिदोनोव ने मुट्ठी दिखाकर कहा।

"ऐसी बात है तो मुझे एतराज़ नहीं है।"

गले मिलकर और गाते हुए दोनों स्पिरिदोनोव का फ़्लैट तोड़ने चल पड़े।



साभार : व्याचेस्लाव पेत्सूख–विस्यौलिले व्रेमेना (खुशी का समय) मास्को, 1988

मुझिक, कुत्ता और क़यामत

व्याचेस्लाव पेत्सूख़

तो इसलिए, हमारे यहाँ इतने सारे बेघर लोग हो गए हैं, क्योंकि कुत्तों को स्वभाव से बिल्लियों का भोजन रास आता है। अर्थात् रूस की धरती पर कभी-कभी विचित्र परिणाम देखने को मिलते हैं लेकिन कारण तो उनसे भी अधिक विचित्र होते हैं।

अक्तूबर उन्नीस सौ तिरानवे से मुझिक ख़ाली बैठा था—तब से जब मस्कवा नदी के तट पर 'कलीनिन सेतु' के इलाक़े में प्रगतिवादियों ने प्रतिगामियों की रक्तरंजित धुनाई की थी। इस काण्ड ने उसे ऐसे 'डिप्रेशन' या अपनी भाषा में कहें ऐसी उदासी में डुबो दिया था कि वह ऐसा कटा कि उसने अपने दोहरे अर्थवाले कार्यालय में जाना ही छोड़ दिया, जहाँ सामाजिक नियोजन का काम होता था और जहाँ वह अपनी नौवीं मंज़िल की खिड़की से स्वेच्छापूर्वक हमेशा बाहर तक नहीं देख सकता था। उसकी पत्नी जो मास्को की नगर परिषद में कानूनी सलाहकार के पद पर काम करती थी पहले तो बहुत ख़ुश थी कि मेरा पत्नीव्रत पति घर पर ही बैठा रहता है, क्योंकि वह यूँ ही मटरगश्ती करने वालों में नहीं था और वैसे भी उसे बहुत कम रुपये मिलते थे। परन्तु धीरे-धीरे पत्नी को इस बात से झल्लाहट होने लगी थी। सच, यह भी क्या बात हुई कि हट्टा-कट्टा पुरुष दिन भर सोफ़ा पर पड़ा रहे और कभी अपवादस्वरूप ही बिजली की हॉट-प्लेट की मरम्मत कर दे।...जब तक हुआ उसने सहन किया—एक महीना हुआ, दो महीने हुए, तब तक जब तक कि, यों कहें, एक मामूली-सी घटना ने उसे आपे से बाहर नहीं कर दिया। हुआ यह कि कुत्ते ने बिल्ली की पूँछ काट दी। यह बताना भी ज़रूरी है कि 'सेवास्तोपोल पथ' पर स्थित उनके दो कमरेवाले फ़्लैट में मानों एक छोटी-सी 'दूरोव सर्कस' के जानवर जमा थे—बिल्ली, कुत्ता और

तोता। तोता लोहे के पिंजड़े में अलग से रहता था; बिल्ली ने छोटी-बड़ी अलमारियों में अपना घर बनाया हुआ था; कुत्ता कहीं निचले हिस्से में पड़ा रहता था, जैसे कि विमान का निचला हिस्सा होता है। इसलिए उन पशुओं में कभी भी विशेष तनातनी नहीं रहती थी। बस, एक दिन ऐसा हुआ कि कुत्ते ने बिल्ली की अनुपस्थिति में उसके भोजन में से एक टुकड़ा खा लिया, बिल्ली ने बदले की सहज भावना के वश में आकर कुत्ते की चटाई में मूत दिया और तब कुत्ते ने क्रुद्ध होकर उसकी पूँछ काट दी।

पत्नी तो लगता था कि जान-बूझकर कुत्ते के पति पर्याप्त उदासीन थी, जबकि बिल्ली के प्रति उसके मन में इतना अधिक स्नेह था कि उसने कोई तूफ़ान न खड़ा करके अपने पति से मृतक के से स्वर में बस इतना कहा, "अपने इस हत्यारे को यहाँ से ले जाओ, फिर कभी तुम्हारे क़दम इस घर में नहीं पड़ने चाहिए।"

वैसे इस बात की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता है कि बात पूँछ काटने की नहीं थी, बल्कि दरअसल बात यह थी कि वह दिन भर घर में सोफ़े पर पड़े रहनेवाले मुझिक से तंग आ चुकी थी या फिर उसकी नज़र सार्वजनिक निर्माण विभाग के एक फ़ुर्तीले नौजवान पर गई हुई थी। पर लगता है कि बात शायद पूँछ की ही थी। जो भी कारण रहा हो, मुझिक ने एक गहरी साँस छोड़ी, कुत्ते की गर्दन में चेन बाँधी और विदाईस्वरूप दरवाज़ा धड़ाम से बन्द करके वहाँ से निकल गया।

प्रवेश-द्वार से बाहर निकलकर वे पहले चौराहे तक पहुँचे और किसी सोच में पड़कर वहाँ ठिठक गए—दोनों जैसे कि अपने-अपने सोच में डूबे थे कि किधर जाएँ। वस्तुतः जाने को कहीं था ही नहीं। गल्यानोवो में एक लापरवाह क़िस्म का मित्र रहता था, जो मुझिक को मगरमच्छ के साथ तक शरण दे सकता था, मगर सड़क के रास्ते गल्योनोवो तक पहुँचना सम्भव ही नहीं था और भूगर्भ रेल में कुत्ते के साथ प्रवेश वर्जित था।

मुझिक ने कुत्ते को कोसते हुए कहा, "सब तेरी वज़ह से हुआ है। तेरा पेट कभी भरता ही नहीं है। बिल्ली का खाना खाने की तुझे क्या पड़ी थी?"

कुत्ते ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया और फिर उसने अपराध-बोध के साथ श्वास छोड़ी। उसने अपनी जीभ इतनी बाहर निकाली कि वह लगभग ज़मीन तक पहुँच गई। मुझिक ने अपनी जेबें टटोलकर देखीं—वहाँ मिला उसे एक टुथब्रश, शैम्पेन का डाट, छोटा पाना और डाकघर की रसीद। फिर उसने अपनी सम्पत्ति वापस जेबों में डाल दी और उसी दिशा में देखने लगा जिधर को कुत्ता देख

रहा था। दोनों सजे-सँवरे जैसे दिखाई दे रहे थे—कुत्ता अपने शरीर से और मुझिक चमड़े की जाकेट और इस्त्री की हुई पतलून में। फिर भी उन्हें देखकर एक प्रकार की दयनीयता, उपेक्षा और उदासी का आभास होता था।

अँधेरा होने लगा था और रात के लिए कोई डेरा तो ढूँढ़ना ही था। किसी ग़लती के कारण घर से भगाए हुए अन्य पतियों की तरह वह बेचारा मुझिक भी रेलवे स्टेशन की ओर चल दिया। कहीं देर तक, तो कहीं थोड़े समय के लिए मास्को की उनींदी बत्तियाँ जल रही थीं। दो बार बर्फ़ गिरना शुरू हुई और दो बार गिरना बन्द भी हुई। पास से गुज़रनेवाले लोगों की भीड़ भी स्पष्टतः कम हो गई और निकटतम स्टेशन अर्थात् कीयेव स्टेशन की ओर बढ़ रही थी जो लोगों से पटा हुआ था; यह स्टेशन वैसे भी अपनी अलग ही ज़िन्दगी जीता था। बहुत लम्बी खोज करने के बाद मुझिक को अन्ततः दवाओं के कियोस्क के पीछे एक कोना मिल ही गया और वहीं पर उसने अपने और कुत्ते के लिए फ़र्श पर जगह बना ली, फ़र्श पर नहीं, बल्कि वहाँ पर बिखरे हुए गत्ते के डिब्बों के टुकड़ों पर। जैसे ही वे सोने को हुए कि बात बिगड़ गई—वहाँ दो सिपाही आ धमके और डाँट-डपट करते हुए उन्हें वहाँ से खदेड़ने लगे। कुत्ते ने तो समझदारी दिखाते हुए उनके आदेश को मान लिया, वह बाहर जाने को तैयार भी हो गया, परन्तु मुझिक ने बड़बड़ाना शुरू कर दिया।

"अरे भाई, आप लोग भी क्या हैं! मुझे घरवाली ने निकाल दिया है। जेब ख़ाली पड़ी है, होने को शैम्पेन की बोतल का डाट जेब में पड़ा है। अब मैं कहाँ रात गुज़ारूँ? सड़क पर?"

उसे जवाब मिला, "हमें इससे क्या मतलब? एक तो लोफ़र और साथ में कुत्ता भी लिये है...!"

"ऊपर से मुसका भी नहीं पहना रखा है। कैसी बेहूदगी है!" दूसरे पुलिसवाले ने इतना और जोड़ दिया।

"ठीक है। तो क्या आपके थाने में रात गुज़ार सकता हूँ?"

"क्यों नहीं। उस चश्मेवाले को एक घूँसा जमा दो तो हमारे यहाँ रैनबसेरा पा जाओगे।"

दूसरे पुलिसवाले ने फिर इतना और जोड़ दिया, "सच, काफ़ी समय के लिए। दो-एक साल को।"

"क्या मुझे अपने साथ कुत्ते को ले जाने देंगे?"

पता नहीं क्यों, पुलिसवालों को इस प्रश्न पर बिलकुल भी हँसी नहीं आई। उलटे गुस्सा ही आया और उन्होंने मुझिक को गर्दन पकड़कर बाहर धकेल दिया,

साथ में उसकी खोपड़ी पर दो-चार घूँसे भी जड़ दिए। दूसरी ओर, ऐसे कठोर व्यवहार से मुझिक ने अपने को बिलकुल भी अपमानित नहीं महसूस किया बल्कि उससे उसके सामने एक समस्या खड़ी हो गई, क्योंकि यह समस्या एक रहस्यपूर्ण, उच्चतर स्तर के रहस्यपूर्ण कार्य-कारण सम्बन्ध की थी—कुत्ते द्वारा बिल्ली की पूँछ काटते ही मनुष्य एक दूसरे प्रकार के जीवन-चक्र में पड़ जाता है, मानो, कि किसी पराये देश में जा पड़ा हो, जहाँ पुलिसवाले आपस में झगड़ रहे हैं और जहाँ बहुत देर तक पैदल चलना पड़ रहा है।...यानी सिर्फ़ इस वजह से कि कुत्तों को स्वभाव से बिल्लियों का भोजन पसन्द है, मनुष्य को कितना कुछ नया देखने को मिल सकता है!

स्टेशन के सामनेवाले चौक में बाहर आकर मुझिक और कुत्ता दाईं ओर मुड़ गए, उस ओर जहाँ कभी टैक्सी-स्टैन्ड होता था। वहाँ, सच, पहले की तरह सामान-घर बचे हुए थे। उन्होंने थोड़ी देर लोगों के बीच में चक्कर काटे, ढेर सारी दुकानों और खोखों के सामान पर नज़र डाली और अन्त में सीमेंट की बाड़ के सहारे आकर टिक गए जो 'स्लव्यान्स्काया होटल' के निर्माण-स्थल को अलग करने के लिए बनाई गई थी। कुत्ता अपनी जगह खड़ा रहा और मुझिक पालथी मार कर बैठ गया। उसने अपने सिर को मुट्ठी से ढँक लिया। कुत्ता बहुत देर तक मालिक को देखते हुए अपनी आँखों से उदासी भरा प्रश्न व्यक्त कर रहा था कि अब और कितना इस तरह लटकते रहेंगे, जिसका उत्तर मुझिक ने गहरी उसाँस से दिया। ठण्ड हो रही थी, लोगों के पाँवों के तले काला कीचड़ छप-छप कर रहा था और उस कीचड़ में बत्तियों के नारंगी धब्बे झलक रहे थे; आसपास कुछ सन्देहास्पद लोग चक्कर काट रहे थे, जिनकी आकृतियाँ पाशविक थीं; तीखा कर्कश स्वर ट्रेनों के आने की सूचना दे रहा था।

"मालूम है कि मास्को से टैक्सियाँ क्यों ग़ायब हो गई हैं?"—दाईं ओर से यह प्रश्न सुनाई दिया। मुझिक यह आवाज़ सुनकर उस ओर को मुड़ा—पास ही में बियर के क्रेट पर एक बूढ़ा बैठा था, जिसका चेहरा नीला पड़ा हुआ था। वह रोएँदार टोपी और मोटा ओवरकोट पहने हुए था। ओवरकोट में इतना सारा कीचड़ लगा हुआ था जैसे कि उसमें पाँव पोंछे गए हों।—"इसलिए कि मास्को में बोलने की आज़ादी हो गई है।"

मुझिक ने कहा, "मुझे तो सन्देह है। जैसे, निश्चय ही, यह शर्म की बात है। मैं स्वयं शायद ही किसी देश की ऐसी राजधानी का नाम ले पाऊँ, जहाँ मास्को की तरह टैक्सियाँ मिलती ही ना हों।"

"शायद ल्हासा में भी टैक्सियाँ नहीं मिलती हैं। ल्हासा और काठमाण्डू में!"

"काठमाण्डू में तो हैं।"

"आपको कैसे मालूम?"

"मैंने काठमाण्डू की गाइड-बुक में देखा है।"

"यदि आप इतने पढ़े-लिखे हैं तो बताइए कि क्या ईश्वर होता है।"

"कुल मिला कर तो लगता है कि नहीं है। यदि मुझे पत्नी ने इस तरह बेवजह घर से निकाल बाहर कर दिया है और आपने ऐसा बेहाल ओवरकोट पहन रखा है तो इसका मतलब है कि ईश्वर नहीं है।"

"इसीलिए तो है।" बूढ़े व्यक्ति ने चिल्लाकर कहा।

"सबूत क्या है?"

"सबूतों के बारे में कहते हैं कि उनकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। कुछ पीने की इच्छा है क्या?"

"चलेगा।..."

"तो चलते हैं।"

बूढ़े व्यक्ति, मुझिक और कुत्ते ने उठने के लिए जैसे ही ज़ोर लगाया कि उनका शरीर काँप गया और फिर वे चल पड़े। वे चौक के पास से होकर गुज़रे जो बसों और ट्रकों से पटा पड़ा था, फिर अन्तर्पथ—सबवे—के पास से निकले, जहाँ ढेरों भिखारी भरे पड़े थे, फिर आया छोटा-सा बाग़ जहाँ उर्वरक के पौलीथीन बैग बिछाकर जिप्सी लोग सोए हुए थे, उसके बाद आया बोरोदिनो पुल जिसे पार करने के बाद वे दाएँ मुड़े, फिर बाईं ओर रोस्तोव गली में मुड़े और अन्ततः मास्को के एक अहाते में पहुँचे, जिसमें एक साथ दो परस्पर विरोधी गुण सम्मिलित थे अर्थात् वह एक साथ गंदा और आरामदायक दोनों ही था। बीच अहाते में कूड़ेदान रखे हुए थे। वहाँ से ज़रा-सी टेढ़ी दिशा में लोहे के दरवाज़ेवाली कोई घनाकृति दिखाई दे रही थी; उसके दरवाज़े पर ताला लटका हुआ था; उसमें खिड़कियाँ नहीं थीं और उसकी छत सपाट थी। इस रहस्यपूर्ण इमारत में से पानी का एक सामान्य क़िस्म का नल बाहर को निकला हुआ था—यह नल वैसा था, जैसा कि गली के जमादार लोग और गाड़ियों के मालिक इस्तेमाल करते हैं। बूढ़े व्यक्ति ने अपनी जेब में से बिल्लौरी काँच का गिलास निकाला, उसे नल के नीचे रखा और दूसरे हाथ से टोंटी खोली। हे ईश्वर, यह क्या हुआ! उसमें से रूसी लोगों की दिलपसन्द वोदका की तेज़ धार निकल पड़ी—ऐसा कुछ पहले से ही लग रहा था, क्योंकि नथुनों में एक तीखी, कड़वी गन्ध आ पड़ी थी।

"आपका कहना है कि ईश्वर नहीं है।" बूढ़े व्यक्ति ने यह कहकर मुझिक की तरफ़ गिलास बढ़ा दिया।

मुझिक ने शौक़ से गिलास गटककर पूछा—"यह वोदका कहाँ से आ रही है? ज़रा यह तो बताइए।"

बूढ़े व्यक्ति ने उत्तर दिया, "शैतान ही जानता होगा। बस आ रही है, आती ही जा रही है। क़सम खाओ कि इस जीवनदायक स्रोत का रहस्य हमारे दोनों के बीच में ही रखोगे।"

मुझिक ने क़सम खा ली। उन्होंने एक-एक गिलास दोस्ती के नाते पीया। कुत्ते की दयनीय गुर्राहट की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया, जिसे अपनी उपस्थिति में मालिक का शराब के नशे में डूबना पसन्द नहीं था। सम्भवतः हल्के-से नशे के परिणामस्वरूप ही बूढ़े व्यक्ति ने मुझिक को एक परित्यक्त मकान में रात गुज़रने के लिए आमन्त्रित किया था, जहाँ वह काफ़ी अर्से से अपनी पत्नी के साथ रहता आ रहा था।

"आपकी पत्नी नाराज़ तो नहीं होगी?" मुझिक ने पूछा।

"चिन्ता मत करो, वह ऐसी नहीं है।...हम दोनों में मेल-जोल है।" बूढ़े व्यक्ति ने उसे उत्तर दिया।

मालकिन ने सचमुच ही मुझिक का सहर्ष स्वागत किया, जिसमें और-तो-और सांसारिकता का स्वर भी था। इसमें क्या कि उसने ऊनी जूते और मिर्जई पहन रखी थी, जिसमें से पेट्रोल की गन्ध आ रही थी; इसमें क्या कि इस परित्यक्त मकान की खिड़कियाँ फटे कम्बलों से ढँकी हुई थीं; इसमें क्या कि जगह-जगह दीवारी कागज़ उखड़ रहा था; और इसमें भी क्या कि भोजन के साथ एक बदबूदार सूप परोसा गया था, जो शायद मछलियों के सिर और हिलसा मछली के छीछड़ों का बना था। फिर भी इस संध्या में एक असम्भव-सा आकर्षण था—वहाँ मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी, जलती हुई अँगीठी अपनी तीखी गर्माहट तथा कोई अपरिचित-सी, बहुत पुरानी गन्ध बिखेर रही थी, जो राशन की डबल रोटी और लेसवाले कालरों के साथ बहुत पहले कहीं अतीत में विलीन हो चुकी थी। बूढ़ा व्यक्ति रूसी भाषा के संस्कृतमूलक शब्दों की व्याख्या कर रहा था। परन्तु, दूसरी ओर, यह विचित्र भी लग रहा था, क्योंकि मुझिक ने ऐसा अनुमान नहीं लगाया था कि बीसवीं शताब्दी के अन्त में शक्तिशाली देश की राजधानी में लोग इस ढंग से भी रह सकते हैं और वहाँ का माहौल उसके मन में एक व्यग्रतापूर्ण तथा सतर्क कौतूहल जगा रहा था। उसने अपने आप से कहा—"हे परमेश्वर यीशू, हमारा जीवन कितना समृद्ध है!"

ऐसे नृतत्त्वपरक दृष्टिकोण से बूढ़े व्यक्ति को बुरा लगा और वह बोला, "मुख्य बात यह है कि दिन में तीन बार आँखें धोनी चाहिए। अब मुझे ही ले लो—मैंने इस हद तक पी ली है कि मुझे अपने आसपास कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है।...ऊपर से एक लाभ यह भी है कि पागल कुत्ते तक मुझसे बच कर निकल जाते हैं।"

मुझिक उलझन में पड़ गया और बोला, "मैंने ऐसा नहीं... । मेरा मतलब यह है कि मुझे कोई आपत्ति नहीं है। इसलिए कि आगे चलकर मुझे भी यही करना है—दिन में तीन बार आँखों की धुलाई।"

उसने वृद्ध दम्पत्ति को सूचित किया कि किस तरह उसके कुत्ते ने बिल्ली का भोजन जूठा किया, बिल्ली ने उसके बदले में कुत्ते के बिस्तर पर पेशाब कर दिया, कुत्ते ने बिल्ली की पूँछ में काट दिया और इस सबके परिणामस्वरूप पत्नी ने उसे घर से बाहर निकाल दिया है।

बुढ़िया ने कहा—

"आपकी जगह मैं होती तो मुक़दमा दायर कर देती। यदि बीवी ने आपको ऐसी छोटी-सी बात पर घर से बाहर निकाल दिया है तो उसे आपको गुज़ारा-भत्ता देना चाहिए। वैसे, क्या आप मेहनती क़िस्म के आदमी हैं?"

"ऐसा कहना तो मुश्किल है।"

"फिर तो अवश्य ही गुज़ारे को देना चाहिए। तब आपका यह कुत्ता बच्चे की तरह मान जाएगा।"

उन तीनों ने थोड़ी देर इस विषय पर चर्चा की और आख़िरकार मुझिक सहमत हो गया कि उसे ऐसा ही करना चाहिए। सच तो यह है कि सवेरे उसे अपने इरादे पर सन्देह पैदा हो गया था। पर बूढ़े व्यक्ति ने उसे 'अमर टोंटी' से वोदका का नशीला गिलास छानकर दिया और तब उसने निर्णय कर लिया कि वह अवश्य ही लोक-अदालत में जाएगा।

जैसे ही वह अपने कुत्ते को सैर कराने के लिए उलटी दिशा में—अपने सुपरिचित सेवस्तोपोल पथ की ओर—मुड़ा कि तभी उसका ध्यान इस ओर गया कि उन्हें इस तरह भटकते हुए अभी सिर्फ़ चौबीस घण्टे ही तो हुए हैं। मुझिक की जैकेट जैसे कि घिस ही गई हो और कुत्ते की कभी प्रसन्न दिखाई देने वाली दुम भी लटक गई थी। स्पष्टतः, जीवन में घटित होनेवाला तीव्र परिवर्तन हमारे यहाँ व्यर्थ नहीं जाता है। हिम्मत के साथ शर्त लगाई जा सकती थी कि अगर वे किसी भीड़-भाड़वाले इलाक़े में भीख माँगने के इरादे से बैठ जाते तो बिना किसी विशेष प्रयत्न के अच्छी-ख़ासी पूँजी इकट्ठा कर लेते।

चूँकि किसी रूसी व्यक्ति को विचलित करना कठिन होता है, इसलिए मुझिक को उस समय आश्चर्य लगभग नहीं ही हुआ, जब अदालत ने उसकी अर्ज़ी बिना किसी ननु-नच के स्वीकार कर ली और सुनवाई की तारीख अगले सोमवार की तय कर दी—या तो शायद इसलिए कि नई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में हमारी न्याय-व्यवस्था को दिशा-बोध नहीं रहा है या फिर इसलिए कि एक रात पहले ही मास्को का अपराध-तन्त्र अपने पूरे जोश पर था। पर हमारी न्याय-व्यवस्था की तत्परता तो और भी असाधारण निकली, बल्कि अविश्वसनीय। उसकी ऐसी तत्परता संदेहास्पद भी प्रतीत सकती थी, यदि बाहर अहाते में सन् 1996 का तूफ़ानी साल विद्यमान न होता। मुझिक और उसके कुत्ते ने यह हफ़्ता बूढ़ दम्पति के साथ एक परित्यक्त मकान में बिता दिया था। थोड़ा-थोड़ा पीते हुए वे लोग आपराधिकता की वृद्धि तथा श्रम की उत्पादकता में आई गिरावट पर लोकतान्त्रिक विचारों के प्रभाव को लेकर चर्चा कर रहे थे।

और तब अदालत का उत्तेजक दिन भी आ गया। बैठक इस बात से शुरू हुई कि अदालत की युवती सेक्रेटरी ने, जिसकी नाक में मुँहासा था, कुत्ते को बाहर निकालने का आदेश दिया, जिसका मुझिक ने हतप्रभ होकर विरोध किया—"सवाल यह है कि मैं इसे कहाँ रखूँ! इसका और कोई है ही नहीं। इस पशु को रखने के लिए मेरे पास कोई जगह नहीं है। क्योंकि हम बेघर हैं। और तो और हमारे पास मेट्रो रेल के सिक्के तक नहीं हैं।..."

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इसी अस्पष्ट घोषणा ने आरम्भ में ही पूरे मामले का फ़ैसला कर दिया, क्योंकि इसे सुनकर वहाँ उपस्थित लोगों में कचोटती हुई दया का भाव पैदा हुआ; ऊपर से यह बात भी थी कि न्यायाधीश तथा दोनों पंच पुरुष थे, जो पारिवारिक दुख में अपने भाई को अनुगृहीत किए बिना नहीं रह सकते थे। कुत्ते को वहीं रखने का निर्णय किया गया और, निश्चय ही, न्यायपालिका के इतिहास में यह पहली घटना थी—सिर्फ धर्माधिकरण के युग को छोड़ कर—कि किसी निरीह पशु को जवाब के लिए बुलवाया गया।

पत्नी को तुरन्त आभास हो गया कि मामला किधर को जा रहा है और उसने झट से चुनौती दे डाली, "यह षड्यन्त्र है, न्याय नहीं है!" उसने चिल्लाकर कहा, "इसलिए कि आप लोग वादी के साथ मिले हुए हैं। आप भी ऐसे ही निठल्ले होंगे। आप लोग आग में घी डाल रहे हो। संक्षेप में, मेरी यह माँग है कि इस मामले की सुनवाई किसी महिला की अध्यक्षता में की जाए।"

"ज़्यादा ही ख़्वाब देख रही है।" न्यायाधीश ने कहा।

इस उत्तर से पत्नी इतनी स्तम्भित रह गई कि उसने और अधिक शोर नहीं मचाया और शान्ति के साथ फ़ैसला सुना, जो इस प्रकार था—प्रतिवादी को यह आदेश हुआ कि वह वादी को प्रति माह अपनी आय का पच्चीस प्रतिशत दिया करेगी और घरेलू पशु के निर्वाह के लिए पाँच प्रतिशत इसके अतिरिक्त दिया करेगी, क्योंकि 4 अक्तूबर 1993 को पहुँचे मानसिक आघात के कारण वादी की कार्यक्षमता आंशिक रूप से चली गई है, जबकि कुत्ते का पंजीकरण पति के नाम से है।

सज़ा सुनने के बाद पत्नी बोली—"मुझे तो इस अदालत पर कोई भरोसा था ही नहीं। इस देश में रहते हुए केवल क़यामत के दिन होनेवाले न्याय पर ही भरोसा किया जा सकता है।"

अध्यक्ष ने कहा, "हमारे यहाँ हर अदालत क़यामत की अदालत ही होती है। आनन्द की अदालत हमारे यहाँ होती ही नहीं है। हमारे यहाँ कोई भी उदाहरण ले लो, क़यामत का ही मिलेगा।"

पत्नी बोली, "इन परिस्थितियों में निर्वाह-भत्ता मैं तो देने से रही। अपनी तनख़्वाह का पच्चीस प्रतिशत अपने दिल से निकालकर दे दूँ—ऐसा तो ज़िन्दगी भर नहीं हो सकता। ये तो ऐसे ही हुआ जैसे कि न खाया, न पीया और ख़र्च हुए लाख! नहीं, इससे अच्छा तो ये दुष्ट घर ही वापस आ जाएँ, रुपए तो बचे रहेंगे।"

जैसे कि मुझिक और कुत्ता यही तो चाह रहे थे, परन्तु मुझिक ने अपने घर लौटने से साफ़ इन्कार कर दिया। और तो और, कोई दो महीने बाद उसने जज की सेक्रेटरी से शादी भी कर ली—उसी युवती से जिसकी नाक में दाना था। इसीलिए तो हमारे यहाँ मुझिक लोग थोड़ा कुछ हो जाने के बाद युवतियों के साथ ब्याह रचा रहे हैं—क्योंकि कुत्तों को स्वभाव से बिल्लियों का भोजन ही रास आता है।



आकाश और धरती के बीच

विक्तोरिया तोकारेवा

नताशा हवाई अड्डे में बैठी हुई अपनी उड़ान की प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी उड़ान बार-बार स्थगित हो रही थी—शुरू में तीन घण्टे के लिए, फिर चार घण्टे के लिए। इसी विमान से बलगारी सर्कस भी अपना खेल दिखाने बाकू जा रहा था। सर्कसवाले जहाँ मर्ज़ी बैठे हुए थे, रोमाओं (जिप्सिओं) की तरह—कोई ज़मीन पर, तो कोई कुर्सियों पर। उनके आसपास एक ही उम्र और क़द के छुटके कुत्ते दौड़ रहे थे। कुत्ते ख़ूब नहाए हुए थे और उनके बाल सँवरे हुए थे। शायद उनकी कोई अपना श्वान-संगीत का कार्यक्रम था।

एक ऊँचे क़द का पुरुष नताशा के सामने से गुज़रा, जिसकी शक्ल किसी बात में उसके पहले पति से मामूली-सी मिलती थी। समय बहुत था, दिमाग़ ख़ाली पड़ा था और ख़ालीपन के कारण ही नताशा को अपना पहला वैवाहिक जीवन याद आ गया। किसी अन्य स्थिति में वह उसे याद नहीं आता। उसकी शादी अठारह साल की उम्र में हुई थी। उसके पति की उम्र बाईस साल थी। तभी तलाक़ भी हो गया था। बिलकुल तभी तो नहीं। कोई आठ महीने उन्होंने गुज़ारे ही थे। शादी टिकाऊ नहीं रही। जैसे ही आसक्ति कम हुई, नदी उथली पड़ गई, तल दिखाई देने लगा और तल में तरह-तरह के डिब्बे-शीशियाँ और निरी बकवास पड़ी हुई थी। उनकी आपस में गाली-गलौज़ होने लगी, हमेशा और बेवजह गाली-गलौज़ होती रहती। उनका प्रेम बीमार पड़ गया था, वह गला साफ़ करके विषमता को दूर करते-करते मर गया। परन्तु तलाक़ के बाद भी वे बहुत देर तक आपस में मिलते रहे थे और गाली-गलौज़ भी चलती रही थी। वे एक साथ नहीं रह सके और अलग-अलग रहना उन्हें आता नहीं था। उनके झगड़ों का कारण कुछ इस प्रकार का होता था—नताशा अपने पति को मूर्ख

समझती थी, जो उसकी सुन्दरता के अनुरूप नहीं था। उसका विचार था कि सुन्दरता ऐसा निमित्त है जिसके आधार पर जीवन में कुछ अतिरिक्त सुविधाएँ मिलनी चाहिए, जैसे नए साल के बॉल डान्स का टिकट। इसके विपरीत पति का कहना था कि सुन्दरता अल्पकालिक और अस्थायी चीज़ है। बीसेक साल बाद तो उसने निश्चय ही रहना नहीं है, वह अलविदा हो जाएगी। इसके विपरीत उसकी स्थिर भावना की योग्यता—जिसे 'निष्ठा' नाम दिया गया है—हमेशा बनी रहेगी। समय के साथ उसका अवमूल्यन नहीं होता है। इस प्रकार पति के रूप में वह उससे बढ़कर ही है। अभी कुछ कमी हो सकती है, पर बाद में एकदम सही बैठेगा। परन्तु अठारह साल की उम्र में बाद के बारे में तो नहीं सोचा जा सकता है। जीवन बेहद लम्बा प्रतीत होता है, लगता है कि आगे सब कुछ ढेरों होगा और सब कुछ आगे ही है...।

उनमें तलाक़ हो गया और फिर बीस साल बाद वे मिले। वह दूसरी शादी कर चुका था, उसके एक लड़की थी जिसको पहली पत्नी का नाम दिया था। वह दूसरे शहर में रहता था। नताशा का दफ़्तर के किसी काम से इस शहर में आना हुआ था। उसे मालूम था कि उसका पूर्व-पति यहीं कहीं रहता है। उसने 9 नम्बर पर टेलीफ़ोन करके उसका कुलनाम बताया, उसे उसका टेलीफ़ोन नम्बर पता चल गया। नताशा ने नम्बर घुमाया, बीस साल बाद उसने अपने पहले पति की आवाज़ सुनी। स्वर बदला नहीं था। स्वर आत्मा का उपकरण है और आत्मा बुढ़ाती नहीं है। उनकी बातचीत पहले जैसे तरुण स्वर में हुई।

नताशा ने कहा, "नमस्ते। बस हैरान मत होओ।"

"कौन बोल रहा है?" उसने चौकस होकर पूछा।

"तुम्हारी पहले नम्बर की पत्नी।

इतनी देर तक चुप्पी बनी रही कि नताशा ने समझा कि फ़ोन कट गया है।

"हलो-ओ।" उसने कहा।

"मैं अभी आता हूँ। किधर आऊँ?" पूर्व-पति ने पूछा।

उसने होटल और कमरा नम्बर बता दिया।

चोंगा रख देने के बाद उसे बेचैनी होने लगी। समझ नहीं आ रहा था कि उसने क्यों फोन किया? क्यों बुलाया?

उसने सफ़ेद फ्रांसीसी ब्लाउज़ पहना। फिर कुछ सोचकर बदलकर काला वाला पहन लिया—शरीर के साथ जँच रहा था, सूरत के साथ नहीं। सूरत और शरीर के बीच में चयन करना था।

दरवाज़े पर दस्तक उसके हिसाब से कुछ जल्दी ही हो गई। दरवाज़ा खोला। सामने वह दिखाई दिया। बीस सालों में वह कुछ चौड़ा हो गया था परन्तु चेहरे का भाव और उसका सारा सत्व पहले की तरह था और यह सत्व ही हरी और पिलौंसी-भूरी बड़ी-बड़ी आँखों की खिड़कियों में से खुलकर झाँक रहा था।

"तुम कैसी हो गई हो...।" उसने कहा और इस तरह सिर हिलाया, जैसे अपनी कही बात की सच्चाई की पुष्टि कर रहा हो—सुन्दरता स्टेशन की तरह गुज़र चुकी थी, ठीक उन्हीं बीस सालों में जिनकी उसने स्पष्ट चेतावनी दे दी थी।

"और तुम वैसे-के-वैसे ही हो।" नताशा ने जवाब दिया। उसका संकेत स्पष्टतः इस बात की ओर था कि जैसा मूर्ख वह पहले था, वैसा ही अब भी है।

बीस साल में नताशा वास्तव में ही बदल गई थी। यदि नताशा के सौन्दर्य की तुलना प्रकृति के सौन्दर्य से की जाए तो पहले चरागाह-सी थी और अब खेत-सी हो गई है। परन्तु कौन जानता है कि अच्छा क्या है—चरागाह या कि खेत?

आश्चर्य की बात तो कुछ और ही थी—उनका झगड़ा ठीक उसी वाक्य से शुरू हुआ, जहाँ आकर वे बीस साल पहले रुके थे। जैसे कि ये बीस वर्ष रहे ही न हों और वे बस कल ही इन्हीं शिकायतों को लेकर विदा हुए हों।

इसके बाद भोजन के लिए नीचे रेस्तराँ में गए। अंगूरी मदिरा पी। उसने बताना शुरू किया कि कितने लम्बे समय से और कितनी बुरी तरह वह बिछुड़ने का कष्ट भोगता रहा है। शादी इसलिए की, क्योंकि पीने की लत पड़ जाने का अन्देशा था।

"सब भुगत तो लिया ही है।" नताशा ने उसे शान्त किया, वह अप्रिय विषय को बदलकर यह जतला रही थी कि बुरे दिन बीत चुके हैं। अतीत में चले गए हैं।

"पर मुझे तो भोगना पड़ा है...।" उसने 'भोगना पड़ा' शब्दों को जैसे रेखांकित करके कहा, जिसके द्वारा वह कष्ट को समर्पित जीवन के लम्बे हिस्से पर ज़ोर दे रहा था।

"कष्ट झेलना लाभदायक है।" नताशा ने एक प्रकार से अपनी बात को उचित ठहराया, "कष्टों से आत्मा का निखार होता है।"

लेकिन वह तो सहमत नहीं था, "बकवास है। पता नहीं किसने कहा है कि "सुख ही विश्वविद्यालय है। कष्टों से आत्मा सूख जाती है। सूखे में से काम का कुछ पैदा नहीं होता है। विद्वेष जैसी जंगली घास-फूस ही।"

वह वास्तव में ही स्थायी भावना के योग्य निकला। पहले वह उससे प्रेम करता था। फिर घृणा करने लगा। और अब क्षमा नहीं कर रहा था। अर्थात् वह हमेशा उसके साथ थी।

उन्होंने थोड़ी और पी। नताशा ने अपने शोध-प्रबन्ध के बारे में बतलाया। उसने द्रोज़ोफ़िल नामक छोटी-छोटी मक्खियों के आनुवंशिक कूट का अध्ययन किया था। द्रोज़ोफ़िल उन्हें कहते हैं, जिन्हें फल पसन्द हैं। फलों के ऊपर मँडराती हुई द्रोज़ोफ़िल मक्खियाँ किसी जीव की अपेक्षा धूल से ज़्यादा मिलती हैं। उसने उनका संकरण करके अध्ययन किया था और उनके माध्यम से गम्भीर निष्कर्ष निकाले थे, जिनका सम्पूर्ण मानव जाति से सम्बन्ध है।

पूर्व-पति ने बताया कि आयुर्विज्ञान की शिक्षा के बाद उसने नक़ली दाँत लगाने के काम में विशेषज्ञता प्राप्त की। उसके पास बहुत बढ़िया विदेशी पोर्सिलेन का माल है और उसकी माँग उसकी शारीरिक क्षमता से बहुत अधिक है। इतना सब कहने का मतलब यह था कि रुपयों की बारिश हो रही है और यह कि तब अर्थात् बीस साल पहले नताशा ने जल्दी कर दी थी। इस समय वह उसके लिए बिलकुल ठीक होता।

"तुमने शादी कर ली है?"

"हाँ।" नताशा ने झूठ बोल दिया। उसने शादी की थी, परन्तु पूरी नहीं की थी।

"क्या तुम अपने पति के साथ विश्वासघात करती हो?"

यह मुख्य प्रश्न था। निष्ठा—किसी भी महिला से उसकी यही मुख्य माँग है और यदि नताशा इस माँग को पूरा करती है तो इसका मतलब है कि उसके लिए एक अपूरणीय क्षति हुई है।

"तुम्हें शर्म नहीं आती।" नताशा ने आश्चर्य व्यक्त किया।

"तो हाँ या नहीं?"

"कभी भी नहीं।"

उसका मूड ख़राब हो गया और वह मुरझा गया। विगत जीवन में जो कुछ उसमें नीचे बैठ गया था और शान्त हो चुका था वह दुबारा आत्मा के तल से ऊपर को उठ आया, जैसे कि तालाब में छड़ी घुमाने से नीचे की काई और कीचड़ ऊपर को आ जाते हैं।

इसके बाद वे विदा हो गए। फिर बीस साल के लिए। जिस शहर में वह रहता और नौकरी करता था, वह छोटा शहर था। वहाँ किसी का दौरे पर

आना संयोग की ही बात थी। लेकिन बात यह नहीं थी। बात थी पारस्परिक व्यर्थता की।

नताशा को लगता था कि पति से तलाक़ होने के बाद वह बहुत जल्दी शादी कर लेगी। बाहर निकलकर चिल्लाने की देर थी—"शादी करना चाहती हूँ।" कि भीड़ जमा हो जाएगी...एक लम्बी क़तार लग जाएगी। परन्तु अपने आत्मविश्वास के मामले में वह बहुत भोली थी। सुख की खोज में सभी लगे हुए हैं लेकिन वह इक्के-दुक्कों को ही प्राप्त होता है। दसेक ही सही।...चलो सैंकड़ों में ही सही। परन्तु सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए एक सैंकड़ा क्या माने रखता है?...फिर भी कुछ समय बाद नताशा इस सैंकड़े में बल्कि दहाई में शामिल होने में सफल हो गई जब उसने जीव रसायन के प्रोफ़ेसर कितायेव से प्रेम किया, जिसे चौदह महान खोजों का श्रेय प्राप्त था और जिसने पृथ्वी की आयु की परिकल्पना प्रस्तुत की थी। लगता था कि प्रोफ़ेसर की खोपड़ी में मस्तिष्क के बदले कोई अति शक्तिशाली बिजलीघर है, जो विचारों का उत्पादन करता रहता है, जिनसे आपस के लोग भी आवेशित हो जाते हैं। वह अपने विचारों को दाएँ-बाएँ फेंकता रहता था, वह उदार था, जैसा कि प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति होते हैं, जैसे सोने के अण्डे देने वाली धब्बेदार मुर्ग़ी, जो हरेक अण्डे की कंजूसी नहीं करती है—उसे मालूम है कि अगला अण्डा भी सोने का ही होगा।

ऊपर से कितायेव गंजा-सा, पीला-सा और शुष्क था, बुढ़िया-जैसा दिखाई देता था। नताशा का ध्यान इस ओर नहीं गया था। सुन्दर व्यक्ति तो उसके पास पहले था ही। वह कितायेव को स्वयं अपनी दृष्टि से देखती थी, जिसके मुक़ाबले में और सब आदमी निस्तेज और धुँधले प्रतीत होते थे, जैसे कार्बन पेपर के नीचे की दसवीं छाप।

कितायेव को बहुत समय तक नताशा के प्रेम पर विश्वास नहीं हो सका था, बाद में विश्वास कर ही लिया और इतने सालों में उसके साथ पत्नी की तरह थोड़ा अनुकूलित भी हो गया था, यद्यपि नताशा उसकी पत्नी नहीं थी। पत्नी तो कोई और मानी जाती थी। परन्तु वह कोई और किसी प्रकार की बाधा नहीं उत्पन्न करती थी, न नताशा की ही कोई माँग थी। इस प्रकार कुछ भी न बदलने की सम्भावना बन गई। कितायेव के सुनहरे मस्तिष्क में निरन्तर परिवर्तन के बादल मँडराते रहते थे, लेकिन बाहरी परिवर्तनों के प्रति वह बेरुखा था।

कभी-कभी नताशा को ऐसा लगता था कि कल, बिलकुल कल ही, परसों नहीं, वह उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखनेवाला है, उनका पारस्परिक अंकुरण

इतना गहरा था। कभी उसे लगता कि ऐसा कभी नहीं होगा। इस तरह पहेलियाँ बुझाने से अच्छा सीधे पूछा जा सकता था। परन्तु प्रश्नों में तथा किसी भी प्रकार के शब्दों में निश्चितता होती है। जबकि प्रेम, संगीत की तरह, शब्दों से परे होना चाहिए। कम-से-कम प्रश्नों से परे तो होना ही चाहिए।

आज सुबह जब कितायेव ने बाकू शहर से—जहाँ वह एशियाई और अफ्रीकी देशों की संगोष्ठी में गया हुआ था—नताशा को टेलीफ़ोन करके उसे वहाँ कुछ दिनों के लिए बुलाया तो नताशा ने उससे यह नहीं पूछा कि 'क्यों?' वैसे ही स्पष्ट था। ऊब चुका था। उसके बग़ैर बाक़ी दिन जीना मुश्किल था। लेकिन इन दो दिनों में से नौ घण्टे तो वैसे ही निकल गए। वह मास्को के हवाई अड्डे में बैठी है और वह बाकू के हवाई अड्डे में—वह निष्क्रियता और प्रतीक्षा में फँसा हुआ है और निश्चय ही इस हनुमान-कूद का चक्कर चलाने का उसे अफ़सोस हो रहा होगा।

लॉबी के ऊपर ताँबे की आवाज़ ने जहाज़ में चढ़ने की घोषणा की। सर्कसवालों में हलचल शुरू हुई, कुत्ते मैत्री के स्वर में भौंकने लगे, जैसे कि उन्हें समझ आ गया था और वे ख़ुश थे।

नताशा ने पेटी बाँध ली। डर और ऊपर उठने के कारण उसे क़ै आने जैसा हो रहा था।

विमान हिचकोले खाता हुआ उड़ रहा था, फिर कहीं नीचे को जाने लगता, हर बार जब वह नीचे को जा रहा होता तो अन्त की सोचकर उसकी साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह जाती थी। उसे अन्त का उतना डर नहीं था, जितना कि उसके मार्ग का। रास्ता लम्बा था, कोई तीस सेकेंड का, सबसे बुरी बात तो यह थी कि यह मार्ग सोचा-समझा हुआ था। नताशा का एक दूर का रिश्तेदार था वालिक, जो खान में दबकर मर गया था। उसके ऊपर चालीस टन मलबा गिर गया था। इतने ढेर में से उसे निकालने के लिए कई ट्रालियों की ज़रूरत पड़ी थी। जब उसे बाहर निकाला गया तो उसकी भौंहें सफ़ेद हो चुकी थीं, यद्यपि वह तो जवान था। इसका मतलब है कि कुछ समय तक, शायद तीस सेकेंड तक, या साठ सेकेंड तक, वह जीवित था और उसे अच्छी तरह मालूम था कि उसके साथ क्या घटित हुआ है। इटली की महान अभिनेत्री आन्ना मान्यानी की तरह उसकी पत्नी नाद्का निराशाजन्य सहज पागलपन के साथ क़ब्र पर गिरे जा रही थी। उन दक्षिणी भागों में दफ़नाना भी एक तरह का तमाशा, विरेचन (कैथार्सिस) और शुद्धिकरण होता है, जब

समस्त निराशा और भाग्य से असहमति को रोकर साँस के साथ निकाल दिया जाता है। आसपास के लोग भी दूसरे की असहमति से संक्रमित होकर रोने लगते हैं और अपनी असहमति को साँस के साथ बाहर निकाल देते हैं, जिससे कि आत्मा का बोझ हल्का हो जाए और आगे जिया जा सके। नाद्का क़ब्र पर गिरे जा रही थी, लोग उसे खींच रहे थे। फ़ोटोकार ने इन क्षणों के चित्र ले लिए थे। पर एक हफ़्ते बाद ही से प्येत्को नाम के किसी आदमी ने रात में नाद्का के यहाँ रहना शुरू कर दिया था। लगता है कि पति के जीवित रहते भी उसका स्थान बना हुआ था। एक हफ़्ते की यह इन्तज़ारी उनके लिए बड़ी मुश्किल से बीती थी। पड़ोसी खुश नहीं थे। चारों ओर यह सुनाई पड़ रहा था—"अभी एड़ियाँ भी ठण्डी नहीं हुईं।" एड़ियों से मतलब था, वालिक की एड़ियों से। पर नाद्का के विश्वासघास को लेकर सबसे अधिक सिर पीट रही थी उसकी माँ यानी वालिक की सास। उनके घर आकर वह नाद्का की किशोर उम्र की बेटी से पूछ जाती थी—'रात को फिर वहीं था क्या?' बेटी गुस्से में कहती थी—चारपाई पर?—वहीं था।"—नाद्का की माँ डरकर पूछती थी। बेटी हैरान होकर कहती थी—'तो और कहाँ? चारपाई के नीचे सोएँगे क्या?—हाथ पटकते हुए नाद्का की माँ रोना शुरू कर देती थी—'यह क्या हो गया है?...क्या...ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ था। नाद्का ऐसा व्यवहार कर रही थी, जैसे कि वालिक कभी रहा ही न हो। वह था।...था तो सही।'...इतनी जल्दी इस तरह भुला देने से नाद्का की माँ चिंतित थी, जैसे कि वालिक मलबे के नीचे दो बार दबा हो। एक बार जीवित रूप में और दूसरी बार मृत रूप में।

नताशा को इसी बात का डर था। उसे मालूम था कि जीवित व्यक्ति जीवित की सोचता है। यदि अभी वह विमान में विमान के साथ दुर्घटनाग्रस्त हो जाए तो कितायेव उसे भूले बग़ैर, पर स्मृति के दूर के किसी कोने में रखकर, दूसरी आँखों में झाँकना शुरू कर देगा। विस्मृति एक और, एक अतिरिक्त मौत होती है।

विमान ऊपर उठ चुका था। नताशा ने कुर्सी को पीछे सरका दिया और आँखें बन्द कर लीं। हवाई जहाज़ अब और ऊपर नहीं जा रहा था। दिल लुढ़क नहीं रहा था। उसके मन में आया कि देखें, नीचे और आसपास क्या हो रहा है।

आसपास सब सोए हुए थे। सोते हुए आदमियों की बड़ी तादाद से 'युद्ध के बाद का मैदान' नामक पेंटिंग की याद आ रही थी।

उनके पास एक युवक बैठा हुआ था जो शक्ल से बास्केटबाल का खिलाड़ी लगता था और अच्छी-ख़ासी लम्बी नताशा से कोई डेढ़ सिर ऊँचा था। नताशा

ने खिड़की से बाहर झाँका, बाहर अन्तरिक्ष की कालिमा और जहाज़ के पंख के नीचे से निकलती हुई चिनगारियाँ दिखाई दीं।

मस्तिष्क में एकदम जड़ता छा गई और इस जड़ता के बीच एक ही शब्द सुनाई दिया—'अप्रिय'। जैसे कि इस शब्द को टेप में उतारकर ख़ाली दिमाग़ में छोड़कर चालू कर दिया गया हो। जैसे कि उसके भीतर से किसी बाहरी व्यक्ति ने आसक्तिहीन स्वर में कहा हो—'अप्रिय'। मस्तिष्क में कितायेव के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा गया था। परन्तु शरीर ने, सिर से स्वतन्त्र रूप से, अपने नियमों के अनुसार प्रतिक्रिया की। नताशा ने साथ में बैठे बास्केटबाल के खिलाड़ी का हाथ इस तरह पकड़ लिया कि नताशा की उँगलियाँ उसके हाथ से मिल गईं।

"ओफ़!" बास्केटबाल के खिलाड़ी के मुँह से निकला। उसके लिए यह पीड़ा और इस स्पर्श का होना दोनों अप्रत्याशित थे।

"हम जल रहे हैं।" इस प्रकार की सूचना की दृष्टि से काफ़ी धीरज रखकर नताशा ने कहा।

खिलाड़ी ने खिड़की की तरफ़ मुड़कर बड़े ध्यान से बाहर झाँककर देखा।

"संकेत के लिए हैं। वे पहचान-चिह्न हैं।" वह बोला।

"इनकी क्या ज़रूरत है?" नताशा ने अविश्वास के स्वर में पूछा।

"जिससे कि कोई जहाज़ हमसे न टकरा जाए।"

नताशा फिर से खिड़की से चिपक गई। बत्तियाँ वास्तव में ही समान अन्तराल के साथ जल-बुझ रही थीं, जैसे कि उनमें स्पन्दन हो रहा हो, जबकि आग का स्वरूप बेढंगा होता है।

सैलून से—यात्रियों के पास से—होकर एक परिचारिका निकली, एकदम ड्यूटीनुमा और निर्लिप्त। दुर्घटना की हालत में ऐसा व्यवहार तो नहीं किया जाता है।

विमान के अन्दर की रोशनी बुझ गई। लगता था कि यात्रियों को सोने की सलाह दी जा रही है। नताशा ने आँखें मूँद लीं। बास्केटबॉल के खिलाड़ी ने भी कुर्सी की पीठ पीछे को कर दी। उनके सिर पास-पास आ गए। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे दोनों एक ही चारपाई पर लेटे हों। खिलाड़ी के शरीर से गरमी निकल रही थी, जैसे चूल्हे में से गरमी आती है। हटने का नहीं, बल्कि पास आने का मन हो रहा था, ताकि आकाश और धरती के बीच ऐसा अकेला-अकेला और भयानक न लगे। बास्केटबॉल के खिलाड़ी ने अपनी कोहनी उसकी तरफ़ कर दी, बिलकुल ज़रा-सी, कोई आधा सेंटीमीटर। लेकिन नताशा

को यह आधा सेंटीमीटर सुनाई दे रहा था। उसने अपना हाथ नहीं हटाया। बास्केटबाल के खिलाड़ी की कोहनी से युवा जैव-क्षेत्र की ऊर्जा निकल रही थी। इस ऊर्जा ने नताशा को लपेट लिया और अब दोनों एक ही बादल में उड़ चले। अँधेरा छाया हुआ था, शान्ति व्याप्त थी, परन्तु खिलाड़ी के हृदय से उसके वक्ष में होती खटखट वह सुन रही थी, जो सन्नाटे में हथौड़े की आवाज़ की तरह थी। नताशा ने अनजाने में अपना सिर उसके कंधे पर टिका दिया। उसने अपना सिर नताशा के बालों में झुका दिया। अब उनके हृदय एक साथ खट-खट कर रहे थे और गिर पड़ने का बिलकुल भी मन नहीं था। बस, एक साथ रहें।

"तुम क्या बाकू के रहने वाले हो?" नताशा ने पूछा।

बातचीत करने का कोई बहाना तो चाहिए ही था। इस स्थिति में अपरिचित रहना अजीब-सा होता।

"हाँ, बाकू से हूँ।"

"पर तुम तो रूसी हो?..."

"वहाँ रूसी भी तो रहते हैं।"

"वहाँ वे क्या भूल गए?"

"एक अच्छा शहर..."

"मास्को किस काम से गए थे?"

"कैंप में गया था।"

"तुम खिलाड़ी हो क्या?"

"हाँ, खेलता हूँ।"

वे फुसफुसाकर बातें कर रहे थे। क्योंकि भावावेश में गला बैठ गया था। वे बातें सिर्फ़ इसलिए कर रहे थे कि दुर्लंघ्य आकर्षण से अपना ध्यान हटा सके और अपने को उससे खींच सकें। आकर्षण निश्चय ही दुर्लंघ्य था, उससे छूटना असम्भव था।

बास्केटबाल के खिलाड़ी ने झुककर नताशा को चूमा। उसके होंठ सधे हुए और कोमल थे, जैसे घोड़े के होते हैं।

दिल गले तक आ गया था, ऐसे जैसे कि विमान किसी गहरे गड्ढे में गिर गया हो।

अपने जीवन में नताशा को एक बार भी ऐसा अनुभव नहीं हुआ था। दूसरी गम्भीर उपलब्धियों का, जिन्हें बड़ों की भाषा में प्रेम कहा जाता है, इस स्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं था। उसी तरह जैसे शास्त्रीय संगीत में शब्द। जैसे रख़मानिनोव के दूसरे कंसर्ट के साथ का पाठ।

"तुम्हारा कोई है?" उसने पूछा।
"मंगेतर है। उसी के पास जा रही हूँ।"
"अच्छा।...तुम तो अभी भी जवान हो... ।"
अँधेरे में वह उसकी उम्र का अनुमान नहीं लगा सका।
"तुम्हारी कोई सहेली-वहेली है?"
"होनेवाली पत्नी है। स्नेझाना नाम है। मैं उसके साथ दिव्य व्यवहार करता हूँ।"
"वह बलगारी है न?" नताशा ने सही अनुमान लगाया था।
"हाँ, बलगारी है। मैं उसके साथ दिव्य व्यवहार करता हूँ। परन्तु तुम्हारे प्रति जो मैं अनुभव कर रहा हूँ, वैसा मुझे कभी किसी के प्रति नहीं हुआ है। मुझे तो मालूम भी नहीं था कि ऐसा होता है।"
"तुम क्या अनुभव कर रहे हो?"
"मालूम नहीं। सूरज का चपेटा जैसा है।"
नताशा उससे ज़रा दूर हट गई और दृष्टि डाली। अभी तक नताशा ने उसे देखा भी नहीं था। जवान चेहरा, कसकर खिंची हुई खाल और आँखों में चिन्ता। उसे देखना नताशा को अपर्याप्त लगा। वह अपना हाथ उसके मुँह तक ले गई और दृष्टिहीन की तरह उसके ऊपर उँगलियाँ फेरीं, जैसे कि वह भावों में उसके नाक-नक़्श को याद कर लेना चाहती थी। खिलाड़ी को आश्चर्य नहीं हुआ। उनके बीच जो घटित हो रहा था, वह स्वाभाविक प्रतीत होता था। और इससे भी बढ़कर यह कि एकमात्र यही संभव भी था। जैसे कि जलने-बुझने वाली बत्तियाँ विमान की नहीं थीं, यह तो उनकी आत्माएँ एक-दूसरे को पहचान-चिह्न भेज रही हैं।
"तुम्हारा जीवन कैसा है?" नताशा ने पूछा।
"कष्टपूर्ण है। मैं बड़े कष्ट में हूँ।"
"मैं अपनी माँ को पुनर्जीवित करना चाहता हूँ। क्या मरने के बाद मनुष्य पुनर्जीवित किया जा सकता है?"
"नहीं। यह असम्भव है।"
"तुम्हें कैसे मालूम?"
"मैं जीववैज्ञानिक हूँ। मुझे निश्चित रूप से मालूम है। एकमात्र यही अप्राप्य है। बाक़ी सब कुछ सम्भव है।"
"लेकिन प्राचीन घोड़ों को तो पुनर्जीवित किया गया है। तर्पान नस्ल के घोड़ों को। संकरण करके छाँटा गया और इस तरह उनका जीर्णोद्धार हो गया। और अब अस्कानियानोवा में तर्पानों के झुण्ड-से-झुण्ड दिखाई देते हैं।"

"यह तो उनकी जैव जाति का पुनर्जीवन हुआ है। परन्तु व्यक्ति-विशेष का पुनर्जीवन सम्भव नहीं है। व्यक्ति अद्वितीय होता है।"

"परन्तु कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि वंशजों के माध्यम से पूर्वजों का पुनर्जीवन सम्भव हो सकेगा। व्यक्ति का पुनर्जीवन।"

"प्रकृति पीढ़ियों का परिवर्तन चाहती है। लोग जन्मते हैं, बुढ़ाते हैं और मर जाते हैं, ताकि युवाओं की बारी आए। जीवन-चक्र को उलटी दिशा में नहीं घुमाया जा सकता।"

"लेकिन मेरी माँ तो बुढ़ाई नहीं थी। वह जवानी में ही मर गई थी। वह पूरा नहीं जी पाई।"

"समझौता करना होगा।"

"मैं नहीं कर सकता। मैं उसके बिना जी नहीं सकता हूँ। मैं तो उसी के पीछे-पीछे चला जाना चाता था।...तुम मुझे पागल समझ रही हो क्या?"

"नहीं। मैंने तो ऐसा नहीं माना।"

नताशा को उसकी पुनर्जीवित करने की इच्छा पर वास्तव में ही आश्चर्य नहीं हुआ। बल्कि हुआ ही था, लेकिन वह समझती थी कि क्या चीज़ उसे परिचालित कर रही है। यह उसका गतिदायक स्प्रिंग था। नादुका ने अपने पति वालिक से उसके मरने से पहले ही विदा ले ली थी और उसका निधन होने से कुछ भी बदला नहीं था। बास्केटबॉल का खिलाड़ी अपनी माँ से मृत्यु के बाद भी विदा नहीं हुआ था, वह उसके साथ मिलकर एक हो गया था। इस थोपे हुए अलगाव को वह प्रकृति-विरुद्ध मानता था। वास्तव में यूँ कहना चाहिए कि वह इसे मानता ही नहीं था। कोई रास्ता ढूँढ़ रहा था—या माँ के पास चला जाए, या उसे अपने पास लौटा ले। वह दूसरे विकल्प पर आकर रुका था।

"दुनिया में हमारा और कोई नहीं था, सिर्फ़ वह मेरी और मैं उसका। जब मैं एक महीने का था और माँ उन्नीस साल की, तब पिता ने हमें छोड़ दिया था। मुझे तो यह भी मालूम नहीं कि वह वास्तव में थे भी। मैंने उन्हें कभी नहीं देखा। हम ग़रीबी में क्या, कंगाली में रहते थे। कभी तो दिन भर में हमें ख़ाली सूप की एक प्लेट मिलती थी। एक बार तो मैं सारे जाड़े घर में ही बैठा रहा था, मेरे पास गरम जूते ही नहीं थे...।"

नताशा कुर्सी की सरकाई हुई पीठ के सहारे उसकी तरफ़ मुँह करके लेट गई और अपनी साँस के साथ उसकी आवाज़ और शब्दों को अन्दर खींचने लगी।

उसने बताया कि उसकी माँ नाट्य विद्यालय में पढ़ी थी, परन्तु किसी थियेटर ने उसके प्रति रुचि नहीं दिखाई। अवश्य ही वह घटिया अभिनेत्री रही होगी। जीविका के लिए वह 'ज्ञान' सभा के भाषणों का चित्रण करती थी। उदाहरण के लिए, वक्ता का भाषण मैक्सिम गोर्की के कृतित्व पर है। वह पंजों तक का लम्बा फ्राक़, लंबा लहराता हुआ स्कार्फ़ पहने मंच पर आएगी और 'तूफ़ानी समुद्रकाक' का वाचन करते हुए स्कार्फ़ से कभी तूफ़ान का, तो कभी समुद्र का दृश्य बनाएगी। अवश्य ही माँ सामान्य पोशाक पहनकर भी आ सकती थी—स्कर्ट-ब्लाउज़। परन्तु सिद्धान्ततः वह अभिनेत्री थी। उसके भीतर मुखाभिनय और आत्माभिव्यक्ति की चाह थी। परन्तु चाह ने वास्तविकता से मेल नहीं खाया। उसकी प्रतिभा ठिगनी थी, जो वह मानने को तैयार नहीं थी। रचनात्मकता के जीवाणु से संक्रमित व्यक्तियों में से शायद ही कोई अपने बारे में ऐसा कहने को तैयार हो कि मुझमें प्रतिभा नहीं है। इसके लिए विशेष प्रकार की बुद्धि और विशेष प्रकार का साहस चाहिए। फिर वह बीमार पड़ी और चल बसी। अस्पताल में। यह एक साल पहले की बात है। वह, यानी उसका बेटा, सुबह-शाम लगातार उसके साथ रहा था। उसकी जेबें नर्सों को थमाने के लिए मुसड़े हुए रूबलों से भरी रहती थीं। परन्तु सब कुछ वह ख़ुद ही करता था।

एक दिन उसका इलाज करनेवाले डॉक्टर ने कहा—थोड़ा धैर्य रखो, थोड़ा ही बाक़ी है, दो-तीन दिन की बात है।—बास्केटबाल का खिलाड़ी देखे जा रहा था, उसे कुछ समझ नहीं आया कि डॉक्टर का क्या मतलब है।...वह शेष जीवन इसी तरह बिना खाए, बिना सोए, बिना कुछ देर बैठे ही जीने को तैयार था, बस, माँ की साँस चलती रहे और आँखें झपकती रहें। एक दिन की बात है कि सुबह के समय वह सिगरेट पीने के लिए बाहर सीढ़ियों पर आया। जब लौटा तो शुरू में उसकी समझ में कुछ नहीं आया। माँ थी, पर अब वह नहीं रही थी। जिस तरह गाँवों में घर छोड़ देते हैं, वह अपना शरीर छोड़कर कहीं चली गई थी।

वार्ड में एक महिला और भी थी, माँ की पड़ोसिन। उसने काँपती हुई उँगली से इशारा करके धीमे से कहा—वह नहीं रही।—हाँ।—उसने वैसे ही धीमे स्वर में प्रत्युत्तर दिया।—उसे ले जाने को कह दो।—यह नहीं हो सकता। उसे छूना मना है। क्यों?—यही नियम है।—बास्केटबाल के खिलाड़ी को उम्मीद थी कि माँ को भी वापस लौटाया जा सकता है, जहाँ वह अभी-अभी चली गई है, वहाँ से वापस बुलाया जा सकता है।—लेकिन मैं सहन नहीं कर पाऊँगी, पागल हो जाऊँगी।—मैं कुछ नहीं कर सकता।—किसी को तो बुला दो।—मैं

बुला देता हूँ। पर उससे कुछ बनेगा नहीं।—महिला फुसफुसाकर और शान्त स्वर में बोल रही थी। वह भी उसे फुसफुसाते हुए जवाब दे रहा था और जैसा वह समझता था, वैसा समझाने का प्रयास कर रहा था। परन्तु यह तो आघात से पागल हुए दो व्यक्तियों की बातचीत थी—फुसफुसाहट में और कुछ तर्कसगत।

इसके बाद वह डॉक्टर के पास गया, पहले इलाजवाले डॉक्टर के पास और फिर विभागाध्यक्ष के पास। उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि उसकी माँ को पुनर्जीवित कर दें, उन्हें परेशान करने की उनसे बार-बार माफ़ी माँगी। उसे इंजेक्शन लगाकर घर भिजवा दिया गया। घर में उसने शिराओं का विच्छेदन कर दिया।

"स्नेझाना का क्या हुआ?" नताशा ने पूछा।

"उसका कोई महत्त्व नहीं था। मैंने उसको ध्यान में नहीं रखा।"

चुप्पी।

"क्या मैं तुम्हें सामान्य नहीं लगता?" बास्केटबॉल के खिलाड़ी ने दुबारा पूछा।

"नहीं। मेरा तो ऐसा ख़याल नहीं है। बात यह है कि तुम युवक हो और दुःख सहन नहीं कर सकते। तुमने अभी सहन करना सीखा ही नहीं।"

"हो सकता है कि ऐसा ही हो। पर माँ को मरना नहीं चाहिए था। यह तो बेईमानी है। उसका जीवन छोटा रहा और बुरी हालत में गुज़रा। अभिनेत्री के रूप में भी और महिला के रूप में भी। उसने केवल अपमान ही देखे। इसका प्रतिकार क्या है? मृत्यु है क्या?"

"हर व्यक्ति वैसा काटता है, जैसा यह बोता है। यह क्रूरता है, पर है ऐसा ही।"

"उसने तो कोमलता और भोलापन बोया था...।"

"यानी कि उसने ग़लत खेत में बीज बोया।"

"कैसे?" बास्केटबाल के खिलाड़ी की समझ में नहीं आया। नासमझी के कारण तनावग्रस्त मुँह को उसने और पास कर दिया।

"ग़लत पेशा चुना। ग़लत पुरुष के सन्तान पैदा की।"

"ग़लत पुरुष के पैदा की। मगर किसी को पैदा तो किया। मुझे औरों की अपेक्षा सबसे अधिक उसी से प्यार था और है।"

"अपना-अपना भाग्य है...।"

"नहीं।" वह फुसफुसाए स्वर में चीख़ उठा, "यह बेईमानी है।"

उसने मुट्ठी भींच ली, उसे दाँतों में डाला और रोते हुए काँपने लगा।

नताशा ने रोते हुए पुरुषों को पहले कभी नहीं देखा था। हाँ, उसका पहला पति शराब के नशे में कई बार रोने को होता था। लेकिन वह दूसरे ही क़िस्म के आँसू होते थे।

नताशा ने उसकी मुट्ठी को दाँतों से अलग किया, उँगलियों को खोल दिया और अपना मुँह उसकी हथेलियों में डाल दिया। उसकी इच्छा थी कि वह अपने पास नताशा की उपस्थिति को अनुभव करे। वह चाहती थी कि आकाश और धरती के बीच वे एक-दूसरे को पकड़े रहें।

नताशा बोली, "स्नेझ़ाना से शादी कर लो। बेटी पैदा करो। उसे अपनी माँ वाला नाम दे दो। क्या नाम था?

"अलेक्सान्द्रा।"

"ठीक। अलेक्सान्द्रा नाम दे देना। बहुत बढ़िया नाम है। इसे प्यार से चाहे जैसे छोटा कर लो–आल्या, सान्द्रा, शूरा, साशा।...वह तुम्हारी जैसी होगी, क्योंकि बेटियाँ पिता पर जाती हैं और बेटे माँ पर जाते हैं। तुम्हारे माध्यम से सान्द्रा तुम्हारी माँ की जैसी होगी। इस तरह तुम माँ को पुनर्जीवित कर लोगे... ।"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"नताशा।"

"विमान नीचे उतर रहा है। यात्रियों से निवेदन है कि कुर्सियों को सीधा कर लें और पेटियाँ बाँध लें।" औपचारिक स्त्रैण स्वर में परिचारिका की घोषणा सुनाई दी।

बत्तियाँ जल गईं। पेटियाँ बाँधते हुए यात्रियों में हलचल होने लगी। नताशा ने बास्केटबाल के खिलाड़ी पर नज़र फेंकी। ऐसा करके वह उसे यह मौक़ा दे रही थी कि तेज़ रोशनी में वह उसकी सूरत देख ले। परन्तु खिलाड़ी को दोनों की आयु का अन्तर दिखाई नहीं दिया। निश्चय ही धूप के चपेटों से उसके मस्तिष्क में स्थायी परिवर्तन आ गए थे।

"क्या फिर भेंट होगी?" उसने पूछा।

नताशा ने उत्तर दिया, "नहीं। असम्भव है। मैं अकेली नहीं हूँ।"

"तो क्या हुआ? शायद तुम्हें समय मिल जाए।"

"हो सकता है, मिल जाए। पर किसलिए?"

उसने कोई जवाब नहीं दिया। इसके जवाब में क्या कहा जा सकता है?

विमान नीचे उतरने लगा था, वह जैसे गर्म पीड़ा से चिल्ला रहा था। हवाई पट्टी पर उतरते समय धक्के लग रहे थे, जैसे ऊपर उठते समय लगे थे।

पंखों के नीचे के की-सी अस्थिरता झोंके खा रही थी। लगता था कि विमान का कैप्टेन जन्मजात विमान चालक नहीं है। बस, सिखाया हुआ है।

हवाई अड्डे को शहर से अलग करने के लिए लोहे का जँगला लगाया गया था।

कितायेव जँगले के दूसरी तरफ़ खड़ा था, तनावग्रस्त। वह लगातार उस द्वार पर नज़र रखे था, जहाँ से नताशा को बाहर आना था। इस क्षण वह कुलीन हिंसक-जैसा दिखाई दे रहा था।

नताशा द्वार की तरफ़ नहीं गई। वह लोहे के सीखचों के पास खड़ी होकर कितायेव को दूर से देख रही थी—प्रत्यक्ष और लाक्षणिक दोनों अर्थों में दूर से। फिर वह धीमे से चिल्लाई, "कितायेव!..."

उसने जल्दी से मुड़कर देखा, जँगले के पास आकर सीखचों में से हाथ अन्दर डालकर उसका आलिंगन किया, कसकर और जोश में भर उसे चूमा। उसके होंठ पतले और सख़्त थे। चुंबन हृदय तक नहीं पहुँचा। होंठों का होंठों में ही रह गया।

सामान की प्रतीक्षा करते हुए कितायेव ने उड़ान के देरी से आने की शिकायत की। कल रात बर्बाद हो गई जिसके पीछे-पीछे दिन भी व्यर्थ चला गया। ऐसा कहा जा सकता था—तो मैं क्या करूँ? नहीं बुलाना था।—पर नताशा अपराध-भाव लिये चुप रही। कितायेव को उसका दोष नहीं मालूम था। लेकिन नताशा को मालूम था—जिस क्षण मृत्यु का भय सामने खड़ा था, उसने उसे याद नहीं किया, बल्कि किसी और के साथ रात बिताई। यह दोहरा विश्वासघात है।

सामान आ गया था। चौड़ी पट्टी ने धीरे-धीरे घूमना शुरू कर दिया। सूटकेस, ढक्कन में सामानवाले सूटकेस और बैग अँधेरे में से—जैसे अन्तरिक्ष से—आ-आकर उस पर पड़ रहे थे। अभी-अभी जो यात्री थे और अब जो केवल अधूरी नींद वाले लोग थे, घेरा डाले खड़े थे और सम्मोहित होकर पट्टी पर नज़र रखे हुए थे, जैसे जाड़े-बाबा की मुट्ठी पर नज़र रहती है। हालाँकि अपने सूटकेस के अलावा उन्हें और कुछ मिलना नहीं था।

इतने में नताशा को बास्केटबॉल का खिलाड़ी दिखाई दिया। धरती पर वह बहुत आकर्षक दिखाई दे रहा था—एकदम सीधा, लम्बा, मज़बूत गर्दन और उस पर सुन्दर सिर। कार्टून फ़िल्मवाले ऐसी गर्दनें इवान-राजकुमार और इवान-मूर्ख की बनाते हैं। वह स्पष्टतः असमंजस के साथ कितायेव को देखे जा रहा था, वह समझ नहीं पा रहा था कि नताशा उसके पास से इस सूखे बुढ़ऊ के पास क्यों जा रही है? मृतकों को पुनर्जीवित करने के लिए सजीव जल क्यों नहीं

प्राप्त हो सकता? कश्येइ[1] के पास से मेंढकी-राजकुमारी को क्यों नहीं छीना जा सकता?...उसका नीला किट बैग जो देखने में भारी लगता था, पास के सूटकेसों से टकराता और उन पर लुढ़कता हुआ कई बार उसके सामने से गुज़रा था। उसके भीतर प्रश्नों का भी इसी तरह टकराव और जमघट हो रहा था, जिसकी वजह से उसकी आँखें और भी बड़ी होती जा रही थीं।

कितायेव ने पट्टी में से नताशा का भूरे-लाल रंग का परिचित सूटकेस उठाया और वे सामान-कक्ष से आगे बढ़े। सामान का टोकन दिखा दिया। बाहर निकलने से पहले नताशा ने मुड़कर देखा। बास्केटबाल के खिलाड़ी ने पक्षी की तरह गर्दन घुमाई। उसकी आँखें रोमा (जिप्सी) बच्चे की-सी थीं।

नताशा के जीवन की एक घटना है। एक बार गर्मियों में माँ-बेटी दाचा[2] में रह रही थीं। एक रोमा स्त्री उनके प्रांगण में आई। उसकी गोद में असाधारण सुन्दर मैला-कुचैला रोमा बच्चा था, जो अपनी गंदी हथेली फैलाए हुए था। रोमा स्त्री भोजन, वस्तु और पैसे माँग रही थी। वह अधिक से अधिक माँग रही थी क्योंकि उसे मालूम था कि एक रूबल प्राप्त करने के लिए दस माँगने चाहिए। माँ अन्दर जाकर उन चीज़ों को ले आई जिनको देने में कष्ट या अधिक कष्ट नहीं था—मांस की कचौड़ी, पैसे और एक पुराना चोगा। रोमा बच्चे के हाथ में उसने अभी-अभी उबाला हुआ बिना छिला आलू रख दिया। फिर इस भय से कि आलू पर्याप्त ठण्डा नहीं हुआ है उसे बच्चे के हाथ से बुरी तरह छीन लिया। रोमा बच्चे की आँखें उसी क्षण अपमान और आँसुओं के कारण बड़ी हो गईं। वह रोने लगा—धीमे और करुण स्वर में, अपमानित व्यक्ति की तरह। यह उसकी समझ से परे था कि आलू को उसी के भले के लिए छीना गया है। बास्केटबाल के खिलाड़ी को भी समझ नहीं थी कि नताशा का जाना उसी के भले के लिए है। उसकी आँखें वैसी ही रोनी थीं।

व्यक्तियों और कर्तव्यों का पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही होता है, जैसा धरती और वृक्षों का। पेड़ों की जड़ें विशालकाय हाथों की तरह धरती में अन्दर तक चली जाती हैं, उसे पकड़ लेती हैं और स्वयं भी टिकी रहती हैं। धरती को पेड़ों की ज़रूरत है और पेड़ों को धरती की। कर्तव्य केवल जीवितों और मृतकों के मध्य ही नहीं होते हैं, जीवितों और जीवितों के मध्य भी होते हैं।

1. दीर्घ जीवन का रहस्य जाननेवाला रूसी लोककथाओं का दुबला और दुष्ट बूढ़ा।
2. ग्रीष्म-आवास।

अच्छी तरह विश्वस्त हो जाना चाहिए कि एक पेड़ उखाड़कर तुम उसकी जगह एक नया पेड़ लगाओगे और वह उगकर बड़ा हो जाएगा। नहीं तो एक उखाड़ दोगे, दूसरा नहीं रोपोगे और उखड़े हुए गड्ढे के पास खड़े-खड़े अपने हाथों की करतूत देखते रहोगे।

नताशा कितायेव के पीछे-पीछे चली जा रही थी। उसकी खोपड़ी में बास्केटबाल के खिलाड़ी की दृष्टि ठोस किरण की तरह जमी हुई थी। इसके बाद भी बहुत समय तक लगभग हफ़्ते भर तक, उसक़ी दृष्टि का अनुभव मस्तिष्क में कोमल स्थल के रूप में उसे होता रहा था।

हाँ।...पर यहाँ पहले पति का क्या मतलब? एकदम बेमतलब। बस, उस समय जीवन के आरम्भ में अभी मज़बूत नहीं हुई जड़ों को तोड़ने-मरोड़ने में और फेंक देने में कुछ जाता नहीं था। ऐसा लगता था कि सब कुछ फिर से होगा और सब कुछ आगे होने को है।



साभार : नोवी मीर, मार्च, 1985

मूड बिगड़ गया

विक्तोरिया तोकारेवा

बच्चों का जवान डॉक्टर वीक्तर पेत्रोविच जो अभिजान तो नहीं था, पर शकल से बुद्धिजीवी लगता था झुककर बैठा हुआ रोगी की साँस को जाँच रहा था। श्वासमापी (स्टेथोस्कोप) को रोगी की नंगी पीठ पर घुमाते हुए वह बोले जा रहा था—"साँस लो...रोको..."। फिर वह चुप हो गया, और कोने की तरफ़ कहीं देखने लगा।

माँ वहीं, डॉक्टर के कमरे में, खड़ी थी। उसके हाथ में बच्ची के कपड़े थे। चिन्ता के साथ डॉक्टर को देखती हुई वह उसके चेहरे से अपनी बेटी के भाग्य का अनुमान लगाने की कोशिश कर रही थी। पर चेहरे से कुछ समझना मुमकिन नहीं था। वीक्तर पेत्रोविच के चेहरे का भाव ऐसा था, जैसे कि दस मिनट पहले उसकी पत्नी ने टेलीफ़ोन करके कह दिया हो कि वह फिर कभी अपने घर ना आए। या फिर अभी-अभी बच्चों के अस्पताल से मुख्य डॉक्टर ने उसे बुलाकर उसका त्यागपत्र माँगा हो।

बच्ची डॉक्टर का कहना मानती हुई कभी साँस ले रही थी तो कभी रोक रही थी और हर्षपूर्वक अपनी माँ को भी टेढ़ी नज़रों से देख लेती थी। वह स्वभाव से दिखावटी थी और चाहती थी कि वह घटनाओं के केन्द्र में बनी रहे।

वीक्तर पेत्रोविच ने कान से स्टेथोस्कोप की गांटियाँ खींचकर निकालीं और नर्स से बोला, "पर्ची लिखो।"

सफ़ेद चोगा और लाल अंगोरा टोपी पहने नर्स मेज़ की दूसरी तरफ़ बैठी थी। लगता था जैसे कि वह ड्यूटी पर नहीं है। जैसे यूँ ही बैठने को आ गई हो। पास से गुज़र रही थी और आ गई।

"नाम क्या है?" नर्स ने पूछा।

"मेरा नाम?" माँ ने यह पूछते हुए अपना नाम बता दिया, "लारीसा।"

"आपके नाम से क्या मतलब?" नर्स बिगड़ गई।

"माशा प्रोख़ोरोवा।" बच्ची ने बीच में ख़ुद ही बता दिया।

"कपड़े पहन लो।" नर्स ने आदेश देते हुए कहा।

लारीसा जल्दी-जल्दी माशा को फ़्राक पहनाने लगी। फ़्राक अड़ गया क्योंकि बाल बटन में उलझ गए थे। लारीसा जल्दी कर रही थी और माशा चीख़े जा रही थी। वीक्तर पेत्रोविच शिष्ट घृणा के साथ देखे जा रहा था।

"किसकी बारी है?" नर्स ने बुलाते हुए पूछा।

अगली जोड़ी अन्दर आई—दादी और नन्हा पोता। दोनों साफ़-सुथरे थे, चेहरों में ख़ुशी और उल्लास था, जैसे कि मेहमान बनकर आए हों और उन्हें इस बात का कोई सन्देह ही न हो कि उनके आने से वहाँ ख़ुशी हुई है। इस बात से निश्चिन्त कि उनका वहाँ स्वागत है।

वीक्तर पेत्रोविच ने हताश नज़रों से बाहर को देखते हुए कहा, "कपड़े उतारो!"

इस बीच लारीसा और माशा ने फ़्राक को सुलझा लिया था और पर्ची लेकर बाहर निकल गई थीं।

तीन साल की दाशा कुर्सी पर बैठी निष्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी। अपने लोगों को देखा तो कुर्सी से उतरकर अपना हाथ माँ के हाथ में डाल दिया। लारीसा ने एक हाथ से दाशा को पकड़ा और दूसरे से माशा को और दोनों को लेकर सीढ़ियों से नीचे उतरी।

माशा दीवार के साथ-साथ चल रही थी और दाशा दूसरी तरफ़ जीने के हत्थे पर हाथ घिसटती हुई चल रही थी और कॉलोनी के सारे रोगाणुओं को अपनी हथेली में समेटे जा रही थी।

"हाथ हटा।" लारीसा ने एक डाँट मारी।

"क्यों?"

"क्योंकि क्यों के अन्त में 'यों' है।" लारीसा ने समझाया।

इस तरह का उत्तर शिक्षा-सम्मत तो नहीं था, लेकिन लारीसा को अपनी बेटी की पहचान थी—तर्कविरुद्ध बात का उस पर जादुई असर पड़ता था। इस बार भी यही हुआ—उसने हत्थे से हाथ हटा लिया, बल्कि पीठ के पीछे ही कर लिया।

माशा के साथ बात उलटी थी—सब कुछ विस्तार से समझाना पड़ता था, कारण और परिणाम और उनके पारस्परिक संबंध को अलग-अलग करके।

जब आख़िर कोटघर[1] में पहुँचे तो पता चला कि टोकन खो गया है।

पर्स में और जेबों में ढूँढ़ना शुरू किया, विश्वास ही नहीं होता था कि टोकन खो भी सकता है। फिर एक-एक करके पर्स में सब तरफ़ से हाथ डालकर देखा, सारी ज़ेबें टटोल डालीं, पर टोकन नहीं मिला।

"खो गया।" हार मानकर लारीसा ने नीला चोगा पहने हुई टोकनवाली से कहा।

"ढूँढ़ो तो सही!" टोकनवाली अपना निर्णय सुनाकर और काम ख़तम हुआ समझकर अपने साम्राज्य के भीतरी कक्ष में चली गई।

लारीसा ने बेटियों का हाथ पकड़ा। तीनों-की-तीनों वापस मुड़ गईं। वे तनाव में भरकर फ़र्श को देखे जा रही थीं। अपनी आँखों से लकड़ी के पट्टीदार भदमैले-जामनी से फ़र्श के एक-एक सेण्टीमीटर को घूरती जा रही थीं।

शौचालय के इलाक़े में दाशा को चार छेदोंवाला एक बड़ा काला बटन मिला और वीक्तर पेत्रोविच के कक्ष में 'चारोदेडका' टॉफ़ी से निकला चमकदार टिकट मिला। उन्होंने ये विजयोपहार टोकनवाली को लाकर दिखाए, लेकिन उसे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा।

"नहीं मिला।" लारीसा ने कहा। उसकी सूरत दयनीय और अपराधग्रस्त हो गई थी। बच्चियों के देखने का ढंग शैतानी से भरा था, उन्हें मज़ा आ रहा था, जैसे कि कुछ हुआ ही न हो।

टोकनवाली नाराज़ हो रही थी।

"इसी तरह खोते रहेंगे और भरना मुझे पड़ेगा।"

लारीसा अचानक खुश हो गई, "मैं भर दूँगी। कितने भरने होंगे?"

"एक रूबल।" टोकनवाली ने सरकारी स्वर में कहा।

लारीसा को याद था कि पोलिक्लीनिक को आते समय वह अपने साथ रुपये नहीं लाई थी। पर एक रूबल तो पर्स में निकल ही सकता था। उसने फिर से आँखों और उँगलियों से एक-एक कोना छान डाला। उसे मिले पन्द्रह-पन्द्रह कोपेक के चार सिक्के, दस-दस के तीन, एक पंजी और पाँच सिक्के एक-एक कोपेक के।

इस बीच कोटघर के पास एक अधेड़ औरत आई, जिसने बालों में रिबन लगा रखा था। उसके बाल पीछे से और आसपास से रिबन से इस तरह बँधे हुए थे जैसे कि सोफ़े के हत्थे को कसकर मढ़ा गया हो। बालों को इस तरह

1. ओवरकोट, थैले आदि जमा करने की जगह।

महायुद्ध से पहले के दिनों में सँवारा जाता था और यह महिला उसी फ़ैशन के प्रति प्रतिबद्ध थी। उसे दादी अम्मा भी नहीं कह सकते थे। थी महिला ही। उसने भौंहें काली पेन्सिल से रँग रखी थीं। और दोनों रेखाएँ—प्राकृतिक और कृत्रिम—अलग-अलग दिशाओं को जा रही थी। अपनी भौंहें ऊपर को थीं और बनाई हुई नीचे को जा रही थीं।

महिला ने लारीसा का, पेटी से बँधी उसकी पतलून का और आँख की पुतलियों के बीच तक आती घनी कटी लट का सन्देह की दृष्टि से मुआयना किया। फिर बच्चियों की ओर देखा—उन्होंने भी पतलून पहन रखी थी और माथे के सामने बाल भी वैसे ही कटे हुए थे। तब उसकी आँखों में युवापीढ़ी और पूरे ग्रह के भविष्य को लेकर चिन्ता की झलक दिखाई दी, जिसे इन हाथों में सौंपना पड़ेगा। संभवतः बहुत बुढ़ापे में लिओनार्दो दा विन्ची को भी ऐसा ही महसूस हुआ होगा, जब उसे अपने आसपास एक भी ऐसा सुयोग्य शिष्य नहीं मिला होगा, जिसे वह अपनी तूलिका सौंप सकता।

काल के नियमों तथा जीवविज्ञान के नियमों के अनुसार लारीसा और उसके बच्चों को इस महिला के बाद और उसके बदले जीना था और इसलिए उसे और भी बुरा लगा। उसने घृणित अविश्वास के साथ लारीसा को देखा और फिर टोकनवाली को—जैसे कि उसे अपनी शंकाएँ बता रही हो।

लारीसा ने भी उस महिला को टेढ़ी नज़रों से देखा और बच्चों से रास्ता छोड़ने को कहा। सब कुछ पूरी विनम्रता और सही ढंग से हुआ, मगर पीढ़ियों में युगयुगान्तरी टकराव की काली छाया कोटघर पर छाकर निकल गई।

लारीसा ने रेज़गारी फिर से गिनकर भारी बोझ टोकनवाली की तरफ़ बढ़ाया। इस मुद्रा से ठीक पहले दोनों का नज़रों में आदान-प्रदान हो गया था। टोकनवाली को असम्माननीय हाथों से पैसा लेना अच्छा नहीं लगा।

"मैं तेरे पैसे नहीं लेने की!" टोकनवाली ने कड़े स्वर में कहा।

"क्यों?" लारीसा असमंजस में पड़ गई, उसका बढ़ा हुआ हाथ लटकता रह गया।

"इनका मैं क्या करूँ? मुझे टोकन चाहिए, पैसे नहीं।"

इतने में वह महिला ओवरकोट पहनकर वहाँ से चली गई। मगर टोकनवाली को अब अपना फ़ैसला बदलना मुश्किल था।

"तो किसे जाकर दूँ?" लारीसा ने पूछा।

"बड़ी दीदी' को दे दो।..."

लारीसा ने उँगलियाँ बन्द कीं, रेज़गारी को हथेली में दबोचा और गलियारे के छोर की तरफ़ चल दी। बच्चियाँ उसके पीछे-पीछे चल पड़ीं, चेखव के परजीवियों की तरह ज़रा दूरी बनाए हुए।

एक सफ़ेद दरवाज़े पर 'बड़ी-दीदी' की नाम-पट्टिका टँगी हुई थी।

'बड़ी दीदी' सफ़ेद चोगा और सफ़ेद टोपी पहने थी। नानबाई जैसी लग रही थी। वह अपनी मेज़ के दराज़ में कुछ ढूँढ़ती दिखाई दे रही थी और यह काम वह पूरी एकाग्रता से कर रही थी।

"माफ़ कीजिए, हमारा टोकन गुम हो गया है।" लारीसा ने कहा।

"तो फिर?" 'बड़ी दीदी' ने दराज़ से ध्यान हटाते हुए पूछा।

"ये ले लो।" लारीसा ने भींची हुई हथेली खोलकर सिक्के दिखाए—पीले और चमकदार, बड़े और छोटे—प्रचलित सिक्कों का लगभग हर नमूना वहाँ था।

"इनका मैं क्या करूँ?" 'बड़ी दीदी' समझी नहीं।

"पैसे हैं।" लारीसा ने समझाया।

"मुझे क्या मतलब?"

"टोकनवाली ने आपके पास जमा कराने को कहा है।"

"मेरे पास क्यों कर?" 'बड़ी दीदी' ने भद्दे ढंग से आश्चर्य व्यक्त किया। कम वेतन पानेवाले की अनावश्यक औपचारिकता उसमें भरी हुई थी।

"तो किसे दूँ?"

"जहाँ खोया था वहीं जाकर दो।"

'बड़ी दीदी' दराज में फिर से वही चीज़ ढूँढ़ने में लग गई, जिसकी उसे ज़रूरत थी।

"गलती हो गई।" यह कहकर लारीसा गुस्से से कुड़कुड़ाती हुई कमरे से बाहर निकल आई और दरवाज़ा बन्द कर दिया।

"मुझे भूख लगी है।" दाशा बोली।

"मुझे प्यास लगी है।.. " माशा बोली।

"टोकन किसके पास था?" लारीसा ने खीझ कर पूछा।

"इसके पास था।" दाशा ने अपनी बहन की तरफ़ इशारा कर दिया।

"मेरे पास नहीं था।" माशा ने तुरन्त नकार दिया।

"कैसे बच्चे हैं।" यह था लारीसा का कटु निष्कर्ष, "बेसुध, फूहड़ कहीं के! पता नहीं, औरों के बच्चों को न सर्दी-जुकाम होता है और न उनसे कुछ खोता ही है। तुम्हें साप्ताहिक बोर्डिंग में भेज दूँगी।"

दाशा और माशा ने सब सुन लिया। उन्हें विश्वास हो गया और उनकी आत्मा उदास हो गई।

"मेरे पीछे-पीछे मत आओ।" लारीसा ने आदेश देकर कहा, "यहीं खड़ी रहो। इसी जगह।"

लारीसा चाल तेज़ करके कोटघर की तरफ़ गई।

वहाँ काउण्टर के पास काफ़ी लम्बी लाइन बन चुकी थी और टोकनवाली अपने काम में बुरी तरह व्यस्त थी।

"'बड़ी दीदी' ने नहीं लिये।" लारीसा ने उचककर कहा।

टोकनवाली चुप रही। वह ओवरकोटों का गट्ठर अपने पेट के सहारे लादे ले जा रही थी।

"आप ले लीजिए ना।" लारीसा ने रेज़गारीवाली मुट्ठी को लोगों के सिरों के बीच में से आगे बढ़ा दिया। भीड़ में से एक औरत बोली, "बीच में मत घुसो। हम बच्चों के साथ खड़े हैं।"

"मैं भी खड़ी थी।" लारीसा ने समझाते हुए कहा।

इतने में लाइन के मध्य भाग में से एक और चिल्लाई, "कोई शर्म-हया नहीं है। इनकी आँखों में थूको तो कहेंगी कि बारिश हो रही है।"

टोकनवाली चुपचाप ओवरकोट देती जा रही थी। उसने ऐसी सूरत बना रखी थी, जैसे कि लारीसा को जानती ही न हो। पहली बार देखा हो।

लारीसा को कोटघर से दूर धकेल दिया गया।

उसने गलियारे की तरफ़ नज़र डाली। बच्चे वहीं खड़े थे, जहाँ वह उन्हें छोड़ आई थी, मद्यपान से होने वाले नुकसानवाले पोस्टर के नीचे। माशा चुपचाप रोए जा रही थी। दाशा पोस्टर देखने में लगी थी। उसमें यह विलक्षण गुण था कि वह क्षण भर में ही अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल ढाल सकती थी और किसी भी तरह की शिकायत नहीं कर सकती थी।

लारीसा ने पास आकर पूछा, "रो क्यों रही है? किसलिए रोए जा रही है?"

माशा ने सिर से गोता लगाया, होंठ आगे को निकाल दिए और फिर अधिक जोश के साथ रोना शुरू कर दिया, क्योंकि अब उसके दुःख को देखने के लिए वहाँ कोई था तो सही।

माशा के रोने का ढंग बिलकुल रीता काकी के जैसा था। उनके कुल में कोई दूर की रिश्तेदार थी, जो अविवाहित ही रही थी और जिन्होंने अपना जीवन वृद्धालय में बिताया था। तो जब रीता काकी रोती थीं तो उनके होंठ सिकुड़ जाते थे तथा भौंहें काँपती थीं—बिल्कुल वैसे ही जैसे माशा की। बल्कि

यों कहना चाहिए कि माशा उनके जैसी रोती थी। यह समझ में आनेवाली बात नहीं थी कि गुणसूत्रों का यह समूह कौन-से मार्गों से होकर यहाँ तक पहुँचा था।...

"चल अब चुप हो जा।" लारीसा ने समझाते हुए कहा और माशा के सामने आकर बैठ गई। माशा अपने छोटे और भारी शरीर के साथ अपनी माँ के ऊपर गिर पड़ी और उसके गाल पर अपनी गरम साँस छोड़ती हुई उसके चेहरे को अपने मीठे रुदन से भर दिया।

"बस हो गया। बस ना!" माशा के गीले चेहरे को चूमते हुए लारीसा बोली।

माशा ने सिर हिला दिया, लेकिन आँसू निकले जा रहे थे पर पहले की तरह कड़वे नहीं थे, अब हल्के और चमकीले हो गए थे। भौंहों और गालों में लाल और असमान धब्बे पड़े थे।

दाशा पास में मूर्ति की तरह खड़ी हुई थी। वह लाल नाकवाले अंकल को देखने में मग्न थी, जिसका चित्र सही नहीं बना था।

लारीसा ने मन-ही-मन कहा—"एकदम प्रोखरवों पर गई है। आख़िर प्रोखरव वंश में ही तो पैदा हुई है।"

'बड़ी दीदी' अपने कमरे से बाहर आई।

"एक बात है, ज़रा..." लारीसा ने अपनी बात शुरू तो की मगर 'बड़ी दीदी' पास से ऐसे निकल गई, जैसे जनरल किसी नए रंगरूट के सामने से चला जाता है। फिर वह लौटकर आई और अपना कमरा बन्द कर दिया। उसकी चौड़ी पीठ जैसे यह कह रही हो कि "चले आते हैं...और भी पता नहीं क्या-क्या खो देंगे..."

"तो मैं किसके पास जाऊँ?" अलभ्य पीठ की ओर देखते हुए लारीसा ने पूछा।

"जिस डॉक्टर का इलाज चल रहा है, उसके पास जाओ।" 'बड़ी दीदी' ने रटे-रटाए सुर में जवाब दे दिया।

लगता था कि सभी माताएँ उसके पास चिकित्सा के प्रश्न लेकर आती थीं और वह सभी को इलाज करनेवाले डॉक्टर के पास भेज देती थी।

वीक्तर पेत्रोविच "साँस लो", "साँस बन्द करो" का आदेश देते हुए स्टेथेस्कोप को एक बच्चे की पीठ पर चला रहा था। उसने स्टेथेस्कोप की गोटियों को कान से निकाला और अन्दर चली आई लारीसा पर दृष्टि डाली।

"क्या है?" बच्चे की माँ ने वीक्तर पेत्रोविच की दृष्टि को कैद करते हुए पूछा।

"वही है। और क्या हो सकता है?" वीक्तर पेत्रोविच ने सावधानी के साथ अपनी आँखों को उसकी पुतलियों की क़ैद से छुड़ाते हुए उत्तर दिया।

वह महिला कुछ देर चुप रही। उसकी चेतना में विद्यमान आशा उसकी सहजवुद्धि से मेल नहीं बैठा पा रही थी जबकि वीक्तर पेत्रोविच सहजबुद्धि से काम ले आ रहा था।

"अगर आपरेशन न किया जाए तो?" उस महिला ने धीमे से पूछा।

वीक्तर पेत्रोविच ने विनम्र स्वर में याद दिलाते हुए कहा, "इस बारे में हम बात कर तो चुके हैं। और कोई नई बात मुझे नहीं कहनी है। जो कह चुका हूँ, वही दुबारा कह सकता हूँ।"

महिला चुप रही। वह शान्त मूरत लिये खड़ी रही। मगर लारीसा को दिखाई दिया कि यह ख़ालीपन की शान्ति थी, जैसे कि अन्दर से सब कुछ निकाल लिया गया हो, केवल खोल बाक़ी रह गया हो। कमरे में घुटनवाली स्थिर शान्ति छा गई।

"आपको क्या काम है?" वीक्तर पेत्रोविच ने लारीसा की तरफ़ देखकर पूछा।

"कुछ नहीं।..."

लारीसा बाहर आ गई। आस-पास लोग आ-जा रहे थे, पर लारीसा ने ध्यान नहीं दिया। वह अंगूर के बीज की तरह किसी अन्य के दुःख के कोटर में विद्यमान थी और अपनी जगह से खिसक नहीं सकती थी।

...लाइन ख़तम हो गई थी। कोटघर ख़ाली था। टोकनवाली औरत स्टूल पर बैठी हुई बुनाई कर रही थी। 'बड़ी दीदी' उसके सामने काउण्टर पर कोहनी टिकाकर खड़ी हुई थी और उसके हाथों को देख रही थी।

"तो बावन फन्दे हुए। याद रहेगा?" टोकनवाली ने पूछा।

"बावन बार गिनूँ क्या?" 'बड़ी दीदी' ने पूछा।

अब की बार टोकनवाली को उसकी बात समझ नहीं आई। दोनों कुछ देर तक एक दूसरी को तनाव के साथ देखती रहीं।

"बावन सीधे और बावन उल्टे या कुल मिलाकर बावन?" 'बड़ी दीदी' समझाकर पूछ रही थी और इस बीच उसे बच्चों के साथ लारीसा दिखाई दी। "ओहो! ढोए चले आते हैं।...फूजीयामा..." लारीसा समझी नहीं कि फूजीयामा क्यों कहा। सम्भवतः उसके बाल और काली आँखें दूर से पूर्व के देश का आभास दे रहे थे।

"मुझे भूख लगी है।" दाशा ने याद दिलाते हुए कहा।

"मुझे भी लगी है।" माशा ने भी कहा।

"मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ—हमारे ओवरकोट दे दो। इतना तो लिहाज करो, अब नहीं रहा जाता।..." लारीसा ने धीमे स्वर में निवेदन किया।

"आपको किसी ने रोक नहीं रखा है।" 'बड़ी दीदी' ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा। "टोकन दो और घर जाओ।"

उसको लारीसा पर अधिकार प्राप्त था और निश्चय ही वह एक प्रकार के मिथ्याभिमान का अनुभव कर रही थी, जिसे वह त्यागना नहीं चाहती थी।

"आपको मालूम ही है कि टोकन तो नहीं है। क्या हम बिना कुछ ओढ़े चली जाएँ?"

"हमें आपके ओवरकोट का कैसे पता चलेगा?" 'बड़ी दीदी' ने जानना चाहा।

"मैं ढूँढ़ लूँगी।"

"तुम तो ढूँढ़ ही लोगी।..." टोकनवाली मुनमुनाती हुई बोली—उसका संकेत इस बात की ओर था कि लारीसा टोकनों द्वारा सुरक्षित दूसरों के माल पर हाथ मार सकती थी।

"आपको मेरा विश्वास नहीं है क्या?"

"हम क्यों किसी पर विश्वास करें और किसी पर अविश्वास?" 'बड़ी दीदी' ने प्रश्न किया और उसकी बात में तर्क भी था।

जब तक समाज में चोर हैं, तब तक टोकन और कोटघर भी रहेंगे। बहुत संभव है कि जीवन के जंजाल में चोरों का होना भी ज़रूरी है, जिससे कि लोग भलाई और बुराई में अन्तर कर सकें, एक की क़द्र करें और दूसरे का प्रतिरोध। दासप्रथा वाले समाज में भी चोर हुआ करते थे और साधारण लोगों से अलग-थलग नहीं थे—तब तक जब तक कि कुछ चुरा नहीं लेते थे।

"तो क्या करूँ?" लारीसा असमंजस में पड़ गई थी, "यहाँ रात तो बितानी नहीं है।..."

"रात क्यों बितानी? रात को रहने की ज़रूरत नहीं है।" 'बड़ी दीदी' ने टोकनवाली से ऊन का गोला और सलाइयों ले लीं। "कुल मिलाकर बावन फन्दे या एक सौ चार?" वह पहलेवाले विषय पर लौट आई।

"एक सौ चार किसलिए? बावन होंगे। इतना बुन लो।" टोकनवाली ने छोटी उँगली और अँगूठे से पूरी नाप लेकर बताया, "फिर जब घर गिराने होंगे तो मैं पूरा कर दूँगी। असली बात सिर की है।"

बड़ी दीदी ने सलाइयों को गोले में खोंस लिया।

"जो ओवरकोट बचे रह जाएँगे, बिना टोकन के दे देना।" यह आदेश देकर वह चली गई।

"बचे कैसे रहेंगे?" लारीसा समझी नहीं।

"बन्द करने तक सब अपने-अपने ले जाएँगे। तब उम्मीद है कि आपके ओवरकोट बचे रह जाएँगे।"

"बन्द कब करोगी?"

"आठ बजे।"

"इसका मतलब मुझे आठ बजे तक इन्तज़ार करना पड़ेगा।"

इस क्षण 'बड़ी दीदी' लारीसा के पास से गुज़र रही थी। लारीसा घबरा गई कि अभी वह चली जाएगी और फिर कुछ भी नहीं बदला जा सकेगा। टोकनवाली—जिसका पद सबसे छोटा था—उसकी बात को अनसुना नहीं कर सकती थी और न उसके आदेश को रद्द ही कर सकती थी।

"ज़रा रुकिए!" लारीसा ने दौड़कर 'बड़ी दीदी' को बाँह से पकड़ लिया।

'बड़ी दीदी' काँप गई। उसने हाथ छुड़ा लिया। तब लारीसा ने उसे और कसकर पकड़ लिया, ताकि जो भी हो जाए पकड़ी रहे, हर हालत में। चाहे ज़िन्दगी दाँव पर क्यों न लगानी पड़े। इसके बाद वह हुआ जो भौतिकी के कक्ष में भौतिकीय प्रयोग के समय होता है, जब दो निकट आए हुए गोलों के बीच में निरावेशन घटित होता है।

बादल गरजे, बिजली चमकी और अचानक लारीसा को लगा कि वह कोने में दवाइयों के खोखे की ओर उड़ रही है, उसके तने हुए पाँव फ़र्श पर फिसले जा रहे हैं। इसके बाद उसे महसूस हुआ कि वह 'बड़ी दीदी' के कोमल शरीर के ऊपर आ गई है, फिर नीचे आ गई, कड़ा लिनोलियम फावड़े जैसा प्रतीत हो रहा था, उसकी आँखों के आगे चोगे के कारण सफ़ेदी छाई हुई थी। पीले और चाँदीले सिक्के खनखनाते हुए सारे कोटघर में बिखर गए थे।

खोखेवाली ने अपनी सीट से बाहर को देखकर कहा, "पुलिस को बुलाना चाहिए। पन्द्रह दिन के लिए बन्द रखेंगे, तब पता चलेगा।"

माशा और दाशा मुँह फाड़कर एक साथ रोने लगी थीं और उनकी हालत ऐसी हो गई थी कि नीली तक पड़ गईं। टोकनवाली डर गई कि कहीं बच्चियों की साँस न अटक गए और ऑक्सीजन की कमी से वे कहीं दम न तोड़ दें। वह झट से ओवरकोटों के घने गुच्छों की तरफ़ गई और लौटकर बलगारिया के बने दो सफ़ेद फ़रकोट और सिझाए चमड़े का एक रँगा हुआ ओवरकोट काउण्टर पर लाकर पटक दिया।

माताएँ बच्चों के साथ कोटघर के पास आ रही थीं परन्तु, ख़तरे के इलाक़े में क़दम रखते डर रही थी। सफलता अदल-बदल कर रही थी। 'बड़ी दीदी' आकार में बढ़ी-चढ़ी थी तो लारीसा तेज़ स्वभाव में बढ़-चढ़ कर थी।

कुछ स्वयंसेवकों ने झगड़े के बीच में कूदकर दोनों औरतों को अलग-अलग कोनों में कर दिया जैसे कि दंगल में होता है। दोनों खड़ी-खड़ी लम्बी-लम्बी साँसें ले रही थीं और एक शब्द भी नहीं बोल पा रही थीं।

"लफंगी कहीं की!" खोखेवाली बोली।

उसका समर्थन करते हुए पर्चीवाली सिस्टर बोली, "ये भी क्या बात हुई! यदि हर कोई आकर स्टाफ़ को पीटने लगेगा तो हमारा क्या बचेगा...!"

टोकनवाली इस बीच जल्दी-जल्दी माशा और दाशा को फ़रकोट पहनाने में लगी थी। कोट के सारे बटन लगाकर फ़रदार टोप पहनाए, स्कार्फ़ बाँधा, ताकि बच्चियों को कहीं ठण्ड न लग जाए और दुबारा अपनी माँ के साथ लौट न आएँ।

लारीसा स्वयंसेवकों के हाथों से मुक्त हो गई थी। अपना चमड़े का ओवरकोट लेकर वह दरवाज़े की तरफ़ चल दी। वह चलते-चलते कोट पहन रही थी, दस्ताने और रूमाल नीचे गिर गए थे जो किसी ने नीचे से उठाकर उसे पकड़ा दिए थे।

बच्चियाँ उसके पीछे-पीछे चल दीं, एक जैसे फ़रकोट और फ़रटोप पहने।

बाहर बर्फ़ गिर गई थी। धरती सफ़ेद और सजी-धजी हुई थी। आसमान धुँधला था और सफ़ेद भी।

पहले, दस साल पीछे, इस जगह एक गाँव होता था। वहाँ घने बग़ीचे होते थे और चेरी के पेड़ लगे हुए थे। अब यहाँ नई बस्ती बन गई है, पर बर्फ़ और आसमान गाँववाला ही है।

पटरी पर एक बूढ़ा खड़ा हुआ था और अपनी टाँगों के नीचे देख रहा था। लारीसा ने भी उसकी टाँगों के नीचे देखा—वहाँ सेब का टुकड़ा पड़ा हुआ था। बूढ़े ने सिर उठाकर कहा, "मालूम है, मैंने सेब खाया तो अन्दर कीड़ा निकला। मैं आधे घण्टे से खड़ा उसी को देखे जा रहा हूँ। कीड़ा भी कैसा विचित्र प्राणी है।..."

लारीसा ने अनमने भाव से सिर हिलाया और चल दी। अचानक वह रुक गई—वह यह सोचने लगी थी कि अच्छे परिवार की युवती, पी-एच.डी. की हुई, दो बच्चियों की माँ, साहित्य और संगीत की समझ रखनेवाली होते

हुए भी वह अभी-अभी झगड़ क्यों बैठी थी, मध्यान्तर में किसी गुण्डे की तरह और पुलिस के हवाले हो जानेवाली थी। पुलिस आकर थाने ले जाती और पूछती, "तुमने झगड़ा क्यों किया?"

"मैं बोर होती रहती हूँ। बोरियत..." लारीसा ऐसा जवाब देती।

जवानी के दिन थे। प्रोखरव के प्रति प्रेम था। प्रोखरव बचा रह गया था, मगर प्रेम चला गया था। सब कुछ गुज़र गया, पर अभी तो बहुत जीना है। इस बूढ़े की तरह कीड़े का यूँ ही अवलोकन करने के लिए तो अभी कम-से-कम तीस साल और गुज़रने चाहिए। तीस साल—जिनमें हर एक दिन एक जैसी कसी बूँद की तरह है, जो समान अन्तराल से ललाट पर गिरा करेगी।

वस्तुत जाने को कहीं नही है। अगर कहीं होता भी तो बेमतलब था। फ़ैशन हमेशा बदलता रहता है और उसके अनुरूप रहने के लिए जीवन को लगाना पड़ता है। अगर कुछ मतलब भी निकलता और कहीं जाने को होता भी, तब भी बोरियत वैसी-की-वैसी रहती। अनाथालय के बच्चों की तरह अस्थिर चित्त।...

पुलिसवाला पूछता, "पन्द्रह दिन के लिए बन्द कर दूँ, बोर तो नहीं होगी?"

"कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।..."

"ठीक है। आदत पड़ जाएगी।" पुलिसवाला कहेगा।

"नहीं पड़ेगी।"

"पड़ जाएगी। कहाँ बचोगी..."

लारीसा ने डुबकी लगाई। उसकी भौंहे काँपने लगीं और उसे अपनी सूरत में रीता काकी का चेहरा दिखाई दिया। बच्चियाँ धीमे-धीमे उसके पीछे-पीछे चली जा रही थीं, शान्त और खिन्न।

बर्फ़ के कारण सड़क जम गई थी। बच्चियाँ बीच-बीच में फिसल जाती थी, पर गिर नहीं रही थी, बस कन्धे टकरा जाते थे।

तीन बजे पाली समाप्त हुई है 'बड़ी दीदी' बाहर बरामदे में चली गई!

तीन बजे से नवजात शिशुओं की बारी थी। पोलिक्लीनिक का सारा अहाता बच्चा-गाड़ियों से पट गया था।

बच्चा-गाड़ी के साथ एक और माँ वहाँ आई और गाड़ी में से बच्चे को निकालने लगी, जो वनपीस सूट पहने था। गोल-मटोल, चेहरा भी गोल-गोल। गाड़ी के गद्दे के ऊपर बिछी चादर सूट की पेटी में फँस गई थी और छुटके राजकुमार के पीछे लबादे की तरह लग गई थी। इस लबादे को निकालना ज़रूरी

था पर हाथ ख़ाली नहीं थे। उस महिला ने बच्चे को जितना हो सकता था, ऊपर उठा दिया। चादर अलग होकर गिर गई, पर उस महिला ने हाथ नीचे नहीं किए। वह बच्चे को सिर के ऊपर किए हँसे जा रही थी, आँखें मींचकर उसके चेहरे को घूर रही थी, मूर्ख-सी, ख़ुशी के मारे अंधी हो रही थी। बच्चा हवा में लटक रहा था, उसके हाथ-पाँव सहज ढंग से लटक रहे थे, न वह कुछ व्यक्त कर रहा था—न भय, न हर्ष। माँ के हाथों में वह विश्वस्त था और माँ के प्रेम का अभ्यस्त। जीवन के पहले दिन से ही ऐसा था। वह सोच भी नहीं सकता था कि कुछ और भी हो सकता है।

'बड़ी दीदी' इस जोड़ी को देखती रह गई। वह सोच रही थी कि उसके भी बिलकुल ऐसा गरमा-गरम गोल-मटोल कोई होता—तो उसकी और कोई इच्छा नहीं होती और कभी भी किसी से एक भी कठोर शब्द नहीं कहती। और ये—उसे लारीसा की याद आ गई, "हरामज़ादी दो-दो होकर के भी झगड़ती-फिरती है।"

ठण्ड नहीं थी, लेकिन हवा फिर भी शाल के लाल-लाल छिद्रों से अन्दर आ रही थी।

पोलिक्लीनिक के बगल में 'वीतिज़' सिनेमाघर था, जिसकी दीवार पर की ओर लोहे की चादर का बना महाबली उसे सौंपी गई बस्ती को अग्रभाग से निहार रहा था।



साभार : विक्तारिया तोकारेवा—लितायुरिशले कच्येलि (उड़न झूला) मास्को, 1987

बहुरुपिये

ग्रिगोरी पेत्रोव

सच, यदि 'स्व्यात्कि'[1] का अवसर न होता, यदि वे पावन दिन न होते तो शिशीगिन के साथ ऐसा कभी भी घटित न हुआ होता। सारी बात इससे शुरू हुई कि शिशीगिन की पत्नी सर्कस के दो टिकट ले आई और शायद उसके दूसरे दिन से ही 'स्व्यात्कि' के दिन आरम्भ हो गए। उसकी पत्नी का छोटा-सा कारोबार है—पर्फ़्यूम का स्टाल है उसका। बीच में सर्कस कहाँ से आ गई! स्वयं शिशीगिन आजकल कोई काम नहीं करता है। हाँ, कुछ समय ऐसा ही चलेगा—उसकी फ़ैक्ट्री के सारे लोगों को छुट्टी दे दी गई है, क्योंकि वेतन देने को रुपये ही नहीं हैं। इस तरह उसके पास समय-ही-समय है।

संक्षेप में कहें तो शिशीगिन पत्नी के साथ सर्कस देखने गया। पूर्वार्द्ध में सब ठीक-ठाक रहा। तैराकी की पोशाक पहनी हुई एक लड़की कुत्तों को बाड़ पर से कुदा रही थी, जोकर अपने-अपने वाद्यों से एक-दूसरे को उकसा रहे थे—सब कुछ वैसे ही हो रहा था, जैसा कि होना चाहिए! पर मध्यान्तर के समय पति-पत्नी में छोटी-सी तक़रार हो पड़ी। हुआ यह कि शिशीगिन ने कैंटीन से अपने लिए बियर लाने को कहा, पर पत्नी ने इस बात को लेकर तूफ़ान खड़ा कर दिया। कहने लगी कि मैं स्वयं तो हाड़-तोड़ मेहनत में लगी हूँ और तुम्हें बियर पीने की पड़ी है। मध्यान्तर की घण्टी वजने तक वह उसकी ख़बर लेती रही।

इसके बाद ही तो सब कुछ शुरू हुआ। दोनों बैठे हुए थे, न एक-दूसरे को देख रहे थे, न बातें कर रहे थे। तभी मंच पर एक जादूगर आया, सूरत

---

1. प्राचीन रूसी नववर्ष—7 से 19 जनवरी—का समय

उसकी घमण्डी थी। पहले तो उसने छोटे-मोटे करतब दिखाए—कान के अन्दर से गेंद निकाली, सिक्कों को निगल गया तथा कुछ और भी दिखाया। इसके बाद अचानक कुछ लोग मंच पर पहियों वाला बक्सा ले आए। जादूगर ने दर्शकों की ओर देखकर पूछा कि क्या कोई इस बक्से में घुसकर अपने को कटवाना चाहेगा। दर्शक तुरन्त चुप पड़ गए, बैठे-बैठे हँसने लगे। तभी अचानक शिशीगिन ने यूँ ही, निश्चय ही, मख़ौल में पत्नी से कह दिया, "काश कि मुझे पता होता कि किसे कटवाना है...!"

उसने कुछ ऐसे कहा जैसे कि पत्नी से नहीं बल्कि कहीं और देखकर कहा हो। आगे इतना और जोड़ दिया, "हम मान सकते हैं कि कुछ लोगों को किसी बात पर घबराने की ज़रूरत है ही नहीं। कोई भी आरी उनके आर-पार नहीं जा सकती।..."

पत्नी ने विचित्र दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह उठ खड़ी हुई और चिल्ला कर बोली, "मैं! मैं कटवाना चाहती हूँ अपने को।"

दर्शकों में एकाएक स्फूर्ति आ गई और वे तालियाँ बजाने लगे। शिशीगिन की पत्नी मंच पर आ गई और वह बक्से में इस तरह घुस गई कि बक्से के एक सिरे से उसका सिर नज़र आ रहा था और दूसरे से टाँगें। जादूगर को उसके सहायकों ने आरी थमा दी। काफ़ी देर तक माप लेने के बाद उसने आख़िरकार आरी को जमाया और चीरना शुरू कर दिया। उसने काटकर बक्से के दो हिस्से कर डाले। एक हिस्से में सिर था और दूसरे में टाँगें। दोनों हिस्सों को उसने अलग-अलग दिशाओं में सरका दिया।

स्वाभाविक है कि सब लोग फिर से तालियाँ बजाने और हँसने लगे। बहुतों ने शिशीगिन की ओर सहानुभूतिपूर्वक मुड़कर देखा और शिशीगिन ने हाथ से इशारा कर यों बताया कि सब ठीक है, चिन्ता मत कीजिए। इसके बाद जादूगर ने दोनों हिस्सों को सटा दिया। जादूगर के सहायक उस बक्से को ढँकने के लिए चादर ले आए। चादर उठाते ही बक्से में से एक औरत निकल कर आई। पर वह तो शिशीगिन की पत्नी नहीं थी, कोई दूसरी ही औरत थी, कोई अपरिचित महिला थी। शिशीगिन खड़ा होकर चिल्लाने लगा, "यह मेरी पत्नी नहीं है!"

स्वाभाविक है कि हॉल में ठहाका गूंजा ओर सब लोगों की हँसी छूट गई। स्वयं शिशीगिन भी थोड़ा हँसे बिना नहीं रह सका। पर उसकी पत्नी तो तमाशे की समाप्ति तक भी प्रकट नहीं हुई। तमाशा पूरा होने के बाद शिशीगिन ने थोड़ा और इन्तज़ार किया और फिर पर्दे के पीछे जाकर अपनी पत्नी की

माँग करने लगा। उसे जवाब मिला कि यहाँ कोई नहीं है, सब लोग जा चुके हैं। "मुझे छोड़कर चली गई होगी, नाराज़ हो गई होगी।"—शिर्शीगिन के मन में ऐसा विचार आया। वह जल्दी से अपने घर गया, ऊपर चढ़ कर दरवाज़ा खोला। पर वहाँ तो कोई था ही नहीं। पत्नी घर में नहीं थी।

अगले दिन फिर शिशीगिन सर्कस गया और उसने जादूगर को बुलवाया।

"मेरी बीवी को लौटाओ!" उसने दृढ़ स्वर में कहा।

"मैं आपकी किसी बीवी को नहीं जानता।" जादूगर ने जवाब दिया। उसके चेहरे में बिलकुल वैसा ही घमण्ड था, जैसा कि कल तमाशे के समय दिखाई दे रहा था।

जादूगर के पीछे-पीछे शिशीगिन के पास वही महिला आ गई, जो कल उसकी पत्नी के बदले निकली थी। पास से देखने पर शिर्शीगिन ने उसे ऐसा सुन्दर पाया कि उस पर से उसकी नज़र ही नहीं हट रही थी। वह थी कि हँसे जा रही थी, सम्मोहक ढंग से, जैसे कि वह किसी मंच पर खड़ी हो।

"आपकी बीवी तो यहाँ नहीं है। मैं उसकी जगह...।"

शिशीगिन पसीना-पसीना हो गया। वह बोला, "नहीं। मुझे अपनी पत्नी ही चाहिए...।"

शिशीगिन यह सोच ही रहा था कि जाकर पुलिस में रपट लिखवाऊँ कि तभी पत्नी की सहेली बलालायेवा ने उसे ऐसा करने से रोक दिया, "क्या पता, वह आपके पास से भागकर जादूगर के पास चली गयी हो।...बड़े शर्म की बात होगी, जब बाद में यह बात पता चलेगी...।"

शिशीगिन के मित्रों ने भी उसे ऐसा करने से रोक दिया।

"तुम्हारे साथ कुछ-न-कुछ उदास ही घटता रहता है। तुम्हारी पत्नी मिल जाएगी। वह जा कहाँ सकती है?" ज़ामाचीलिन ने कहा।

अखेन्येयेव तासिक ने भी वैसी ही बात कही, "तुम्हारे साथ औरों जैसी बातें नहीं घटती हैं—औरों के रुपये खोते हैं या सामान खो जाता है। पर तुम्हारी तो बीवी ही खो गई! एक शब्द में कहा जाए तो बदक़िस्मत कहना होगा।..."

उसके समर्थन में वन्याकिन ने कहा, "और कोई होता तो ख़ुश ही होता। पर यहाँ तो उलटा ही हो रहा है। पत्नी नहीं है, फिर भी मायूस हो। क्या तुम्हें पता है कि सर्कस में सभी पुरुष तुमसे ईर्ष्या कर रहे थे कि ज़रूर..."

अन्त में ज़ामाचीलिन ने यह सलाह दी, "तुम ऐसा करो। कल सच्येल्निक[1] है।...तुम आ जाना। स्व्यात्कि की प्रभात फेरी निकलेगी...।"

---

1. प्राचीन रूसी नववर्ष की पूर्व संध्या।

पहले तो शिशीगिन का जाने का मन नहीं हुआ, फिर कुछ सोच कर जाने को राज़ी हो गया। उसे पहुँचते-पहुँचते देरी हो गई, सब लोग जमा हो चुके थे। वह ज़ामाचीलिन के फ़्लैट में प्रविष्ट हुआ। पहले तो उसे कुछ भी समझ में नहीं आया। कमरे में बल्ब बुझे हुए थे, केवल मोमबत्तियों जल रही थीं। सभी अतिथि छद्मवेश धारण किए हुए थे, सभी तरह-तरह की पोशाकों में थे। एक अर्द्धनग्न अतिथि पगड़ी पहनकर आया था तो दूसरा जाड़ों का टोप और ओवरकोट पहने हुए था। सफ़ेद लम्बे बालोंवाला कूबड़ निकला हुआ बूढ़ा एक कलश में कोटू का दलिया लेकर बारी-बारी से सबको परोस रहा था। एक छद्मवेशधारी जिप्सी महिला के हाथ में तश्तरी थी, जिसमें भुना हुआ घेंटुला रखा हुआ था। बाक़ी लोग झाड़ू लेकर एक-दूसरे के पीछे भाग रहे थे।

शिशीगिन अभी अन्दर पहुँचा भी नहीं था कि उसे पीछे से किसी महिला की आवाज़ सुनाई दी, "तो आपकी पत्नी मिली कि नहीं?"

पीछे मुड़ते समय शिशीगिन को पता था ही कि यह किसका स्वर है। जैसे ही उस महिला ने नक़ाव उतारी कि वही हुआ—यह तो सन्दूक़ से निकली सर्कसवाली औरत थी। उसने पहले जैसी सम्मोहक मुद्रा में मुस्कुराते हुए शिशीगिन का हाथ पकड़कर कहा, "आज मैं आपकी पत्नी हो जाऊँगी...।"

और कान के ठीक ऊपर ज़ामाचीलिन का स्वर सुनाई दिया, "हम अभी इनका ब्याह रचा देते हैं।"

सब-के-सब एक साथ चिल्लाकर तालियाँ बजाने लगे। किसी ने कमरे के बीच में गत्ते का एक बड़ा डिब्बा भी रख दिया और उसे तौलिये से ढक दिया। फिर कोई एक मोटी-सी किताब ले आया और उसे भी ऊपर से रख दिया। इस बीच शिशीगिन ने किताब का नाम पढ़ लिया—"स्वस्थ और स्वादिष्ट भोजन"। किताब के साथ क्रूस पड़ा था जो दो डण्डियों को जोड़कर बनाया गया था।

इसके बाद शिशीगिन और सर्कसवाली के सिरों पर तार के बने मुकुट जैसे पहना दिए गए और उन्हें उस डिब्बे के चारों ओर घुमाना शुरू किया गया। अंधकार में से शिशीगिन को एक कान में अख़ेन्येयेव का स्वर सुनाई पड़ा, "अपने भाग्य को गँवाओ मत, फूहड़ महाराज! इस पत्नी के साथ तुम्हारा भला होगा।...कैसी सुन्दर है...!"

और दूसरे कान में वन्याकिन का स्वर सुनाई पड़ा, "हो सकता है कि ऐसा अवसर फिर कभी न आए, मूर्ख...।"

तभी शिशीगिन ने अपने को छुड़ाया और डिब्बे को फेंककर वह चिल्ला पड़ा, "भविष्य बाँचो! बाँचो! बाँचकर तो देखो!"

कोई एक महँगे फ्रेमवाला बड़ा शीशा ले आया। किसी ने भगोने में करछुल चलाना शुरू कर दिया, औरों ने झाड़ू लेकर सारे कोनों का कूड़ा झाड़-झाड़ कर कमरे के बीचों-बीच जमा करना शुरू कर दिया। तभी शिर्शागिन को बलालायेंवा का स्वर सुनाई दिया, "भूत-भूत, मैं भी भूत।..."

शीशे के सामने आतिशदानों में दो जलती हुई मोमबत्तियाँ रख दी गईं। फिर हाथ पकड़कर किसी छद्मवेशी को लाकर शीशे के सामने बिठा दिया गया। बलालायेंवा की आवाज़ इस तरह बोली, "छद्मवेशी, दूल्हे महाराज, मेरे साथ भोजन करने आओ...।"

तभी शीशे के सामने बैठा छद्मवेशी चिल्ला पड़ा, "ये रहा! वो यहाँ है!"

यह कह कर वह भावहीन हुआ फ़र्श पर गिर पड़ा। शिशीगिन उसकी सहायता के लिए कूदने को था, वह उसे उठाना चाहता था, परन्तु उसे औरों ने रोक दिया। फ़र्श पर गिरे हुए छद्मवेशी को सफ़ेद चादर से ढँक दिया गया, उसके चारों ओर जलती हुई मोमबत्तियाँ लगा दी गईं और महिलाओं ने ऐसे बतियाना शुरू कर दिया, जैसे कि वह कोई मृतक हो। फिर उसे हाथों में उठाया और उसे लेकर कमरे के चक्कर लगाने शुरू कर दिए। उनमें वे कोई इस तरह गुनगुना रहा था, "मृतक, मृतक...स्वर्ग सिधारा मंगल को...।"

कमरे के चक्कर काटने के बाद उसे पास सटाई हुई कुर्सियों पर रख दिया गया।

"यह कौन है?" शिशीगिन ने पूछा।

"फिर वही खेल हो रहा है।"—शिशीगिन ऐसा सोच रहा था। वह कुर्सियों पर पड़े हुए शव के पास आया और फिर घुटनों के सहारे बैठकर उसने चादर खींची। जैसे ही शव के मुँह पर से उसने नक़ाब उतारी तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ—यह तो साक्षात् उसकी पत्नी ही थी। वह उसके सामने घुटनों के बल खड़ा हुआ था, उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे। आसपास खड़े सारे लोग ठहाके मार रहे थे। उसकी पत्नी से भी रुका नहीं गया और वह भी खिलखिलाकर हँसने लगी।

शिशीगिन ने उससे पूछा, "तुम यहाँ कैसे आ पड़ीं?"

पत्नी ठहाके मारे जा रही थी, वह रुक ही नहीं पा रही थी।

"इसीलिए तो इसे 'स्व्यात्कि' कहते हैं।...सबसे अच्छा पागलपन है।...क्या तुम्हें नहीं मालूम कि नववर्ष की पूर्वसंध्या पर ईश्वर सारे पागलों और भूतों को छोड़ देता है?...ऐसा वह पुत्र-लाभ की ख़ुशी में करता है...।"

शिशीगिन उसकी ओर देखे जा रहा था। उसका जी ही नहीं भर रहा था।

"मुझे तुम्हारे मिलने की बहुत ख़ुशी है।...तुम्हारे बिना तो मैं कहीं का भी नहीं हूँ! तुम्हारे बिना तो मेरे जीवन का कोई मतलब ही नहीं है।..."

पत्नी मारे हँसी के और भी ज़ोर से खिलखिलाने लगी।

"तुम कौन हो, मालूम है? तुम दिखाऊ हो, दिखाऊ... ।"

"दिखाऊ माने जो केवल दीखता है, प्रतीत होता है कि मनुष्य है।...मानों, जैसे कि और सब होते हैं। ग़ौर से देखोगे तो पता चलेगा कि वह तो 'दिखाऊ' है और सारा भेद खुल जाएगा। है तो मनुष्य और नहीं भी है। उसके सब कुछ वैसा नहीं है, जैसा होना चाहिए। कुछ सोचेगा तो उसका उलटा ही होगा। शुरू तो मनुष्यों की तरह करेगा परन्तु अन्त तक पहुँचते-पहुँचते बस छोड़ ही देगा। जिए, चाहे न जिए—उसके लिए सब बराबर है। उदासी या मायूसी की कोई बात न होते हुए भी वह उदास ही बना बैठा रहता है। उसके पास सब कुछ होते हुए भी अपने लिए जैसे कुछ नहीं होगा।...इन दिखाऊओं को केवल स्व्यात्कि के दिनों में ही पहचाना जा सकता है। बाक़ी दिनों में कैसे भी नहीं... । स्व्यात्कि के दिनों में ये लोग चक्कर काटते रहते हैं, अपराधियों को ढूँढ़ते हैं, ताकि अपने रोग को दूर कर सकें... ।"

तभी अचानक दरवाज़े के बाहर से कोई शोर सुनाई पड़ा, हलचल मच गई। लोग चिल्ला रहे थे, "बहुरूपिये आ गए! बहुरूपिये आ गए!"

और तभी उल्लसित स्त्रियों और पुरुषों ने कमरे में धड़ाम से प्रवेश किया। सबके चेहरे रंगों से पुते हुए थे, उनकी पीठों पर काग़ज़ के पंख लगे हुए थे। उनमें से एक काग़ज़ के सितारेवाली छड़ी लेकर चल रहा था, दूसरे के हाथ में गत्ते का घरनुमा डिब्बा था, जिसके भीतर मोमबत्ती जल रही थी।

छद्मवेशियों के आगे-आगे दो बच्चे चल रहे थे। उनमें से एक का चेहरा राख से पुता हुआ था और उसके सिर पर टोपी थी। दूसरा बच्चा काग़ज़ का मुकुट पहने हुए था और उसके हाथ में गत्ते की गंद थी। मुकुटवाले बच्चे ने गँदले बच्चे को तलवार चुभोकर कहा, "ज़ालिम, ज़ालिम, तू क्यों पैदा हुआ?"

इसके बाद उसने गँदले बच्चे को तलवार से मारा और वह मानो कट कर नीचे गिर गया। शिशीगिन यह देखकर ऐसा सोच रहा था कि वह अभी-अभी उठ पड़ेगा, पर वह तो वैसे ही लेटा रहा, उठा ही नहीं। "क्या कहने! पूरी तरह अपनी भूमिका में डूब गया है।"—शिशीगिन ने मन-ही-मन सोचा।

तभी एकाएक, पता नहीं कहाँ से, एक और छद्मवेशी आ गया। उसके सिर पर बोरा था, चेहरा नज़र नहीं आ रहा था। उसका बोरा खींचकर हटाया तो नीचे से सींग दिखाई दिए। चेहरा एकदम बूढ़ा और झुर्रीदार था, किसी सौ

साल के बाबा जैसा। फिर तो उसकी पूँछ भी नज़र आ गई। मेहमान लोग उसकी ओर देखकर आश्चर्य में थे और एक-दूसरे से पूछ रहे थे, "यह कौन है? कहाँ से आया है?"

पर उस बूढ़ को कोई भी नहीं जानता था। तब लोग उसकी पूँछ और सींगों को खींचने लगे कि शायद अलग हो जाएँ। पर वह तो ऐसे चिपके रहे जैसे कि असली हों।

इस बीच नए अतिथि ने गँदले बच्चे को अपने हाथों से ऊपर उठाया और उसे लेकर कमरे में चक्कर काटते हुए सबसे पूछने लगा, "क्या यह आपका बच्चा है? आपका तो नहीं है?"

वह शिशीगिन के पास भी आया। उसकी ओर देखकर धीमे स्वर में इस तरह बोला, "अरे भाई, तुम देख रहे हो और जानते भी नहीं हो।...तुम्हारी पत्नी ने तुम्हें अपवित्र शक्ति के बल से प्राप्त किया है।"

यह कहकर बच्चे को हाथों में लिए वह आगे बढ़ गया, "क्या यह आपका बच्चा तो नहीं है?"

कोई बोला, "यह अनाथालय से आया है।...यतीम है।"

"तुम इसे मेरे साथ रहने दो।"

यह कहकर बूढ़ा व्यक्ति बच्चे को लेकर कमरे से बाहर चला गया।

शिशीगिन ने पत्नी की ओर देखकर कहा, "क्या इसने जो कहा है सच है? क्या तुमने मुझे अपवित्र शक्ति के बल से प्राप्त किया है?"

पत्नी की हँसी अब जाकर रुकी। वह बोली, "हाँ, सच है। स्व्यात्कि के दिनों में हम इसी तरह भविष्य बाँच रहे थे। ऐसे ही मज़ाक़ में।...मैं शीशे के आगे जाकर बैठ गई और मंगेतर को पुकारने लगी।...तभी कोई आ गया।...वह फ़ौजी ओवरकोट पहने हुए और एक थैला लिए हुए था, उसके हाथ में लाल रूमाल था।...हमने आपस में परिचय किया। फिर विवाह कर लिया।...वह तो तुम ही थे।..."

"रूमाल का क्या हुआ?" शिशीगिन ने पूछा। उससे अपनी जगह बैठा ही नहीं जा रहा था, "क्या वह रूमाल तुम्हारे पास बचा हुआ है?"

पत्नी प्रवेश-कक्ष से एक थैली लेकर आई और उसमें से उसने लाल रूमाल निकाला। उसने कहा, "यह रूमाल सदा मेरे साथ रहता है..."

शिशीगिन बहुत देर तक रूमाल को अच्छी तरह से देखता रहा और फिर बोला, "हाँ, बिलकुल वही रूमाल है।...मैं तब फ़ौज से लौट रहा था। सेवा-मुक्त होकर।...रेलगाड़ी कहीं खड़ी हुई थी, गर्मी पड़ रही थी। मैंने पसीना पोंछने के

लिए रूमाल निकाला था। तभी, पता नहीं कहाँ से, एक कुत्ता आ टपका और रूमाल खींचकर भाग लिया। उस समय मैंने यही सोचा था कि जाने दो, रूमाल ही तो है, ऐसी कोई खेद करने की बात नहीं है... ।''

अतिथियों को अच्छा-ख़ासा आनन्द आ रहा था और शिशीगिन बैठा हुआ अपनी पत्नी की ओर देखे जा रहा था। उसने पूछा, ''अब मैं तुम्हारे साथ कैसे रह सकूँगा, अगर यहाँ कोई दुष्ट विद्यमान है? तुम चाहे तो चाहो, मुझसे तो नहीं रहा जाएगा।...''

तब वह उठकर अपने घर चला गया। वहाँ एक नई घटना उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। अभी वह घर के पास पहुँच ही रहा था कि उसे खिड़की से रोशनी दिखाई दी। ''कहीं मैं बत्ती बन्द करना तो भूल नहीं गया था?''—वह डर-सा गया। जल्दी से ऊपर चढ़ कर उसने अपने फ़्लैट का दरवाज़ा खोला और वहीं ठिठककर खड़ा रह गया। ठीक उसके सामने सोफ़े पर उसकी पत्नी बैठी हुई थी और तश्तरी में से चाय सुड़क रही थी।

''तुम यहाँ कैसे पहुँचीं?'' वह बस इतना ही कह पाया।

''मुझे यहाँ बैठे चार घण्टे से भी अधिक हो गए हैं।...आ गई थी।...फिर चली गई थी और अब फिर आ गई हूँ... ।''

''क्या ज़ामाचीलिन के वहाँ...तुम नहीं थीं?''

पत्नी को क्रोध तक आ गया, ''मैंने तुम्हें कहा तो है कि मुझे यहाँ बैठे-बैठे चार घण्टे से अधिक हो गए हैं। मैं कहीं भी नहीं निकली।''

निश्चय ही, शिशीगिन को इस रात नींद नहीं आई। बस, सवेरा होने से कुछ पहले ज़रा-सा ऊँघ भर लिया। पत्नी काम पर जा चुकी थी और वह अभी तक लेटा ही हुआ था, उठ ही नहीं रहा था। बस, उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि कोई उसके पाँवों पर बैठा हुआ हो। आँखें खोलीं, फिर कुछ समझ नहीं आया। लो, उसके बिस्तर पर वही कलवाला बूढ़ा अतिथि आकर बैठ गया था। उसके सिर पर कल की तरह एक थैला था। शिशीगिन ने उसे पंजे से हिलाया, परन्तु वह बूढ़ा बैठा ही रहा। शिशीगिन ने बस यूँ ही कह दिया, ''ज़्यादा मत इतराओ। मुझे झाड़ू उठाना पड़ेगा।...''

''अरे भाई, गुस्सा मत करो।... मुझे ज़रा गरमा लेने दो।...कैसा पाला पड़ रहा है! स्व्यात्कि के दिन हैं।... हम जैसे बर्फ़ के छेद में रहनेवालों को पाला निकाल बाहर करता है।...इसीलिए हम लोगों के घरों में जा पहुँचते हैं। जहाँ गर्मी मिल जाती है... ।''

''तुम हो कौन? क्या कोई भूत हो?''

"आजकल भूत नहीं होते हैं।" अतिथि ने सीख देते हुए कहा, "आजकल 'शिलिकून' होते हैं। शिलिकून उसे कहते हैं जिसे पुराने ज़माने में अपनी जन्मभूमि से निकाल बाहर कर दिया गया था। उत्तर की तरफ़ तथा और भी पता नहीं कहाँ-कहाँ को भगा दिया गया था।...जैसे कि बेघर हो।... उसे ही शिलिकून कहते हैं... ।"

शिशीगिन ने कुछ सोचकर कहा, "धत् तेरे की! जाड़े से अकड़ ही गए हो तो गरमा ही लो... ।"

अतिथि खिलखिला कर हँस दिया और हथेलियाँ रगड़कर बोला, "तुम ऐसा मत सोचो। मैं बस थोड़ी ही देर के लिए...मैं शीघ्र ही चला जाऊँगा।...तुम्हारी पत्नी के आते ही मैं चल दूँगा।... बहुत कठोर है वह।...जो भी हो, तुम उसे नाराज़ मत करना। जैसी भी है, है तो पत्नी ही।"

इस तरह वे दोनों बैठे-बैठे बातें करते रहे। बूढ़ा व्यक्ति उस बच्चे के बारे में ही बताए जा रहा था, जिसे उसने कल ज़ामार्चीलिन के वहाँ हाथों में उठाया था।

"वह भी बेघर है, हमारी तरह।...जैसे कि कोई निष्कासित हो।...अब वह हमारे ही यहाँ रहेगा।..."

जैसे ही शिशीगिन की पत्नी आई कि अतिथि ग़ायब हो गया। वह कौन था—बहुरूपिया या कि कोई और? अब समझ में नहीं आने का...।



साभार : नोवी मीर, अंक 5, 1998

दलदली बबुआ

ग्रिगोरी पेत्रोव

जब येगोर का जन्म हुआ, तब तुरन्त ही उसमें कोई विशेष लक्षण दिखाई नहीं दिया था। जैसे अन्य शिशु होते हैं, वैसा ही था। बस, चुप्पा-सा था। न कभी रोता था, न नखरे करता था। देखता था बड़ों की तरह। उसकी धर्ममाता स्लिज़्योवा ने बपतिस्मा के समय उसे देखकर कहा था, ''आपका यह येगोर ऐसा गोरा है...मानो आकाश से उतरा कोई देवदूत हो...।''

जब वह स्कूल जाने लगा था तब माँ परेशान होकर कहती थी, ''तू अकेला-अकेला क्यों रहता है?...बुजुर्गों जैसा। बच्चों के साथ खेला कर।''

स्कूल में उसका नाम पड़ गया था—''सहेली।''

बच्चे उसे पुकार कर कहते, ''अरी सहेली, चल हमारे साथ। सिगरेट पीने को देंगे!''

घर में भी वह अधिकतर चुप ही रहता था, उसके मुँह से कुछ बुलवाना बहुत कठिन था। जब उसके माता-पिता के कोई अतिथि आते तब स्लिज़्योवा अपने पति के साथ वहाँ उपस्थित रहती थी तथा और भी कोई वहाँ होता ही था। परन्तु येगोर तब अपने कमरे में चला जाता था। कमरे में बन्द होकर बैठे-बैठे काग़ज़ काटकर देवदूतों की आकृतियाँ बनाता रहता था। उसे एक और भी शौक पैदा हो गया था—आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ने का। कहाँ तो उसे अपने पाठ तैयार करने चाहिए थे, अपनी स्कूल की किताबें पढ़नी चाहिए थीं। लेकिन वह तो 'सन्तकथामृत' लेकर बैठ जाता था। माँ हर किसी से शिकायत करती थी, ''हमारा येगोर एकदम 'गुफ़ावासी' है।...हमने उसका यही नाम रख दिया है। पता नहीं, क्या करेगा ज़िन्दगी में!...शायद कष्ट ही भोगेगा...।''

येगोर के पिता हमेशा ही उस पर चिल्लाते रहते थे, उसे बेवजह झिड़कते रहते थे।

"कुछ हिला-डुला तो कर, रोन्दू! एकदम साँड जैसा है, सो रहा है कि मर गया है?"

इन झिड़कियों से येगोर हतप्रभ हो जाता था, निष्प्राण-सा हो जाता था। "कहीं पिताजी मुझे जान से न मार दें!"—वह इस हद तक सोचने लगता था। एक बार तो उसे अपने पिताजी किसी भयानक सपने में तक दिखाई दे गए थे—उनके कान सुअर के थे और माथे पर सींग थे। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे—"मैं हूँ शैतान। मैं तुझे हज़म कर डालूँगा!"

और फिर जब येगोर की स्कूल की पढ़ाई पूरी होने को थी, तब वह अचानक कुछ असाधारण-सा दिखाई देने लगा था—ऐसा लगने लगा था कि जैसे कोई अदृश्य शक्ति उसकी रक्षा कर रही हो। वैसे हो सकता है कि यह सब संयोग की बात रही हो, पर आश्चर्यजनक अवश्य थी—कितनी ही बार ऐसा हुआ था कि वह मरते-मरते बचा था और हर बार ऐसा प्रतीत हुआ था, जैसे कि कोई उसकी रक्षा कर रहा हो।

उदाहरण के लिए, एक बार येगोर रास्ते पर जा रहा था। वसन्त के दिन थे, बर्फ़ पिघलनी शुरू हो गई थी। छतों की बर्फ़ पिघल-पिघल कर टपक रही थी। येगोर अपने विचारों में लीन धीरे-धीरे चला जा रहा था कि अचानक, जैसा उसने बताया, किसी ने उसे पुकारकर कहा—'रुको!...जरा रुको तो सही।' येगोर रुक गया और उसने पीछे मुड़कर देखा—कोई भी नहीं था। दो क़दम आगे बढ़ा था कि छत पर से अलग होकर एक बहुत बड़ा हिमखण्ड ठीक उसके सामने आकर गिरा। यदि वह रुका न होता तो ठीक उसी के ऊपर आकर गिरा होता।

दूसरी बार तो इससे भी अधिक विचित्र घटना घटी। बच्चों ने स्कूल में ऊधम मचा रखा था, इधर-उधर दौड़म-भाग कर रहे थे। तभी उन्होंने एकाएक येगोर को बेवजह धक्का दे दिया। वह गिर गया और गिरा भी ऐसी बुरी तरह कि कमरे में लगे गरम पानी के हीटर से जा टकराया। ख़ून तो ज़रा भी नहीं निकला, लेकिन विस्मृति में डूब गया। उसे घर लेकर आए और उसने, लो, किसी को भी नहीं पहचाना। डॉक्टर को बुलवाया गया और उसने भी लाचार होकर हाथ लटका दिए, "यदि सवेरे तक होश न आए तो सीधे अस्पताल ले जाइएगा... ।"

रात गुज़रने के बाद सवेरे येगोर ऐसे उठा, मानों उसे कुछ हुआ ही न हो, कि जैसे कल कुछ घटित ही न हुआ हो। बाद में जाकर येगोर ने बताया कि उसे एक सपना दिखाई दिया था।

सबसे पहले उसे अपना पड़ोसी पिख़्येयेव दिखाई दिया था, जिसकी पिछले साल मृत्यु हो गई थी। येगोर ने उससे पूछा—"मेरे बाद तुम्हारी बारी है?" पिख़्येयेव ने उत्तर दिया—"अभी नहीं है।" बाद में येगोर को बहुत स्पष्ट दिखाई दिया कि मानों वह किसी पुरोहित के यहाँ अतिथि है। पुरोहित दीवान पर लेटा हुआ है, उसकी पीठ के पीछे सफ़ेद खोलवाला तकिया है। उसके लबादे का एक सिरा बाहर को मुड़ा हुआ था और उसका अस्तर नज़र आ रहा था। अस्तर गुलाबी रंग का था और उसमें सफ़ेद धारियाँ थीं। जब पुरोहित दीवान पर से उठा तो पता चला कि वह क़द में येगोर से छोटा है। येगोर ने देखा कि उसके साथ में एक प्रतिमा है, जो सुनहरे फ्रेम में मढ़ी हुई है। प्रतिमा क्या थी एक महिला का चित्र था, जो गहरे नीले—कानर्फ्लावर के—रंग का फ्राक पहने हुई थी। उसका सिर भी गाढ़े नीले रंग के दुपट्टे से ढँका हुआ था। येगोर याद करने की कोशिश करने लगा कि यह कौन हो सकती है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह मरीया मग्दालिना है, जो सम्राट तिबेरी से पोन्ती पिलात के विरुद्ध शिकायत कर रही है। और उसे लाल अण्डा सौंप रही है। 'पर अण्डा कहाँ है?'—प्रतिमा को ध्यान से देखते हुए वह यह सोच रहा था। पुरोहित उसे आशीर्वाद देते हुए प्रतिमा के द्वारा क्रूस बना रहा था। और अब येगोर को दिखाई दिया कि यह कोई मरीया मग्दालिना नहीं है, यह तो परम पवित्र देवी हैं, बस साथ में चिरजीवी शिशु नहीं है। वह प्रतिमा के साथ मुँह सटाकर चिपक गया कि तभी सब कुछ ग़ायब हो गया और उसकी नींद खुल गई।

डॉक्टर ने उसकी बात सुनकर कहा, "यह पुरोहित आख़िर कौन था? लगता है कि वह तुम्हारे लिए प्रार्थना कर रहा था। उसने देवमाता से कहकर तुम्हें चंगा कर दिया है...।"

ठीक तभी—इस घटना के तुरन्त बाद—येगोर ने अपने माता-पिता से कहा कि स्कूल के बाद वह धार्मिक शिक्षालय में जाना चाहता है।

"मैं वहीं जाऊँगा, और कहीं भी नहीं...।"

यह स्वाभाविक ही था कि घर में कोहराम मच गया। पिता तो इतना चीख़े-चिल्लाए कि येगोर की हालत बहुत बुरी हो गई। उसे जैसे जूड़ी आ गई हो। खड़ा-का-खड़ा ही रह गया। हाथ-पाँव बिलकुल भी हिला नहीं पा रहा था। पिताजी चिल्लाये जा रहे थे—

"एकदम मूर्ख है। अपने आसपास तो देख ज़रा, ठूँठ कहीं के! क्या कुछ हो रहा है! आज़ादी! लोगों ने जीना तो अब शुरू किया है। काम करने को कहो तो कहेंगे—मुझे नहीं करना।—आजकल तो रातों-रात अमीर बना जा सकता

है। सब किसी-न-किसी चक्कर में हैं। और तू—पादरी बनेगा! सही मायने में मूर्ख है। लगता है कि जन्म से ही ऐसा है।''

पिताजी जितना ही अधिक चिल्ला रहे थे, उतना ही अधिक वह अपने को क़ाबू में भी न रख सके। ऐसे बेक़ाबू हो गए कि अपने आप को रोक ही नहीं पाए। जैसे कि गाली-गलौज़ से नशा चढ़ गया हो और कमरे में भागने लगे—

''ऐसे लोगों को धरती क्यों अपने ऊपर ढोती है? तेरा तो पैदा होना ही व्यर्थ था!''

रात को येगोर को दौरा पड़ गया—एंठन आ गई और आँसू भी आ गए। माँ ने उसे कोई दवा भी दी।

''तू ऐसा कहाँ से हो गया?'' माँ विलाप कर रही थी, ''सब लोग तो आम आदमियों जैसे होते हैं।...तू तो जैसे सीधे आसमान से टपका हो। जैसे कि तुझे जन्म देनेवाली मैं नहीं हूँ...।''

सवेरे पिताजी घर के चक्कर काट रहे थे। उन्होंने आँखें धरती में छिपा रखी थीं। येगोर की ओर नहीं देख रहे थे। कुछ देर बाद वे अपने आप को रोक नहीं पाए और येगोर के पास आकर घुटनों के बल झुक गए।

''बेटा, मुझे क्षमा कर। गाली-गलौज़ के लिए माफ़कर दे, बेटा! मुझे खुद नहीं मालूम कि मुझे क्या हो गया है।...जैसे कि कोई प्रेत उकसा रहा हो...।''

निश्चय ही येगोर ने पिता को क्षमा कर दिया, लेकिन वह कुछ कह नहीं सका—कल की घटना के बाद उसकी वाणी चली गई थी। कमरे के बीच में खड़ा होकर वह कुछ बुदबुदाए जा रहा था, उसका बायाँ कंधा और सिर हिलने में थे। ख़ैर, तीन दिन बाद उसकी हालत ठीक हो गई और फिर सब कुछ पूर्ववत् हो गया।

स्कूल की पढ़ाई के तुरन्त बाद माता-पिता ने येगोर की शादी करने की सोच डाली। माँ को अपने ही ऑफ़िस में उसके लायक़ लड़की मिल गई। छुटकी और दुबली-सी थी और उसके कंधों की हड्डियाँ साफ़ नज़र आती थीं। येगोर को देखते ही उसकी आँखें उसी पर गड़ी रह गई। बाद में उसने ऑफ़िस में ऐसा कहा, ''शायद, मैं उसे पसन्द नहीं आई।...बहुत अच्छा है वह।...बहुत भला है।... मुझे तो उससे प्यार हो गया है।... वह औरों जैसा नहीं है।...आजकल तो सब लोग कमाने के लिए दौड़ते हैं।... परन्तु वह ऐसा नहीं कर सकता। उसका कहना है कि वह इसके लायक़ नहीं है।... ख़ैर, हम दोनों के लिए मेरे रुपये पूरे पड़ जाएँगे...। हमें कौन-सी मर्सिडीज़ गाड़ी चाहिए?''

पिता फिर से येगोर पर चिल्लाए, "मूर्ख, तुझे वह पसन्द क्यों नहीं है? तू अपनी नाक इतनी ऊँची क्यों किए है? शादी क्यों नहीं करना चाहता है?"

अब जाकर येगोर ने कहा,

"मैं विवाह के योग्य हूँ ही नहीं।...मेरा दिल कमज़ोर है... ।"

निश्चय ही, येगोर के माता-पिता को तुरन्त ही विश्वास नहीं हुआ और वे उसे डॉक्टर के पास ले गए। डॉक्टर ने बहुत देर येगोर को आले से जाँचा-परखा और फिर कहा, "ठीक ही कह रहा है—इसका दिल किसी काम का नहीं है।...आवाज़ बहुत हल्की आ रही है।...बाईं ओर को फैला है और बायें निलय (वेण्ट्रिकल) की पेशियाँ कमज़ोर पड़ गई हैं... ।"

घर में माँ रो रही थी तो पिताजी ने समझाते हुए कहा—"अब क्या है, देख तो रही हो, कुछ कर नहीं सकते।...भाग्य में ही नहीं है। तुझे तो सेना में भी नहीं लेंगे।...सामान्य क़िस्म का काम भी तेरे लिए नहीं है। स्पष्ट है कि तू किसी भी काम के लायक़ नहीं है। धत्, जा, धर्मालय में ही जा!"

माँ ने येगोर को, जितना हो सका, रास्ते के लिए तैयार कर दिया—थोड़े-बहुत जितने रुपये थे रख दिए, आकस्मिक ज़रूरत के लिए खाने को भी रख दिया।

माँ ने कहा, "तेरे बारे में सोचकर मुझे डर लग रहा है। तू कहीं खो भी सकता है।...अपने घर में बैठा रहता। कहाँ जाने की पड़ी है तुझे?"

पर येगोर को किसी बात का डर नहीं है। मास्को पहुँचकर वहाँ से 'त्रोइत्से-स्येर्गियेवा लाव्रा' मठ को चला गया। एक महीने बाद माता-पिता को उसकी चिट्ठी मिली—"ज़रा सोचिए, कैसा अच्छा रहा! ठीक पहली परीक्षा के समय ही मुझे दिल का दोरा पड़ गया और मुझे बिना परीक्षा के ही ले लिया गया। कहा कि और इम्तहान देने की ज़रूरत नहीं है। है न हैरानी की बात? जरूर कोई मेरे लिए प्रार्थना कर रहा होगा, और कुछ हो ही नहीं सकता... ।"

धर्मालय में भी येगोर, स्कूल की तरह, अकेला ही रहता था, एकाकी। जब सब दोपहर की प्रार्थना के लिए या सांध्य उपासना के लिए जाते, तब वह सबसे पीछे रहता था, अकेला-अकेला। धर्मालय के समूहगान के समय वह किसी एक कोने में खड़ा हो जाता था, तुरन्त दिखाई तक नहीं पड़ता था। उदाहरण के लिए, जब धर्मालय के विद्यार्थी किसी त्यौहार के अवसर पर मदिरापान के लिए एकत्र होते तो येगोर अलग ही खड़ा रहता था। बाक़ी साथी उस पर नाराज़ हो जाते थे, *"तू हमारे साथ मिलकर पाप-प्रक्षालन नहीं करना चाहता क्या?"*

धर्मालय में ही उसे यह नाम दिया गया था—'दलदली पोप'।

एक दिन क्या हुआ कि जैसे ही वह बिस्तर में लेटने को हुआ कि चादर

पर मेंढक बैठा हुआ दिखाई दिया। सब साथी हँसने लगे, "दलदली पोप, लँगड़े मेंढक का उपचार कर दे।...उसके घायल पंजे में पट्टी बाँध दे... ।"

पर अध्यापक लोग उसके साथ अच्छा व्यवहार करते थे, उस पर दया करते थे। विशेषकर दया करता था साहित्य का अध्यापक ओपोर्किन। वह कहता था, "कोई बात नहीं। स्वास्थ्य कमज़ोर है तो क्या हुआ? ईश्वर की शक्ति दुर्बलों में विद्यमान रहती है। आपने शायद वह क़िस्सा सुना होगा। यह सब दुष्ट शैतान का किया है। उसने आदम को छड़ी से पीटा और उसमें सत्तर रोग डाल दिए। ईश्वर ने शैतान से पूछा—'अरे दुष्ट, तूने मनुष्य में रोग क्यों डाल दिए?' अभिशप्त शैतान ने उत्तर दिया—'यदि मनुष्य को रोग नहीं होंगे तो वह अन्त तक तुझे याद ही नहीं करेगा। यदि बीमार पड़ेगा तो कष्ट के समय सहायता के लिए सदा तुझे ही पुकारा करेगा।' यह है असली बात... ।"

शिक्षा पूरी होने के बाद येगोर को येफ़्रोमोवो के पास एक बिलकुल वीरान और उपेक्षित जगह में पुरोहित बना कर भेज दिया गया। वह एकदम सूनी बस्ती थी। धर्मालय के वरिष्ठ पुरोहित ने जो कुलपति भी था, उसे विदा करते समय कहा, "तुम बहुत कमज़ोर हो, वहाँ कैसे रह सकोगे? शैतान तो बहुत शक्तिशाली है!"

येगोर ने कुछ दिन घर में रहने के वाद अपना रास्ता पकड़ लिया। पिताजी उसे छोड़ने नहीं गए। माँ ने उसे बताया कि वह बहुत गुस्से में हैं।

"तू पिताजी का बुरा मत मान, येगोर। सारी ज़िन्दगी हमने काम किया पर फिर भी भिखारियों जैसे ही रहे। अब देखते हैं तो लगता है कि ज़माना बदल गया है। हम तो सोचते थे कि तू बड़ा होकर हमको संकट से उबारेगा। ...पर तू तो किसी और ही रास्ते पर जा रहा है... ।"

येगोर को येफ़्रोमोवो तक पहुँचने में अधिक समय नहीं लगा। अगले ही दिन वहाँ पहुँच गया। परन्तु वहाँ से बस्ती तक की कोई गाड़ी उसे दो दिन तक नहीं मिली—उधर कोई जाता ही नहीं है। उसकी मालकिन फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना ने जिसके यहाँ रहने को उसे एक कमरा मिला, उस पर दया करते हुए कहा, "आपको हमारे यहाँ, हमारी इस उजाड़ बस्ती में, क्यों भेजा गया है? क्या इससे अच्छी जगह नहीं मिली थी?"

जिस गिरजे में येगोर को पुरोहिती करनी थी, वह बहुत ही छोटा और ऐसा सँकरा था कि उसमें मुड़ने को भी जगह नहीं थी। एकदम परित्यक्त पड़ा हुआ था—उसमें धूल-ही-धूल थी और जगह-जगह जाले लगे हुए थे। येगोर के यजमान भी थोड़े से ही थे—कुछ बीमार, बूढ़े लोग थे, कुछ ऐसे कि बिस्तर

से तक उठ नहीं पाते थे। हाँ, शुरू में कोई तीन लड़कियाँ भी वहाँ अक्सर आती थीं, बिलकुल जवान थीं। वे नए पुरोहित को देखने आ जाती थीं। कुछ समय बाद उन्होंने भी आना छोड़ दिया। एक बार येगोर को अचानक उनकी बातचीत सुनाई पड़ी।

"कैसा मरियल-सा है, सुन्दर भी नहीं है। क़द का भी ऊँचा नहीं है, एकदम ठिगना है।" उनमें से एक ने कहा।

दूसरी हँसती हुई बोली, "और दाढ़ी देखी है उसकी! यहूदियों जैसी है। दो बाल लटक रहे हैं।..."

तीसरी बोली, "मुझे तो उस पर दया आती है।...उसका दिल एकाकी है।"

येगोर को बाद में भी कई बार यह तीसरीवाली लड़की गिरजे में दिखाई दी थी। एक बार वह युवती पूजा के बाद उसे घर तक छोड़ने गई थी। उसका नाम था आईदा। उसने बताया, "वसन्त के दिनों में मेरी माँ गुज़र गई। अभी कुछ दिन पहले वह स्वप्न में प्रकट हुई थी। मुझसे कह रही थी कि शादी कर लूँ।..."

येगोर ने उसे उत्तर देते हुए कहा, "मृतक सदा हमारे साथ होते हैं, हमारे आसपास ही रहते हैं।...बात यह है कि...यदि हम इसी संसार का अस्तित्व मानें तो इसमें सब कुछ व्यर्थ है, निरर्थक है—रोग, कष्ट और मृत्यु ही तो हैं। यह सब अर्थयुक्त तब हो जाता है, जब हम अदृश्य जगत के अस्तित्व को भी स्वीकार कर लेते हैं।"

आईदा येगोर की बातें सुनती रही और जब वे घर के निकट पहुँच गए तब उसने कहा, "यदि आप कहें तो मैं आपके घर की सफ़ाई करने और आपके लिए भोजन बनाने आ जाया करूँगी। मैं आपके साथ रह भी सकती हूँ।..."

येगोर ने हल्का-सा मुस्कुराकर कहा, "मुझे महिलाओं का साथ वर्जित है।...मेरा दिल भी कमज़ोर है... ।"

आईदा पहले तो चुप रही और फिर रो पड़ी।

"मैं अकेली हूँ, एकदम अकेली।...मुझे भी तो परिवार की इच्छा होती है।...यहाँ कोई और है भी तो नहीं... ।"

येगोर ने उसे समझाते हुए कहा, "भगवान ने चाहा तो तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा। तुम कितनी सुन्दर हो। बस, देखते ही रह जाओ। तुम्हें, बस, क्रूरता नहीं दिखानी चाहिए। यह आसुरी प्रवृत्ति होती है। आसुरी प्रवृत्ति मन को क्रूर बना देती है... ।"

इसके बाद येगोर को आईदा गिरजे में दिखाई नहीं दी।

ज्यों ही येगोर अपने काम में लग गया, त्यों ही उसे एक बूढ़ा सहायक भी मिल गया। उसका नाम था मेफोदी स्विरिदोविच। वह लँगड़ा था और उसके पास कई सैन्य पदक थे। मेफ़ोदी स्विरिदोविच गिरजे की व्यवस्था को देखता था, उसकी सफ़ाई करता था और पूजा के समय मदद करता था। वह कोई पारिश्रमिक नहीं लेता था, बस थोड़ा-बहुत खाने को माँग लेता था। येगोर यथासामर्थ्य उसके भोजन के लिए कुछ खरीद देता था—स्वयं येगोर के पास कोई बहुत अधिक रुपये नहीं थे।

एक दिन मेफ़ोदी स्विरिदोविच ने बताया, "पहले मैं अच्छा-ख़ासा जी रहा था। महायुद्ध में भाग लिया है मैंने, तभी अपंग हो गया था।... मुझे पेंशन भी ठीक-ठाक और समय पर मिल रही थी। पर अब तो सब कुछ बदल गया है। चारों ओर धन्धेबाज़ और व्यापारी इकट्ठे हो गए हैं।...उनका बस एक ही काम है—मुनाफ़ा कमाना। फ़ादर, आपके आने से पहले मैं यहीं प्रांगण में बैठकर यीशू के नाम पर भीख माँगता था...।"

लगभग हर रोज़ येगोर घर-घर जाता था, उन लोगों के घर, जो चलने में असमर्थ थे। उनके लिए दूध और डबल रोटी ले जाता था और उनके काम में मदद कर देता था। सबसे अधिक वह प्रास्कोव्या दादी के पास जाता था। बस्ती के लोगों ने उसे यही नाम दे रखा था—'प्रास्कोव्या-रोगी'। वह बिस्तर में पड़ी रहती थी। जब येगोर उसके लिए दूध लेकर आता, तब उसके मुँह से हमेशा यही शब्द निकलते, "बहुत हो गया, फ़ादर गेओर्गी।...लगता है कि परमेश्वर मुझे उठाना ही नहीं चाहता।...वह मेरे प्रति दयालु नहीं है...।"

येगोर उसे झिड़क देता, "माँ, ऐसा मत कहो। आपके अन्दर से यह शैतान बोल रहा है।"

"मैं किसी शैतान-वैतान पर विश्वास नहीं करती हूँ। शैतान होता ही नहीं है।...शैतान पर विश्वास करना ही पाप है।"

येगोर ने कहा, "शैतान भी तो यही चाहता है कि उस पर विश्वास न किया जाए। यदि वह है ही नहीं तो बात करने को भी कुछ नहीं है।...बात यह नहीं है, अम्मा।...यदि तुम्हारा सजीव ईश्वर में विश्वास है तो तुम्हें दूसरी अर्थात् ईश्वर की विरोधी, तामसिक शक्ति में भी विश्वास करना ही पड़ेगा।"

"पर मैं तो विश्वास ही नहीं करती हूँ।...पुनरुत्थान में विश्वास करती हूँ, लेकिन शैतान में नहीं करती। फ़ादर गेओर्गी, यह बताइए कि पुनरुत्थान होगा कि नहीं?"

येगोर ने उत्तर दिया, "पुनरुत्थान तो घटित हो ही रहा है। जब हम सच्चे ईश्वर को जान लेते हैं, तब हमारा पुनरुत्थान होता है। जब-जब जान लेते हैं, तब-तब पुनरुत्थान होता रहता है।"

येगोर अक्सर प्रास्कोव्या के कमरे को टाँच दिया करता था—बुहार देता था और कूड़ा फेंक देता था। धुलाई की बाल्टी लेकर वह अहाते में घूमता था, बेंच पर पड़ोसी ग्वोज़्दार्योव बैठा होता था। वह क़लईगर था।

वह कहता, "नहीं, फ़ादर। तुम गेओर्गी नहीं हो। वह तो भाला लिए और घोड़े पर सवार होता है। तुम्हारे हाथ में तो धुलाई की बाल्टी है।"

यह ग्वोज़्दार्योव येगोर को रास्ता नहीं देता था। जैसे ही वह देखता कि येगोर प्रास्कोव्या के पास आ गया है, वह भी उसके पीछे-पीछे पहुँच जाता था। दरवाज़े के पास खड़ा होकर दहलीज़ पर से चिल्लाता, "मैं जो जानना चाहता हूँ, वह यह है। उदाहरण के लिए, बाइबिल में ऐसा कहा गया है कि ईश्वर ने धरती और आकाश को बनाया। ठीक है, मान लेते हैं।...पर सवाल यह है कि ईश्वर ने इन्हें कैसे बनाया? अर्थात् किस चीज़ से बनाया? मान लो, मैं कोई कीप या बाल्टी बनाना चाहता हूँ तो मुझे बनाने के लिए सामग्री की—टीन की—ज़रूरत पड़ेगी। ऐसी स्थिति में ईश्वर ने क्या किया होगा? क्या उसके पास कोई विशेष पदार्थ था? अर्थात् वह पदार्थ ईश्वर से पहले भी विद्यमान था। या उसने शून्य में से यह रचना की? इसे कैसे समझा जाए?"

"मैं आपकी बात का उत्तर नहीं दे सकता हूँ। यह सब ईश्वरीय बहस का विषय है। मैं इसमें असमर्थ हूँ।..." येगोर कह देता।

थोड़ी देर चुप रह कर और धर्मालय को याद करके वह इतना और जोड़ देता, "मैं तो दलदली पोप हूँ।...मेंढक की टाँग में पट्टी बाँधनी हो तो यह काम मैं कर सकता हूँ। पर मैं बहुत ऊँचा नहीं जा सकता हूँ।..."

परन्तु ग्वोज़्दार्योव तो पीछा ही नहीं छोड़ता था, "या फिर ऐसा भी तो हो सकता है।...वहीं, बाइबिल में, ईश्वर ने ऐसा भी तो कहा है—"हम मनुष्य को बनाएँगे।" यह उसने किससे कहा? किसे सम्बोधित करके कहा? जब कोई था ही नहीं।...केवल मवेशी, सरीसृप और पशु ही तो थे तब।... यही तो प्रश्न है।...और वह स्वयं कहाँ अवस्थित था जब कुछ था ही नहीं?"

"मैंने कह तो दिया है कि मैं धर्मवेत्ता नहीं हूँ, मैं तो दलदली पोप हूँ।"

दूसरी वृद्ध महिला, जिसके पास येगोर जाता था, बस्ती के दूसरे छोर पर रहती थी। कार्पोव्ना नाम था उसका।

उसका घर एकदम खण्डहर था, खड्ड के पास, ढलान पर था। उधर को जाने वाली पगडण्डी बहुत ही सँकरी थी, जो दो घनी बाड़ों के बीच में से होकर निकलती थी। सारे रास्ते भर उसमें घास और कुरंड उगी हुई थी। नीचे उतरते समय यही विचार मन में आता था कि कहीं नीचे ना जा पड़ें। तभी कार्पोव्ना के पास येगोर आ पहुँचा। कार्पोव्ना ने उससे पूछा, ''फ़ादर, आज क्या वार है?''

''बुधवार है, अम्मा, बुधवार है।''

कार्पोव्ना ने कहा, ''वाह, क्या बात है!''

एक बार ऐसा हुआ कि जब येगोर कार्पोव्ना के पास आया, तब उसके वहाँ उसकी मेहमान बैठी हुई थीं—शुब्योन्कोवा और पेरेस्त्येगिना जो कभी डेरी फ़ार्म में साथ-साथ काम करती थीं। चारपाई पर बैठकर मोहल्ले के समाचारों की चर्चा शुरू हो गई।

शुब्योन्कोवा बोली, ''आज सवेरे जब मैं जा रही थी तो देखा कि पाव्लीना ज़रा जल्दी में है।...यानी, फिर चल पड़ी... ।''

''जरूर कुछ दाल में काला है।'' पेरेस्त्येगिना ने उसके समर्थन में कहा।

''यह पाव्लीना कौन है?'' येगोर ने जानना चाहा।

कार्पोव्ना ने उत्तर दिया, ''दुकान के पास रहती है। एकदम गई-गुज़री समझो।...पियक्कड़ है... ।''

शुब्योन्कोवा उसके बचाव में आ गई और बोली, ''ऐसी पियक्कड़ तो नहीं है। उसे इसकी बीमारी है।...वैसे वह बहुत भली औरत है... ।''

तभी पेरेस्त्येगिना स्टूल पर से उठ खड़ी हुई और एक ही जगह पर चक्कर काटने लगी।

''भली है, बहुत भली है।...वाह, क्या कहने!...नौ सौ चूहे खा के बिल्ली हज को चली...!''

''यह सब दफ़री की वज़ह से हुआ था।'' कार्पोव्ना ने इतना और जोड़ दिया।

शुब्योन्कोवा ने आगे कहा, ''वैसे उसका पति फेदोत कूज्मिच बहुत नेक इन्सान है। बढ़ईगिरी करता है। शराब को हाथ तक नहीं लगाता है।...''

''उसकी क़सर पाव्लीना जो पूरी कर देती है। ठीक ही तो कहा है—केंकड़े ने ब्याह रचाया मेंढकी से।...'' पेरेस्त्येगिना ने दोबारा मख़ौल करते हुए कहा।

येगोर ने फिर से पूछा, ''यह पाव्लीना कौन है?''

शुब्योन्कोवा बोली—"वह बहुत भली औरत है, अच्छी है। उनके वहाँ सब कुछ अच्छा है। घर ठीक-ठाक और साफ़-सुथरा रहता है। उनके वहाँ पहुँची नहीं कि मेज़ सजा दी जाती है। शराब-वराब कुछ नहीं।...उसमें बस एक कमज़ोरी है, जो रोग की तरह है।...कभी-कभी अचानक ही, बेवजह, घर से निकलकर शराबख़ाने चली जाएगी, जो वहीं राजमार्ग पर है। पर घर में कभी नहीं पीती है। ऐसा भी नहीं है कि वहाँ ज़्यादा पी आती हो। किसी ने उसे लुढ़का हुआ या कोई बेहूदी हरकत करते कभी नहीं देखा है। बस, शराबखाने में जाकर बैठना उसके लिए आवश्यक जैसा है।"

"यह सब कुछ वह बकरी की वजह से करती है।" कार्पोव्ना ने फिर से बीच में जोड़ दिया।

"अब यह बकरी कहाँ से आ गई?" येगोर ने पूछा।

शुब्योन्कोवा ने समझाते हुए कहा, "उसके पास बकरी है, सील्वा नाम है उसका। वह अपनी बकरी को पति से भी अधिक प्यार करती है। दिन भर सायबान में उसी के साथ पड़ी रहती है। उसके साथ बच्चे की तरह लगी रहती है, खेलती रहती है।..."

"उनके बच्चे तो हैं नहीं, इसलिए वह बकरी के साथ ही खेलती रहती है। मूर्खता बीवी की, पाप बाबा के सिर।" पेरेस्ल्येगिना ने भी वैसी ही बात कह दी।

तभी कार्पोव्ना बोली, "इस बकरी में शैतान बैठा है।... एकदम सही कह रही हूँ।...वह पाव्लीना को प्रलोभन देता रहता है।...यदि उसे भगा दिया जाए तो पाव्लीना भी ठीक हो जाएगी।"

येगोर ने गहरी साँस लेकर कहा—

"जैसी ईश्वर की इच्छा होगी।"

"फ़ादर गेओर्गी, तुम जैसे लोग उसे भगा नहीं पाओगे।...इस काम के लिए तुम कमज़ोर हो। यहाँ तो मज़बूत आदमी चाहिए।"

येगोर फिर से बोला, "सब कुछ ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है। अब मेरा समय हो गया है। और भी कई लोगों के वहाँ जाना है।"

इस तरह वह बस्ती के एक छोर से दूसरे छोर के चक्कर काटता रहता था। जब तक सभी के घर न हो आता तब तक अपने घर को वापस नहीं लौटता था।

एक बार सुसमाचार-दिवस[1] पर वह प्रास्कोव्या-रागिन के घर गया जिसकी पड़ोसन क्लारा कपितोनोव्ना थी। उसका घर सामने ही था, सड़क पार।

---

1. 25 मार्च को पड़नेवाला एक त्यौहार।

"हमारी प्रास्कोव्या के प्राण निकले जा रहे हैं।" क्लारा ने कहा।

येगोर ने प्रास्कोव्या की ओर देखा। उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था, नाक तीखी थी और उसकी काली आँखें और भी अधिक धँसी हुई थीं।

प्रास्कोव्या ने फुसफुसाकर कहा, "मुझे किसी बात का डर नहीं है।...शैतान होते ही कहाँ हैं!...ये सब क़िस्से हैं।...कोई शैतान-वैतान नहीं होते।...यह तो लोगों की कल्पना है, बच्चों को डराने के लिए।...जिन्न भी नहीं होते हैं।..."

क्लारा कपितोनोव्ना बोली, "यह सब कहना व्यर्थ ही है। सुलेइकिन लोगों के वहाँ एक घटना घटित हुई थी।...अभी उनके बेटे की शादी हुई थी।...लड़का अहाते में चला जा रहा था और उसके पीछे-पीछे एक सूअर आ रहा था। बहुत देर तक उसने अपना धैर्य बनाए रखा। आख़िर उसका धैर्य टूट ही गया और उसने पकड़कर उसका कान काट दिया। सवेरे उठ कर उसने देखा कि उसकी सास के कान में पट्टी बँधी हुई है।...आख़िर यह सूअर कौन था? और तुम कहती हो कि..."

"जो भी हो शैतान-जिन्न होते नहीं हैं।" प्रास्कोव्या अपनी बात पर अड़ी रही।

येगोर ने कहा, "देवदूत पावेल ने कहा है कि सदा सतर्क रहो, क्योंकि तुम्हारा शत्रु जिन्न दहाड़ते हुए शेर की तरह इस तलाश में रहता है कि अब किसको हड़पा जाए।..."

जब फ़ादर येगोर गिरजे से पावन उपहार लेकर आया तब तक प्रास्कोव्या लगभग पूरी तरह होश में आ गई थी। उसकी आँखें पता नहीं किधर को देख रही थीं। फिर अचानक उसने स्पष्ट बोलना शुरू कर दिया, "लुकेरिया काकी यहीं हैं।...प्रोख़ोर काका भी यहाँ हैं।...पधारने के लिए सबका धन्यवाद।...अब आप लोग मुझे ले चलो...।"

इतना कहकर अपना हाथ आगे को करके वह बोली, "यह रहा।...मेरे पीछे-पीछे आ गया है।...कौन है तू? रक्षक तो नहीं है।...तू जिन्न है।...मैं तो सोचा बैठी थी कि होता ही नहीं है...।"

उसका हाथ नीचे लटक गया और उसकी साँस रुक गई। उसके चेहरे में ऐसा भय का भाव था, जैसे कि उसने कोई भयानक चीज़ देखी हो।

शाम के समय येगोर ने प्रास्कोव्या-अम्मा की याद में शोक-प्रार्थना का आयोजन किया। परन्तु गिरजे में लोग ही नहीं थे। एक था मेफ़ोदी स्विरिदोविच और दूसरी थी स्कार्फ़ ओढ़ी हुई कोई महिला, जो जवानी पार कर चुकी थी। येगोर ने उसे पहले कभी यहाँ नहीं देखा था।

शोक-प्रार्थना पढ़ते समय येगोर सोचे जा रहा था कि यह महिला कौन है? उसने देखा कि वह क्रूस भी कुछ अजीब तरह से, अकुशलता से बना रही है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यही है वह पाव्लीना जिसकी इतनी चर्चा हो रही थी।

अगले दिन प्रास्कोव्या को दफ़ना दिया गया। क़ब्रिस्तान वहीं चर्च के पीछे था। लोग काफ़ी कम जमा हुए थे—ग्वोज़्दार्योव और उसके मित्र जो ताबूत को ढो रहे थे और थीं कुछ महिलाएँ—क्लारा कपितोनोव्ना, पड़ोसिन फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्यंव्ना, शुब्योन्कोवा और उसके साथ में थी पेरेस्त्येगिना।

अगले दिन, दफ़नाने के तुरन्त बाद क्लारा कपितोनोव्ना दौड़ती हुई येगोर के पास आई, वह साँस तक मुश्किल से ले पा रही थी। वह बोली, "क़ब्र में न जाने क्या हो रहा है! मैं वहाँ फूल चढ़ाने गई थी।...मुझे वहाँ किसी की हुंकार सुनाई दी।... ज़मीन के अन्दर से।...और ठीक क़ब्र पर एक काला कुत्ता बैठा हुआ था... ।"

मेफ़ोदी स्विरिदोविच ने कहा, "कुत्ते को तो मैंने भी देखा था। ऐसा कुत्ता हमारे मुहल्ले में तो है नहीं... ।"

क्लारा कपितोनोव्ना आगे बोली, "ऐसा कैसे हो गया? प्रास्कोव्या को तो भूत-प्रेत में विश्वास ही नहीं था।...अब देखो, वही वहाँ मज़े कर रहा है, वही वहाँ घूम रहा है।...मैंने उससे कई बार कहा भी था..."

मेफ़ोदी स्विरिदोविच बीच में बोल पड़ा, "फ़ादर, प्रार्थना-सभा करनी चाहिए। क़ब्र पर छिड़काव भी करना होगा।"

येगोर ने ऐसा ही किया। अगले दिन उन्होंने क़ब्र के पास प्रार्थना-सभा का आयोजन किया। फिर वही बात हुई—जब वह भजनावली पढ़ रहा था, तब पास में वही स्कार्फ़वाली महिला पाव्लीना खड़ी हुई थी। जब येगोर क़ब्रिस्तान से बाहर आ रहा था, तब वह उसके पास आकर बोली, "फ़ादर, मेरी सहायता करो!...मैं कहीं की नहीं रही हूँ।...मुझे दुर्बलता से छुटकारा नहीं मिल रहा है।...बिलकुल भी शक्ति नहीं है मुझमें... ।"

उसके प्रायश्चित्त को सुनकर येगोर ने कहा, "केवल परमेश्वर ही सहायक है।...गिरजे में जाकर प्रार्थना करो।...और सबसे पहले अपनी बकरी को त्याग दो।..."

"मुझे उससे बहुत लगाव हो गया है। उसे कैसे त्यागूँ? दया भी तो आती है।..."

"जो भी हो, त्याग दो... ।"

देखो, कैसी आश्चर्य की बात हुई कि पाव्लीना ने येगोर की बात मान ली। जैसे कि उसे सद्बुद्धि प्राप्त हुई हो। शुब्योन्कोवा और पेरस्ल्येगिना ने येगोर को सूचित किया पाव्लीना ने आख़िर अपनी बकरी सील्या का परित्याग कर ही दिया है। बस, उसे चारा देने बाड़े में चली जाती है। येगोर को पाव्लीना गिरजे में अक्सर दिखाई देने लगी। उसकी सूरत भी बदल गई थी—उजली और चिकनी हो गई थी। अब जाकर येगोर ने ग़ौर किया कि वह कैसी सुन्दरी है, आईदा से भी और उस लड़की से भी अधिक सुन्दर है, जिसके साथ उसका विवाह करने की सोची जा रही थी। फिर तो वह येगोर के घर भी आने लगी।

वे साथ बैठकर चाय पी रहे थे और फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना छेद में से उन्हें देख-देखकर खुश हो रही थी।

पाव्लीना ने कहा, "आपके यहाँ बड़ा अच्छा है। जैसे कि कोई और ही दुनिया हो। पर अकेले रहना भी तो अच्छा नहीं है। मृत्यु के समय पास में कोई भी नहीं होगा।...कैसी भयानक बात है!..."

येगोर ने उससे कहा, "पर मैं तो ऐसा मानता हूँ कि मृत्यु होती ही नहीं है। हम ईसाइयों के यहाँ या तो स्वप्न होता है या स्वर्गारोहण। केवल काया का अन्त होता है, वास्तविक जीवन तो हृदय में है। पवित्र जीवन। पवित्र जीवन जीने वाले की मृत्यु नहीं होती है।...सांसारिक मृत्यु किसे कहते हैं? वह तो मात्र शरीर का त्याग है...।"

एक बार पाव्लीना येगोर के लिए भोजन लेकर आ गई, मुर्गी का मांस या कुछ और था। येगोर ने उससे कहा, "आज बुधवार है। आज मैं नहीं खा सकता हूँ।"

पाव्लीना ने गहरी साँस लेकर कहा, "आप अपने आपको इतना कष्ट क्यों दे रहे हैं? आप वैसे ही इतने कमज़ोर हैं। फ़ादर, आप तो जैसे किसी और ही संसार से आए हैं।...यदि ऐसा कोई संसार है तो।..."

"है, अवश्य है।" येगोर ने प्रसन्नता के साथ सिर हिलाते हुए कहा, "जैसे यह दृश्य आकाश है, वैसे ही वह भी है—देदीप्यमान होते हुए भी वह भौतिक नेत्रों से दिखाई नहीं देता है। वहाँ देवदूत रहते हैं।...वहाँ न तो रात होती है, न वहाँ दुष्ट आत्माएँ विचरती हैं, और न वहाँ अपशब्द सुनाई पड़ते हैं।..."

पाव्लीना हँसती हुई बोली, "यानी आप उस संसार से हैं। आप यहाँ के निवासी नहीं हैं।...तो आप हमारे पास क्यों प्रकट हुए हैं?"

एक बार येगोर घर वापस आया तो उसने देखा कि अहाते में उसके धुले हुए कपड़े सूख रहे हैं। कमरे में अच्छी तरह से रफ़ू किए हुए साफ़ मोजे पड़े हैं।

फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना ने कहा, "पाव्लीना आई थी। मैंने उसे डाँटा भी कि क्या मैं कपड़े भी नहीं धो सकती हूँ।"

शीघ्र ही मोहल्ले के लोगों ने देखा कि पाव्लीना में बदलाव आने लगा है। किसी ने भी उसे मदिरालय में जाते नहीं देखा। सबसे अधिक प्रसन्नता हुई मेफ़ोदी स्विरिदोविच को। जो भी मिलता उसके गले लग जाता, जैसे कि कोई त्यौहार हो।

"हमारे फ़ादर ने शैतान को वश में कर ही लिया। दुर्बल होते हुए भी जीत लिया।" उसने कहा।

फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना भी उससे पीछे नहीं रही। राह चलते लोगों को रोककर कहने लगती, "मैंने अपनी आँखों से देखा है।...क्रूस बनाकर कह रही हूँ।...रात को फ़ादर गेओर्गी कुर्सी पर बैठे सो रहे थे। उन्हें कुकुर-खाँसी (एंजाइना पेक्टोरिस) की बीमारी है और वह हमेशा लेट नहीं पाते हैं। वह कुर्सी में बैठे-बैठे सो रहे थे। मुझे ऐसा सुनाई दिया जैसे कि फ़र्श पर खुर पड़ रहे हों। झाँककर देखा तो वहाँ सील्या बकरी खड़ी दिखाई दी। फ़ादर के सामने खड़ी होकर वह कह रही थी, "आप सोचते हैं कि आपने मुझ पर जीत हासिल कर ली है? अभी खुश मत होइए।...अभी तो जल्दी है... ।"

एक बार तो फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना ने बहुत ही विचित्र बात कह डाली, "जो हुआ सो हुआ। मैं तो अपने निवासियों की सेवा सदा स्वयं ही करती हूँ। जो चाहिए लाकर दे देती हूँ। कितनी ही बार उन्होंने मुझसे कहा है—'कोई बात नहीं, आवश्यकता नहीं है। आप चिन्ता मत कीजिए।' पर मेरे मन में यह आता है कि आवश्यकता क्यों नहीं है? वह तो बीमार हैं।...फ़ालतू में उठना उनके लिए कठिन है। एक बार मैं उनके दरवाज़े के निकट आई। मुझे लगा कि उनके कमरे में कोई है। आवाज़ तो नहीं आ रही थी, पर वहाँ कोई था अवश्य। मैंने सिटकनी को धीमे से खोलकर झाँका। वहाँ देवदूत था। यदि मैं झूठ बोल रही हूँ तो यहीं-की-कहीं गिर पड़ूँ। छोटा-सा था वह देवदूत और उसके पंख थे। फ़ादर को उसने कम्बल ओढ़ाया और पानी का गिलास दिया। तभी दरवाज़ा चरमराया। फ़ादर गेओर्गी चिल्लाए—'अन्दर मत आओ! अन्दर मत आओ!' मैंने देखा कि देवदूत ग़ायब हो गया। फ़ादर गेओर्गी मुझ पर क्रुद्ध हो गए कि मैंने देवदूत को क्यों डरा दिया।...मैं तो सोचती हूँ कि परमेश्वर ने देवदूत भेजकर उनकी विनयशीलता का उन्हें पुरस्कार दिया है. .।"

मानो येगोर के लिए यह खुशी की ही बात है, जिसके लिए उसे ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए। अब तो उसके पास पाव्लीना के पति फ़ेदोत कूज़्मिच

ने भी आना शुरू कर दिया है। एक बार आते ही वह चिल्लाकर बोला, "यह क्या बात है, फ़ादर, कि आप हमारे जीवन में दख़ल देने लगे हो? आपसे ऐसा करने को किसने कहा है? हम अपना मामला खुद ही सुलझा लेंगे।"

फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना ने उसे बाँह से खींचते हुए कहा, "फ़ेदोत, तुम्हें शर्म नहीं आती! फ़ादर गेओर्गी तुम्हारी पत्नी की रक्षा कर रहे हैं।"

"यह इनका काम नहीं है। दख़ल ना दें तो अच्छा ही है!"

"मूर्ख, वह इतना सब तुम्हारी ख़ातिर ही कर रहे हैं।"

"मुझे भी मालूम है कि यह मेरी पत्नी को फुसलाने की फ़िराक में हैं। मुझे कलंकित करना चाहते हैं। पर इनके हाथ कुछ नहीं आने वाला है!"

ग्वोज़्दार्योव यह सारा दृश्य देख रहा था। देखने के बाद उसने कहा, "फ़ादर, यह क्या बात है कि आप हर किसी को अपने घर में आने देते हैं? गाली-गलौज़ भी सहे जा रहे हैं! इस फ़ेदोत की गर्दन पकड़कर बाहर निकाल दो!..."

येगोर ने मुस्कुराते हुए कहा, "परमेश्वर की कृपा हो! बस, इनके घर में सब ठीक-ठाक रहे!..."

जब फ़ेदोत कूज़्मिच आख़िरी बार आया, तब उसने येगोर को ख़ूब खरी-खोटी सुनाई, "पथभ्रष्ट फ़ादर! चरित्रहीन हो तुम!"

यह कहकर वह बाहर आ गया और उसकी खिड़कियों पर उसने पत्थर फेंकने शुरू कर दिए। सारी खिड़कियों के शीशे तोड़ डाले। फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना उठ खड़ी हुई और थानेदार के पास जाने को हुई। परन्तु येगोर ने उसे रोक दिया, "रहने दो, माई। कोई बात नहीं।...मैं शीशे लगवा लूँगा...।"

एक बार उस्प्येन्स्की के स्थापना-दिवस के तुरन्त बाद फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना के पास शुब्योन्कोवा आई। वह रसोईघर में चाय पीने बैठ गई और ऊँचे स्वर में ऐसे बोलने लगी जैसे कि बस ऐसे ही बोले जा रही हो, "तूने सुना? पाव्लीना की बकरी सील्वा बीमार पड़ गई है...।"

उस समय येगोर अपने कमरे में कपड़े बदल रहा था। शुब्योन्कोवा का स्वर सुन कर उसे ध्यान आया कि कई दिनों से पाव्लीना गिरजे में दिखाई नहीं दी है। रसोई में जाकर उसने पूछा, "पाव्लीना को क्या हुआ?"

"वह तो ऐसे तड़प रही है जैसे कि सील्वा उसकी बहुत निकट सम्बन्धी थी।" शुब्योन्कोवा ने हँसते हुए कहा, "फ़ेदोती कूज़्मिच का ध्यान ही नहीं रख रही है।"

"घर में शैतान को लाओगे तो उसे सिर पटककर बाहर तो करोगे नहीं।" फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना बोली।

शुब्योन्कोवा ने आगे कहा, "पता है, उसे फिर क्या सूझी? अपनी सील्वा को घर ले आई। रसोईघर में उसके लिए गद्देदार बिस्तर तैयार किया। स्वयं उसके पास ज़मीन पर सोई, चटाई पर... ।"

उस दिन येगोर जान-बूझकर रास्ता बदलकर पाव्लीना के घर के सामने से होकर गया। ठीक उसी समय पाव्लीना फाटक से बाहर आ रही थी। उसे पहचानना तक मुश्किल हो रहा था—एकदम झुक गई थी और काली पड़ गई थी। शुरू में येगोर की समझ में नहीं आया कि क्या कहे, फिर बोला, "मैंने सुना है कि आपकी बकरी बीमार पड़ गई है।"

पाव्लीना ने बस हाथ हिला दिया, कुछ बोल नहीं पाई। कुछ देर बाद फुसफुसाकर बोली, "कल जानवरों के डागदर को बुलाकर लाई थी। उसने कहा कि बचने की नहीं है।...लिमोनिया हो गया है।...मारना ही पड़ेगा... ।"

येगोर बोला, "क्या कहा? शायद इसी में भला हो। इसका मांस ग़रीबों में बाँटा जा सकता है।...मेफ़ोदी स्विरिदोविच को।...आप तो इस मांस को खाएँगी नहीं... ।"

पाव्लीना दहाड़ मारकर रो पड़ी और वहाँ से भाग गई।

एक दिन बाद येगोर दूध और डबल रोटी लेकर कार्पोव्ना के पास गया।

"सुना है कि पाव्लीना की सील्वा बकरी मर गई है। आपने नहीं सुना क्या?" कार्पोव्ना ने पूछा।

"नहीं, मैंने तो नहीं सुना।" येगोर ने उत्तर दिया।

फिर उसने पूछा, "अब पाव्लीना कैसी है?"

"पाव्लीना की पूछ रही हो? पता तो है कि...सवेरे-सवेरे ही शराब खाने में दिखाई दी थी।...सुना है कि ऐसी धुत रहती है, जैसी पहले कभी नहीं रहती थी।...कहते हैं कि और किसी की भी याद में उसकी ऐसी हालत पहले कभी नहीं हुई थी।...पहली बार ऐसी..."

उसने उँगली उठाकर येगोर को धमकाते हुए कहा,

"फ़ादर, मैंने आपसे पहले ही कहा था।...आप शैतान के साथ समझौता नहीं कर सकते।...उसके विरुद्ध आप कैसे जा सकते हैं?"

जब येगोर उसके पास से जा रहा था, तब अहाते में ग्वोज़्दोर्योव दिखाई दिया, मानों वह उसी की प्रतीक्षा में खड़ा था।

"फ़ादर गेओर्गी, आप भी कैसे व्यक्ति के साथ उलझ पड़े! उसके साथ भिड़ने के लिए तो भालेवाला घुड़सवार चाहिए। आप तो बहुत सीधे-सादे और

शर्मीले हैं।...आपका तो स्वर भी बहुत हल्का है।...यहाँ ज़रूरत है भोंपू की। इतनी ज़ोर से चीख़ो कि सारी दुष्ट आत्माएँ भाग जाएँ।''

इसके फिर एक दिन बाद जब फ़ादर येगोर गिरजे से लौट रहा था तब काफी देर हो गई थी और अँधेरा हो रहा था। उसे सामने से मेफ़ोदी स्विरिदोविच आता हुआ दिखाई दिया, जो जल्दी-जल्दी गिरजे की ओर चला जा रहा था। सफ़ाई करने के लिए। येगोर को देखकर उसने उसे वापस लौटने का इशारा किया।

''वह स्वयं नशे में नहीं है, उस पर भूत स्वार हो गया है।''

''तुम किसकी बात कर रहे हो?'' येगोर ने पूछा।

परन्तु मेफ़ोदी स्विरिदोविच ने बस हाथ झटक दिया और वह आगे बढ़ गया, घिसटते-घिसटते। येगोर ने जब ध्यान से देखा तो सामने अन्धकार में उसे किसी की आकृति दिखाई दी। वह आकृति दाएँ-बाएँ लड़खड़ा रही थी, पाँवों पर खड़ी नहीं हो पा रही थी। शायद कोई महिला है—येगोर को ऐसा लगा। पास आने पर उसने देखा कि यही बात है। वह पाव्लीना थी। येगोर ने उसका हाथ पकड़कर कहा, ''तुम्हें घर जाना चाहिए।...चलो, मैं पहुँचा देता हूँ।''

पाव्लीना ने तुरन्त अपने को छुड़ा लिया। उसकी आँखें सफ़ेद पड़ गई थीं और चेहरे पर ऐसी सूजन थी, जैसे कि उसकी पिटाई हुई हो।

''फ़ेदोत ने मुझे घर से निकाल दिया है! ऐसी बात है। या फिर मेरी ग़लती है कि मैं हूँ ही ऐसी... ।''

येगोर ने कहा, ''मेरे कमरे में चलते हैं। पहले नींद निकाल लो। उसके बाद फ़ेदोत से बात करूँगा।''

इस पर पाव्लीना गुर्राकर बोली, ''आपको भी क्या सूझी है!...बहुत चालाक हो ना!...क्या कहने आपकी सोच के! छुट्टी के दिन पीना कोई बचाव नहीं है।''

वह एक झटके के साथ एक तरफ़ को हट गई, गिरते-गिरते बची। येगोर ने बड़ी मुश्किल से उसे सँभाला। वह अपने को छुड़ाकर भाग गई।

अगले दिन येगोर ने सब जगह उसकी खोज की—कहीं नहीं मिली। दूसरे दिन भी वह मुहल्ले में दिखाई नहीं दी। पता ही नहीं चला कि किधर को चली गई। किसी को भी मालूम नहीं था। ऐसी ग़ायब हुई मानों धरती में समा गई हो। फेदोती कूज़्मिच के तो पाँव ही उखड़ गए। ज़िला-कार्यालय में गया, पुलिस के पास गया—कहीं कोई सुराग़ नहीं मिला। सबको फ़ेदोती कूज़्मिच पर दया आ रही थी।

अहाते में खड़ी फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना कह रही थी, "दोष पाप का नहीं है, दोष है मद्यपान का। जब औरतें मदिरा-शराब पीकर खुद ही शैतान को अपने पास बुलाएँगी तो फिर उसी की धुन पर नाचना पड़ेगा।..."

ग्वोज़्दार्योव ने उसका समर्थन किया, "है तो ऐसा ही। जिसकी जो चाह होती है उसे वही ठीक लगता है।...देखो, ऐसा है कि...ईश्वर ने मार्ग दिखाया और शैतान ने फँसा डाला। इस तरह वह बर्बाद हो गई है।..."

एक दिन की बात है कि फ़ेदोती कूज़्मिच सवेरे-सवेरे येगोर के पास आया। वह बिलकुल शान्त और स्थिर था। खिड़की के नए शीशों को देखकर उसने पूछा, "अब क्या किया जाए?"

येगोर ने उससे कहा, "ईश्वर कृपालु है। सब कुछ उसकी इच्छानुसार हो जाएगा। थोड़ा समय तो दो।..."

इस तरह सर्दियाँ बीत गईं। क्रिस्मस, स्व्यात्कि और फिर बपतिस्मा। वसन्त के बिलकुल आरम्भ में, येव्दोकिया-प्ल्युश्शीखा के दिन 1 येगोर ने अभी मध्याह्न की पूजा पूरी की ही थी कि मेफ़ोदी स्विरिदोविच ने आकर उससे कहा, "बाहर कुछ लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।..."

येगोर ने चर्च की ड्योढ़ी में आकर देखा कि उसके माता-पिता उससे मिलने आए हैं। उनमें अधिक बदलाव नहीं आया था। उनके कपड़े भी वही पुराने थे, जिनकी येगोर को पूरी पहचान थी। माँ ने अपना सबसे सुन्दर, बाहर पहना जानेवाला फ़्राक पहन रखा था, जिसके कालर में फूल बने हुए थे और पिता ने चमकदार बटनोंवाली जैकेट पहन रखी थी। येगोर को देखते ही माँ के आँसू आ गए।

"हे ईश्वर! यह क्या हो गया है? कैसी बुरी हालत हो गई है तेरी! तू तो कागज़ की तरह सफ़ेद पड़ गया है।..."

येगोर ने माँ को शान्त करते हुए कहा, "कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। एक दिन ओप्तिना जाकर अपने आराध्य देव की प्रार्थना करूँगा और ठीक हो जाऊँगा।..."

वह माता-पिता को घर ले आया। परन्तु उनके आतिथ्य के लिए उसके पास कुछ भी तो नहीं था। केवल चाय और रस्क थे। अच्छा हुआ कि माँ कुछ सौगात लेकर आई थी—भाप में पकाई हुई मछली, सॉसेज और पकवान। वे लोग मेज़ पर बैठे थे। माँ ने कहा, "मुझे एक भयंकर-सा अनुभव हुआ है। मुझे किसी का स्वर सुनाई दिया था।...रात को जब मैं बिस्तर में जाकर लेटी

---

1. एक मार्च को पड़नेवाला एक त्यौहार।

तब मुझे अचानक सुनाई पड़ा—'तुमने एक लड़के को जन्म दिया है पर वह तुम्हारा नहीं है।...उसकी जन्मभूमि कहीं और है।...आकाश में है।...उसे शीघ्र ही वापस लौटना है।...अब समय आ गया है।'..."

पिता ने उसकी ओर हाथ हिलाकर कहा, "ऐसा ही होगा। स्वप्न में दिखाई दिया था और इसने कल्पना ही कर डाली।"

"नहीं, मैं उस समय सो नहीं रही थी। नींद में नहीं थी। डर गई थी।...मैं सोच रही थी कि ऐसा कहनेवाला यह कौन होगा? तभी एक देवदूत दिखाई दिया। जो तूने कागज़ से बनाया था, वह ठीक मेरी चारपाई के ऊपर उड़ रहा था।...तो यह सब कहनेवाला वही देवदूत था।...मैंने निश्चय किया कि तेरे पास जाकर पूछना चाहिए।"

इसके बाद माँ किसी काम से कमरे से बाहर चली गई। पिता ने उसके जाते ही दरवाज़ा बन्द कर दिया और फिर से, पहले ही तरह, येगोर के सामने घुटनों के बल बैठकर कहा, "येगोर, मैंने तुझे ख़ामख़्वाह ही नाराज़ किया, इतना डाँटा-डपटा। तू मुझे माफ़ कर। मुझे अपने मन में बहुत पीड़ा हो रही है।..."

येगोर ने कहा, "मैं तो वह सब भूल चुका हूँ।"

माता-पिता येगोर के पास तीन दिन रहे। जब रुपये ख़तम हो गए, तब चले गए। माँ ने तो येगोर से ऐसे विदाई ली, जैसे कि फिर कभी बेटे को देखने का अवसर ही नहीं मिलेगा। पिता उसे बेटे के पास से खींचते जा रहे थे।

"फिर आएँगे, अवश्य आएँगे।...जाड़ों तक रुपये जमा कर लेंगे और फिर आएँगे।..."

येगोर अकेला रह गया। फ़ेलित्साता प्रोकोफ़्येव्ना ने अपने परिचितों से कहा, "फादर गेओर्गी, यह क्या बात है कि तुम अपनी बीमारी से लड़ नहीं रहे हो? लड़ो तो सही! डॉक्टरों के पास जाओ, इलाज करवाओ।"

येगोर ने कहा, "कोई बात नहीं। मैं ओप्तिना जाऊँगा।...ईश्वर ने चाहा तो ठीक हो जाऊँगा।..."

ग्वोज़्दार्योव ने येगोर पर एक नज़र डालकर कहा, "तुम नहीं जा पाओगे, फ़ादर।...बहुत दुर्बल हो गए हो।...साँस तक कितनी मुश्किल से चल रही है। लगता है कि छाती में बलग़म जमा हो गया है।...तुम्हारे तो पाँव भी सूजे हुए दिखाई पड़ रहे हैं।..."

"कोई बात नहीं। ईश्वर ले जाएगा।" येगोर ने उत्तर दिया।

जब येगोर ग्वोज़्दार्योव के पास से हट गया तो उसने बस सिर हिला दिया।

''आश्चर्य की बात है।...बड़ा विचित्र लगता है। ईश्वर अपनी सेवा करनेवालों के प्रति दया नहीं दिखाता है।...जैसे कि उसने मुँह मोड़ लिया हो।...''

'इल्या-दिवस' के तुरन्त बाद येगोर वास्तव में ही ओप्तिना रेगिस्तान जाने को तैयार हो गया। उधर जाते हुए कितनी ही बार उसने सोचा कि बस हो गया, अब पहुँचना असम्भव है। अन्ततः पहुँच ही गया, ठीक त्यौहार के समय—परमेश्वर की रूपलीला[1] के मौके पर।

ओप्तिना मठ में अशान्ति थी—भगदड़ और शोर मचा हुआ था। ट्रकों का आना-जाना लगा हुआ था। मज़दूर अपने मैले कपड़ों में थे। पाँवों के नीचे मलबा पड़ा हुआ था। अपने ज़माने में बोलशेविकों ने मठ की जो दुर्गति की थी, उससे वह अभी तक उबरने में था। वहाँ पर हर जगह तीर्थयात्रियों की भीड़-ही-भीड़ थी।

येगोर ने गिरजाघर की मध्याह्न-प्रार्थना में भाग लिया और फिर वह शीघ्र ही वृद्ध अन्तोनी के पास उनके कोष्ठ में चला गया। वहाँ शान्ति थी, चैन था। वृद्ध अन्तोनी के कक्ष के पास बाँज का विशाल दोहरा वृक्ष खड़ा हुआ था। वृक्ष के नीचे लोग जमा थे—अच्छी-खासी भीड़ थी। शीघ्र ही स्वयं अन्तोनी ड्योढ़ी में बाहर आए। उनके चेहरे में प्रसन्नता थी और वह मुस्कुरा रहे थे। वह सफ़ेद रंग का चुस्त चोगा पहने हुए थे, उनका कमरबन्द चमड़े का था और सिर पर वह मुलायम टोप पहने हुए थे। सब लोग एक साथ उन पर टूट पड़े, ''आशीर्वाद दो, फ़ादर!''

कोई चिल्लाया, ''इस तरह ऊपर तो मत चढ़ो। यीशू की ख़ातिर।...दबा ही डालोगे।...''

वृद्ध अन्तोनी ने मुस्कुराते हुए कहा, ''सादगी से जीना चाहिए, सादगी से।...जहाँ सादगी और सरलता होती है, वहाँ सौ-सौ देवदूत विराजमान रहते हैं, और जहाँ दिखावा होता है, वहाँ एक भी नहीं होता।... जीने का अर्थ है, किसी को सन्ताप न देना, किसी की निन्दा न करना, किसी को पीड़ा न पहुँचाना और सब के प्रति सम्मान रखना।...ईश्वर का वास सरल जीवों में होता है।...जहाँ सरलता नहीं है, वहाँ केवल रिक्तता है।...''

तभी टोपी पहने हुए एक महिला भीड़ में से आगे आई। अपने आगे वह बच्चा-गाड़ी को धकेल रही थी, उसमें एक बहुत कमज़ोर बच्चा लेटा हुआ था, जिसके हाथ-पाँव टहनी की तरह लटक रहे थे। उस महिला ने पूछा, ''फ़ादर, मैं क्या करूँ? मेरा बच्चा बीमार है।...''

1. 6 अगस्त को पड़ने वाला एक त्यौहार।

वृद्ध अन्तोनी ने कहा, "ईश्वर की प्रार्थना कर। बस, इतना पर्याप्त है। रोग मनुष्य के लिए लाभदायक होते हैं।...रोग के रूप में ईश्वर का आगमन होता है। यदि दुःख न हो तो पापों से मुक्ति भी नहीं मिलेगी। दुख को प्रिय अतिथि की तरह मान कर चल। दण्डरहित रह कर कोई ईश्वर की सन्तान नहीं कहला सकता है।...यदि यीशू का साथ है तो दुःखों का साथ भी रहेगा।..."

फिर उन्होंने अचानक पूछा, "माँ, क्या तेरे पास स्कार्फ़ है?"

उस महिला ने थैले में से ढूँढ़कर रूमाल निकाला। वृद्ध अन्तोनी ड्योढ़ी से नीचे उतरे और स्कार्फ़ को लेकर उसे बच्चे के घुटनों पर फैला दिया। इसके बाद अपनी जेव में से रस्क निकाल-निकाल कर स्कार्फ़ के ऊपर रखने लगे।

"मेरे पास एक अतिथि आई थी—'स्वर्ग की रानी'। उसके बाद से ही यह सब बचा है। घर जाकर इन टुकड़ों को बच्चों को खाने को दे देना।"

पास में कोई जवान लड़का खड़ा था। वह चश्मा पहने था। उसके दाढ़ी थी और उसने बालों की चुटिया कर रखी थी। उसकी ओर देखकर वृद्ध अन्तोनी ने कहा, "मैं जानता हूँ, अनाथ। मुझे मालूम है।...तू अकेला है, न माँ है, न बाप है।...पर तू चिन्ता मत कर। तेरा 'पिता' है। वह आकाशस्थ है।... तू शान्तचित्त रह, तेरे सब काम पूरे हो जाएँगे।... मदिरापान करना छोड़ दे।... विनम्र व्यक्ति के हृदय में ईश्वर का वास होता है।... शान्तचित्त लोगों के प्रति ही ईश्वर अपनी कृपा दिखाता है।"

"पर शान्तचित्तता कहाँ से प्राप्त की जा सकती है?" दाढ़ीवाले युवक ने गहरी साँस लेकर पूछा।

"इसके लिए तुम्हें अपने पापों की ओर देखना होगा और तब शान्तचित्तता तुम्हें अपने आप ही प्राप्त हो जाएगी।... और अब कभी मदिरापान मत करना, मत पीना।"

यह कहकर अन्तोनी आगे बढ़ गए। लोग उनके लिए रास्ता छोड़ते गए। वह वृद्ध महिला के पास आए। वह बिलकुल झुक गई थी और उसने बैसाखी का सहारा ले रखा था। उसने देखा कि कोई वृद्ध व्यक्ति उसके निकट खड़ा है। बुढ़िया ने उस वृद्ध की ओर सिला हुआ तौलिया आगे बढ़ाया। अन्तोनी ने वह तौलिया लेकर उससे तीन बार पोंछा और फिर कहा, "हुँ, तुम तो दौड़ने लगोगी।...."

यह कहकर वह आगे बढ़ गए। वृद्धा कुछ देर खड़ी रही। फिर एकाएक उसने बैसाखी परे फेंक दी और वृद्ध के पीछे-पीछे चल पड़ी, इतनी तेजी से कि उसका साथ देना तक मुश्किल हो गया।

तभी कोई व्यक्ति चिल्लाया, "हैरानी की वात है! आश्चर्य है!"

वृद्ध अन्तोनी ने केवल हाथ से मना करने का इशारा किया। ठीक तभी उन्होंने अपने आप को येगोर के सामने खड़ा पाया। उन्होंने सीधे उसी को सम्बोधित करते हुए कहा, "इसमें आश्चर्य कुछ भी नहीं है। आवश्यकता है सहनशीलता की। सहनशीलता आश्चर्यों से अधिक ऊँची होती है।...ईश्वर आश्चर्यों की माँग नहीं करता है। वह केवल शान्तचित्तता और सहनशीलता की माँग करता है।..."

येगोर ने कहा, "मैं बहुत कमज़ोर हूँ। मैं शैतान तक को क़ाबू में नहीं कर सका।..."

वृद्ध ने समझाया, "तुम सहन करना सीखो। सहनशील व्यक्ति सबल व्यक्ति से श्रेष्ठ होता है। बल-प्रयोग से कभी भी कोई अच्छा काम नहीं हुआ है। शैतान को भी केवल शान्तचित्तता के द्वारा ही क़ावू में किया जा सकता है।...वल-प्रयोग के द्वारा उस पर क़ावू पाना सम्भव नहीं है।..."

सवेरे उजाला होते ही येगोर मठ में पहुँच गया था। वह गिरजाघर में खड़ा हुआ था जहाँ ग़ायक मधुर कण्ठ से गा रहे थे—'तमसो मा ज्योतिर्गमय।...' गिरजे में सिर्फ़ इतने ही लोग थे कि बस आपस में टकराने से बच रहे थे। फ़र्श पर चारों ओर सेवों की टोकरियाँ और गठरियाँ पड़ी हुई थीं—परमेश्वर की रूपलीला को सेवों का अर्पण किया गया था। गिरजे में घर की-सी, ताज़े सेबों की गंध व्याप्त थी, चर्च जैसा लग ही नहीं रहा था।

प्रार्थना के बाद पुरोहित ने सभी पर पवित्र जल का छिड़काव किया और सव लोगों ने उन्हे वहीं, गिरजे में खाया। और तो और, वाद्यवृन्द के गायकों ने भी सेब खाए। येगोर देख रहा था कि फ़्राक पहने हुए एक महिला उपयाजक (डीकन) के पास आई। उसकी सूरत जानी-पहचानी-सी थी। उपयाजक ने उसे एक बड़ा लाल सेव दिया।

"पाव्लीना!" येगोर ने उसे पहचान लिया।

वे गिरजे से एक साथ वाहर निकले। पाव्लीना ने वताया कि वह अव हमेशा यहीं रहती है, पवित्र आराध्यों के निकट।

"यहीं पास में कमरा किराए पर ले लिया है।...मकान-मालकिन बहुत भली है।"

वह येगोर को अपने कमरे में लेकर आई। यह देखते ही कि फ़ादर आया है मालकिन तुरन्त हरकत में आ गई और उसने खाने की मेज़ तैयार कर दी।

वे एक साथ बैठकर चाय पी रहे थे और पवित्र जल से अभिषिक्त सेवों को खा रहे थे।

येगोर ने कहा, "मुझे मालूम है कि पूज्य आराध्यों की प्रार्थना से तुम ठीक हो गई हो।"

"नहीं।" पाव्लीना ने सिर हिलाते हुए कहा, "मैं ठीक हुई हूँ आपकी वजह से। आपकी दुर्बलता के द्वारा।...आपको देखते ही मेरे मन में दया उत्पन्न हो गई थी।...आप वास्तव में पवित्र व्यक्ति हैं, पवित्र हैं।...मुझे लगता है कि मैं आपसे प्रेम करती थी।...सच, प्रेम करती थी।"

वे दोनों शाम होने तक इसी तरह मेज़ पर बैठे रहे।

"मैं तब सोचती थी कि आप शायद मुझे बुला लें।...मैं सब कुछ छोड़-कर आपके पास आने को तैयार थी।"

येगोर ने फिर से अपनी वही बात कही, "मुझे अकेले ही रहना है।...मेरा दिल थक चुका है।"

मकान-मालकिन वास्तव में ही बहुत भली निकली। रात को उसने येगोर को कहीं जाने नहीं दिया। वहीं, पाव्लीना के कमरे में ही सोफ़े पर बिस्तर विछा दिया। पाव्लीना कपड़े बदलकर लेट गई। लेटे-लेटे वह येगोर की साँस को सुन रही थी। उसकी साँस मे भारीपन और भर्राहट थी। फिर उसे विचित्र आवाज़ें सुनाई पड़ीं। धीमे स्वर में कोई कह रहा था—"अब समय हो गया है, समय आ गया है...अपनी आकाशीय जन्मभूमि में जाने का।...' वह सोच रही थी कि यह सपना स्वयं उसे दिखाई दे रहा है। परन्तु वह किसी भी तरह समझ नहीं पाई कि यह सपना किस बारे में है। सवेरे जब वह उठी तो देखा कि येगोर सोफ़े पर है ही नहीं। मकान-मालकिन ने भी दरवाज़े में से झाँककर देखा और उसे भी हैरानी हुई, "फ़ादर कुछ जल्दी ही चले गए।..."

पर पाव्लीना को मालूम था कि वह ऐसे ही नहीं गया है। उसने मालकिन से भी वैसा ही कहा, "अम्मा, नहीं।...यहाँ, धरती पर, अब हम उन्हें और नहीं देखेंगे।..."

और फिर वे दोनों ओसारे में नाश्ता करने चल दीं।



साभार : नोवी मीर, अंक 5 , 1998

उपहार

व्लादीमिर लीदिन

मरीया पेत्रोव्ना सेवस्त्यानोवा को उस मकान में रहते कई साल हो गए थे, बहुत साल बीत चुके थे। यद्यपि वह बुढ़ा रही थी, पर उसका बुढ़ाना भी बड़ा मर्मस्पर्शी और ताज़गी लिये था, जैसे कि सालों के वीतने के साथ-साथ उसके जीवन का वास्तविक उद्देश्य अधिक स्पष्ट होता जा रहा था। उसके जीवन का लक्ष्य बहुत पहले से ही वह बन चुका था कि जिसे ज़रूरत हो उसका ज़रा-सा भी भला कर दे--कभी-कभी तो मनुष्य को कितने कम की ज़रूरत होती है। ..

मरीया पेत्रोव्ना ने एक प्रसिद्ध रूसी लेखक के संग्रहालय में अनुसंधान अधिकारी के पद पर नौकरी की थी। स्कूली बच्चों को म्यूज़ियम के कमरों का अवलोकन करते वह अक्सर देखा करती थी। उसे हमेशा ऐसा लगता था कि लेखक अपनी मेज़ पर बैठा काम कर रहा है और अपने कमरे के द्वार पर खड़ी भीड़ की ओर उसने अपना सिर ज़रा-सा घुमा दिया है, बच्चियों के चमकीले भूरे बालोंवाले सिर या बच्चों के हजामत किए गोल सिर उसके चश्मे में बड़े आराम से डूब रहे हैं और वह अपने भावी पाठकों के अंकुरों को रोमांच के साथ देख रहा है। हो सकता है कि इन युवाओं में से किसी ने उसकी किताबें पढ़ भी ली हों।

रिटायर होने के बाद भी मरीया पेत्रोव्ना संग्रहालय के सभी कार्यक्रमों में उपस्थित रहती थी, हाल में बैठ कर या तो कोई भाषण सुनती थी, या संगीत का कार्यक्रम हो तो संगीत सुनती थी या फिर काव्यपाठ। नियमित आगंतुकों को ऐसा कोई कार्यक्रम याद नहीं आता जिसमें विनम्र और शान्त स्वभाव की यह महिला अनुपस्थित रही हो--उसे अभी बूढ़ी भी नहीं कहा जा सकता था, केवल मरीया पेत्रोव्ना कहना ही ठीक है। इस नाम में उससे सम्बन्धित वह

सब निहित है, जो इस संग्रहालय का अंश बन चुका है। वह बहुत पहले से ही उस मकान का भी अंश बन चुकी थी, जहाँ वह लगभग चालीस साल से रह रही थी बल्कि यों कहना चाहिए कि वह उन बहुत-से लोगों का अंश बन चुकी थी, जो उसी भवन के किसी अपार्टमेंट में पैदा हुए थे, जहाँ उनकी किशोरावस्था और युवावस्था बीती थी और देखते-देखते वहीं युवा माँ या युवा पिता भी बन गए थे।

अब रिटायर होने के बाद भी उसका दिन काम-काजों से शुरू होता था। अगर कोई उससे कोई चीज़ लाने के लिए कहने की हिम्मत कर ही लेता था तो वह झट से कह देती थी—"अच्छा भई,...अपने लिए ख़रीदने जाऊँगी तो तुम्हारे वास्ते भी लेती आऊँगी।" या कहती, "वासेन्का को स्कूल से लेती आऊँगी, मुझे उसी रास्ते तो आना है। आज उसके कितने पीरियड हैं?" इस तरह सब अच्छा और ठीक-ठाक चल रहा था, सब जीवन के नियमानुसार।

अगर कोई दिन ख़ाली होता तो वह अपने संग्रहालय चली जाती थी। वहाँ ग्यारह बजे तक सफ़ाई पूरी हो जाती थी। ख़जांचिनी आग्निया कुज़्मीनिच्ना प्रवेश-द्वार के पास अपनी मेज़ पर आकर जम जाती थी और मरीया पेत्रोव्ना उसके पास आकर बतियाने को बैठ थी। इस तरह बिना हलचलवाली सुबह का पहला घण्टा निकल जाता था।

दोहरी, थुलथुली ठुड्डीवाली मोटी आग्निया कुज़्मीनिच्ना ने एक दिन बीच-बीच में दमे-जैसी खाँसी निकालते हुए म्यूज़ियम की बातों के अलावा और भी बात शुरू कर दी, "मरीया पेत्रोव्ना आपसे बहुत दिनों से पूछता चाहती हूँ, पर संकोच होता है।...वैसे हम एक-दूसरे की हर बात अच्छी तरह समझती हैं, पर आपस में एक-दूसरे के बारे में कुछ नहीं जानतीं।"

"तुम क्या जानना चाहती हो?"

"तुम्हारे परिवार में कौन-कौन हैं?" आग्निया कुज़्मीनिच्ना ने सहमते हुए पूछा, उसकी मोटी, लाल-सी उँगलियों ने बुनाई रोक दी, "क्या सच में मन का कोई नहीं मिला क्या?"

"था, सब था। ख़ुशी भी मिली और उदासी भी। सब मिला।" मरीया पेत्रोव्ना ने अनिश्चित-सा उत्तर दिया।

जिस तरह उसने उत्तर दिया था, उससे यह निकलता था कि और अधिक पूछना ठीक नहीं है।

"आज के दिन तीन ग्रुप आएँगे। मुझे फ़र्श की चिंता है।...पिछली बार मरम्मत के समय मिस्त्री कह रहे थे कि फट्टियाँ सारी घिस गई हैं, बदलनी पड़ेंगी। नई फट्टियों में वो बात नहीं है।"

शायद आग्निया कुज़मीनिच्ना अपनी कल्पना में लेखक को कमरों में घूमते हुए देखती थी जो बीच-बीच में खिड़की के पास आकर रुकता होगा, जहाँ जर्मेनियम पौधा रखा रहा होगा और उसके पाँवों तले फट्टियाँ हल्के-से चरमराती होंगी।

"नहीं, मुझे ये ग्रुप बहुत पसन्द आते हैं।...इन छोटे लड़के-लड़कियों को देखकर सोचती हूँ कि शायद इनमें से कोई लेखक बन जाए। लड़कियों ने सिर्फ़ शादी ही तो नहीं करनी है।"

"वैसे तुम्हारा कहना ठीक ही है। ऐसे विचार मेरे मन में भी आते हैं।" आग्निया कुज़मीनिच्ना ने सहमति प्रकट की।

सबसे पहले पधारे साहित्य के विद्वान स्पेरान्त्सेव। काफ़ी वृद्ध थे। उन्होंने नब्बे के दशक के लेखकों के बारे में पुस्तक लिखी थी। आकर मरीया पेत्रोव्ना से बोले, "आपको यथास्थान देखकर खुशी होती है।" जिसके जवाब में उसने कहा, "मुझे और जाना भी कहाँ है?" उन्होंने अपना पतला हाथ उससे मिलाया और छोटे-छोटे क़दम लेकर जल्दी से आगे चल दिए।

इसके बाद स्कूली बच्चों का ग्रुप आया। लॉबी शोर से भर गई। एक बच्चे ने चश्मेवाली लड़की की चोटी खींची। लड़की ने जब गुस्से में मुड़कर देखा तो मरीया पेत्रोव्ना ने उसे समझाते हुए कहा, "कोई बात नहीं, बेटी।...मेरे ज़माने में लड़के मेरी चोटी भी खींचते थे, अब वह याद करके अच्छा ही लगता है।"

जब बच्चे हॉल में चले गए तो आग्निया कुज्ज़मीनिच्ना बोली, "बच्चों को आनन्द पहुँचाने के साथ-साथ खुद भी जैसे जवान हो जाते हैं।"

"बिल्कुल ठीक कहा।" मरीया पेत्रोव्ना ने पुष्टि की।

वह इस बारे में कुछ नहीं बोली कि इसके साथ ही हम अपने जीवन की संध्या को और भी स्पष्ट रूप में देखती हैं।

वह संग्रहालय में दो बजे तक रही थी ताकि लंच के मध्यावकाश के बाद रास्ते में डबल रोटी ख़रीदती हुई जाए। जिस मकान में वह लगभग चालीस साल से रह रही थी, उसके निकट कज़ान की रहनेवाली तातार महिला नाज़िया खड़ी हुई थी, जो वहाँ मकान की देख-रेख करती थी। उसका चेहरा चौड़ा और सहृदय था।

"कोई लम्बा-सा आदमी आपका इन्तज़ार कर रहा है।... वो बैठा है।" उसने अहाते में पड़े दूरवाले बेंच की ओर इशारा किया।

"कौन होगा?" मरीया पेत्रोव्ना को आश्चर्य हुआ।

पता नहीं कब से वह अकेली रह रही थी। किसी का उसके यहाँ आना

अपवाद ही होता था। निकट सम्बन्धियों में से एक भानजी आस्या बची थी, जो पेनज़ा में रहती थी। बहन का देहान्त हो चुका था। यह सोचना भी अजीब-सा लगता था कि जिस आस्या का छोटी बच्चीवाला रूप उसे याद था, उसके बच्चे अब वयस्क हो गए होंगे।

अहाते के ठीक अन्दर बैठे हुए व्यक्ति ने उसकी ओर देखा, अनिश्चय के साथ वह उठा और जब वह पास आया तो मरीया पेत्रोव्ना ने उससे पूछा, "आपको क्या मुझसे काम है?"

"जी हाँ, यदि आप ही का नाम मरीया पेत्रोव्ना सेवस्त्यानोवा है।"

अचानक ही मरीया पेत्रोव्ना का दिल सिकुड़ गया, एकदम अजीब और अस्थिर ढंग से सिकुड़ा—इस आदमी की शक्ल किसी से मिलती थी, क़द लम्बा, नाक-नक़्श तीखे और स्पष्ट।

वे दूसरी मंजिल पर चढ़कर आए और मरीया पेत्रोव्ना के कमरे में बैठ गए। मरीया पेत्रोव्ना घबराहट के साथ प्रतीक्षात्मक दृष्टि से उस अपरिचित को देखे जा रही थी जो कुछ परिचित-सा भी लगता था।

"पता नहीं, आपको मेरा आना कैसा लगा। पर मुझे आपसे मिलना ज़रूरी था। मेरे पिता का नाम है अलेक्सेइ अन्द्रेयेविच।"

अब एकदम स्पष्ट हो गया था कि उसकी शक्ल किससे मिलती थी। वह उसके भूतपूर्व पति का बेटा था।

यूनिवर्सिटी के दिनों में, जीवन के सबसे ताज़गी के समय, उसे अलेक्सेइ सेवस्त्यानोव से प्रेम हो गया था। भाषा-साहित्य संकाय के रूसी भाषा और साहित्य के विभाग में वे साथ-साथ पढ़ते थे। अलेक्सेइ को भी उससे प्रेम था। साथ बिताए दो साल उसके जीवन के सबसे पूर्ण और सबसे अच्छे दिन थे। सेवस्त्यानोव को दिसम्बर 1825 के आन्दोलन के बारे में किताब लिखने के सिलसिले में साइबेरिया जाने का अवसर मिला, जहाँ के अभिलेखागारों में अभी भी बहुत-सी अनछुई सामग्री पड़ी हुई थी। पर कुछ महीनों की वह यात्रा साल भर लम्बी खिंच गई। कुछ समय बाद सेवस्त्यानोव की क्रास्नोयार्स्क से चिट्ठी आई कि उसे एक अच्छी सहायिका मिल गई है, जो स्वयं भी साइबेरिया के इतिहास का अध्ययन कर रही है। हाल ही में दोनों साथ-साथ अचीन्स्क और तबोल्स्क गए थे, जिसका सीधा मतलब यह था कि दोनों सिर्फ़ काम की वजह से ही नहीं जुड़े हुए हैं।

बाद में ऐसा ही निकला और जो मरीया पेत्रोव्ना के लिए प्रेम था, वह अवसाद में बदल गया। पर उसने सेवस्त्यानोव को स्पष्ट लिखा था कि वह

उसके काम की सफलता की कामना करती है। शीघ्र ही वह अनुसंधान अधिकारी के रूप में उस लेखक के संग्रहालय में काम करने लगी, जिसके ऊपर उसने अपना एम.ए. का शोधपत्र लिखा था। साल बीतते गए और स्मृति पर काल की परत जम गई।...

अलेक्सेइ अन्द्रेयेविच के पुत्र ने कहा, "मेरा नाम ईगर है। मैं मानवशास्त्री हूँ। मेरे अध्ययन का विषय है—साइबेरिया की कुछ जनजातियों का इतिहास और जीवन। अपने जीवन के आखिरी दिनों में जब पापा की दिल की बीमारी बढ़ गई थी वह विशेष रूप से आपको अक्सर याद किया करते थे। हममें बड़ी दोस्ती थी और उन्होंने मुझसे कभी कुछ नहीं छिपाया। मुझे मालूम है कि आप उनकी पहली प्रेमिका थीं और प्रथम प्रेम भुलाया नहीं जा सकता। पापा ने मुझसे कहा था कि मैं कभी-न-कभी आपसे अवश्य मिलूँ, हालाँकि मेरा आना आपको शायद पसन्द न आया हो।"

"आप ऐसा क्यों सोचते हैं?" थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने कहा, "मेरे लिए तो यह खुशी की बात है कि अलेक्सेइ अन्द्रेयेविच एक बेटा छोड़ गए हैं।...आपकी सूरत उनसे मिलती है, कितना अधिक मिलते हैं आप!"

"पापा का देहान्त हुए दो साल हो गए हैं। मेरी बेटी यानी अपनी पोती को देखना उनके नसीब में था।"

ईगर उसे देखे जा रहा था—छोटी और शर्मीली तथा सोफ़ा के एक कोने में दुबकी हुई। उसकी आँखों में आकाशी नीलिमा थी, जैसे कि उनकी कोई अलग ज़िन्दगी थी, जो बुढ़ाती नहीं थी।

"सब कुछ बड़ा विचित्र है, ईगर अलेक्सेयेविच। कितना विचित्र है!" मरीया पेत्रोव्ना ने सिर्फ़ इतना ही कहा।

उसके लिए यह समझना कठिन प्रतीत हो रहा था कि दबा और सिकुड़ा हुआ भाव, जो हमेशा के लिए केवल अपमान और कटुता से सम्बद्ध प्रतीत होता रहा था, वह कभी-कभी अप्रत्याशित शक्ति के साथ एकदम सीधा कैसे हो जाता है।...और तब चाहे जो भी हो मनुष्य को सान्त्वना अवश्य मिलती है।

ईगर के लिए भी सम्भवतः यह समझना कठिन था कि मरीया पेत्रोव्ना ने किस तरह प्रेमपूर्वक, स्त्रीतुल्य कोमलता के साथ, बल्कि यों कहें कि माँ की तरह ही उसका स्वागत किया था, वह इस स्वागत से कितना अधिक द्रवित हुआ था। मरीया पेत्रोव्ना का सुख चाहे अघटित ही क्यों न रह गया हो।...उसका ईगर के साथ परोक्ष सम्बन्ध तो था ही।

अभी-अभी क्षण भर के लिए उनके बीच जो हुआ था, उसे जैसे दूर करते हुए मरीया पेत्रोव्ना ने कहा, "आप तो साइबेरिया की जनजातियों का अध्ययन करते हैं, यदि आप हमारे म्यूज़ियम के लिए कुछेक फ़ोटो भेज सकें तो बड़ी कृपा होगी। जिन लेखक का यह संग्रहालय है, वह साइबेरिया भी गए थे और वहाँ की जनजातियों के बारे में उन्होंने जो लिखा है, उसमें उनके प्रति लेखक का गहरा लगाव झलकता है।"

"ज़रूर भेजूँगा। जमा करनी पड़ेंगी। एक बात और भी मैं कहना चाहता हूँ, मरीया पेत्रोव्ना। मेरा विश्वास था कि आप वैसी ही होंगी, जैसा पापा आपके बारे में बताया करते थे।"

"क्या बताते थे?"

"कि आप बहुत उदार हृदय की हैं, समझदार हैं। उनकी पुस्तक *साइबेरिया में दिसंबरवादी* मृत्यु से एक महीना पहले छप गई थी। पुस्तक की यह प्रति उन्होंने आपको भेंट की है।"

ईगर सेवस्त्यानोव ने बैग में से किताब निकाली। किताब के भीतरी मुखपृष्ठ पर मरीया पेत्रोव्ना के लिए बस इतना लिखा हुआ था—"माशा को।" यह परिचित हस्तलेख था, जो बहुत पहले सुदूर साइबेरिया जा चुका था।

"मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ कि आप मुझसे मिलने आए। हमारी इन बातों के सिलसिले में मुझे एक कहावत याद आ रही है, जो न आप और न मैं किसी दूसरे को शायद ही कह सकें—"बुराई पर भलाई की जीत होती है।" बुराई क्या है, बुराई से तो बुराई ही पैदा होती है। नहीं, मैंने मन में कभी बुरा नहीं सोचा, चाहे मुझे कितने भी कष्ट क्यों न झेलने पड़े। अलेक्सेंड्र अन्द्रेयेविच के लिए मैंने दिल से हमेशा भला ही चाहा। जिससे प्रेम हो, उसके लिए और क्या इच्छा की जा सकती है? चाहे अपना भाग्य उसके साथ न जुड़ पाया हो। पर भला न चाहकर और क्या चाहा जा सकता है? इस तरह की बातें मैं सिर्फ़ आपसे ही कर सकती थी।"

ईगर ने उसके छोटे, सूखे हाथ का स्पर्श किया। एक मिनट तक वे चुप बैठे रहे। फिर मरीया पेत्रोव्ना गहरी साँस लेकर बोली, "तो ऐसी बात है।...मैं चाय बनाकर लाती हूँ।"

"धन्यवाद। अभी समय नहीं है। मैं मास्को सिर्फ़ दो दिन के लिए आया हूँ। परसों सवेरे सात बजे वापस चला जाऊँगा।"

"दुबारा तो जल्दी शायद ही आओगे। आपकी लड़की कितने साल की है?"

"डेढ़ साल की है।"

"उसके लिए क्या भेजूँ?...ये लाप्ती[1] ले जाओ, मुझे वलोग्दा से किसी ने भेजी हैं।...उसके बिस्तर के ऊपर टाँग देना, सौभाग्य के लिए।"

"मुझे अपना फ़ोटो दे दो। घर में आपके बारे में बताऊँगा। मेरी पत्नी बहुत संवदनशील है, वह भी बहुत समझदार है।"

"मेरे पास फ़ोटो नहीं है। फ़ोटो खिंचाए सालों बीत गए हैं। बस इतना बता देना कि मास्को में एक बुढ़िया रहती है, बूढ़ी अम्मा मरीया पेत्रोव्ना। उसने अपनी शुभकामनाएँ भेजी हैं। इतना और कह सकते हो कि आपका आना मुझे बहुत अच्छा लगा और इस बात से भी ख़ुशी हुई कि अलेक्सेइ अन्द्रेयेविच पूरी तरह नहीं चले गए हैं। यह जीवन की ऐसी प्यारी ख़ुशी है कि जिसे मनुष्य नहीं ले जा सकता!"

एक दिन वाद, शायद सवेरे के सात बजे, ईगर सेवस्त्यानेव को लेकर विमान धरती से उठा होगा, गहरे नीले आकाश में वह उड़ा चला जा रहा होगा। जो उसने जीवन भर अनजाने में ही अपने भीतर छिपा कर रखा होगा, उसे वह लिये जा रहा होगा।...परन्तु उसके बदले उसे वह प्राप्त हुआ, जिसकी वह अनजाने में जीवन भर प्रतीक्षा कर रही थी।

ग्यारह बजे वह संग्रहालय गई। आग्निया कुज़्मीनिच्ना प्रवेश-द्वार के पास अपनी मेज़ पर बैठी हुई थी। उसने हमेशा की तरह पूछा, "कोई अच्छी नई ख़बर सुनाओ, मरीया पेत्रोव्ना।"

"वहुत कुछ नया है, अच्छी-अच्छी खबरें हैं।... बहुत-से नये समाचार हैं।...हाथ से छूट न जाएँ।"

"आज कहीं तुम्हारा जन्मदिन तो नहीं है?" आग्निया कुज़्मीनिच्ना को सन्देह हुआ।

"शायद हो भी।...मेरी सालों की गिनती भी गड़वड़ा गई है। आज बस अच्छा दिन है।... कभी सोचा भी नहीं था।"

वह हॉल से होकर उस कमरे में गई जहाँ काँच के शोकेस के अन्दर साइबेरिया के पिछली शताब्दी के फ़ोटो लगे हुए थे। थोड़ी देर वह वहीं खड़ी रही। ईगर ने जिन फ़ोटुओं को भेजने का वादा किया है उन्हें भी इन फ़ोटुओं के साथ लगा देना उचित रहेगा। एक ओर किसी आधुनिक ज़िला-केन्द्र का दृश्य, जिसमें किसी सबसे प्रमुख स्थान में स्कूल का भवन होगा और दूसरी

1. बान (रस्सी) की सेंडल

ओर अमूर नदी के किसी दूर-दराज़ के तट पर ननाइ जनजाति का डेरा या वीरान समुद्री तट पर गिल्याक जनताति की बस्ती का दृश्य—दोनों साथ-साथ रहेंगे।...तब यह भी ठीक ही होगा, जीवन के नियमानुसार, उसके अनुसार जो कि जीवन अपनी दृढ़ शक्ति के साथ लाता है और जो बुरा है तथा अपूर्ण रह गया है उसके सामने से हट जाता है।

"एक और भी कहावत है ईगर।" उसने अपने आप से ही बोलकर कहा, "बुराई भलाई के आगे टिक नहीं सकती।—यह भी अच्छी और सान्त्वनादायक कहावत है।"



छड़ी

व्लदीमिर सोलोऊख़िन

एक ज़माना था जब अलेक्सेइ अपनी किसी धुन के वशीभूत होकर, उस पर सवार होती रहनेवाली किसी सनक के कारण छड़ी लिए रहता था।

एक ज़माना था, जब सभी आदमी छड़ी लेकर चला करते थे। परन्तु थोड़ी बाद में पैदा हुए लोगों को--बीस के दशक से शुरू करते हुए--इसकी कोई याद ही नहीं है। इस बारे में लोग पढ़ते अवश्य हैं। पुरानी तस्वीरों में और बीते ज़माने को प्रस्तुत करनेवाली फ़िल्मों में भी छड़ियाँ अवश्य दिखाई दे जाती हैं। किताबों के द्वारा लोगों को मालूम है कि बाल्ज़ाक ने "...बल्लम जैसी मोटी छड़ी का ऑर्डर दिया था। उस छड़ी पर उसने फ़ीरोज़ा मढ़वाया था और उसके बारे में उल्टी-सीधी अफ़वाहें फैला दी थीं। एक अफ़वाह यह थी कि उस छड़ी की मूठ में किसी उच्चवर्गीय महिला का चित्र उकेरा हुआ है, जो हव्वा की वेशभूषा में, वस्तुतः, उसकी प्रेमिका थी। यह छड़ी उसे सात सौ फ्रांक की पड़ी थी और जब वह हर्कुलिस की इस छड़ी को लेकर इतालवी ओपेरा के बॉक्स में प्रवेश करता था, तब सभी उपस्थित लोग विह्वल होकर उसे देखने लगते थे और मदाम द झिरार्दें को तो उसे देखकर 'बाल्ज़ाक महाशय की छड़ी' शीर्षक से एक नया उपन्यास लिखने की प्रेरणा ही मिल गयी थी।"

जनता के पास इस बात के अनेकों सबूत हैं कि पूश्किन दस पौंड यानी चार किलोग्राम वज़न की छड़ी लेकर चलता था, ताकि अपने दाएँ हाथ को मज़बूती प्रदान कर सके। उसे पिस्तौल से सही निशाना बिठाने के लिए इस मज़बूती की ज़रूरत थी। कुछ अन्य प्रमाणों के अनुसार पूश्किन की छड़ी का वज़न बीस पौंड था।

लोगों को एक बहुत बढ़िया उपन्यास में वर्णित उस छड़ी की भी याद है, जिसकी मूठ का आकार काले पूडल कुत्ते के सिर जैसा था और जिसे पत्रिआर्षी प्रुदि में रहने को आये महान मेस्सीर शान से लेकर चला करते थे।

पिछले ज़माने मे न केवल अभिजात लोग, बल्कि सभी तरह के लोग अपने साथ छड़ी रखकर चला करते थे। इसका अपवाद थे तो सैनिक और मेहनतकश मज़दूर। परन्तु ये लोग भी—किसी फ़ैक्ट्री का कोई फ़ोरमैन, स्टीम इंजन का ड्राइवर, बढ़ई, तूला शहर का हथियार यनानेवाला मिस्त्री या मास्को का कोई चाँदी का कारीगर—सभी अपना काम पूरा करने के बाद कपड़े बदल कर छड़ी लेकर बाहर निकलते देखे जा सकते थे। यह सब उतना ही स्वाभाविक था, जितना कि यथासम्भव टाई पहनकर निकलना।

रिवाज़ था, तो छड़ियाँ भी थीं। अब तो उनकी विविधता और उनके उस वैविध्यपूर्ण सौन्दर्य की कल्पना तक करना कठिन है। कोई आबनूस की लकड़ी का होती थी, तो कोई शीशम की लकड़ी की। उनकी मूठें भी तरह-तरह की होती थीं—हाथीदाँत की, चाँदी की, चाँदी पर एनेमल की हुई, बिल्लौर की, यशभ (ऐम्बर) की, मूँगे की, मैलाख़ाइट की, सूर्यकान्त (जैस्पर) की...। किसी छड़ी की मूठ कुत्ते के सिर जैसी होती थी, किसी की मूठ महिला के धड़ जैसी, कोई गेंद के आकार की, तो कोई साँप के आकार की, कोई मूट सीधी होती थी, तो कोई मूठ पुड़ी हुई होती थी, विशेप चिह्नोंवाली, मोनोग्रामवाली, कलात्मक नक्क़ाशी वाली मूठें भी होती थीं। हर तरह की रुचि और हर तरह के मूल्य की मूँठें हुआ करती थीं। छड़ियाँ साधारण और अनगिनत क़िस्म की होती थीं, परन्तु एक जैसी नहीं होती थीं। उनकी विविधता में सस्ते काम से लेकर वास्तविक कलाकृति तक सब कुछ मिल जाता था।

सब कुछ आपेक्षिक होता है। इसका रिवाज़ वापस भी लौट सकता है और चलते-चलते छड़ी घुमाते हुए या हाथों को मुक्त करने की आवश्यकता पड़ने पर बगल में छड़ी दबाकर या मुड़ी हुई मूठवाली छड़ी होने पर उसे बायें हाथ में लटका कर चलनेवाले लोगों को देखकर हमें शागद कोई भी आश्चर्य न हो।

जो भी हो, जब अलेक्सेइ को इस बात की सूझी और वह छड़ी लेकर चलने लगा तब, जहाँ तक याद आता है, किसी को भी इस पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। बस, दोस्तों ने इतना पूछा कि कहीं उसके पाँव में तकलीफ़ तो नहीं है। कभी-कभी मेत्रो या ट्रॉली बस में जब लोग उसके लिए जगह छोड़ने की कोशिश करते थे, तब उसे ज़ोर देकर मना करना पड़ता था और यह समझाना पड़ता था कि भई, मैं अपाहिज़ नहीं हूँ।

पर हमारे इस ज़माने में छड़ी कहाँ से लाई जाए? वह वहीं मिलेगी, जहाँ अन्य पुरावस्तुएँ मिलती हैं, किसी पुरावस्तु की दुकान में। जब अलेक्सेइ को यह धुन सवार हुई और उसका सारा ध्यान इसी एक चीज़ पर केंद्रित हो गया तो पुरावस्तु की दुकान में पहली बार जाते ही उसे एक कोने में रखी अलग-अलग तरह की मूठोंवाली तीन छड़ियाँ दिखाई पड़ीं। उसे इस दुनिया में रहते कितने साल हो चुके थे और वह ऐसी दुकान में—जैसे कि वह कोई संग्रहालय हो—कितनी ही बार जा चुका था, परन्तु पहले कभी भी उसकी नज़र छड़ियों पर आकर नहीं टिकी थी। लेकिन अब यह एकदम विचित्र लगा कि ऐसी दुकान में जाकर भी कोने में रखी पुरानी छड़ियों को उसने अनदेखा कैसे कर दिया था।

सबसे पहले जिस छड़ी पर उसकी नज़र पड़ी, वह साधारण और आरामदायक छड़ी थी। उसका हड्डी का हत्था एक सहज सुंदरता के साथ समकोण पर झुका हुआ था। कुछ देर वह इस छड़ी को लेकर चला कि तभी उसकी नज़र दूसरी छड़ी पर गई, जो भारी और प्रभावशाली भी थी। उसकी मूठ बड़ी और गोलाकार थी जिसकी सतह पर सात कछुए उकेरे हुए थे। बाद में उसने गिनकर भी देख लिया था कि कछुए सात ही थे। शुरू में ऐसा लग रहा था, जैसे कि मूठ के गोले में एक दूसरे के साथ चिपके हुए अनेकों कछुओं के मेल से कोई सुंदर आकृति उकेरी गई हो। उनकी संख्या अधिक न होते हुए भी उन्हें गिनना आसान नहीं था। और तो और उनकी गिनती करने के लिए गिने हुए कछुओं को हाथ से छिपाकर फिर आगे गिनना पड़ता था। ऐसा किये बिना सबके सब कछुए उलझ जाते थे और जैसे-जैसे गोले को घुमाते जाते एक कछुआ दूसरे कछुए में विलीन होता जाता था। इसीलिए तो ऐसा लगता था कि जैसे बहुत सारे कछुए हों। सामान बेचनेवाली ने अलेक्सेइ को विश्वास दिलाया कि यह प्राचीन जापानी कलाकृति है।

सबसे अधिक अलेक्सेइ को हाथी दाँत की मूठवाली छड़ी पसंद आयी जिसकी आकृति बाज के पाँव जैसी थी और जिसने अपने पंजे में हड्डी का चिकना गोला पकड़ रखा था। सच बात तो यह है कि उसका एक पंजा ग़ायब था। कभी पहले छड़ी के गिरने से वह टूट गया था। परन्तु उस जगह को बड़ी सफ़ाई से घिस कर सपाट कर दिया गया था। उस जगह से छड़ी को पकड़ने पर हथेली को कोई कष्ट नहीं होता था और मूठ की सामान्य शक्ल भी उससे बिगड़ी नहीं थी।

इस छड़ी को लेकर वह एक बार लेनिनग्राद आया था। वहाँ उसे एक एकाकी युवा और सुंदर कवयित्री का निमंत्रण मिला। उसके घर में कवि,

कलाकार, पत्रकार और चित्रकार एकत्र होनेवाले थे। कुल मिलाकर कोई पंद्रह लोग आये थे और सबके सब पुरुष थे। इसलिए कवयित्री सबके बीच में अकेली ही शोभायमान हो रही थी। उसका और कोई प्रतिद्वंद्वी वहाँ नहीं था। वैसे भी, उसके आकर्षण के रहते अन्य कोई साधारण युवती उसकी शोभा और चमक में बाधक नहीं बन सकती थी।

मेज़ पर आतिथ्य का काम ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना ने स्वयं अपने हाथ में ले रखा था। वहाँ किसी प्रकार के संचालक की आवश्यक नहीं पड़ी। उसने सभी को किसी-न-किसी प्रकार से सक्रिय कर रखा था—किसी से कविताएँ पढ़वाईं, किसी से गिटार के साथ गाना गवाया, किसी से जाम के साथ भाषण कहलवाया। इस सबके बीच बोतलें ख़ाली होती जा रही थीं, सभी को—जिनमें मालकिन भी शामिल थी—कुछ-कुछ खुमारी चढ़ रही थी। वैसे ऐसी सम्भावना भी थी कि वह स्वयं शायद खुमारी का नाटक कर रही हो, और वास्तव में वह बड़ी सावधानी के साथ और सम्भलकर पी रही थी—इतने पुरुषों के बीच में वह अकेली युवती थी, जिसकी ओर पंद्रह जोड़ी आँखें चाहे-अनचाहे खिंची चली आ रही थीं। परन्तु कोई कितनी भी सावधानी क्यों न बरते, चाहे कोई जाम से केवल ऊपरी घूँट लेकर ही क्यों न पीए, शाम तक काफ़ी हो जाती है और ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना को भी हल्की-हल्की खुमारी चढ़ ही गयी थी। चेहरे में असामान्य लाली और आँखों में भी वैसी असामान्य उत्तेजक चमक आ गयी थी, शब्द अपने आप ही रोचक और अर्थपूर्ण वाक्यों-वाक्यांशों में ढल कर निकल रहे थे। ऐसे में जीवन कितना सुंदर लगने लगा था।

अलेक्सेइ की ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना के साथ यह पहली मुलाक़ात नहीं थी। पहली बार वह उससे कोई साल भर पहले मिला था—किसी काव्य-संध्या के बाद दोनों कहीं एक साथ भोजन की मेज़ पर बैठे हुए थे। किसी ने उसे काव्य-संध्या पर (और फिर भोजन के लिए भी) भी बुला लिया था, और इस प्रकार वे दोनों आमने-सामने हो गये थे। उन्होंने परस्पर जाम भी मिलाए थे, बातें भी की थीं, कविताएँ भी पढ़ी थीं और इस प्रकार उनके बीच, अपने आप ही, एक सूत्र बँध गया था। उनकी आपस में मिली दृष्टि एक दूसरे पर स्पष्ट रूप से टिकी रह गयी थी और अपने पीछे कोई छोटा-सा मधुर रहस्य छोड़ गयी थी।

यदि अलेक्सेइ के एक परिचित के शब्दों में कहा जाए तो इस 'दृष्टि-भ्रम' का शिकार हुए लोगों की संख्या हमारी कल्पना से कहीं बहुत अधिक है। जब भी कोई दावत या प्रीति-भोज चल रहा होता है, तब चाहे कितने पर भी परस्पर-निष्ठ युगल क्यों न एकत्र हुए हों, फिर भी इन दावतों के दौरान परोसे जानेवाले

मायोनेज़ डले स्वादिष्ट सलादों, नमक वाले टमाटरों और भेड़ की भुनी हुई टाँग के साथ-साथ छोटे-मोटे 'दृश्य रोमांस' भी घटित हो ही जाते हैं, जो सामान्यतः वहीं दावत की मेज़ों तक ही रह जाते हैं, बिना किसी को हानि पहुँचाए। पर फिर भी उस दावत की एक मधुर स्मृति, एक ज्योति, धुँधली और बेजान रेत में उठती चमक जैसी कुछ दिन तक मिटाए नहीं मिटती है।

दूसरी बार ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना के साथ उसकी मुलाकात अचानक ही नेव्स्की पथ पर हो गयी थी और तब वह उसे लेखकों के 'पुस्तक घर' से गेर्त्सेन मार्ग तक छोड़ने गया था।

वह ऐसा तो नहीं कह सकता था कि उनके बीच पैदा हुआ 'पारस्परिक आकर्षण का क्षेत्र' इस सैर के दौरान अधिक तीव्र हो गया हो। उल्टे, ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना उसकी ओर ऐसे शान्त और भावहीन नेत्रों से देख रही थी, जिनमें कभी-कभी ही, सिर्फ़ एक क्षण को ही, सूर्य का प्रतिबिम्ब झलक जाता था, मानों कि कैमरे का पर्दा एक सेकेंड के सौवें या दो सौवें क्षण के लिए खुलकर बंद हो गया हो। परन्तु कैमरे का पर्दा तो बाहरी रोशनी को अंदर लाने के लिए खुलता है, जबकि यहाँ तो ऐसा हुआ कि नेत्रों की शान्ति ही इस तरह भंग हो गयी कि अलेक्सेइ के अंदर-ही-अंदर तीव्र आग पैदा हो गयी।

जो भी हो, ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना जाते-जाते अपना टेलीफ़ोन नंबर बता गयी और यह भी कह गयी कि अगर फिर कभी उसे लेनिनग्राद आने का अवसर मिले तो वह उसे फ़ोन कर सकता है।

जैसा कि हम देख रहे हैं, अभी तक तो विशेष कुछ भी घटित नहीं हुआ है, कुछ भी ऐसा नहीं हुआ है। परन्तु दिनों और हफ़्तों के बीतते न बीतते, अपने काम और लोगों के साथ बातचीत में, यात्राओं में और पढ़ी हुई किताबों के बीच में अलेक्सेइ के मन में हमेशा यह भावना जीवित रहती थी कि फिर से कभी टेलीफ़ोन करने और मिलने का अवसर मिलेगा।

पर हुआ यह कि पहले ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना ने ही टेलीफ़ोन किया—वह किसी काम से एक दिन के लिए मास्को आयी हुई थी। उसने अलेक्सेइ से कहा कि वह उसे कोलोमेन्स्कोये ले जाए। कोलोमेन्स्कोये देखने के बाद उन्होंने होटल के रेस्तराँ में भोजन किया और जब वह पाँच मिनट के वास्ते उसके कमरे में गया तो मौन अभिव्यक्ति का दृश्य आ उपस्थित हुआ। लेनिनग्राद की ट्रेन 'स्त्रेला' को छूटने में अभी पाँच घंटे बचे थे। उसने बिना किसी कारण के, बस यूँ ही अचानक, जो कहा उससे दोनों हँस पड़े, "नहीं। लेनिनग्राद आना। अभी मुझे कुछ और काम भी करने हैं।...वैसे मुझे एक साथ बहुत-से काम करना पसंद नहीं है।"

कोई पाँच महीने बाद अलेक्सेइ को लेनिनग्राद जाने का अवसर मिला और तब उसे ल्युबोव व्लादिमीरोव्ना के घर जाने की अनुमति प्राप्त हो गयी। वह झटपट 'येलिस्येयेव' की दुकान से उपहारों के पैकेट लेकर उसके घर को चल पड़ा। पर दिन भर में (उसने टेलीफ़ोन सवेरे किया था) बहुत कुछ बदल गया था। कवयित्री को कहीं से निमंत्रण आ गया था, जिसे वह अस्वीकार नहीं कर सकती थी। हाँ, उसने अलेक्सेइ को भी साथ चलने का प्रस्ताव रखा, इसलिए भी कि वहाँ 'कई तो दोनों के परिचित होंगे'। वे दोनों एक साथ वहाँ गये और एक इसी बात से उनमें घनिष्टता और निकटता आ गयी। अलेक्सेइ इस बात से अच्छा तथा कुछ-कुछ गर्वित भी महसूस कर रहा था कि वे दोनों एक साथ आये जैसे कि कोई प्रेमी-युगल हो या घनिष्ट मित्र अथवा निकट के लोग हों। जब दावत समाप्त होने को थी, तब पहुँचे एक कवि ने तो क्रोध में भरकर उस पर आक्रमण जैसा करते हुए (उसे, निश्चय ही, ईर्ष्या हो रही होगी) झगड़ालू स्वर में कहा, "तुम सोचते होगे कि हमें जैसे मालूम ही नहीं है कि तुम कितनी बार ल्युबोव के पास यहाँ लेनिनग्राद आ चुके हो?"

"पहली बात तो यह है कि मैं किसी ल्युबोव-व्युबोव को नहीं जानता हूँ। जहाँ तक ल्युबोव व्लादिमीरोव्ना की बात है तो मुझे उनके पास आकर ख़ुशी ही होती है। हाँ, यह ज़रूर है कि अभी तक मैं लेनिनग्राद हमेशा किसी काम से ही आया हूँ।" अलेक्सेइ ने कहा।

ल्युबोव व्लादिमीरोव्ना यह गर्मा-गर्मी सुन रही थी, उसका मूड़ बिगड़ चुका था और अलेक्सेइ भी (उसकी भावहीनता को देखकर) समझ गया कि आज का निमंत्रण रद्द हो गया है। रात के बारह कब के बच चुके थे। सब थक गये थे और अपने-अपने घरों को जा चुके थे।

इस प्रकार अलेक्सेइ ऐसी धारणा लिए हुए था कि ल्युबोव व्लादिमीरोव्ना को फ़ोन करके उसके पास जाया जा सकता है और कभी तो ऐसा सम्भव हो ही जाएगा। परन्तु लेनिनग्राद रोज़-रोज़ तो कोई जाता नहीं है। और फिर सब कुछ छोड़कर तूफ़ानी रफ़्तार से उसके पास, केवल उसके पास जाना...। सच कहा जाए तो अलेक्सेइ कभी ऐसी स्थिति को नहीं पहुँचा था।

पर एक दिन अलेक्सेइ को उसकी याद सताने लगी। पता नहीं कैसा झटका लगा कि सारा ध्यान उधर ही चला गया। जैसे दूर से ही कोई आभास हो गया हो। उसके अतिरिक्त और क्या आभास हो सकता था कि उधर से भी मिलने की इच्छा पैदा हुई हो। एकदम अचानक, बिना टिकट के, अलेक्सेइ तेज़ी से रेलवे स्टेशन जा पहुँचा और ट्रेन छूटने से आधा घंटा पहले उसे कंपार्टमेंट में

जगह भी मिल गयी। जब उसकी नींद खुली तो खिड़की के बाहर दिखाई पड़े—नवम्बर महीने की सुबह के अँधियारे में उभरते हुए लेनिनग्राद के धुँधले मकान।

"मेरी कैसी तीव्र इच्छा थी कि तुम यहाँ आओ।" ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना ने टेलीफ़ोन में कहा। "मेरी बहुत इच्छा थी। और तुम आ ही गये हो। कैसा अच्छा संयोग हुआ है। घर पर आज ही आए। मेरे यहाँ और भी लोग आनेवाले हैं। उनसे मिलकर आपको अच्छा लगेगा। आप एक ही दिन के लिए तो नहीं आये हो ना? सोमवार तक आप मेरी क़ैद में रहेंगे। तीन दिन के वास्ते। मना मत कीजिएगा।" अलेक्सेइ को उसके स्वर में घबराहट-सी प्रतीत हुई।

इस प्रकार वह ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना के आतिथ्य में आ पहुँचा। जब पहली बार अलेक्सेइ का परिचय कराया गया था, तब उसके पास छड़ी नहीं थी। बाद में वह छड़ी रखने लगा था। इस बार उसने अपनी पसंद की छड़ी ले रखी थी—उसकी मूठ में बाज़ का पाँव बना हुआ था और बाज़ ने अपने पंजे में हड्डी का गोला पकड़ रखा था। जब गृह-स्वामिनी शोर भरे भोजन-कक्ष से निकलकर उसके स्वागत के लिए छोटे-से प्रवेश-कक्ष में आयी, जहाँ कई सारे बरसाती कोट लटक रहे थे, तब उसका ध्यान छड़ी की ओर नहीं गया और अलेक्सेइ ने अपनी छड़ी चुपचाप एक कोने में रख दी।

तेज़ रोशनियों वाले कमरे में जिसमें मेज़ लगी हुई थी लगातार शोर हो रहा था क्योंकि बहुत-से लोग एक साथ बोले जा रहे थे और साथ ही चाकुओं और फ़ोर्कों की खनखनाहट भी हो रही थी। बाहर की नम हवा, नवंबर में चलने वाली हवा की विशेष चुभन तथा बारिश और बर्फ़ीली बजरी के मेल से होनेवाली घृणास्पद सर्दी के बाद (टैक्सी-स्टैंड में क़रीब चालीस मिनट खड़े-खड़े वह मारे सर्दी के अकड़ गया था) तो अलेक्सेइ को वहाँ का गरम कमरा, मेज़ पर सजा हुआ भोजन और कन्याक का चषक ऐसे स्वर्गतुल्य प्रतीत हुए कि इस घृणास्पद सर्दी में बाहर निकलने का मन ही नहीं हुआ।

तभी उसे याद आया कि शायद बाहर निकलना ही न पड़े (सोमवार तक क़ैद रखने की बात कही थी ना!)। ऐसा याद आने पर उसने ऐसा सोचा कि तब यहाँ और भी अच्छा लगेगा, जब सब लोग जा चुके होंगे, मेज़ साफ़ की जा चुकी होगी, शोरगुल बंद हो चुका होगा, ऊपर की बत्ती भी बुझ चुकी होगी—तब चाहे नेवा नदी के ऊपर रात की हवा चले, चाहे नदी के तटों पर नेवा की मोटी-मोटी लहरें आकर टकराएँ, जिसके काले जल में ठिठुरते हुए लैम्प-पोस्टों के प्रतिबिंब पड़ रहे हों।

अलेक्सेइ के हाथ में एक बड़ा चपक आ गया था, जो उसने काँपते-काँपते बड़े मज़े में पी डाला।

मेज़ पर आतिथ्य तो स्वयं ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना ही निभा रही थी, किसी से वह कविता पढ़वा रही थी, किसी से गिटार की धुन पर गवा रही थी और किसी से जाम के साथ दो शब्द कहलवा रही थी। अलेक्सेइ ने भी काव्य-पाठ किया—ऊँचे गूँजते हुए स्वर में वह पूरे जोश के साथ काव्य-पाठ कर रहा था, किसी भी तरह के कोई अतिरिक्त प्रयास के बिना, कविता की प्रबलता का अनुभव करते हुए बड़े सहज और मुक्त भाव से उसने वाचन किया और उसका प्रभाव भी अच्छा पड़ा।

आपसी सहमति को ध्यान में रखते हुए ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना ने जैसे कि जान-बूझ कर उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह अन्य लोगों की ओर देखने का प्रयास कर रही थी, उन्हीं को देखकर मुस्कुरा रही थी और उन्हीं के साथ हँसी-मज़ाक़ भी कर रही थी। परन्तु अलेक्सेइ की ओर जानेवाली उसकी क्षणिक दृष्टि इतना अवश्य बता देती थी कि 'तुम्हें मालूम ही है कि ये सब लोग थोड़ी देर में चले ही जाएँगे। नवंबर की ठंड में इन लोगों को बाहर निकलना ही है, तुम्हें नहीं।'

सचमुच, थोड़ी ही देर बाद सब-के-सब, जैसे एक साथ ही, उठ खड़े होकर चलने की तैयारी करने लगे।

''इन्हें छोड़कर आते हैं।'' ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना ने धीरे से अलेक्सेइ से कहा। इस बीच वह और भी चमकने लगी थी और असाधारण सुंदर लग रही थी। मन-ही-मन सोचा—'हे भगवान्! क्या सब ऐसे ही होगा? और इतनी जल्दी... ।'

सब लोग शोर मचाती भीड़ की तरह ख़ाली सड़कों से होकर नेवा नदी पर बने अख़्तीन्स्की पुल को पार करके दूसरी तरफ़ आ गये, क्योंकि उस तरफ़ से ट्रॉलीबस में बैठना आसान होता है। इतनी रात में टैक्सी के बारे में तो सोचा ही नहीं जा सकता था।

अलेक्सेइ को किसी ने भी यह सोचकर विदाई के शब्द नहीं कहे कि वह भी ट्रॉलीबस में तो बैठेगा ही। जब ट्रॉलीबस के दरवाज़े बंद हो गये और वह चल पड़ी तब तो समझने का वक़्त ही नहीं रह गया था—यह कैसे हुआ कि वह अकेला ही ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना के साथ रह गया था? परन्तु यह बात भी तो थी कि किसी-न-किसी को उसे वापस भी तो पहुँचाना ज़रूरी था—चौड़े विस्तारवाली नेवा नदी पर चलती इतनी तेज़ हवाओं के बीच रात के एक बजे वह अकेली, भला, कैसे जा सकती थी!

उसने अलेक्सेइ का बायाँ हाथ पकड़ लिया। दायें हाथ में अलेक्सेइ अपनी पुरानी छड़ी घुमा रहा था, जो वास्तव में पुरावस्तु की श्रेणी में आती थी। यह वही छड़ी थी, जिसकी सुंदर नक़्क़ाशीवाली हड्डी की मूठ बाज के पाँव की शक्ल की थी और जिसने अपने पंजे में हड्डी का गोला कसकर पकड़ा हुआ था। वह अपनी छड़ी को घुमाते हुए वैसे ही इतरा-इतरा कर चल रहा था, जैसे कि हज़ारों पुरुष शताब्दियों से इतराते चले आ रहे हैं—नोक की तरफ़ से उसे ऊपर को उछालकर नीचे को छोड़ना और जब वह गिरने से एक क़दम दूर होती तो उसे फिर से ऊपर को उछालना।

वे इसी तरह गर्म होने तक चलते रहते, यदि वह दुष्ट हवा न चल रही होती। ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना ने उसका हाथ दूसरी तरफ़ से पकड़ने का निश्चय किया जिससे कि हवा से थोड़ा बच सके ओर तब अलेक्सेइ को छड़ी बायें हाथ में लेनी पड़ी। उसने ऐसा ही किया और अब सिर्फ़ ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना को ही उसकी छड़ी दिखाई दे रही थी।

"तुम्हारे हाथ में यह क्या है? तुम लँगड़ा क्यों रहे हो?"

"ऐसी बात नहीं है। बस, छड़ी ही तो है।"

"दिखावे के लिए है क्या?"

"आदमियों के हाथ में अच्छी दिखाई देती है। सैकड़ों सालों से लोग छड़ी लेकर चलते आये हैं...।"

"महँगी होगी शायद?"

"ऐसी बात नहीं है।...वैसे सस्ती भी नहीं है। लकड़ी आबनूस की है, हाथी दाँत लगा हुआ है, नक़्क़ाशी भी है इसमें...।"

"इसे नेवा नदी में फेंक दो।"

दो क़दम चलने के बाद ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना रुक गयी क्योंकि उसने देखा कि अलेक्सेइ ने उसके आदेश को अनसुना कर दिया है और फिर वही बात स्पष्ट शब्दों में ज़ोर से बोलकर कही, "इसे नेवा नदी में फेंक दो।"

"यह कैसा पागलपन है! सच...!'

"जब तक तुम इसे नदी में नहीं फेंक डालोगे तक तब हम इस जगह से एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ेंगे। बल्कि सच कहूँ तो हमारी दिशा अलग-अलग हो जाएगी—मैं घर को चली जाऊँगी और तुम ट्रॉलीबस में चले जाना।

"नख़रे मत दिखाओ, ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना।"

"नख़रे ही सही। औरत को नख़रे दिखाने का हक़ है। क्या अपने इन तीन दिनों के लिए तुम ज़रा-से नख़रे नहीं सह सकते हो? आख़िर मैं यह तो नहीं कह रही हूँ कि तुम स्वयं नेवा में कूद पड़ो।"

सचमुच, वे पुल के बीच में रुक गय और अलेक्सेइ समझ गया कि उसे फ़ैसला करने के लिए बस कुछ क्षण ही दिये गये हैं। वे क्षण भी गुज़र गये और उसने फिर से चलने का प्रयास किया। पर ऐसा सम्भव नहीं हुआ।

''नहीं, यदि मेरी बात नहीं मानी तो हमारी दिशाएँ अलग-अलग हो जाएँगी। हे भगवान्, कहाँ है वह निःस्वार्थता, कहाँ चला गया वह शौर्य, कहाँ गयी हृदय की विशालता, कहाँ है वह उदारशीलता? कहाँ है वह जवानी जो उफनते हुए समुद्र में सिर्फ़ एक गेंद के लिए कूद पड़ती थी? कहाँ गये वे पुरुष, जो केवल एक चुंबन पाने की ख़ातिर, चुंबन भी क्या, अपने दिल की रानी की केवल एक प्यारी दृष्टि पाने के लिए ही शौर्य-परीक्षाओं में अपने-अपने बल्लमों को आगे करके अपने जीवन को ख़तरे में डालकर बढ़ते चले जाते थे...?''

ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना अब आदेशात्मक स्वर में नहीं, बल्कि मनाते हुए और विनती करते हुए कह रही थी। स्पष्टतः, एक छोटी-सी बात को लेकर भविष्य को बिगाड़ना उसे भी अच्छा नहीं लग रहा था, परन्तु स्वभाववश अपनी बात से वह पीछे भी नहीं हट सकती थी। ल्युबोव व्लदिमीरोव्ना ने चाहे कैसे भी शब्दों का प्रयोग किया हो, अलेक्सेइ को उनके पीछे का भाव कुछ इस प्रकार सुनाई दे रहा था—'अपनी बात पर मत अड़ो। इसमें तुम्हारा क्या जाता है? देखो, मैं तो ऐसी ही हूँ। बेवकूफ़ी में जो कह दिया, उसे बदल नहीं सकती हूँ। मेरा स्वभाव ही ऐसा है। तुम तो पुरुष हो और किसी महिला के सामने झुकने में पुरुष के लिए कोई अपमान या शर्म की बात नहीं होती है। अब मान भी जाओ...।''

परन्तु उसने जो शब्द कहे वे वास्तव में बिलकुल दूसरे ही थे, ''हे भगवान्! बात कहाँ तक जा पहुँची है? किसी महिला के कहने पर भी एक मामूली-सी छड़ी को आदमी नदी में फेंकते घबरा रहा है, जबकि यह किसी जायदाद, मकान, सन्तान या ज़िंदगी से बिछड़ना नहीं है।''

अलेक्सेइ भी अपनी अबूझ ज़िद पर अड़ गया। पर ऐसा भी हो सकता है कि उसकी ज़िद वास्तव में प्रमुख कारण न रही हो। प्रमुख कारण वास्तव में यही था कि उसे अपनी इस प्यारी छड़ी को फेंकते नहीं बनता था, चाहे इसे पिछड़ापन कहो, चाहे भद्दापन। बात यह नहीं थी कि उसने छड़ी पर रुपये ख़र्च किए थे (यदि काग़ज़ के नोट फेंकने पड़ते तो उसे दुःख नहीं होता), बात तो यह थी कि वह छड़ी एक सुंदर और दुर्लभ वस्तु थी, उसमें पुराना काम किया हुआ था, शायद कहीं और वैसी छड़ी ना मिले। वैसे भी दुःख तो होता ही, अपनी-अपनी

सनक है।...ठीक है, उसका अपना स्वभाव है यह। एक सिरफिरी महिला व्यर्थ के त्याग की माँग कर रही है और वह उसके सामने भला घुटने टेक देगा...!

"जल्दी फ़ैसला करो। यहाँ खुले में ठंडी हवा के बीच में खड़ा नहीं रहा जा रहा है। हाँ कि ना? मेरे साथ चलोगे कि वापस लौटोगे?"

"कम-से-कम तुम्हें छोड़ने तो आ ही सकता हूँ।...इतनी रात में तुम्हें अकेली कैसे छोड़ दूँ? चलूँ तुम्हें छोड़ने?"

"नहीं, कोई ज़रूरत नहीं। जल्दी बताओ—मेरी बात मान रहे हो कि नहीं?"

अलेक्सेइ तेज़ी से मुड़ा और उसने अपने क़दम उलटी दिशा में, ट्रॉलीबस के स्टॉप की दिशा में बढ़ा दिये।

दंड भी तुरंत ही मिल गया। कुछ देर तक ट्रॉलीबस के स्टॉप पर अन्यमनस्क खड़ा रहने के बाद अलेक्सेइ तेज़ी से पूरे पुल को पार करता हुआ ल्युबोव व्लादिमीरोव्ना के पीछे दौड़ पड़ा। वह वहाँ कहीं थी ही नहीं। उसके घर जाने की उसे हिम्मत नहीं हुई। जब तक वह टैक्सी पकड़ने की सोचता कि पुल को बीच से उठा दिया गया। टैक्सी-ड्राइवर उसे लंबे रास्ते से यह सोच कर घुमाता हुआ ले गया कि मुख्य पुल अभी नहीं उठाए गये होंगे। परन्तु वे भी उठाए जा चुके थे। तब उसने टैक्सी-ड्राइवर का किराया चुकाया और ड्राइवर ने इंजन बंद कर दिया। उन्होंने सवेरे पुलों के जोड़ दिये जाने तक टैक्सी में ही इन्तज़ार करने का फ़ैसला किया, तब तक जब तक कि अलेक्सेइ अपने होटल नहीं पहुँच जाता। तो उसके भाग्य में ऐसी रात आ पड़ी थी, जबकि होना कुछ और ही था।

वह छड़ी उसके हाथों में ही थी। महिला के नखरों से पैदा हुई कड़वाहट अभी ताज़ा ही थी, बल्कि वह अब क्रोध में बदल चुकी थी। इस समय उसे इस बात का ख़ेद नहीं था कि इस वक़्त वह ल्युबोव व्लादिमीरोव्ना के वहाँ नहीं है, उसे तो इस बात का खेद था कि इस वक़्त वह अपने होटल में नहीं है।

वह अपने आप से कहे जा रहा था—हर चीज़ की हद होती है। इतनी पुरानी, क़ीमती पुरावस्तु को उठा कर नेवा में फेंक दूँ! कोई वफ़ादार नौकर ही करेगा ऐसा। बड़ी दुष्ट निकली। भाड़ में जाए। जल्दी से पुलों को जोड़ देते तो कितना अच्छा होता। अपने होटल में जाकर अपने गरम, सूखे बिस्तर में जी भरकर सोना चाहता हूँ और कल हवाई जहाज़ से सीधे मास्को चला जाऊँगा। अब न कोई घंटी बजेगी, न कोई मुलाक़ात होगी। आख़िर मेरे भी तो उसूल हैं...।

कुछ साल बीत गये। एक दिन सोफ़े पर काम करते समय, सोफ़े के नीचे रखी किताबों के ढेर के बीच में अचानक किसी किताब की ज़रूरत आ पड़ने पर उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अलेक्सेइ को एक ऐसी वस्तु मिली जिसके अस्तित्व तक के बारे में उसे याद नहीं रह गया था, कम-से-कम पिछले तीन-चार साल से तो बिलकुल भी नहीं—वह वस्तु थी हाथी-दाँत की मूठवाली आबनूस की वही सुंदर छड़ी।

छड़ी लेकर चलना उसने कब से छोड़ दिया था। एक छड़ी तो अचानक हाथ से छूटकर टूट ही गयी थी, दूसरी चोरी चली गयी थी और तीसरी वह ट्रेन में भूल आया था। पर छड़ी लेकर चलना उसने इसलिए बंद नहीं किया था कि सबसे बढ़िया छड़ियाँ उसके पास नहीं रही थीं, बल्कि बात यह थी कि जैसे अपने आप ही उनका समय बीत गया था और इच्छा भी नहीं रही थी। वैसे देखा जाए तो यदि छड़ी लेकर चलना हो तो उसके साथ बहुत से अन्य बंधन भी स्वीकार करने पड़ते हैं—वेशभूषा का बंधन, जूतों का बंधन, हाव-भाव का बंधन, चाल का बंधन, सज-धज कर रहने का बंधन, व्यवहार का बंधन, और अगर कहें तो सामान्य रूप से गठन का भी बंधन स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु अलेक्सेइ का जीवन तो कुछ-कुछ डगमगा रहा था। छड़ी के लिए फ़ुर्सत ही कहाँ थी! उसे इतना भी याद नहीं रहा था कि उसके पुराने वाले संग्रह की एक छड़ी, जो उसे सबसे अधिक पसंद थी, अभी भी बची हुई है।

वह छड़ी उसे अब मिली—विस्मृत और धूलि-धूसरित। कैसी व्यर्थ की और अनावश्यक वस्तु है! काश कि इस छड़ी के बदले में..., यदि सौ छड़ियाँ बदलकर, दुनिया की सारी-की-सारी छड़ियाँ बदलकर, इन बेजान और बेकार चीज़ों के बदले में...। लेकिन किसको मालूम है कि जब वे पुल पर खड़े हुए थे, उस समय पुल के और उन दोनों के नीचे से बहकर जाता हुआ वह पानी अब कहाँ होगा? उस समय तो वे दोनों ही अपनी-अपनी मूर्खतावश अलग-अलग दिशाओं में चल पड़े थे।



मकान बिकाऊ है

बोरीस येकीमोव

शरद ऋतु की गरमाहट के बीच जर्जर गृहस्थी में थोड़ा ही काम बाक़ी रह गया था। आलू निकाला जा चुका था और बग़ीचे साफ़ पड़े थे। सवेरे के समय बूढ़ी मान्या घर के रास्ते की सफ़ाई करती थी—लाल चेरी के पत्तों, नाशपाती और खुबानी के आख़िरी पत्तों को झाड़ती-बुहारती थी। इसके बाद बूढ़ी मान्या चाय पीने को बैठती थी और फिर गरमी के चूल्हे यानी धूप में शान्ति से बैठ कर रोयेंदार स्कार्फ़ बुनती थी।

सूरज धीमी गति से उठ रहा था। शान्तिपूर्वक दिन निकल रहा था। कभी-कभार किसी गाड़ी का शोर आ जाता था और दुकान की तरफ़ से अस्पष्ट बातचीत सुनाई पड़ती थी—बस। केवल मुर्ग़े कुड़कुड़ा रहे थे और गौरैयाँ चहचहा रही थीं।

अभी कल तक तो यहाँ के दालानों में बच्चों का शोर मचा रहता था, सवेरे मुँह अँधेरे से लेकर रात अँधेरा होने तक लोगों की आवाज़ें गूँजती रहती थीं। कभी हँसी-मज़ाक़, तो कभी गाली-गलौज़। अब सब बीत चुका है। जवान लोग बड़े होकर चले गए। बस्ती के दूसरे छोर पर, फ़ैक्ट्री के निकट, ईंट के मकान बड़े हो रहे थे, एक के बाद एक। वहीं जीवन है।...और यहाँ, इस शान्त छोर पर धरती के ऊपर उनींदा चँदोवा पड़ा हुआ है, जो सड़क तथा आसपास की जगह के ऊपर अनन्त चैन के साथ बन्द होने को तैयार है।

पहला ख़रीदार सप्ताह के अन्त में जाकर प्रकट हुआ। वह कार में आया था। चुपचाप अहाते में दाखिल होकर बोला, "यहाँ बिक रहा है?"

"हे भगवान्!" बूढ़ी मान्या डर गई, बुनाई करते-करते उसकी आँख लग गई थी, "मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता, कान बहरे हो गए हैं।"

ख़रीदार जवान व्यक्ति था। सूट और टाई पहने था। उसके हाथ में कोई कागज़ था। उसने ज़ोर से पूछा, "बेचना तो है ना? विज्ञापन दिया था क्या?"

"हाँ, हाँ, बेचना है।" बूढ़ी मान्या ने बुनाई अलग रख दी और उफ़-आफ़ करती हुई तथा कमर को सीधी करती हुई उठ खड़ी हुई, "बेटा, बेचना ही पड़ रहा है। सारा जीवन यहीं काटा। अब बेचना पड़ रहा है। अपनी ज़िन्दगी पूरी कर ली है। बुड्ढ को दफ़ना दिया है, अब अकेली..."

"चलो चलें, देख लूँ।" ख़रीदार ने उसे बीच में टोक दिया, "मेरे पास समय नहीं है।"

वह मकान के भीतर मालकिन से पहले ही घुस गया। कमरे और रसोईघर को देखा। वह कुछ उलझन में था। पूछा, "बस? गुसलख़ाना कहाँ है? बाथरूम कहाँ है?"

"बाथरूम?" बूढ़ी मान्या तुरन्त समझी नहीं, "पाख़ाना? चलो, दिखाती हूँ। उधर, सेब के पेड़ के पीछे है।"

"बाथरूम सेब के पेड़ के पीछे है!" ख़रीदार ने हँसते हुए पूछा।

"कैसा बाथरूम? अरे भगवान!...क्या कह रहा है, बता?" बूढ़ी मान्या को गुस्सा आने लगा था, "क्या कह रहा है, मुझे नहीं समझ आ रहा।..."

"बाथरूम, जहाँ तुम नहाती-धोती हो।"

"अच्छा-आ, हमामघर..."

"हाँ, हमाम। वह भी सेब के पीछे है क्या?"

"हमाम नाशपाती के पेड़ के पीछे है, कोने में। चल, दिखा दूँ। सब कुछ दिखाऊँगी। मेरे बुड्ढे को जैसे अपनी मौत का पहले ही पता चल गया था, भला हो उसका। उसने चूल्हा भी हमाम में ही लगा दिया था। कारीगर था, सब खुद करता था। मुझ अकेली में तो ताक़त है नहीं।..."

ख़रीदार गहरी साँस लेकर बीच-बीच में रुकते हुए बोला, "किस बेवकूफ़ से तुमने यह विज्ञापन लिखवाया था? या ख़ुद लिखा? नहीं तो।" कागज़ को देखकर वह बोला, "लिखावट तो अच्छी है। किसने लिखकर दिया है?"

"पड़ोसी के पोते से लिखवाया था। क्या कुछ धोखा हो गया है?"

"तुमने एक बार देख तो लिया होता कि क्या लिखा है। लोगों को परेशान कर रही हो।—"मकान विकाऊ है—सारी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।..." उसने पढ़ कर सुनाया, "कौन-सी सुविधाएँ हैं तुम्हारे यहाँ? सेब के पेड़ के नीचे..."उसने मज़ाक बनाते हुए कहा। "सुविधाओं का मतलब होता है, लैट्रिन-बाथरूम घर के अन्दर। समझ में आया, दादी अम्मा?"

"समझ गई। कैसे नहीं समझूँगी।"

ख़रीदार ठण्डा पड़ गया। बाहर से मकान का निरीक्षण करने लगा। कुछ सोचते हुए आँखों से नाप ले रहा था। फिर पूछा, "कितना चाहिए?"

"दस माँगूगी लेकिन आठ पर भी आ सकती हूँ।"

"ये क्या बात हुई? दस या आठ?" वह आदमी समझ नहीं पाया।

"दो हज़ार कम कर दूँगी, लेकिन तब मैं यहीं रहूँगी।"

"यहीं रहोगी? किसलिए?"

"आखिरी दिन पूरे करने को दो या तीन हज़ार कम कर दूँगी। मैं यहीं..."

"तुम यहीं रहोगी!" उस आदमी ने बुढ़िया को बीच में टोक दिया और गुस्सा होकर बोला, "तुम अपना ये विज्ञापन उखाड़ लो और लोगों का सिर मत खाओ। सेब के नीचे की सुविधाएँ...और भी कुछ सोच लो।" वह आदेश देता हुआ बोला, "उखाड़ लो, वरना पुलिस में रिपोर्ट कर दूँगा।"

उसने ज़ोर से थूका, उस कागज़ को ज़मीन पर दे पटका और अहाते से बाहर हो गया। गाड़ी का दरवाज़ा बन्द हुआ और इंजन चालू हो गया। बूढ़ी मान्या को तभी होश आया। उसने ज़मीन से विज्ञापन की सूचना को उठा कर पढ़ा—"मकान बिकाऊ है—सारी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।..."

सब ठीक ही तो लिखा है, झूठ कुछ नहीं है। उसने पड़ोस के बच्चे को यही तो लिखने को कहा था। इस तरह की सूचनाएँ डाकघर के पास देखने में आती थीं और बाज़ार में थी।

पड़ोस वाले अहाते में बाल्टी खनकने की आवाज़ हुई। बूढ़ी मान्या कमर झुकाए लँगड़ाती हुई झट उधर चल दी। अपनी आवाज़ से अपने आगमन की सूचना दी, "लेक्सेव्ना, लेक्सेव्ना!"

वाड़ के पास दोनों मिलीं। पड़ोसन भी बूढ़ी मान्या वाली अवस्था में थी। बस क़द ज़रा कुछ कम था और शरीर कुछ अधिक भारी, साँस जल्दी-जल्दी लेती थी।

"एक ख़रीदार आया था। चला आया था। टाई पहने और गाड़ी में आया था। छैला!...थोबड़ा गाय जैसा और दुम तकली-सी।"

"पसन्द नहीं आया क्या?" पड़ोसन ने अनुमान लगाकर पूछा।

"आहा, ऐसा बनता था! मकान ख़रीदा नहीं और जाँच-परख पहले शुरू कर दी। कहने लगा कि सुविधाएँ नहीं हैं। जो झूठ बोलूँ तो पाप लगे। एकदम मूरख था, फूहड़।" बूढ़ी मान्या ने हाथ फैलाकर कहा, "मेरे मकान में सुविधाएँ कम हैं? सड़क पार दुकान है। बाज़ार भी दूर नहीं। क़ब्रिस्तान ये रहा। और क्या? क़ब्रों को भी देखना होता है! बोलो, लेक्सेव्ना, अब इससे अधिक सुविधाएँ और क्या हो सकती हैं? मकान क्या बुरा है?"

पड़ोसन ने उसे शान्त करते हुए कहा, "शिकायत किस बात की?...लोगों को तो जलन होती है।"

उन्होंने नज़र दौड़ाकर देखा। मकान खिलौने की तरह अलग खड़ा था, सलेट पत्थर की उसकी छत थी, चारों तरफ़ ईंटें लगी थीं। दिवंगत मकान मालिक ने सब कुछ अपने हाथों से सँवारा था, और तो और नक़्क़ाशीदार शटर तथा पाइप की बेलबूटेदार चिमनी भी।

बूढ़ी औरतों ने मकान को देखा। मकान मालिक को याद किया जिसकी मृत्यु साल भर पहले हुई थी। और फिर गहरी साँस छोड़ी।

"सुविधाएँ नहीं हैं उसके लिए।...जानवर कहीं का! पुलिस में रिपोर्ट करेगा। उसी को गर्दन पकड़कर ले जाना चाहिए, ताकि सूचनाओं को उखाड़ने की हिम्मत तो न हो।" काग़ज़ का टुकड़ा दिखाते हुए वह बोली, "न तूने टाँगा है और न तुझे उखाड़ने का अधिकार है। शैतान की सूरत लेकर आया था।"

"दुःखी मत होओ।" पड़ोसन ने उसे शान्त करते हुए कहा, "शुरू में तो ऐसा ही होता है।"

उसका कहना सच ही था। दूसरे ख़रीदार गम्भीर क़िस्म के निकले।

दोनों—पति-पत्नी—साथ आए थे। उम्र भी काफ़ी थी, बाल पक रहे थे। पर तंदुरुस्त थे। अहाते में ही नमस्कार किया, जैसा कि होना चाहिए।

"आप ठीक से तो हैं ना? सुना है कि आपका मकान बिकाऊ है।"

"बिकाऊ है।" बूढ़ी मान्या ने सावधान होकर उत्तर दिया।

"देख सकते हैं क्या?"

"हाँ-हाँ। जब बेच रही हूँ तो दिखाने में क्या है। कोई छिपानेवाली बात तो है नहीं।"

पहले ख़रीदार को वह अभी भूली नहीं थी और मन-ही-मन फ़ैसला किया कि हमाम का ज़िक्र करके भगा देगी और जहाँ-जहाँ भी सूचनाएँ लगाई गई हैं, उखाड़ डालेगी।

घर का चक्कर लगाया। अन्दर से भी वह अच्छा था—फ़र्श पॉलिशदार और छतें चमचमा रही थीं, दीवारों की पुताई भी चमक रही थी। बूढ़ी मान्या को टचाई और सफ़ाई बहुत पसन्द थी।

ख़रीदारों की आँखें तेज़ थीं। सफ़ेद कपड़े से ढँके टेलीफ़ोन को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। बूढ़ी मान्या ने समझाते हुए कहा, "दादा को दिया गया था। महायुद्ध के सैनिक के रूप में। मैं तो इसे छूती भी नहीं हूँ। डरती हूँ। बस, अगर कभी बेटा शहर से फ़ोन करता है तो बात कर लेती हूँ।"

फिर अहाते का चक्कर लगाया। पक्के रास्ते से होकर हमाम, सायबान

और लम्बे-चौड़े तहख़ाने में गए। सब देख-दाखकर गरमी के रसोईघर के निकट मेज़ के पास बैठ गए।

"जीते-जीते सारी ज़िन्दगी काट दी।" बूढ़ी मान्या कह रही थी, "बस, अब ताक़त नहीं है। बेटी यहीं कलाच में रहती है। हफ़्ते में एक बार आ जाती है। उड़कर आएगी, ज़रा बैठेगी और कहेगी—"ओफ़, माँ, फ़ुर्सत ही नहीं मिलती।...ओफ़, माँ"...—" दोनों हाथों से आलू-गाजर बटोरकर चलती बनेगी। धुन्ध की तरह—थी भी और नहीं भी। बेटा तो शहर में ही बैठा है।..."

ख़रीदारों ने सब सुना और लम्बी साँस छोड़ी।

"बुड्ढे के मरने के बाद मैं तो पागल जैसी हो गई हूँ। घर में अकेले नहीं बैठा जाता। गरमियों में चींटे की तरह बग़ीचे में लगी रहती हूँ, जैसे कोई काम कर रही हूँ। जाड़ों में तो...चार दीवारों में बन्द दिमाग़ ख़राब होने लगता है।..."

"हाँ, हाँ।..." ख़रीदार उसकी बात से सहमत थे, "बच्चों के पास ही जाना चाहिए। अब तो उन्हें ही देखभाल करनी चाहिए, पहले आपने की।"

"क्यों नहीं की? ज़रा याद करो कैसी हालत थी।...युद्ध के दिन थे।..."

बूढ़ी मान्या अतीत में चली गई, लेकिन ख़रीदार काम की बात करने लगे।

"क़ीमत के पीछे मैं नहीं भाग रही। मेरा मकान है तो दस हज़ार का। मगर इसमें से कोई दो हज़ार कम कर सकती हूँ। पर मरने तक यहीं, इसी घर में रहूँगी।"

"इसी घर में क्या मतलब?" ख़रीदारों को जैसे बात समझ में नहीं आई।

"ज़िन्दगी पूरी करनी है ना मुझे।..."

"आपके बच्चे जो हैं—लड़की है, बेटा है।..."

"उनकी छोड़ो, बच्चों का क्या करना। मैं तो ऐसा चाहती हूँ कि मकान बेच दूँ और यहीं एक कोने में पड़ी रहकर आख़िरी दिन काट लूँ। मैं अधिक नहीं खींचूँगी। साल भर, अधिक-से-अधिक दो साल। यहाँ बाहर की कोठरी में रहते हुए मैं किसी को बाधा नहीं पहुँचाऊँगी।"

कभी पहले जब मकान बना था, उसमें अलग से एक कमरा और बरामदा भी था। बाद में दिवंगत मकान मालिक ने बरामदे को बन्द कर दिया और पक्की छत डालकर उसे गरम करने का भी प्रबन्ध कर दिया—इस तरह एक और कमरा अलग से बन गया था।

बूढ़ी मान्या उठकर दिखाने लगी।

"मैं यहाँ रह लूँगी, अलग से। मेरा रास्ता भी यह वाला रहेगा। अपने लिए अलग रास्ता बना लेना, इस खिड़की को तोड़कर। और वो, वहाँ हम दरवाज़ा लगा लेंगे। चूल्हा मुझे नहीं चाहिए। हफ़्ते में एक बार तुम्हारे चूल्हे में पकाकर

रख लिया करूँगी—बस। जब मर जाऊँगी तो सब तुम्हारा हो जाएगा। कुल क़ीमत में से दो हज़ार कम कर दूँगी, तीन भी कर सकती हूँ। मान लो कि तुमने मुझे सात हज़ार दिए। तीन-तीन हज़ार मैं बच्चों में बाँट दूँगी। जी भर खा लेंगे। उन्हें चाहिए भी बहुत। एक हज़ार अपने दफ़नाने को रख लूँगी। बस इस तरह चलेगा।...चुपचाप यहीं रहूँगी पर ऐसा लगेगा, जैसे कि लोगों के बीच में हूँ, जिससे कि मुझे अच्छा लगे।..."

ख़रीदार सुन तो रहे थे मगर असमंजस में थे। मालकिन बूढ़ी थी। ऊँचे क़द की और हड़ीली। चाल तेज, बस कमर ज़रा झुकी हुई थी। आँखें सजीव रहती थीं। बोलती भी बहुत थी—जैसे दिमाग़ दुरुस्त हो। पर बोलती थी उलटा-सीधा।

"आपकी बेटी पास ही तो रहती है। आप उसके पास क्यों नहीं चली जातीं? आख़िरी दिन काटने को।" उन्होंने उसे तर्क के साथ समझाने की कोशिश की।

"बेटी को तो शैतान के सुपुर्द कर देना चाहिए। बस इतना देखती है कि माँ के पास से क्या बटोरकर ले जाए। उसके पास मैं कभी एक दिन को भी नहीं गई, लेकिन कोसती है कि रह नहीं सकूँगी। मैं उसके पास रहने भला क्यों जाऊँ? बुढ़ापे में भला उनके आदेशों पर चलूँ! मैं अपने ही यहाँ रहना चाहती हूँ आख़िर तक। दो या तीन हज़ार कम कर दूँगी और यहीं कोठरी में रह लूँगी।...तुम अपने वास्ते दरवाज़ा बनवा लेना। हाँ, एक बात और भी है कि मेरी पड़ोसन नहाने को इसी हमाम में आती है। मरने तक उसे आने देना। इसके बदले भी क़ीमत कुछ कम कर दूँगी। तहख़ाने में उसका आलू भी पड़ा रहने देना। उसका तहख़ाना तो किसी काम का नहीं है, जाड़ों में ठण्ड के मारे अकड़ जाता है। मेरे लिए तो बूढ़ा बना गया था। भला हो उसका।"

ख़रीदारों ने सब कुछ सुना, आँखें मिलाईं और साफ़-साफ़ कुछ कहे बिना चले गए।

शाम को बूढ़ी मान्या पड़ोसन से शिकायत कर रही थी, "कोई आए थे।...कुछ समझ नहीं आया, पता नहीं क्या बात थी।...बारीकी से पूछताछ की, देखा-दाखा और चल दिए। न हाँ की, न ना। लगते तो ठीक-ठाक ही थे। या मकान पसन्द नहीं आया होगा या क़ीमत। मैंने तो वैसे ही तीन हज़ार कम कर दिए थे।"

शाम होने लगी थी। सिर के ऊपर बादल छाए हुए थे। शरद ऋतु के पीले पड़ते हुए पत्तों से बाग़ों में पीला और केसरिया रंग छाया हुआ था। धरती में और ऊपर ऊँचे आसमान तले भी उजाला था। तहख़ाने और रसोई के पास

पिटूनिया के सफ़ेद फूलों के गुच्छे खिल रहे थे। उन्हें दखती हुई बुढ़िया मान्या बोली, "मामूली-सा फूल है, हमारे यहाँ का ही है। मुझे बहुत पसन्द है। पहले तो हम फूल नहीं लगाया करते थे। ये तो आजकल फ़ैशन चल पड़ा है—जहाँ देखो, गुलाब लगे हैं। पहले बस एक पिटूनिया और दूसरा ज़ोर्का अपने आप उग आते थे। बात तो ठीक ही है कि फूल के पीछे लगने की फ़ुर्सत ही कहाँ होती थी। अनाज की सोचते थे।"

पड़ोसन ने गहरी साँस लेकर सिर हिला दिया। बुढ़िया मान्या के विचार अतीत की ओर चले गए थे। वह कहने लगी, "हम शिकायतें करती रहती हैं, बस। पाप करने में लगी हैं। मगर रोटी खाती हैं फुलाई हुई। कितने अच्छे बन्द लेकर आई हूँ।...नरम-नरम और लाल-लाल। पहले कैसे लकड़ी जैसे होते थे।...पेट भूखा रहता था।...जाड़ा शुरू हो जाता था और पास में कुछ नहीं। तोम्का रोती थी कि भूख लगी है। कहाँ से लाती? राशन में कुछ और मिलने को बाक़ी नहीं होता था। लकड़ी लाने चल देते थे। स्लेज के साथ टोकरी भी ले जाते थे। टोकरी लगाई और दोन नदी पार करके चल दिए। कमर जितनी ऊँची बर्फ़ पड़ी रहती थी। झाड़ियों पर चढ़ कर टहनियाँ तोड़ते थे। मुझे याद है कि एक बार मैं तोम्का को झाड़ी के पास यह कहकर छोड़ती गई कि बेटी, तू ज़रा यहीं बैठी रह, मैं ज़रा डाल पर चढ़ती हूँ।—लौटने पर देखा कि वह वहाँ नहीं है। इधर-उधर दौड़ कर ढूँढ़ा। वह पूसी विलो की झाड़ी में गिर गई थी, वर्फ़ के बीच। और निकल नहीं पा रही थी।...हे भगवान!...स्लेज में लकड़ियाँ लादीं, ऊपर से तोम्का को बिठाया और खींचना शुरू किया। मैं लोगों को लकड़ी पहुँचाया करती थी। बदले में कोई चुकन्दर दे देता, कोई कद्दू। वही सब उबालकर ज़िन्दा रहती थी। बस, बेटी की चिन्ता थी कि कहीं भूखी न मर जाए। गरमियों में ठीक रहता था। पहले जंगली सब्ज़ी हो जाती थी और घास भी। फिर बालियाँ निकल आती थीं। फ़सल काटने को मैं सबसे पहले जाती थी। गरमियों में ठीक था, मगर जाड़ों में... ।"

शाम को ठण्डक होने लगी थी। ऊँचे आसमान में अभी तक सूर्यास्त की पीलिमा और हरियाली-सी छा रही थी और धरती पर अँधेरा होने लगा था। बूढ़ी औरतें बेंच पर बैठी हुई बीते दिनों को याद कर रही थीं।

"मुझे याद पड़ता है कि एक बार वसन्त के आसपास औरतें कह रही थीं कि सेमिकुर्गानि के पास सरसों अभी तक नहीं कटी है। उसे काटने की मनाही तो है नहीं। उधर जाना चाहिए। बसन्त शुरू हो चुका है, घाटियाँ खुल गई हैं, पानी बर्फ़ के लोंदों के साथ बह रहा है। मैंने कितने ही चक्कर लगा डाले थे, कमर तक भींग गई थी। सेमिकुर्गानि तो बहुत दूर था। पेस्कोवात्का

तक आधा रास्ता होता था। पहुँची तो देखा कि सब पत्थरों से पटा पड़ा है, इतनी दूर कि आँसू आ गए। चीख़ी-चिल्लाई। सोचा कि कुछ तो ले चलना चाहिए। सरसों ख़ूब काटी, थैला ऊपर तक भर दिया और वापस चल दी। अँधेरे में घर पहुँची। अभी हाथ-पाँव भी नहीं सेंके थे कि तोम्का चिल्लाई—"मुझे भूख लगी है।'...—हे भगवान्!...वह सब याद करके मन उदास हो जाता है। अब न जीया जाता है, न ख़ुशी होती है। बस, सब हो गया, जी ली।"

फाटक में आवाज़ हुई, किसी के क़दमों की हल्की आहट सुनाई दी। पड़ोस का पोता बैग लिये आया।

"दादी, मैं अभी कुछ खाऊँगा, फिर फ़िल्म देखूँगा।"

"जी भर के खा। मैं आराम करने जा रही हूँ।" बुढ़िया मान्या ने उठते हुए कहा।

बहुत देर तक बैठे रहने के कारण शुरू में क़दम बढ़ाने में उसे मुश्किल हो रही थी, आह-ऊह किए जा रही थी। बाद में जैसे थोड़ा आराम हुआ। पीछे, पड़ोसन की रसोई में, किसी बच्चे की पतली-सी आवाज़ गूँज रही थी।

"श्रम और चित्रकारी में मुझे सबसे अच्छा ग्रेड मिला है, रूसी की कापी में भी। पाठ कम ही पूछे। तुमने मेरे लिए आलू फेंटे हैं क्या?"

अहाते में, बग़ीचे के बीच खुली जगह में, खुबानी के दो बड़े पेड़ लगे हुए थे, पत्ते उनमें बहुत कम थे। झिटपुटे में उनके पीले पत्ते हल्के-हल्के चमक रहे थे। कोनों से अँधेरा बढ़ता आ रहा था। घरों में रोशनी होने लगी थी और सुनहरे तथा नींबू के रंग के पत्तोंवाले खुबानी के ये विशाल वृक्ष जैसे कि इस दिन को और जीवन को छोड़कर जाना नहीं चाह रहे थे।

बुढ़िया मान्या ने एक पत्ता तोड़ा। उसके काँपते हाथ की बड़ी गेहुँई हथेली पर पड़ा चमकता हुआ खुबानी का पत्ता ऐसा लग रहा था, जैसे सोने से गढ़ा गया हो और तब उसे मृत्यु का ख़याल आ गया। आसन्न मृत्यु का।

इस संसार में किसी बात का खेद नहीं था—न बीते हुए जीवन का, न जवानी का, न बच्चों का। सब राख से ढँक चुका था। मगर इस सुनहरे पत्ते के लिए हृदय में पीड़ा थी, इस प्यारे वृक्ष के लिए भी जो झुटपुटे में चमक रहा था। पड़ोसवाले पोते का स्वर सायबान में लगातार गूँज रहा था—"दादी अम्मा, मैंने मुर्ग़ियों को बन्द कर दिया है!" कैसी प्यारी आवाज़ थी, आँखें भर आती थीं।

बुढ़िया मान्या सोने की तैयारी कर रही थी। उसने बत्ती बुझाई। मगर बहुत देर तक नींद ही नहीं आई। लम्बी सफ़ेद क़मीज़ पहने नंगे पाँव कभी एक खिड़की के पास जाकर खड़ी हो जाती तो कभी दूसरी के पास और झाँकती

रहती। लेटती, आराम करती और ऊँघती हुई-सी दिखाई देती और फिर आँखें खोल देती। उठ कर घड़ी को देखती, पानी पीती और फिर से बारी-बारी से खिड़कियों के चक्कर काटती। अँधेरे में उसकी सफ़ेद क़मीज़ चमकती दिखाई देती।

पड़ोसियों के यहाँ रोशनी हो गई थी, खिड़कियों में से नीली चमक बाहर को दौड़ रही थी—लोग टीवी देख रहे थे। बेटी के फ़्लैट में इस समय दो टीवी चल रहे थे। उनमें दो चैनल लगे हुए थे। उसकी बेटी का मूर्ख पति पियक्कड़ कोस्त्या कभी एक कमरे में जाता तो कभी दूसरे में--कभी एक चैनल के कार्यक्रम को देखता, तो कभी दूसरे चैनल के। आधी रात तक इसी तरह करता रहता, जब तक थक नहीं जाता।

बुढ़िया मान्या ख़ुद टीवी नहीं देखती थी, इसकी आदत ही नहीं पड़ी थी उसे, पर रेडियो ज़रूर सुनती थी। विशेषकर शाम को। रेडियो का स्पीकर बोलता ही जाता था, बक्काल औरत की तरह। रेडियो में कभी-कभी कुछ अच्छा भी आ जाता था—गाने या कुछ और। तब वह कुर्सी लेकर रेडियो के पास बैठ जाती थी।

दीवार पर दिवंगत पति का पोर्ट्रेट चित्र टँगा हुआ था, जिस पर सड़क के खम्भे की रोशनी पड़ रही थी। इस फ़ोटो में वह जवान और खोया-सा लग रहा था। मान्या को तो दफ़नाने के समय का और मृत्यु से पहले का उसका रूप दिखाई देता था। वही अधिक प्रिय था उसे। बिलकुल सूखा, झुर्रीदार परन्तु युवावस्था के रूप से अधिक प्रिय! और अब वह उसे कितना अधिक चाहती थी!...काश कि वापस लौटा सकती! उसे छोटे बच्चे की तरह लाड़-प्यार करती। हवा तक नहीं लगने देती, उसे हँसाती-खिलाती। टीवी देखता है तो देखता ही रहे, तेज़ आवाज़ में ही सही; चाहे सवेरे से शाम तक अख़बार पढ़ता रहे—बिल्कुल नहीं कोसेगी। घर के और बग़ीचे के सारे काम भी ख़ुद ही कर लेगी, जो माँगे वही पकाकर दे देगी, खुशी-खुशी, बस किसी तरह वह जीवित रहे।

सफ़ेद कपड़े से ढँका काला टेलीफ़ोन ऊँघ रहा था। उसका बूढ़ा पति तो रोज फ़ोन किया करता था। कभी दवाओं की दुकान में, कभी अस्पताल, कभी शहर में रहनेवाले बेटे को। बुढ़िया मान्या को तो उसे छूते ही डर लगता था। वह उसे हटवा ही देती, लेकिन लड़का हटाने नहीं देता था। इस समय, रात को नींद न आने की परेशान हालत में बुढ़िया को बेटे की आवाज़ सुनने की इच्छा हुई। सारे-के-सारे नम्बर जो घुमाए जाने थे पास में मेज़ पर पड़े थे। बूढ़ी मान्या टेलीफ़ोन के पास आकर बैठ गई और उसका कपड़ा उठाया। टेलीफ़ोन काले बिलौटे की तरह उकड़ूँ होकर ऊँघ रहा था।

उसके पास आकर बूढ़ी मान्या ने एक साँस खींची पर छूने की हिम्मत नहीं हुई। रात का समय है। लोग सो रहे होंगे। कल उन्हें दफ़्तर जाना है।

बात करने की इच्छा भी हो रही थी। एकआध शब्द ही सुन लेती। स्वास्थ्य कैसा है—बस। अपने स्वास्थ्य का भी बता देती कि ऐसा ही है। ताकि बेटे के मन में कुछ दया तो उपजती।

टेलीफ़ोन यन्त्र ऊँघ रहा था। उसकी काली तार दीवार से होकर घर से बाहर को जा रही थी। मन-ही-मन बूढ़ी मान्या तार के साथ-साथ बहुत दूर तक चली गई। ख़ाली खेतों के बीच से वह साँप की तरह चली जा रही थी। रात के समय। फिर शहर की ख़ाली सड़कों पर आ गई। फिर बेटे के फ़्लैट में पहुँची। वहाँ सब सो रहे थे। वहाँ भी ऐसा ही काला डिब्बा स्टैण्ड में पड़ा ऊँघ रहा था और बेटे और पोतों की साँस को सुन रहा था।

अगर उसके बस का होता तो कुछ देर वहाँ बिना आवाज़ किए चुपचाप हो आती।...बस, कुछ देर के लिए। कुछ और नहीं चाहिए।

"बेटे, तू सो रहा है...।" बूढ़ी मान्या के मुँह से निकला। उसने चोंगा नहीं उठाया था, "तेरी सगी माँ तो यहाँ..."

और तब टेलीफ़ोन को, उसके काले शरीर को देखती हुई बुढ़िया अपनी अकेली ज़िन्दगी और बीमारियों का रोना रोने लगी।

"बेटे, यहाँ तो मेरा दिमाग़ ख़राब हुआ जा रहा है। बुड्ढे के मरने के बाद मेरे लिए कोई जगह नहीं बची। तू तो दफ़ना कर चल दिया और मैं यहाँ..."

बातचीत लम्बी नहीं चली। टेलीफ़ोन यन्त्र ठण्डा और गूँगा पड़ा था।

उस ख़ाली मकान में केवल रेडियो लगातार बोले जा रहा था। बूढ़ी मान्या उसके पास बैठकर सुन रही थी और संसार की हर बात को लेकर रोए जा रही थी।

बाद में रेडियो भी थककर चुप हो गया। पड़ोस के मकान अन्धकार में डूब गए। दुकानों की बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ तेज़ चमक रही थीं, परन्तु बेजान थीं। रात लम्बी खिंच रही थी। बूढ़ी मान्या ने नींद की एक गोली ली, फिर दूसरी। किसी तरह नींद आए और मनहूस रात जल्द-से-जल्द बीते।

आख़िर नींद आ गई।

फिर एक बूढ़ा आया, जाना-पहचाना था, पास ही गली में रहता था। वह दाम पूछने आया था, अपने लिए नहीं, किसी और के लिए। उसके रिश्तेदार किसानों की बस्ती में रहते थे, अब उसका इधर आने का विचार हो गया था। इसीलिए वह मकान को ध्यान से देख रहा था। बूढ़ा अपने ही यहाँ का था, दूध की लाइन में रोज़ उससे भेंट होती थी।

आया और बैठ गया। बूढ़ी मान्या ने उसे चाय पिलाई। बूढ़ा भला आदमी था, साफ़-सुथरा, दाढ़ी सफ़ेद। बैठकर बातें करते रहे।

बूढ़ी मान्या बता रही थी, "एकदम पागल हुई जा रही हूँ। विश्वास करो, मैं घर में अकेली नहीं रह सकती। कहीं भाग ही जाती। अपनी दौड़ पूरी कर ली है।...पड़ोसियों के यहाँ जाती रहती हूँ, जिससे कि लोगों का साथ बना रहे। सबको परेशान कर दिया है मैंने। कहीं भी जाकर बेवकूफ़ की तरह बैठ जाती हूँ। घर जाने की इच्छा ही नहीं होती है। अकेले डर लगता है। इसलिए सोच डाला कि..."

बूढ़ा ध्यान से सुन रहा था, टॉफ़ी के साथ चाय भी पिये जा रहा था। नज़र गड़ा कर सीधे आँखों में घूर रहा था, न बीच में टोक ही रहा था। लगता था कि उसे सहानुभूति थी। सब कुछ सुना, पुराने दिनों के बारे में जिनको याद करने का मन नहीं होता, नए जमाने के बारे में भी सुना। फिर बोला, "विज्ञापन को दूसरे ढंग से लिखना होगा। जिससे कि लोगों को पता तो रहे। कुछ इस तरह से—मकान बिकाऊ है, सारी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, साथ में एक बूढ़ा व्यक्ति भी है, इसलिए कि बूढ़ा व्यक्ति सबको नहीं चाहिए।"

"सबको नहीं चाहिए, ठीक ही कहा।" बूढ़ी मान्या उससे सहमत थी।

बूढ़े ने आगे जोड़ा, "किसी को शायद ज़रूरत भी हो। क्या मालूम कोई ढूँढ़ रहा हो, लेकिन उसे मिलता ही नहीं।"

बूढ़ी मान्या की आँखें भर आईं। बोली, "तुम्हारा दिमाग़ कमाल का है। बिलकुल ठीक बात कही। कहते भी हैं—घर में बूढ़ा है—नहीं तो मार देता, नहीं है—तो ख़रीद लाता। क्योंकि बूढ़ा हर तरह से काम आता है। जैसे मुझी को ले लो..."

बूढ़ा सुनते हुए सिर हिलाए जा रहा था। सुनते-सुनते चाय के घूँट भी लिये जा रहा था। उसने नया विज्ञापन लिखने में मदद की—सुन्दर-सा, जैसे छपाई का हो, बड़े कागज़ पर : "मकान बिकाऊ है, सारी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, साथ में एक बूढ़ा व्यक्ति भी है।"

बूढ़ी मान्या स्वयं उसे लगाने गई। बाज़ार में, डाकघर के पास, बस स्टापों पर जहाँ हमेशा लोग होते हैं।



साभार :

आमने-सामने

चिंगीज़ आइत्मातोव

छोटे स्टेशन में खड़े बिजली के एकमात्र खम्भे के पास से चिनार के पत्ते तिरछी क़तार में गिर रहे थे। रात का समय था। सुम्बे[1] की तरह सीधे और सुव्यवस्थित खड़े वृक्ष हवा के ज़ोर से झुक गये थे और उनकी ऊपरली टहनियों से निकलती हुई साँय-साँय की आवाज़ कहीं दूर से आते समुद्र के शोर-सी सुनायी दे रही थी।

'काला पहाड़' दर्रे की रात भी काली होती है। पहाड़ के नीचे स्थित इस छोटे स्टेशन में तो वह और भी अंधकारपूर्ण होती है। समय-समय पर इस अंधकार के बीच रोशनी और रेलगाड़ियों की छक्-छक् से मानों हलचल पैदा हो जाती हैं। गाड़ियाँ आगे निकल जाती हैं और स्टेशन में पुनः अंधकार तथा निर्जनता छा जाती है।

जवानों से भरी गाड़ियाँ पश्चिम की ओर जा रही थीं। इतने में धूल से सने डिब्बों के साथ एक लंबी गाड़ी वहाँ आकर रुकी। रेल के इंजन की भट्टी के ज़रा-से खुले द्वार से लाल लौ की चमक दिखायी दी। ब्रेकों की लम्बी चीख़ के साथ गाड़ी रुक गयी। उस छोटे स्टेशन पर कोई नहीं उतरा और न किसी ने चिल्लाकर पूछा कि 'कौन-सा स्टेशन है?' लम्बी यात्रा से थके लोग अपने-अपने डिब्बों में सोए पड़े थे। केवल आख़िरी पहियों के चरमराने की आवाज़ अभी तक आ रही थी।

जब लालटेन लिए बूटों की खटखट करते हुए स्टेशन मास्टर तेज़ी से इंजन की ओर बढ़ गया, तब पीछे के दूसरे डिब्बे से ड्यूटी पर तैनात जवान ने गर्दन

1. तोप की सफ़ाई करने की छड़।

बाहर निकाली। उसके कंधे पर पड़ी राइफ़ल में लगी संगीन हल्के-से चमकी। उस अंधकार में वह कान खड़े किए और आँखें गड़ाए हुए था। हमेशा की तरह दर्रे में बड़ी तेज़ हवा चल रही थी और स्टेशन की छोटी-सी सड़क के उस पार सीधी खड़ी चट्टान के नीचे से नदी का शोर सुनाई दे रहा था। उसमें भी कुछ थकावट-सी थी। इतने में चिनार का एक पत्ता जवान के मुँह पर शीतल स्पर्श करता हुआ नीचे आ गिरा—ऐसा लगा, जैसे किसी मनुष्य की काँपती हुई हथेली ने उसके गाल का स्पर्श किया हो। जवान अचानक पीछे को हटा, उसने डिब्बे के भीतर झाँककर देखा। एक बार फिर बाहर की ओर देखा—निर्जनता, हवा, रात...

एक मिनट बाद ओवरकोट पहने एक मनुष्य की छाया, चोरों की तरह, डिब्बे से दूर गूल[1] के पास की झाड़ियों की तरफ़ बढ़ी और वहीं जा छिपी। इतने में एक कर्कश स्वर कानों में सुनाई पड़ा। झाड़ियों में छिपे मनुष्य ने भागने का प्रयास किया, किन्तु तुरन्त ही ठिठककर छाती के बल ज़मीन पर लेट गया। वह समझ गया था कि स्टेशन मास्टर प्रस्थान के लिए सीटी बजा रहा है। गाड़ी के भारी डिब्बे चरमराए और फिर अपने लंबे मार्ग पर निकल पड़े।

नदी के ऊपर पुल के दरों से भोंपू की आवाज़ आयी। आगे सुरंग थी। विदा होते हुए स्टीम इंजन ने पूरा ज़ोर लगाकर सीटी बजा दी थी।

जब चट्टानों में गूँज सुनाई देनी बंद हो गयी, जब स्टेशन के पेड़ों पर बैठे घबराए हुए कौए भी शान्त हो गये, तब झाड़ियों में छिपा व्यक्ति ज़रा-सा ऊपर को उठकर ज़ोर-ज़ोर से गहरी साँसें लेने लगा, जैसे कि बहुत देर तक पानी के अन्दर रहा हो।

दूर जाते हुए पहियों की चाल से टकराकर पैदा होनेवाला रेल की पटरियों का स्वर कम होता जा रहा था।

चिनारों की सरसराहट बहुत तेज़ सुनाई दे रही थी। सामने की पहाड़ी से सूखे पत्तों की गन्ध आ रही थी।

'काला पहाड़' दर्रे की वह रात अंधकारपूर्ण थी...।

जब से सईदा ने बच्चे को जन्म दिया था, उसकी नींद कच्ची हो गयी थी—चिड़िया की तरह। बच्चे का पोतड़ा बदलकर वह बत्ती की रोशनी में पालने का सहारा

1. सिंचाई की नाली।

लिये बैठी थी। वाहर निकले हुए उसके साँवले, कोमल स्तन बच्चे के मुँह पर लटक रहे थे।

एक कोने में कंबल के ऊपर मिर्जई के लबादे डालकर सास सोई हुई थी। बूढ़ी तथा कमज़ोर। खाँसती रहती और बीमार भेड़ की तरह कराहती रहती। केवल खुदा से दुआ माँगने भर की शक्ति शेष रह गयी थी उसमें। और तो और नींद में भी बड़बड़ाती थी—"या खुदा, हमारा नसीब तेरे ही हाथों में है...।" सईदा जब काम को निकल जाती थी तो सास ही पोते को देखती थी। मदद तो करनी ही थी। वही बच्चे को खेत में भी ले जाती थी, ताकि माँ उसे अपना दूध पिला सके। स्वयं साँस भी मुश्किल से ले पाती थी। छोटे-छोटे हाथ काँपते रहते थे। बूढ़ी सास को कष्ट तो बहुत होता था, किन्तु उसने कभी शिकायत नहीं की—आख़िर उसकी एकमात्र पुत्रवधू की पहली सन्तान को उसके सिवा और कौन था देखनेवाला?

रात आधी से भी ज़्यादा बीत चुकी थी, पर नींद न जाने कहाँ ग़ायब हो गयी थी। ऐसी हालत में निश्चिन्त कैसे सोया जा सकता है? किसने सोचा था, किसको आशा थी कि ऐसे दिन भी देखने को मिलेंगे? ऐसे-ऐसे शब्द प्रचलित हो गये थे, जो पहले कभी सुने भी नहीं गये थे—'जर्मन', 'फ़ासिस्ट', 'विज्ञप्ति'...। कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जब गाँव में विदाई समारोह आयोजित न होते। पीठ पर सामान से भरा पिट्ठू लादे जवान लोग प्रमुख मार्ग पर एकत्रित होते और वहीं से ठेलों में ठुँसकर चल देते। विदा होते हुए वे कहते थे—"बस, अब और आँसू मत बहाओ!" गाड़ियाँ आगे बढ़तीं। मर्द टोपियाँ हाथ में लेकर हिलाते थे, "अच्छा, अलविदा...!" वहाँ एकत्रित हुई औरतें और बच्चे रोते-रोते तब तक टीले पर खड़े देखते रहते थे, जब तक कि ठेले आँखों से ओझल नहीं हो जाते थे। और फिर वे सब चुपचाप अपने-अपने घरों को चल देते थे। आगे क्या होगा? उनके भाग्य में क्या है? क्या सैनिक युद्ध-क्षेत्र से वापस लौटेंगे?

पिछली गर्मियों में जब गड़रिये की बेटी सईदा अपने पति के परिवार में आयी थी, तब उनका मकान पूरी तरह बना भी नहीं था। दीवारों में न भूसा भरा गया था, न पलस्तर ही हुआ था। छत पर मिट्टी भी नहीं बिछायी गयी थी। यदि वे दिन फिर लौट आयें तो? मकान बहुत रुक-रुककर पूरा हुआ था और शायद सईदा को भी वास्तविक सुख का अनुभव रुक-रुककर ही हुआ था। उसे याद है कि नहर से पानी की धारा बहती थी, सईदा और उसका पति कुदालों को ऊँचा घुमाते हुए भूसे को मिट्टी में मिलाते और कपड़ों को घुटनों तक ऊपर उठाए

हुए चप्-चप् करती मिट्टी को सानते जाते थे। काम कठिन था। सईदा का साटन का नया फ्राक कुछ ही दिनों में फीका पड़ गया था। किन्तु दोनों को ही थकान बिलकुल भी महसूस नहीं होती थी। उन दिनों सईदा का पति बहुत सन्तुष्ट दिखाई देता था। बीच-बीच में पत्नी के साँवले गठे हाथों को पकड़ लेता था, उसका आलिंगन करता और शरारत के साथ मिट्टी के अंदर उसके पैर में लात मारता। सईदा अपने को छुड़ाकर हँसती हुई गड्ढे की ओर दौड़ने लगती थी। जब पति दौड़कर उसे पकड़ लेता तो बनावटी गुस्से में कहती, "छोड़ो भी, छोड़ दो ना! माँ जी देख लेंगी। बेशर्म कहीं के...!" स्वयं ही पति के कंधों के पीछे छिपकर खड़ी हो जाती और कुछ देर तक अपने पुष्ट गुदगुदे स्तनों को उसकी पीठ से लगाकर दबाती।, "बस हो गया न, कहती हूँ! ओह, ज़रा अपनी शक्ल तो देखो, किसके जैसे लग रहे हो! सारा चेहरा कीचड़ से सना है!"

"और तुम खुद? पहले अपनी शक्ल तो देख लो!"

सईदा पेड़ के नीचे छाया में रखी हुई मिर्जई की जेब से छोटा गोल शीशा निकालती। इस काम में वह बड़ी चुस्ती दिखाती थी और हर बार शर्म के मारे पति की ओर से मुँह फेरकर मुस्कुराती हुई आईने में कीचड़े से सने अपने लाल हुए चेहरे को देखने लगती। किन्तु कीचड़ से सौन्दर्य नष्ट कहाँ होता है—बस धोने की ज़रूरत है। शीशे के सामने खड़ी सईदा ख़ुशी के मारे ज़ोर-ज़ोर से हँसती। कीचड़ को लगे रहने दो!

संध्या के समय नहर में स्नान करके वह खुमानी के पेड़ के नीचे बिछाए बिस्तर में घुस जाती थी। उसके शरीर में नहर के पानी की गंध और ठंडक बड़ी देर तक बनी रहती। रात के गहरे नीले अंधकार में सिर के ऊपर धुँधली सीपियों-सी बर्फ़ से ढंकी पर्वतमालाएँ दन्तपंक्ति की तरह चमकती दिखायी देती थीं। नहर के पार लसुनघास के बीच ताज़ा, महकता पोदीना अपनी सुगन्ध फैलाता था और कहीं पास ही घास में छिपा बटेर गीत गुनगुनाता था। ख़ुद उसमें तथा उसके चारों ओर के जीवन में व्याप्त प्रदीप्त, शान्त सौंदर्य की भावना के उल्लास से वह अभिभूत हो जाती थी। तब वह अपने पति के और निकट सरक आती तथा अपना हाथ धीमे से उसकी गर्दन में डाल देती। इस क्षण वे दोनों कितने सारे स्वप्न देखते थे। किस प्रकार मकान को पूरा करेंगे, फिर अपना घर बसाएँगे, उसके माता-पिता को निमंत्रित करेंगे और उनके लिए क्या-क्या उपहार तैयार करेंगे!...यह सब हर्ष का विषय था। तब समय बहुत जल्दी बीतता था, पता भी नहीं चलता था कि किस प्रकार दिन रात में बदल जाता है।

जब कच्ची ईंटों की दीवारें बनानी आरंभ कीं तो युद्ध छिड़ गया था। किसी तरह जल्दी-जल्दी मकान के अंदर की दीवारों का पलस्तर पूरा किया। इसी बीच जिगीतों[1] को सेना में भर्ती किया जाने लगा।

वह दिन कभी नहीं भूलेगा, विदाई का दुःख अभी तक बना हुआ है। जैसे अभी कल की ही बात हो। लामबंदी किए हुओं को पूरा गाँव सिवान तक छोड़ने आया था। सईदा को लोगों के सामने आने में शर्म-सी आ रही थी। इसलिए अपने पति से उस तरह विदा न ले पायी, जैसे वह चाहती थी—वह अभी वहाँ की नई-नई बहू थी। उसने किंचित अभद्रता के साथ अपना हाथ पति को पकड़ाया, फिर पीछे हट गयी—इस डर से कि कहीं उसके आँसू दिखाई न दे जाएँ। बस यों ही वे विदा हो गये थे। किन्तु जब वे जिगीत स्तपी में ओझल हो गये तो अचानक यह सोचकर उसे पीड़ा का अनुभव हुआ कि मन की बात सुननी चाहिए थी, बड़ों के सामने शर्माने की परवाह किए बिना पति का, सम्भवतः अन्तिम बार, कसकर आलिंगन और प्रगाढ़ चुंबन कर लेना चाहिए था। वह अपने आपको कितना कोस रही थी। इसके अतिरिक्त एक बात और भी थी, जो वह धीमे-से उसके कान में कह नहीं पायी थी। शायद उसका गर्भ ठहर गया था। अब तो समय निकल चुका था। मौके पर चूक गयी। दूर स्तपी में सारा रास्ता धूल से भरा नज़र आ रहा था। तभी से सईदा के कष्टदायक दिन आरंभ हुए और जो कुछ भी उसने किया, अव वह छाती में ख़ून की तरह उबल रहा है सईदा की छाती की यह जलन कभी भी कम नहीं हुई।

बत्ती की रोशनी समाप्त हो रही थी। बच्चे का मुँह स्तनों से हटाने में दया आती थी। स्तनों को चूसते-चूसते उसे बड़ी मीठी नींद आ गयी थी, कभी-कभी वह अचानक हिल पड़ता था और फिर कोमलता से चूसने लगता था। सईदा के विचार कहीं बहुत दूर जा रहे थे।

आँगन में वड़ी सावधानी के साथ किसी के खटखटाने की आवाज़ आयी। सईदा सिर उचकाकर सावधान हो गयी। फिर दुबारा धीमे से, रुक-रुककर खट-खट सुनायी दी। सईदा ने जल्दी से अपने स्तन छुड़ाये, कंधे से मिर्जई को झटककर अलग किया और छाती के बटनों को बेसुध-सी बंद करती हुई आहिस्ता-अहिस्ता खिड़की के निकट आयी। खिड़की इतनी नीची थी कि आँगन में घोर अंधकार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दे रहा था।

---

1. जिंगीत—कुशल और साहसी घुड़सवार

सईदा ने ठंड के मारे अपने कन्धे इस तरह झटके कि उसकी चुटिया की झालर झनझना गयी।

"कौन है?" सन्देह के स्वर में उसने पूछा।

"मैं हूँ।...खोल!...सईदा!" मन्द स्वर में धीरे-धीरे एक भर्रायी आवाज़ सुनाई दी।

"कौन, मैं?" अविश्वास के साथ उसने दुबारा पूछा। एक ओर हटकर डरते-डरते बच्चे के पालने में दृष्टि डाली।

"मैं हूँ।...मैं, सईदा। खोल!"

सईदा खिड़की की तरफ़ झुकी, उसके मुँह से हल्की-सी चीख़ निकली, सिर पकड़े उतावली होकर वह दरवाज़े की ओर भागी।

काँपते हुए हाथ से अँधेरे में उसने सिटकनी खींचकर दरवाज़ा खोल दिया और बिना कुछ कहे अपने सामने खड़े व्यक्ति की छाती पर गिर पड़ी।

"मेरी सास के पुत्र! सास के पुत्र!" दबे हुए स्वर में उसने अपनी आदत के अनुसार ये शब्द कहे, अपने को और अधिक न रोक सकी। वह उसका नाम लेकर चिल्ला उठी, "इस्माईल!" कितनी प्रसन्नता, कैसी अप्रत्याशित प्रसन्नता हो रही थी उसे—उसका पति जीवित और बिना घायल हुए लौट आया था। यह रहा वह, इस्माईल। उससे सस्ते क़िस्म के तेज़ तम्बाकू की गन्ध आ रही थी। उसके ओवरकोट के चुभनदार रोयें सईदा के मुँह में गड़ रहे थे, बालों के बने कमन्द की तरह।

वह चुप क्यों खड़ा है? शायद इसलिए कि बहुत प्रसन्न है? ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रहा है, अन्धे की तरह जल्दी-जल्दी कुछ टटोल-सा रहा है और सईदा के कंधे तथा सिर को धीरे-धीरे सहला रहा है।

"चलो, अंदर चलें।" इस्माईल ने धीमे स्वर में शीघ्रता से कहा और सईदा को गोद में उठाकर देहली पार की। तब जाकर सईदा को होश आया।

"अरे, मैं कैसी बेवक़ूफ़ हूँ। माँ, कितनी अच्छी ख़बर है—यह लौट आये!"

"शिः!" उसका हाथ पकड़कर इस्माईल बोला, "रुक, घर में कौन है?"

"बस, हम ही तो हैं। तुम्हारा बेटा तो पालने में सो रहा है।"

"रुक, ज़रा साँस तो ले लेने दे।"

"माँ" नाराज़ हो जाएँगी...।

"रुक, सईदा!"

अभी भी सईदा को विश्वास नहीं हो रहा था कि उसका पति लौट आया है। किन्तु उसने वेगपूर्वक पति का आलिंगन कर लिया और कसकर उससे

लिपट गयी। अँधेरे में वे एक-दूसरे को देख नहीं पा रहे थे। देखने की आवश्यकता भी क्या थी? पति के ओवरकोट के अंदर से रुक-रुककर तथा असमान वेग से आनेवाली हृदय की धड़कन उसे सुनाई दे रही थी। स्वप्न में नहीं, वल्कि वास्तव में वह उसके फटे, सख़्त होंठों को चूम रही थी।

"मैं तो बड़ी बेचैन हो गयी थी! कब लौटे? बिलकूल छूट गये क्या?" उसने पूछा।

अपने कन्धे पर से सईदा के हाथ हटाते हुए इस्माईल धीमे-से बोला, "सीधा स्टेशन से आ रहा हूँ...रुक ज़रा, मैं अभी...।"

वह आँगन में गया और चारों तरफ़ देखते हुए छप्पर की ओर बढ़ा। एक मिनट बाद जब वह लौटा तो उसके हाथ में राइफ़ल थी। कोने में रखे घास-फूस पर पैर मारकर देखा और फिर राइफ़ल उसके सबसे नीचे छिपा दी।

"यह क्या कर रहे हो? कमरे में रखो ना!" सईदा हैरान होकर बोली।

"चुप, सईदा, चुप रह!"

उसके प्रश्न का उत्तर दिये बिना इस्माईल ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "चलो, बेटे की शक्ल तो दिखा दो।"

लगभग हर रोज़ शाम के समय सरकंडों के जंगल और पौधों से भरे दूरवर्ती चरागाहों से सईदा सूखी टहनियां के गट्ठर ढोकर लाती थी। बहुत देर तक छोटी-छोटी अदृश्य पगडंडियों से चढ़ती-उतरती जब वह गाँव के निंकट पहुँच जाती थी तो किसी टीले पर अन्तिम बार आराम करने के लिए बैठ जाती थी। कन्धों पर डाले हुए रस्सी के फंदे को ढीला करके आराम से साँस लेती और पीठ को गट्ठर के सहारे टेक देती थी। इस प्रकार बैठने में कुछ क्षण के लिए सब कुछ भूलकर शान्तिपूर्वक आकाश की ओर देखने में कितना आनन्द आता था उसे! नीचे गाँव में ठेलों की खड़खड़ सुनाई देती थी। घुड़सवारों के इधर-उधर जाने के स्वर कानों में पड़ते थे। हवा में उपलों के धुएँ, सड़े भूसे और भुनी मक्की की गन्ध व्यापत रहती थी।

किन्तु आज सईदा को सुस्ताने का अवसर नहीं मिला। दूर से रेल के इंजन की सीटी सुनाई दी। सईदा जैसे सोये से जाग उठी। रस्सी समेत गट्ठर को एक झटके में ज़मीन से उठाकर पीठ पर डाला और बोझ से दबती हुई जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गयी। इंजन की सीटी ने उसे इस्माईल के सेना से भाग आने का स्मरण करा दिया था। वह बहुत बेचैन हो गयी थी।

सईदा डरते-डरते अपने मार्ग पर चली जा रही थी कि कहीं कोई मिल न जाए, कोई उसे रोक न ले। वह सोच रही थी कि 'चाँदनी रातें जल्दी ही समाप्त हो जातीं तो कितना अच्छा होता!' तब उसे प्रतिदिन सूखी टहनियों के लिए जाने और इस्माईल के लिए खाना बनाकर उसके गुप्त आश्रय-स्थल में ले जाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। 'ख़ुदा न करे ऐसा हो! किन्तु यदि अचानक किसी को सन्देह हो गया तो?' जहाँ से वह घास लाती थी, उस स्थान को दिखाने के लिए गाँव की औरतें कितनी ही बात कह चुकी थीं। किन्तु उन्हें अपने साथ ले जाना असम्भव था—वहाँ इस्माईल जो था। सारा दिन वह गुफ़ा में छिपा रहता था, अँधेरी रातों में चोरी-छिपे अपने घर आ जाता था। उसके आने पर खिड़कियों पर पर्दे डाल दिये जाते थे। बुरे मौक़े के लिए सईदा ने तख़्त के नीचे गड्ढा बनाकर उसे सरकंडों और नमदे की ऊन से ढँक दिया था।

इसी तरह दिन कट रहे थे। वृद्धा माँ अपने-आप को इस प्रकार के जीवन के अनुरूप ढाल नहीं पा रही थी—सुनाई कम देता था, प्रत्येक आवाज़ को ध्यान से सुनने का प्रयास करती थी। हर क्षण काँपती रहती थी। अपनी लाल पलकों वाले अश्रुपूर्ण नेत्रों में करुणा और दया भरकर इस्माईल की ओर देखा करती थी। शायद वह एकान्त में आह भरकर सोचती थी, 'ओफ़, मेरा बेटा, बेचारा।'

कभी-कभी इस्माईल गाँव के हालचाल पूछने लग जाता था। किन्तु यह सब व्यर्थ था। उसे अच्छा नहीं लगता था, अक्सर वह चुप बैठा रहता था, उदास, थका-चुका, कन्धे झुकाकर, उबलते हुए कड़ाह को अधीरता से देखा करता था। उसे जल्द-से-जल्द भोजन कराना होता था, ताकि सूरज निकलने से पहले ही वह अपनी गुफ़ा में वापस लौट सके। चिन्तित सईदा भट्टी के पास दौड़-धूप करती रहती थी। उसे इस्माईल पर दया भी आती थी और इस बात का भय भी बना रहता था कि कहीं उसे खो न दे, कि कहीं वह बीमार वृद्धा और अपने अनाथ बेटे को गोद में लिये अकेली न रह जाए। इस्माईल बहुत बदल गया था। गुफ़ा में उसे सूर्य के दर्शन नहीं होते थे, न ताज़ी हवा मिलती थी,उसका चेहरा मटमैला-सा हो गया था। उसके सूजे हुए गालों पर दाढ़ी बिखरी रहती थी। कभी वह खदेड़ी हुई गाय की तरह करुण, असहाय दृष्टि से देखता था, कभी उसकी आँखों में दृढ़ता आ जाती थी, कभी आँखों की पुतलियों के काले धब्बे पलकों के बीच में से चमकते हुए क्रूरता और रोष प्रकट करने लगते थे, दाँतों के बीच भिंचा होंठ फीका पड़ने लगता था। उसे देखने से आतंक पैदा होता था। ऐसे क्षणों में इस्माईल गोद में लिये पुत्र को भी भूल जाता था।

क्या पिछली गर्मियों में भी इस्माईल का यही रूप था? धूप में तपा, सारस की तरह पुट्ठेदार, वह निरन्तर काम में लगा रहता था, थकान का तो जैसे उसे

पता ही नहीं था। उन दिनों वे मकान बनाने में लगे हुए थे। तब उनके जीवन में सब कुछ स्पष्ट और सरल था, क्रोध या चिन्ता का कोई कारण नहीं था। जीना और काम करना ही उनके जीवन का उद्देश्य था। अपने आँगन पर मालिक की तरह दृष्टि डालते हुए इस्माईल कहा करता था, "जब मकान तैयार हो जाएगा तब इसे दूसरों की नज़र से बचाने के लिए इसकी चारों ओर मिट्टी की बाड़ बनानी होगी।" परन्तु अब तो वह एक भगोड़ा था। अब अपने ही मकान में वह चोरी-छिपे रात को आता था और आते ही जाने की जल्दी करने लगता।

सईदा इन बातों की ओर ध्यान न देने की कोशिश करती थी। उन दुर्लभ रातों में जब उसका पति उसके पास आकर बेटे को गोद में लिये हुए सामने बैठा होता, तब वह सब कुछ भुला देना चाहती थी। हाँ, सब कुछ, ताकि घंटे भर के लिए ही सही, वास्तविक प्रसन्नता का सुख तो लूट सके।

'भगोड़ा ही सही, तो क्या हो गया!' लकड़ी के तख्त पर आटा गूँधते हुए वह अपने आपको समझाती, "आदमी लोग जानते हैं कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। इस्माईल कहते तो हैं—सबको अपना-अपना जीवन प्यारा है। इस युद्ध में केवल वही बच सकेगा जो अपने शरीर की चिन्ता स्वयं करेगा। मैं शिक्षा देनेवाली कौन होती हूँ! यानी जो है सो ठीक है, वह स्वयं अधिक समझते हैं। क्या मैं खुद अपने हाथों से उन्हें अपने से अलग कर दूँ? किसी भी हालत में ऐसा नहीं करूँगी! वह स्वयं भी तो कहते हैं कि चाहे कुछ भी हो जाए बन्दूक़ की गोली नहीं खाऊँगा। एक दिन ही सही, मेरा अपना तो है। अपने घर में तो बैठा हूँ। वहाँ दूर मोर्चे पर, कहीं दूसरे छोर पर, मेरा क्या काम? हमारे बाप- दादों ने स्वप्न में भी उन इलाक़ों को न देखा होगा।...सबकी अपनी-अपनी मर्ज़ी, मुझे तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं तो नहीं चाहता। ...एक मेरे चले जाने से वहाँ क्या बदल जाएगा? अकेला मैं तो शत्रु को जीत नहीं लूँगा। मेरे बिना भी काम चल ही जाएगा।"

"शायद उनकी बात ठीक ही है। काम तो शायद चल ही जाएगा। एक इस्माईल के निकल जाने से सेना छोटी नहीं पड़ जाएगी। भाग भी आए तो क्या हो गया? किसी का कोई नुक़सान तो नहीं किया। अपनी रक्षा करने में क्या बुराई है? क्या उन्हें अपनी जान प्यारी नहीं है? खुदा को मंज़ूर हुआ तो यह जाड़ा किसी तरह काट लेंगे। फिर गर्मियाँ शुरू होते ही दर्रा खुल जाएगा और इस्माईल अपने लोगों के पास चत्काल (ऊँचाई पर स्थित पहाड़ी इलाक़ा जहाँ केवल गर्मियों में ही जाया जा सकता है।) चला जाएगा। इस्माईल का कहना है कि वहाँ किसी को दूसरों की बातों से कोई मतलब नहीं होता। कभी भी कोई ऐसी पूछताछ नहीं करता। चाहे जहाँ भी हो, चत्काल से भी और आगे क्यों न हो, मैं

उनके साथ ही जाऊँगी। बस, उन्हें मेरे साथ होना चाहिए। सदा मेरी नज़रों के सामने रहें।...किसी तरह जाड़ा निकल जाए। घर में मक्की भी कम है—बसन्त तक किसी तरह चल जाए।...गाँव में औरों की हालत कौन-सी अच्छी है, अब लोग पहले की तरह नहीं रहते—सभी को अन्न की कमी है। शायद बसन्त तक भी चल जाए, हो सकता है कि नहीं भी चले।...बड़ी मुश्किल हो जाएगी।"

सवेरे के समय सिंचाई की नालियों के किनारे उगे अफ़सन्तीनों के फूलों पर पाला जमा हुआ था और बर्फ़ से जमे उनके ढेर सारे गोल-गोल बीज ज़मीन पर बिखरे हुए थे। बीच-बीच में बर्फ़ गिर रही थी। भींगी ख़ालवाली भेड़ें घूम रही थीं। उनकी ख़ाल में से भूरे-से रंग के गोबर की भाप जैसी उठ रही थी। भेड़ों की पीठों के बाल झड़ गये थे और मैनाएँ उनकी पीठों को घूर-घूरकर देखते हुए उनके पीछे-पीछे उड़ी चली आ रही थीं। शीत ऋतु आनेवाली थी। कोहरे और बादल के दिन निकट आने लगे थे। ...किन्तु युद्ध का कोई अन्त दिखाई नहीं देता था। अधिकाधिक संख्या में लोग मोर्चे पर जा रहे थे।

इस बार बहुत ही छोटे युवकों को भेजा जा रहा था, जिनकी अभी-अभी उम्र पूरी हुई थी, जिनके अभी दाढ़ी-मूँछ के डोटे भी नहीं फूटे थे।

"अरे, अभी तक तो ये नंगे पैर ऊधम मचाते फिरते थे और अब देखो कितनी जल्दी लम्बे भी लगने लगे हैं। लड़ाई में जा रहे हैं। जीवन के सुख तो इन्होंने भोगे ही नहीं। ओ नीच जर्मन, तुझे मौत क्यों नहीं आती !"—बार-बार अपने उदास स्वर में वृद्ध स्त्री-पुरुष यही कहे जा रहे थे। बुज़ा[1] पीने के लिए रुकी हुई जवानों की गाड़ियों के निकट उनकी बैसाखियों की किटकिट-टिकटिक सुनाई दे रही थी। सैनिक सेवा के लिए बुलाये हुए युवक यहाँ अन्तिम बार अपनी प्रेमिकाओं और बंधुओं के साथ एकत्रित हुए थे। बुज़ा बेचनेवाले की गाड़ी के दरवाज़ों के खुलने, बन्द होने की आवाज़ निरन्तर आ रही थी। गानेवालों का मदोन्मत्त गायन सुनाई पड़ रहा था। उनका गायन सीधे हृदय को छूता था, उसमें दुःख, दृढ़ता, शराब के नशे से उत्पन्न साहस, विचारमग्नता सभी कुछ था।

वृद्धाएँ पलकों से आँसू पोंछती हुई कह रही थीं, "ओह, प्यारे बेटो, वह दिन जल्द आये जब तुम्हारे ये गीत हमें फिर दुबारा सुनने को मिलें... ।"

सईदा भी यहाँ खड़ी थी, युवकों के बीच। उसका प्यारा जुमाबाई सवेरे से

---

1. बाजरे से बना एक मादक पेय।

ही यहाँ मस्ती मारने आ गया था। वह रिश्ते में इस्माईल का छोटा भाई लगता था।

"भाभी, तैयार हो जाओ। हमने बुज़ा मँगवाई है। आख़िरी बार ख़ुशी मना लें। आओ...!"

सईदा उसे नाराज़ तो नहीं करना चाहती थी, फिर भी मना करने की कोशिश की—उस समय वह चक्की में इस्माईल के लिए सत्तू पीसते हुए छोड़कर आयी थी।

"मेरा वहाँ जाना अच्छा नहीं है, बुरा मत मानना। मैं तुम्हें बाहर सड़क तक छोड़ आती हूँ...।"

"अच्छा कैसे नहीं है? तुम तो मुझे, अपने देवर को विदा करने जा रही हो।...नहीं, चलते हैं, इस्माईल भैया की ख़ातिर चलते हैं।...शायद वह इस समय युद्ध की आग में होंगे।...यदि मोर्चे पर उनसे भेंट हो गयी तो बता दूँगा कि तुमने स्वयं आकर मुझे विदा किया था। तुम्हारा सलाम भी कह दूँगा।...मैं औरों से क्या बुरा हूँ? सभी को तो उनके सम्बन्धी विदा करने आये हुए हैं, किन्तु मैं...?"

सईदा की समझ में नहीं आया कि वह क्या उत्तर दे। वह असमंजस में पड़ गयी थी। जुमाबाई ने भी यह सब देख लिया था। बोला, "शर्म आ गयी क्या? ऊँह, चलो भी...।"

इसके थोड़ी देर बाद वह बुज़ावाले के यहाँ बैठी थी। उसे आँखें ऊपर करने की भी हिम्मत नहीं हो रही थी, जैसे कि उसने सबके सामने कोई अपराध कर डाला हो। बिलकुल कोने की ओर खिसककर तथा मुँह रूमाल से ढँककर वह चुपचाप बैठ गयी।

किसी व्यक्ति को हम कितना चाहते हैं, यह केवल बिछुड़ने पर ही पता चलता है। इसीलिए तो ये जवान छोकरे, जो कि कल साक्षात् मृत्यु का सामना करेंगे, आज इतना शोरगुल मचा रहे हैं, गा रहे हैं, और सम्भवतः इसीलिए इतनी निकटता अनुभव कर रहे हैं, जितनी कि पहले कभी नहीं की थी। इस समय वे अपने विषय में या अपने भाग्य के विषय में उतना नहीं सोच रहे हैं, जितना कि गाँव में रह गये लोगों के विषय में और विदाई के समय वे उनके लिए मंगलकामना कर रहे हैं। मात्र इसीलिए उनकी चाह है कि उन लोगों के लिए कुछ अच्छा और महान कार्य कर डालें, अपनी पूरी आत्मा उन्हें समर्पित कर दें।

इतने में बुज़ा के नशे में चूर जुमाबाई जिसका चेहरा एकदम लाल हो गया था, नमदे पर से उठ खड़ा हुआ। वही अस्त-व्यस्त वेशभूषा, देखने में भद्दा।

उसने वुज़ा से भरा चषक उठा लिया—विदाई के अवसर पर गाने की अब उसकी बारी थी।

जुमावाई का भाई गवैया मिर्ज़ाकुल मोर्चे से हाथ गँवाकर लौटा था। अब वह ग्राम-परिषद् का अध्यक्ष था। बच्चे तक उसके गाये गीतों को दोहराते थे, सुननेवाले के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ देते थे।

जुमाबाई ने लम्बा स्वर खींचते हुए, विचारमग्न होकर अपने भाई का सबसे प्रिय गीत गाया—

ऐ ऽ-ऽ-ऽ
साठ डिब्बों की रेल
लेकर इंजन उड़ चला,
विदा, भाई लोगों,
मैं गाँव छोड़ चला...

साठ डिब्बों की रेल
लेकर इंजन उड़ चला,
विदा, मेरी बहनो,
मैं गाँव छोड़ चला...

"वाह, जिगीत। जीतकर लौटना।..." दोस्तों की उत्साहवर्धक गूँज सुनाई दे रही थी।

देखते-ही-देखते जुमाबाई का रूप बदल गया—मानों वह कठोर तथा प्रौढ़ हो गया हो। अभिमानपूर्वक कन्धों को चौड़ा करके वह खिड़की के बाहर अपनी प्रिय पहाड़ियों की ओर देख रहा था, ऐसा लग रहा था कि इतनी देर वाद जैसे उसे समझ में आया हो कि उसके अपने गाँव से बिछुड़ने में एक घंटे से भी कम समय शेष रह गया है। उसने गाना जारी रखा—

हम चले आरिसि की ओर,
आला-तो, तुझे हम नहीं भूले,
तेरी सफ़ेद नीली बर्फ़
हमें दिखाई देती रही...।

"वाह, जिगीत, वाह! हमारे आला-तो जैसे पहाड़ और कहाँ होंगे!"...सब चिल्ला रहे थे।

फिर सब लड़के, लड़कियाँ और नववधुएँ गाने लगीं।

अपने विचारों में खोई सईदा उस क्षण सब कुछ भूल चुकी थी। उसे लगा कि वह पहाड़ी सुरंग से बहुत दूर अन्तहीन कज़ाख़ स्तपी में पूरी रफ़्तार से दौड़ती हुई जवानों से भरी रेलगाड़ी की ओर उसके डिब्बों के दरवाज़ों के पास खड़े जिगीतों को गाते तथा अन्तरिक्ष में कारवाँ की तरह फैले आला-तो पर्वत के श्वेत-नील बर्फ़ीले शिखरों की दिशा में उन्हें विदा के साथ हाथ हिलाते हुए देख रही है। धुएँ से ढँकते हुए पहाड़ दूर होते जा रहे थे। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि गाड़ी का पीछा करती हुई वह भी दौड़ रही है, फिर स्तपी में अकेली रहकर वह थकित हुई बेतार के खम्भे के सहारे मानो झुक पड़ी। उसके कानों में रेल की सीटी की आवाज़ पड़ी, जैसे कि एकतारे में से उदास गीत 'ऊँटनी का रुदन' (किर्गीज़ लोकगीत जिसमें एक ऊंटनी के बच्चे के खो जाने का वर्णन है।) की धुन निकल रही हो।

इस विदाई-गीत से प्रभावित होकर सईदा ने सावधानी के साथ अपना सिर ऊपर उठाया। जिगीत जाने की तैयार करने लग गये थे। कुछ की आँखों में आँसू थे, कुछ नशे में हँस रहे थे, किन्तु सब के चेहरों पर एक जैसी दृढ़ता दिखाई दे रही थी। वे ऊँचे स्वर में एक दूसरे से युद्ध में विजयी होकर लौट आने की कामना कर रहे थे। उनका आपसी व्यवहार सगे भाइयों जैसा था। सईदा के हृदय में भी उनके प्रति ममता, दया, पीड़ा और अभिमान की भावना दीप्त हो रही थी। काश, वह उनकी सहायता कर सकती!...मन-ही-मन उसने सोचा कि मानो वह अभी-अभी उठकर चिल्लाते हुए उनसे कहेगी—"रुको, जिगीतो! अभी तो तुम्हारी शक्ति का उदय ही हुआ है और तुम चलने की तैयारी करने लगे हो, अपने गाँव को छोड़े जा रहे हो। तुम्हें तो अभी बहुत जीना है। मुझे भेज दो, मैं जाकर मरूँगी तुम्हारे बदले में..."

इसी क्षण सईदा को याद आया कि आज इस्माईल के लिए सत्तू ले जाना है। उसका सिर सहसा झुक गया, उसे घर का ख़याल आ गया—"सत्तू अच्छी तरह पीसा भी नहीं है, बच्चे को भी खाना नहीं खिलाया।...मैं तो बैठी ही रह गयी..."

जिगीत बाहर आये, ठेले के पास प्रतीक्षा में खड़े लोगों में हलचल-सी हुई और वे मिलने को दौड़े।

"हमारा आशीर्वाद है।" सफ़ेद बालोंवाला वृद्ध बार्पी घोड़े पर बैठे-बैठे अपनी फटी, भर्राई आवाज़ में चिल्लाया। उसकी कपोलास्थि बाहर को निकली हुई थी। कुछ देर घोड़े को पकड़े रहने के बाद उसने अपने काँपते हुए हाथों को

फैलाकर कहा, "आमीन! पुरखों का साया तुम्हारे ऊपर रहे, तुम जीतकर लौटेंगे।" इसके बाद उसने चाबुक़ घुमायी और अपनी बलिष्ठ गर्दन को मोड़कर तथा कन्धों को हिलाते हुए घोड़े में हवा हो गया—पुरुषों को अपने आँसू दूसरों को सामने नहीं दिखाने चाहिए।

हुल्लड़ और शोरो गुल के बीच ठेले पहाड़ से नीचे उतरने लगे और शीघ्र ही धुन्ध में लुप्त हो गये। कुछ देर तक बर्फ़ीले मार्ग पर पहियों की खड़खड़ तथा जिगीतों के गाने का स्वर सुनायी देता रहा—

मैं छोड़ चला अपना गाँव, विदा मेरी बहनो।...

स्त्रियाँ गला फाड़-फाड़कर रो रही थीं। इन खिलते हुए जवानों में से कौन वापस लौटेगा और किसकी क़ब्र दूर पराई ज़मीन में बनेगी? पहाड़ी पर खड़े लोगों में उदास नीरवता छायी हुई थी। अपने ग्रामवासियों के शोकपूर्ण चेहरों की ओर देखते हुए सईदा स्वयं से बोली, 'न मुझे अल्लाह से नाराज़गी है, न इस बात का रंज है कि मेरा पति भगोड़ा है। बस, वह किसी तरह ज़िन्दा रहें, अपने को बचाये रखें...।"

जब गाँव में आवाज़ों का आना बन्द हो गया तो सईदा ने कुछ चपातियाँ और सत्तू की गटरी अपने लबादे के अंदर छिपायी और दराँती तथा रस्सी लेकर दबे पाँव, चुपके से घास काटने को निकल पड़ी।

रेगिस्तानी टीलों और दर्रों में धुन्ध छायी हुई थी। भयानक सन्नाटा था, कौवे तक नहीं बोलते थे। घास के ढँके हुए अलग खड़े टीले की तरह ज़मीन में मृत-सी गड़ी सरकंडों की झाड़ियों से हवा के धीमे-से टकराने का स्वर ही सिर्फ़ कानों में पड़ रहा था और प्रत्येक टहनी अलग-अलग साँय-साँय कर रही थी—साँप की तरह धीमे-धीमे। धुन्ध में डरते-सम्हलते आँखें गड़ाये सईदा अपने परम प्रिय, निकटतम पुरुष के पास तेज़ी से क़दम बढ़ाती हुई जा रही थी।

पतझड़ के मौसम से ही डाकिया कुर्मान सड़क के छोर पर स्थिर दो आख़िरी मकानों को दूर से ही देखकर निकल जाने लगा था। वह ऐसी शकल बनाता जैसे कि कोई ज़रूरी डाक लिये जा रहा हो और घोड़े की रफ़्तार तेज़ कर देता था। किन्तु तोतोई डाकिये को अक्सर देख ही लेती थी। पत्र मिलने की आशा तो उसे रह ही नहीं गयी थी। फिर भी ओखली को अलग रख, जिसमें वह खेत में इकट्ठा किए हुए अन्न की बालों को कूटा करती थी, दौड़कर बाहर आ जाती थी और

अपने पुट्ठेदार कमज़ोर हाथ से डाकिये को इशारा करती थी। "डाकिया काका, हमारी कोई चिट्ठी नहीं है क्या?" वह झेंपते-झेंपते अनिश्चय के स्वर में पूछती।

माँ की आवाज़ सुनकर तीनों बच्चे बाड़ के पीछे से निकलकर आते—वे वहाँ तेज़ धूप में सारा दिन खेलते रहते थे और एक-दूसरे को पछाड़ते हुए पूरी शक्ति के साथ दौड़कर डाकिये के पास आकर कहते, "चिट्ठी, अब्बा की चिट्ठी आयी।"

बूढ़ा कुर्मान अभी यह सोच ही रहा होता था कि उन्हें क्या जवाब दे कि वे उसके घोड़े की जीन को पकड़ लेते थे।

"कहाँ है चिट्ठी?"

"मुझे दो।"

"नहीं, मुझे। मुझे दो, कुर्मान काका! चिट्ठी मैं लूँगा।"

"ओफ़, तुम्हें शैतान क्यों नहीं उठा ले जाता! चिट्ठियाँ तो हैं ही नहीं! अरे, कैसे बच्चे हैं! पहले पूछ तो लिया करो, उसके बाद चाहे गाँव भर में शोर मचाओ।"

बच्चे ज़ोर-ज़ोर से साँस लेने लगते थे। वे कुर्मान के मोटे झोले की ओर अविश्वासपूर्ण दृष्टि गड़ाए रहते। वहीं खड़े रहते—उन्हें अभी भी किसी चीज़ की आशा रहती थी। कुर्मान के मन में उन नंगे पाँव घूमते हुए अबोध बालकों के प्रति दया उपजती थी तथा अपने ऊपर क्षोभ। किन्तु कोई उन्हें क्या कहे?

"प्यारे बच्चो, तुम सोचते हो कि मैंने तुम्हारी चिट्ठी छिपा रखी है?" अपने दबे स्वर में बोलते हुए प्रमाणस्वरूप वह ऊपर की जेब में डाल डालकर, फिर बाहर निकालकर अपना ख़ाली हाथ दिखा देता था, "विश्वास नहीं है क्या? यदि मेरे बस में होता तो उनसे कहता कि हर रोज तीन बार लिखा करें। इस समय सिर्फ़ तुम्हारी आँखों को छोड़कर बाकी सब कुछ अच्छा लग रहा है। ...आज न सही, अगली बार तुम्हारी चिट्ठी अवश्य आएगी। इंशाअल्ला, जिस दिन बाज़ार लगेगा उस दिन लाऊँगा।...मैंने सपना देखा है।...चलो, चलो, अब भागो। हाँ, सईदा से भी कह देना कि उसके लिए भी कोई चिट्ठी नहीं है। मेले के दिन लाऊँगा... ।"

अपनी फटी हुई टोपी को झुर्रीदार भूरे माथे की ओर खिसकाकर और असन्तोष से सिर हिलाते हुए बूढ़ा कुर्मान आगे को चल देता था।

इस बीच उसका घोड़ा रोज़ की गली में मुड़ जाता था, जहाँ डाकिये को जाने की आवश्यकता ही नहीं होती थी। वह शीघ्रतापूर्वक झटके के साथ घोड़े की जीन खींचता जिससे घोड़ा लड़खड़ा जाता और क्रुद्ध डाकिया उसकी गर्दन

पर कोड़े मारने लगता, "शैतान, मरियल घोड़े, तेरे पैर इस ज़मीन पर कभी ना पड़ें। ऐसा रद्दी घोड़ा क्या अच्छी ख़बर लाएगा!...यदि मेरे पास चिट्ठी होती तो मैं ख़ुद ही तुझे उधर चलने को कह देता...।"

जब सईदा सूखी टहनियाँ लिए हुए वापस लौट रही होती तो हर रोज़ रास्ते में उसे पड़ोसिन तोतोई का सातवर्षीय मँझला बेटा असन्ताई मिल जाता था। वह अपने पिता की पुरानी, फटी मिर्जई पहने रहता था। उसकी आँखें बहुत ही चमकदार और अर्थपूर्ण लगती थीं, उसकी दृष्टि भोली-भाली और स्वप्नमयी थी। सदा मुस्कुराता रहता था वह। मुस्कुराते समय उसके आगे के दाँत दिखाई देने लगते थे, जिनमें से कुछ टूट भी चुके थे। असन्ताई स्त्रियों को अधिक पसन्द था और उसका बड़ा भाई—पुरुषों को। बड़े भाई की शक्ल असन्ताई से नहीं मिलती थी। वह ढीठ और मनमाने स्वभाव का था।

असन्ताई अपनी सदा विद्यमान रहनेवाली अपराधी-सी मुस्कुराहट के साथ कंधे पर झोले की तरह लटकती हुई मिर्जई को और कसते हुए बोला, "सईदा जान, इस्माईल काका की चिट्ठी इस बार भी नहीं आयी और हमारी भी नहीं आयी। कुर्मान काका ने कहा है कि बाज़ारवाले दिन लाएँगे। उन्होंने सपना देखा है...।"

वह अपने विश्वस्त नेत्रों से आँखों तक सरक आयी ख़रगोशी टोपी के नीचे से सईदा की ओर देखता था। उसकी दृष्टि बहुत-सी बातों का विश्वास दिलाती थी, असम्भव वस्तुओं का भी। काश, बच्चे को मालूम होता कि उसके भोले-भाले शब्दों को सुनना सईदा को कितना भारी हो रहा है। अभी तक जिस भारी गठरी को वह अपनी परवाह किए बिना इतनी देर से ढोए जा ही थी, वही गठरी इस क्षण से उसके लिए असह्य बोझ बन गयी थी, जैसे कि उसने अपनी पीठ पर पत्थरों का बोझ उठा लिया हो। उसके आँगन तक पहुँचने को पाँच-छह क़दम ही शेष रह गये थे; कहीं गिर न पड़े, इसलिए वह बाड़ का सहारा लेकर चल रही थी। फिर एक झटके से गठरी को ज़मीन पर फेंका और बाड़ की ओर झुककर हाथ लटकाए खड़ी हो गयी। पसीने से तर मुँह पर चिपके हुए बालों को ठीक करने की शक्ति भी उसमें नहीं रह गयी थी।—"अल्ला, इन बच्चों के लिए इनके पिता की कोई चिट्ठी तो भिजवा दे!"—उसे लगता था कि यदि पड़ोसिन तोतोई के पास उसके पति का कोई पत्र आएगा तो इससे स्वयं उसका जी भी हल्का हो जाएगा। कभी-कभी रात के समय असन्ताई के शब्द याद कर वह आतंकित हो जाती थी—कितने समय से उसने कुर्मान से इस्माईल के पत्र के विषय में पूछा तक नहीं है। और इस्माईल भी उसे पूछने के लिए हमेशा उकसाता

रहता था।—"अगली बार पूछूँगी।"—वह अपने आपको सदा यही वचन देती। किन्तु हर बार विचार बदल देती—"नहीं। न पूछना ही अच्छा है।"

तोतोई पड़ोस में रहती थी।

कुछ दिन पहले की बात है, जब रात गहरी होने लगी थी और सारा गाँव सो चुका था, सईदा इस्माईल के कपड़े धोने वैठी। कपड़े धोते-धोते सवेरा हो गया, उन्हें आग में ही सुखाना पड़ा। फिर बहुत सवेरे ही वह पानी के लिए निकल पड़ी। देहली पार करते ही उसकी आँखें चकरा गयीं—रात में बहुत अधिक बर्फ़ गिरी थी, बर्फ़ की उदास, एक जैसी सफ़ेदी उसे अच्छी नहीं लग रही थी। उसे कै होने को हुई और सिर चकराने लगा।—"कहीं मेरा गर्भ तो नहीं ठहर गया है? लोग क्या कहेंगे?"—सईदा को एक झटका-सा लगा और उसकी बाल्टी नीचे गिर पड़ी। किन्तु उसने तुरन्त ही अपने आपको शान्त कर लिया—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यह तो रात भर जगे रहने से हुआ है।"—उसने इस ओर अधिक ध्यान न देने की कोशिश की और फिर वह इस्माईल के बारे में सोचने लगी—"आज वहाँ उनकी कैसी हालत हो रही होगी? जाड़ा शुरू हो गया है। जल्दी ही पाला भी पड़ने लगेगा। गुफा में उनकी कैसी हालत हो जाएगी?"—वह स्वयं अपने से पूछे जा रही थी। भीतर-ही-भीतर उसे बहुत पीड़ा हो रही थी।

जाड़ा पूरे ज़ोर पर था। अभी कल तक तो ज़मीन साफ़ थी और आज पहाड़ ऊपर से नीचे तक ताज़ी बर्फ़ से ढँक गये थे। सिंचाई की नालियों के दोनों ओर लगे हुए फ़ाख़्ते के रंग के सरपत वृक्ष पाले के बोझ से झुक गये थे। भारी-से धुँधले बादल आकाश में अलसाए हुए-से रेंग रहे थे। ऐसा लगता था कि जैसे आकाश नीचे झुक आया हो, दुनिया सिकुड़कर छोटी हो गयी हो। बर्फ़ अभी-भी चूरे की तरह गिर रही थी, तेज़ झोंकों के साथ आँधी चल रही थी। लोग अभी तक सोये हुए थे—इतनी सुबह की ठंड में किसी की भी बाहर निकलने की इच्छा नहीं थी।

सईदा सिर झुकाये चली जा रही थी और इस चिन्ता से जकड़ी हुई थी कि किसी तरह इस्माईल के पास बड़ा नमदा 'आला-कीज़' पहुँचा दे।—"उसके बग़ैर वह इतनी ठंड सहन नहीं कर पायेंगे।"—एकाएक उसका विचार-क्रम टूट गया, बर्फ़ में उसे कुछ निशान दिखाई पड़े।—"यह शायद तोतोई होगी।"—उसने अंदाज़ लगाया और उसी क्षण उसे तोतोई दिखायी भी दे गयी। तोतोई बाल्टियाँ लिए मिलने चली आ रही थी। उसके पैरों में बड़े-बड़े भारी बूट थे, और देखने में बिलकुल तिनके की तरह, गाल धँसे हुए, मुँह के कोनों पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं, मिर्जई का लबादा पुरुषों की तरह रस्सी से बाँध रखा था, जैसे कि गाँठ कस

रखी हो। सईदा को देखकर तोतोई ने बाल्टियाँ ज़मीन पर रख दीं और ठंड से नीले पड़े अपने हाथों को रगड़ते हुए उसकी प्रतीक्षा करने लगी।

"क्या सारी रात सोयी नहीं हो, बहन? आँखें कैसी धँस गयी हैं? चेहरा भी कैसा पीला पड़ रहा है?" पड़ोसिन ने पूछा।

"नहीं तो। सिर दर्द कर रहा है।" सईदा ने उत्तर दिया, फिर तुरन्त इतना और जोड़ दिया, "रात को सोना ही तो है, और क्या कर सकती हूँ?" किन्तु स्वयं अपने ही शब्दों से वह घबरा गयी। अपनी पीड़ा को वह स्वयं अनुभव कर रही थी।—"कहीं रात को तोतोई बाहर तो नहीं आयी थी और शायद समझ गयी हो कि मैं कुछ धो रही थी? अभी पूछ बैठेगी...।"

"हाँ, आज रात भर मुझे नींद नहीं आयी। बच्चा रोता रहा।" पहले उसने जो बिना विचारे कह दिया था, उसे जैसे वापस लेने का प्रयास करते हुए कहा।

तोतोई ने भी बात को समझते हुए सिर हिला दिया। लम्बी साँस खींचते हुए वह बोली, "हूँ-ऊँ, तुम भी मेरी ही तरह अकेली हो। तुम्हारी बूढ़ी सास घर का कलंक है, बस, भट्टी के पास बैठी रहना जानती है। अगर अपने पोते को देखती-भालती तो कुछ तो भला होता। एकदम दुबली हो गयी है।...तुम्हारा मायका भी दूर ठहरा। बस, एक के बाद एक जीवन में इसी तरह कुछ-न-कुछ घटता जा रहा है।",

तोतोई चुप हो गयी और वास्तविक सहानुभूति के साथ सईदा की ओर देखने लगी। उसे वास्तव में ही सईदा के ऊपर दया आ रही थी। मोटी भौंहों से खचित तोतोई के नेत्र जो हमेशा दृढ़ तथा मर्मभेदी बने रहते थे, इस समय कोमल, शान्त, विषादपूर्ण और चिन्ता में डूबे दिखाई दे रहे थे। सईदा ने तोतोई को ऐसी स्थिति में बहुत समय से नहीं देखा था।—"कौमार्यावस्था में वह शायद सुंदर रही होगी। असन्ताई के नेत्र भी तो सुंदर तथा ममतामय हैं।"—सईदा मन-ही-मन सोच रही थी।

गहरी साँस लेकर तोतोई बोली, "हालत बिगड़ती जा रही है, कोई चिट्ठी भी नहीं आती।...क्या करें, हमारा भाग्य ही ऐसा है। तीन छोटे बच्चों के साथ मैं अकेली रह गयी हूँ। लेकिन तुम तो, बहन, अपने पति के साथ छह महीने भी नहीं रही। तुम्हारे तो मौज के असली दिन थे कि लड़ाई छिड़ गयी।...बेटा पैदा हुआ, किन्तु पिता ने उसे देखा तक नहीं। ...खेद तो होता ही है। ओफ़, सब कुछ ठीक हो जाएगा, दिन कट जाएँगे, ठीक ही हो जाएगा। किन्तु चिट्ठियाँ भी तो नहीं आ रहीं। सोचते ही सिहरन-सी दौड़ जाती है शरीर में। जाड़े आ गये हैं मगर बच्चों को पहनाने को कपड़े भी नहीं हैं।...मक्की के भी दो ही बोरे बचे हैं।

...हमारे लिए यह कितना कम है?'' मन-ही-मन उसने हाथ हिलाया, आँसू पोंछे और तेज़ी से अपनी आँखों को चमकाकर बाल्टी को उठा लिया।

डरी हुई, किन्तु साथ ही इस बात पर प्रसन्न कि तोतोई कुछ भी समझ नहीं सकी, सईदा उसके पीछे-पीछे देखने लगी। वह तोतोई से कुछ भी कह नहीं सकी थी। इस तरुण महिला की सहृदयता, नारीसुलभ दया, साहस तथा कमजोरी ने सईदा को विचलित कर दिया था। साथ ही उसे ऐसा भी लग रहा था कि जैसे तोतोई ने अनजाने में ही उस पर कोई आरोप लगा दिया हो, उसकी निन्दा कर डाली हो। उसने कहा कि उन दोनों का भाग्य एक जैसा है और इसका तात्पर्य यह है कि सईदा का कोई शिकायत करने का अधिकार नहीं है। सईदा अपनी परस्पर विरोधी और अस्पष्ट भावनाओं को समझ नहीं पा रही थी और अपनी सफ़ाई देते हुए वह सोच रही थी—''मैं क्या करूँ? सबका अपना-अपना भाग्य है। जो भाग्य में लिखा है, वही होगा। यदि तोतोई के बच्चों के भाग्य में लिखा होगा तो उनके पिता अवश्य लौटकर आएँगे...।''

पड़ोसिन तोनोई का पति बाइदाली जीवन भर भिश्ती का काम करता रहा। शाम के वक़्त काम से वापस लौटते हुए हर कोई उसे पानी डालते हुए देख सकता था। खेतों में डग भरते हुए वह स्फूर्ति और आत्मविश्वास के साथ सिंचाई की नहरों में पानी भरता था।

तिपतिया घास के ऊपर गहरे बैंगनी रंग की लपट चमकती और हर बार जब बाइदाली हाथ ऊपर को उठाता तो उसके हाथों में मिट्टी से सना हुआ फावड़ा चौंधिया उठता।

''पानी को कितना बचा-बचाकर डालता है, इसके हाथ हीरे के हैं।'' गाँव के लोग उसके बारे में कहा करते। जब औरतें अपने फ्राकों को हाथ से ऊपर करके पानी से भरी नहर को पार करती थीं, तब वह खिलखिलाकर हँसते हुए कहता था,''ए, तुम वहाँ क्या कर रही हो? डरती हो कि पानी बहा ले जाएगा? फिर भी तो मेरे ही हाथों में आकर फँसोगी, छोड़ूँगा नहीं।''

''भूखे राक्षस, तेरी इन नहरों के पाट टूटकर बह जाएँ। तू पानी में डूब मरे।'' उसकी हम उम्र औरतें ज़ोर से चिल्लाकर उसे जवाब देतीं।

किन्तु वह प्रसन्न मुद्रा में पहले जैसे ही खिलखिलाकर हँसता रहता था।

फिर पीछे मुड़कर देखने पर साँझ के धुँन्धलके में बाइदाली खेत से होकर जाता हुआ दिखाई देता था—लम्बा क़द, दृढ़, घुमावदार कन्धे, जैसे कोई घुमक्कड़ योद्धा मज़े में जा रहा हो। वह पूरे खेत से होकर जाता था। खेतों के दोषों पर भी उसकी नज़र जाती। फिर आँखों से और दूर हो जाता था।

कभी-कभी पड़ोसियों के पास जाने पर सईदा को इस प्रकार का दृश्य दिखाई देता था—किसी बात पर अप्रसन्न हुई तोतोई अपने होंठों को सिकोड़कर ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ करती हुई करछनी से कढ़ाई के तले को रगड़ रही होती और बाइदाली बच्चों के लिए खिलौने बना रहा होता। वह शान्तिपूर्वक कहता, "तुम खामख़्वाह क्यों डाँट रही हो, जी? हमारी हालत दूसरों से तो बुरी नहीं है... ज़रा जाकर देखो, क्या हर परिवार में तीन-तीन बच्चे हैं? तुमने इन्हें मेरे लिए जन्मा है, मुझे और कोई शानोशौकत नहीं चाहिए।...ये रहे मेरे बच्चे, अल्ला के दिये हुए।"

मोर्चे से बाइदाली घर को अक्सर चिट्ठी लिखा करता था, किन्तु पतझड़ के मौसम से चिट्ठियाँ आनी बंद हो गयी थीं।...इस्माईल की भी कोई चिट्ठी नहीं आयी थी। हम अक्सर देखते थे कि डाकिया कुर्मान उनके घर के पास से जाते हुए अपने कुम्मैत घोड़े को एड़ी मारकर आगे बढ़ा देता था और कोशिश करता था कि जल्दी से आगे निकल जाए ताकि कोई उसे देख न सके। ख़ाली हाथ वह उनके यहाँ कैसे जाता! उसे लगता कि जैसे उसने कोई अपराध कर रखा हो, या उधार लिया हो और लौटाने को रुपये नहीं हों। दूसरी ओर, ग्राम-परिषद् के अध्यक्ष मिर्ज़ाकुल का आना-जाना बहुत बढ़ गया था। बस, एक इस बात से सईदा बेहद डरती थी। मिर्ज़ाकुल को कहीं कोई संदेह तो नहीं है, शायद वह इस्माईल को ढूँढ़ निकालने की कोशिश में हो? किन्तु उसके चेहरे से तो कुछ प्रकट नहीं होता था। मिर्ज़ाकुल को कहाँ से पता चल सकता है? इस्माईल के भागने का अभी तक गाँव में किसी को भी मालूम नहीं है। इस्माईल तो बहुत ही सावधान होकर रह रहा है।

"सईदा, दिन बहुत बुरे हैं—लोगों का भी विश्वास नहीं किया जा सकता। ध्यान से रहना—किसी को एक शब्द भी कहा तो।" हर बार वह उसे सावधान कर देता था, "और तो और यदि मेरे अब्बा भी क़ब्र से उठकर आ जाएँ तो उनका भी विश्वास मत करना। सुनती हो न?"

गाँव के चक्कर काटते हुए मिर्ज़ाकुल उनके घर में भी झाँक लेता था, जैसे कि उसे कोई काम हो। सेना में जाने से पहले वह घुड़सवारी किया करता था। पहरेदारों की काली टोपी बड़े रोब के साथ तिरछा करके पहनता था। कूदने-फाँदने का शौक था और अपना बाजा कोमुज़ सदा साथ रखता था। वह गाँव का सर्वश्रेष्ठ गायक माना जाता था, स्वयं गीत भी लिखता था। मोर्चे से एक हाथ गवाँकर लौटा था—और अब उसे पहचाना नहीं जा सकता था, पहले से एकदम बदल गया था वह। स्वभाव भी पहले जैसा नहीं रहा था—चिड़चिड़ा और कठोर

हो गया था। तूफ़ान से तहस-नहस हुए वृक्ष की तरह उसका बायाँ कन्धा नीचे की ओर झुक गया था, गर्दन आगे को आ गयी थी, उसके ऊपर दाग़ पड़ गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ और अधिक स्पष्ट होकर उभर आयी थीं, दृष्टि उदास और कुछ जकड़ी जैसी हो गई थी। अब मिर्ज़ाकुल मोर्चे पर जो उसने देखा था अधिकतर उसी के विषय में गाता था—उसका स्वर कभी मंद और गम्भीर, कभी तीव्र भावावेश से युक्त हो जाता और जब वह गाते-गाते अपने आप में खो जाता तो उसकी आँखें चमकने लगतीं, दन्तकथाओं के वीर पुरुषों-जैसी और वह अपने एकमात्र हाथ को इस तरह झटकने लगता, मानों कोमुज़ बजाते हुए उसके तारों को छेड़ रहा हो। लेकिन अब तो वह कभी भी कोमुज़ नहीं बजा सकेगा।

मिर्ज़ाकुल अक्सर तोतोई के पास आने लगा था।

"ओ तोतोई, कहाँ है? ज़िन्दा भी है क्या?" फिर ऊँची बाड़ के पार देखते हुए घोड़े पर बैठे-बैठे ही सईदा को चिल्लाकर कहता, "अरी सईदा, बच्चा ठीक है न?...जरा मेरे चुरुट में तम्बाकू तो भर दे जो तू घर में छिपाये बैठी है। चल, ज़रा यहाँ तो आ, अपनी पड़ोसिन के पास।...एक काम है।...फिर लौट जाना...।"

मिर्ज़ाकुल ने यह कभी नहीं पूछा था कि उनके पति उन्हें पत्र भेजते हैं कि नहीं। यह पूछकर वह उन दोनों को और अधिक पीड़ा नहीं पहुँचाना चाहता था, क्योंकि हमेशा वह स्वयं ही तो पूरे गाँव की डाक देखता था और इसलिए उसे गाँव के सब समाचार मालूम होते थे। फिर भी जितनी बार सईदा मिर्ज़ाकुल से मिलती, उतनी बार उसे घबराहट होती। इस्माईल के पत्र के विषय में पूछने पर उसे संदेह होता। इसका मतलब उसे कुछ मालूम है। यानी कि वह जान-बूझकर ऐसा करता है...।

सईदा ने तम्बाकू के खेत से गरमी के दिनों में बचाए हुए तम्बाकू का चुरुट बनाया और उसके कश लेती हुई पड़ोसिन के पास चल दी। दिल में वह अपने बढ़ते हुए भय को रोकने का पूरा प्रयत्न कर रही थी। मिर्ज़ाकुल उसे देखकर मारे जलन के घोड़े से उतर पड़ा और शौक़ से धुआँ छोड़ते हुए उसने इधर- उधर की बेमतलब बातें शुरू कर दीं...।

"अच्छा तम्बाकू बचाया, सईदा!" उसकी तारीफ़ करते हुए वह बोला, "इस्माईल के लिए क्यों नहीं भेज देती पार्सल बनाकर। थोड़ा पी लेगा। उसे अपना तलास गाँव याद आ जाएगा। आख़िर हमारे जैसा तम्बाकू और कहाँ होता है!"

"भेज दूँगी।" सईदा ने बड़ी कठिनाई से उत्तर दिया, और भी कुछ कहना था, किन्तु दिमाग़ में आया ही नहीं। उसे तो ऐसा जान पड़ा जैसे कि मिर्ज़ाकुल उसके चेहरे को देखकर उसके विचारों को भाँप गया हो। इससे उसके चेहरे का

रंग और अधिक उड़ गया था। बनावटी खाँसी करते हुए वह बोली, "छिः, कैसा कड़वा धुआँ है, गले में खराश हो रही है...इसमें ऐसी क्या ख़ास बात है...?"

बात तो जैसे अवसरानुकूल कही गयी थी, किन्तु सारी रात भर वह इसी चिन्ता में रही कि कहीं भेद तो नहीं खुल गया। "अल्ला, इस बार और बचा दे। मुझे इस तरह अपने चेहरे पर घबराहट नहीं लानी चाहिए। कहीं उसने सचमुच कुछ देख तो नहीं लिया? खुद मेरी ही ग़लती है, मुझमें साहस की कमी है।" वह अपने आप को कोस रही थी, "अच्छा, तो उसने तम्बाकू भेजने की बात क्यों कही? ख़ाली यूँ ही या किसी बुरी भावना से?"

एक दिन मिर्ज़ाकुल ने तोताई के बगीचे में नहर के साथ-साथ लगाए गये वृक्षों का निरीक्षण करके उसे फटकारा, "बाइदाली हर साल पतझड़ में टहनियों की कलम किया करता था परन्तु इस साल तुमने कलम नहीं की।...तुम्हारा मज़दूर तो बहुत पुराना आदमी है।...कलम करना ज़रूरी है, नहीं तो पेड़ बढ़ेंगे कैसे? ऊपर से जलाने को लकड़ी भी मिल जाएगी।"

तोतोई ने मिर्ज़ाकुल पर उदास दृष्टि डालते हुए गहरी साँस खींची और बोली, "यदि नहीं बढ़ेंगे तो मैं रोने नहीं लगूँगी—किसे ज़रूरत है! वृक्ष भी भला मनुष्य का सहारा होता है क्या? यदि घर में पुरुष न हो तो कुछ भी अच्छा नहीं लगता।...जरा करके तो देखो—कलखोज़ में भी काम करो, अनाज की बाली भी इकट्ठी करो और बच्चों की भी देखभाल करो।...हम दो पड़ोसिनें हैं—हमारे पतियों की कोई खैर-ख़बर नहीं, ज़िन्दा भी हैं, पता नहीं। अल्ला ही जाने! और तुम्हें यहाँ पेड़ों की पड़ी है!" अपने होंठ काटते हुए वह दूसरी ओर मुड़ गयी।

सईदा डर के मारे सकुचा रही थी कि अभी मिर्ज़ाकुल सारा रहस्य खोल देगा। कहेगा, "तू अपनी बराबरी इसके साथ मत कर। इसका इस्माईल तो कब से छिपा बैठा है, वह यहीं है, भगौड़ा।..."—इस क्षण तो लग रहा था कि वह ऐसा ही कह देगा। किन्तु मिर्ज़ाकुल आज बदलकर बोला, "तोतोई, तुझे मालूम होना चाहिए कि पेड़ ही नहीं, उसकी छाया भी काम आती है।" उसने शान्त स्वर में कहा, फिर अचानक क्रोध से भड़क उठा और ज़ोर से चिल्लाया जैसे बहुत समय से यह सब कहने को उसने अपनी ज़बान पैनी कर रखी हो, "तुम यह अपना औरतों का रोना-धोना बंद कर दो। चिट्ठी आने में ज़रा देरी नहीं हुई कि आसमान सिर पर उठा लिया। इससे अच्छा तो मक्की के डंठलों को ले जाकर छत पर पहुँचा दिया होता। न मालूम इतना ढेर-का-ढेर कैसे जमा कर डाला है। बसन्त तक सब चारा सड़ जाएगा। क्या बच्चों को दूध के बग़ैर ही रखने का इरादा है? इसके बदले में तुम्हारी गर्दन अलग कर डालूँगा। अगर एक

के बस का नहीं है तो पड़ोसिन को बुला लो—यहाँ तुम दो तो हो ही।...तुम दो मिलकर एक मज़दूर के बराबर हो।...रूसी औरतें राइफ़लें लिये खंदकों में बैठी हैं, पुरुषों से कम नहीं है, मैंने ख़ुद देखा है।...और एक तुम हो कि अपने घर में बैठकर भी चिट्ठी नहीं आयी करके रो रही हो... ।"

तोतोई कुछ देर चुप रही, कोई आपत्ति नहीं की। किन्तु सईदा ने जवाब दे डाला जिस पर वह स्वयं अचम्भित हुई, "हम करेंगी, आज ही टहनियाँ काटेंगी और मक्की के डंठलों को भी ऊपर छत पर डाल देंगी।"

उसने यह कहीं जल्दी में तो नहीं कह डाला था। परन्तु उसके कथन में सच्चाई थी, वह चिट्ठियों की बात को टालना चाहती थी और साथ ही उसे अपने तथा तोतोई के ऊपर शर्म भी आ रही थी। मिर्ज़ाकुल ने और कुछ नहीं कहा। वह अभी भी उत्तेजित और क्रोध के आवेश में था। उसने कुछ विचित्र दृष्टि से सईदा की ओर ध्यान से देखा—शायद उसका समर्थन ही किया। फिर घोड़े पर बैठकर चल दिया।

उस दिन घर के कामकाज में तोतोई की मदद करते हुए सईदा अपार हर्ष और आनंद का अनुभव कर रही थी। अब वह शान्त हो गयी थी, मानों सारे पाप धो डाले हों उसने। ऐसी सुखद स्थिति का अनुभव उसे बहुत समय से नहीं हुआ था। ऐसी उमंग जब सब कुछ उसी क्षण कर डालने की इच्छा होती है, जब काम करने को हाथ ललचाते हैं। वह तोतोई के बच्चों पर ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी—वे सहायता तो क्या कर रहे थे, उलटे बाधा ही अधिक डाल रहे थे। परन्तु इस बात पर उसे क्रोध नहीं आया। इच्छा हो रही थी कि गाए, हँसे, किन्तु जब भी वह मिर्ज़ाकुल की उस पर छायी हुई रहस्यमय दृष्टि का स्मरण करती, उसका ख़ून सहसा सूख-सा जाता था और हाथ सुन्न पड़ जाते थे।

"उसने मेरी ओर इस तरह क्यों देखा? मतलब उसे कुछ दाल में काला लगता है। या हो सकता है कि मुझे यूँ ही ऐसा लगा हो?"

फिर तो ऐसा होने लगा कि जब भी उसे मिर्ज़ाकुल दिखाई देता, उसकी घबराहट और बढ़ जाती। वह हमेशा इसी प्रतीक्षा में रहती कि अब पूछ बैठेगा, "तेरा इस्माईल कहाँ है? कहाँ छिपाये बैठी है...?" और उसका दिल इतनी तेज़ी से धड़कने लगता कि सईदा को डर लगता कि कहीं मिर्ज़ाकुल सुन ही न ले।

मिर्ज़ाकुल के चले जाने के बाद सईदा दौड़ी-दौड़ी घर में आती, काँपते हुए हाथों से ठंडे पानी की करछुल भरकर पी जाती, छाती पर पानी के छींटे डालती, तब जाकर, प्यास बुझा लेने के बाद, उसे होश आता। वह अपने आप को समझाती, "नहीं, उसे मालूम ही नहीं है। अगर वह कभी चोरी-छिपे देखने या

जाँच करने आया होता तो क्या मेरी नज़रों से छिपा रहता? उसने बस हालचाल ही तो पूछे और चल दिया। अगर उसे शक हो भी जाए...। चाहे कुछ भी क्यों न हो जाए मुझसे उसे कुछ भी नहीं मालूम चलने का। चाहे लाख कोशिश क्यों न कर ले। नहीं, इस्माईल के साथ मैं कभी बेवफ़ाई नहीं करूँगी—कभी भी नहीं। दूसरी औरतें तो आँखों में आँसू भरकर अल्ला से दुआ माँगती हैं कि उनके पति सकुशल घर लौट आएँ। क्या मुझे मेरा पति प्यारा नहीं है? क्या मैंने अपने लड़के की ख़ातिर अल्ला से दुआ नहीं माँगी थी। इस्माईल को अल्ला ने मुझे लौटाया है ताकि मैं ख़ुद उनकी रक्षा करूँ...।''

बर्फ़ीले तूफ़ानों और हाड़-तोड़ पाले के साथ जाड़े के सबसे अधिक ठंडे दिन—'चिल्दे'—आरम्भ हो गये थे। हफ़्ते भर तक ठंडी हवाएँ चलती रहीं और बर्फ़ उड़-उड़कर टेढ़े-मेढ़े घने ढेरों के रूप में इकट्ठी हो गयी, खाँकर जमे मार्गों पर जब क़दम पड़ते तो उनसे गूँज पैदा होती, लोहे की तरह।

गाँव ख़ाली हो गया था, सब लोग ठंड से बचने को सुरक्षित स्थानों में सिकुड़ गये थे, जिनके ऊपर अंदर से निकलता हुआ मिट्टी की चिमनियों का धुआँ दिखाई देता था। ऊपर धुँधले तथा विवर्ण आकाश में पर्वतों के गगनचुम्बी शिखर ठंडी हवाओं के मारे सिकुड़े जा रहे थे। दिन-पर-दिन जीना दूभर होता जा रहा था। बाहरवाले ठंडे कमरे के एक कोने में मुर्ग़ियाँ पंख फुलाकर इकट्ठी हो गयी थीं, एक-दूसरे की ओर सिकुड़ती ही जाती थीं। पलकों की सफ़ेद झिल्लियों से आँखों को आधा बन्द करके और उन्हें मींचकर वे बड़ी दयनीय दृष्टि से मनुष्यों की ओर देखती थीं। उन्हें दाना देने के अलावा और क्या किया जा सकता था उनके लिए! भट्टी के पीछे खिड़कियों के बीच की जगह में एक बड़े, घर के बने बोरे में मक्की रखी हुई थी। हर रोज़ बोरा घटता जा रहा था—ऐसा लगता था, जैसे कि दृष्टि पड़ने मात्र से ही मक्की की मात्रा कम होती जा रही है। अनाज की बचत करते हुए सईदा ने पतझड़ के मौसम से ही चक्की में जाना बंद कर दिया था। वहाँ पिसाई के बदले अनाज देना पड़ता है, इससे तो अच्छा है कि घर में ही अपने हाथ से चक्की पीसे। कभी-कभी तो रात को सोने को भी नहीं मिलता था—दिन भर काम करती और रात को आटा पीसने बैठ जाती। पत्थर की भारी चक्की से गरम-गरम चिंगारियाँ निकलतीं। रगड़ खाई हुई हथेलियों से मानो आग निकलती थी। कमर में तीव्र पीड़ा होने से आँखों के आगे अँधेरा छा जाता था, किन्तु सईदा चक्की को नहीं छोड़ती थी। इस्माईल को कल किसी भी हालत में भूखा नहीं छोड़ना होगा। पीसे हुए आटे को छानकर थोड़ा बच्चे के लिए हलवा बनाने को अलग कर लेती और बाक़ी आटे से इस्माईल के

लिए चपातियाँ बनाती। सईदा और उसकी बूढ़ी सास छलनी में बचे चोकर से ही सन्तोष कर लेती थीं। उसे उबालकर दलिया जैसा बना लेतीं। मुर्ग़ियों के लिए दाना कहाँ से लाए? स्वयं अपने लिए वसन्त तक भी मुश्किल से ही पूरा पड़ेगा।

सईदा ने मुर्ग़ियाँ इसलिए रखी हुई थीं कि वसन्त में बच्चों को अण्डे मिल जाएँगे किन्तु उसका ऐसा सोचना ग़लत निकला। मांस भी नहीं है। जब इस्माईल आता है तो सईदा उसके लिए मुर्ग़ी उबाल देती है। काश कि मुर्ग़ी थोड़ी मोटी होती, तब सईदा पति को जी भरकर असली मांस बनाकर ख़िलाती। तब कितना अच्छा होता! घर में जो कुछ भी होता, जो भी कहीं से मिल जाता, सईदा पति के लिए बचाकर रख लेती थी। "हम तो घर में बैठे हैं, पानी पीकर भी जी लेंगे।"—वह बूढ़ी सास से कहती, जो उसके कहे बिना ही पुत्र के लिए सब कुछ बलिदान करने को तैयार थी। इतना होने पर भी जब इस्माईल घर आता तो सईदा का कलेजा मारेशरम और दया से कचोटने लगता।

तूफ़ानी रातों में वह मुँह को मैले रूमाल से ढँककर कोट के ऊपर फ़र का घिसा हुआ चीकटदार ओवरकोट पहने आवारा की तरह दबे पाँव देहरी के पास आकर खड़ा हो जाता था। बाहर के पाले से उसके ज़रा-सा हटते ही उससे तीव्र दुर्गन्ध आने लगती थी। आग के ऊपर उसकी क़मीज़ की जुएँ झाड़ते हुए सईदा उसकी ओर आँखें बचाकर दया-दृष्टि से देखती और निराशा की स्थिति में सोचने लगती, "ओफ़, इतनी ठंड में तुम्हारी क्या हालत हो जाएगी? अगर घर में रहते तो तुम्हारे ऊपर धूल का एक कण भी बैठने नहीं देती...।" वह चूल्हे के पास उदास बैठा होता, उसकी जंगली आँखें—धुँधली-सी—क्रोध में चमकती थीं। नमदे-जैसा मुलायम चेहरा ठंड के मारे जर्जर हो गया था।

सईदा जानती थी कि उसे बहुत कष्ट है। वह पति की पूरी तरह से सेवा करती, बातचीत से उसका मनोरंजन करने का प्रयास करती। वह अपने आपको समझाती, "पति-पत्नी का हमेशा का साथ होता है, दुःख और कष्ट के समय भी। मेरे ऊपर चाहे कितनी ही मुसीबतें क्यों न आ जाएँ मुझे सब सहन करना पड़ेगा। बस, किसी तरह से इस्माईल बचे रहें।...बुरे दिन कभी तो बीतेंगे, काट ही लूँगी।...तोतोई को देखो, अकेली तीन बच्चों के साथ सत्तू को मुट्ठी-मुट्ठी भर बाँटकर खाती है। फिर भी सहे जा रही है, चेहरे पर एक शिकन तक नहीं है।..."

परसों की ही बात है, जब सईदा काम करके लौट रही थी तो पुल के पास तम्बाकू की कोठरी में मिर्ज़ाकुल उसका पीछा करते-करते पहुँच गया और ज़ोर से चिल्लाया, "सईदा, रुक!"

उसके स्वर में सन्देहास्पद निश्चय ही कुछ नहीं रहा होगा, किन्तु एक क्षण के लिए तो सईदा स्तंभित ही रह गयी, क्योंकि उसे सबसे भयानक बात की प्रतीक्षा थी और इसलिए उसने अपने काँपते हुए होंठ तुरन्त ही रूमाल से छिपा लिए। मिर्ज़ाकुल दुलकी चाल से उसके पास आया, जीन से झुका और उसके चेहरे में आँखें गड़ा दीं। सईदा बहुत ही आतंकित हो गयी।—'मालूम चल गया है, यही बात है न? अब देरी क्या? कह डालो ना!'—सईदा यह चिल्लाने को ही थी और मिर्ज़ाकुल उसे सताते हुए पत्थर की तरह शान्त भाव से उसकी ओर देखता रहा। फिर बोला, "सईदा, मैं तुझे अपना समझकर पहले से सावधान कर देना चाहता हूँ।"

"किस बारे में?" सईदा ने पूछा तो, मगर उसे ख़ुद अपना स्वर सुनाई नहीं दिया। उसने यह बोलकर कहा था या फिर केवल मन-ही-मन सोचा ही था।

"तू भी क्या है? क्या हो गया है तुझे?" मिर्ज़ाकुल अपने पूछने के अभद्र ढंग से घबरा गया था, परेशान लगता था—एक औरत को डरा दिया। पति की चिट्ठियाँ नहीं आ रहीं, कुछ भी सोच सकती है, एकदम कैसी पीली पड़ गयी! बोला, "अरे, घबरा मत, कोई बुरी ख़बर नहीं है।...मैं तो तुझे सिर्फ़ इतना बतलाना चाहता था कि कल उन परिवारों को, जिनके यहाँ से कोई मोर्चे पर गया हुआ है, थोड़ा-थोड़ा अनाज दिया जाएगा।...बात यह है कि सूची में कुछ नाम आ नहीं सके। तेरा नाम भी नहीं है, सईदा!...तू तो समझदार है, बुरा नहीं मानेगी।...किसी तरह तोतोई-जैसों को जिनके अधिक बच्चे हैं पाँच-पाँच, दस-दस किलो दिया गया है।...हाँ, तू कल शोर मत मचाना। देना सबको ज़रूरी था, पर है भी तो नहीं।"

सईदा को बड़ी शान्ति मिली।...होश में आने पर उसने जवाब दिया, "तो क्या हुआ, नहीं है तो न सही।" इसके आगे वह यह कहना चाहती थी—'ठीक ही तो है, मुझे ज़रूरत भी नहीं है। तोतोई-जैसों की मदद करनी चाहिए, मैं तो किसी तरह गुज़ारा कर लूँगी।'—किन्तु हिम्मत नहीं हुई, इतना साहस नहीं बटोर सकी।

मिर्ज़ाकुल ने इसका कुछ और ही अर्थ लगाया। इस तरह बोला, जैसे अपनी सफ़ाई दे रहा हो,"सईदा, सुन, मेरी बात का गलत अर्थ मत लगा। अगली बार तुझे भी दे देंगे।...अवश्य देंगे।...मैं वादा करता हूँ।...तू अपनी सास को भी समझा देना, नहीं तो बड़बड़ाएगी—अपनी बिरादरी का होकर भी मिर्ज़ाकुल किसी काम का नहीं है, चाहे वह ग्राम-परिषद्...।—मुझे तो अपने लोगों का भला करके खुशी ही होती। परन्तु खुद ही देख...।"

मिर्ज़ाकुल सोच में डूब गया। उसने गाँव में पड़े घुमन्तुओं के बर्फ़ से ढँके ठेलों पर दृष्टि दौड़ायी, फिर घोड़े की लगाम छोड़ी लेकिन तुरन्त ही रुक गया। वह और भी कुछ कहना चाहता था परन्तु लगता था कि निश्चय नहीं कर पा रहा है। उसने एक बार फिर सईदा की आँखों में विचित्र, अस्पष्ट दृष्टि गड़ाई जैसी कि उस दिन तातोई के आँगन में, किन्तु इस बार उसकी दृष्टि में खुलापन अधिक था। हाँ, इस बार इतना स्पष्ट था कि वह सईदा की ओर स्नेह तथा उल्लास की भावना के साथ देख रहा था, उसके नेत्र मानों कह रहे हों—"मैं जानता था कि तू ग़लत नहीं समझेगी।...मैंने हमेशा ही तेरा विश्वास किया है।. ..तुझसे अच्छा संसार में कोई नहीं है, मैं तुझे प्यार करता हूँ।...मुझे तुझसे प्यार करते बहुत समय हो गया है... ।"

डर के मारे अपने को रूमाल से ढँकती हुई, भय और घबराहट से विवर्ण हुई सईदा सहसा पीछे को हट गयी। उसकी पूरी तरह खुली हुई आँखें आश्चर्य से जड़वत् हो गयी थीं, इस समय वह बहुत अच्छी लग रही थी।

"मैं जाती हूँ।" धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में वह बोली।

"ज़रा रुक तो सही!" मिर्ज़ाकुल असमंजस में था। उसने लगाम पकड़ी और फिर छोड़ दी। फिर दुबारा बोला, "सईदा, ज़रा रुक! यदि तुझे कोई तकलीफ़ हो तो मुझसे छिपाना मत!...तेरे लड़के के दलिये के वास्ते...चाहे अपना ओवरकोट ही क्यों न बेचना पड़े...अवश्य लाकर दूँगा... ।"

उसे सुनते हुए बिना कुछ कहे सईदा सिर हिला रही थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे। मिर्ज़ाकुल के प्रति आभार की भावना उसके मन में थी परन्तु उसके नेत्र भावहीन थे तथा कुछ ऐसा व्यक्त कर रहे थे—"मुझे मत छुओ। इस तरह मत देखो। मुझे तुमसे डर लगता है। छोड़ दो, मुझे जाने दो!'

मिर्ज़ाकुल ने धीरे-धीरे पलकें झुका दीं और काठी में सीधा होकर बैठने के बाद एक बार फिर जब सईदा पर नज़र डाली तो उसकी आँखें वैसी ही हो गयी थीं, जैसी कि हमेशा हुआ करती थीं। उसने निर्लिप्त स्वर में कहा, "अच्छा जा, तेरा बेटा शायद रो रहा होगा... ।"

सईदा तेज़ी से मुड़ी और चली गयी, बस दौड़ी नहीं, अपने को बड़ी मुश्किल से रोक पा रही थी। जब कुछ दूर हो गयी तो एक बार फिर पीछे मुड़कर देखा और रुक गयी। मायूसी से सिर झुका कर मिर्ज़ाकुल किनारे-किनारे चला जा रहा था, उसने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। घोड़ा भी चुपचाप, बिना हाँके, चला जा रहा था। मिर्ज़ाकुल कितना कमज़ोर हो गया था, उसकी कमर कैसी झुक गयी थी, हाथ कटे कंधे का झुकाव और भी स्पष्ट होकर अब शायद

इसलिए दिखायी दे रहा था क्योंकि उसने ओवरकोट का कालर ऊपर कर रखा था।— "ओवरकोट बेच देने को कह रहा था।...उसे भी तो ठंड लगती है।..."—सईदा को यह सोचकर कोई अनोखी अनुभूति हुई। उसका हृदय प्रबल स्नेह तथा दया से सहसा आप्लावित हो उठा। उसकी इच्छा हुई कि दौड़कर उसे रोक ले, स्नेहमय शब्दों से उसे उष्णता प्रदान करे और माफी माँगे।...'तुम तो शादी-शुदा हो। मुझमें ऐसी कौन-सी ख़ास बता मिली तुम्हें? गाँव में क्या सुंदर लड़कियों की कमी है? तुम्हें मालूम नहीं है कि मेरे पति पास ही हैं...।"

उसके दिमाग़ में सब उलझ गया था, पैरों के नीचे दबी बर्फ़ की आवाज़ कानों में तेज़ी से गूँज रही थी। जब तक सईदा घर नहीं पहुँच गयी, तब तक वह डर-डरकर पीछे मुड़कर देखती रही तथा काँपते हुए होंठों को रूमाल से कसकर ढँके रही।

कल एक बुरी ख़बर पूरे गाँव में फैल गयी थी। तम्बाकू की कोठरी में औरतें आपस में कानाफूसी कर रही थीं किन्तु जब तोतोई पीठ पर तम्बाकू की गठरी बाँधे उनके पास से गुजरने लगी तो वे शोक की मुद्रा में चुप हो गयीं। उनमें से एक जो काला शाल ओढ़े हुए थी, जिसके चेहरे पर खरोंच के गहरे निशान अभी तक भरे नहीं थे, अपने को रोक न सकी और ज़ोर-ज़ोर से सिसकियाँ भरती हुई बोली, "बेचारे अनाथ बच्चे! अल्ला करे, तुम्हारी मुसीबतें जर्मन के ऊपर जा पड़ें...।"

ग्राम-परिषद् में ख़बर आयी थी कि बाइदाली स्तालिनग्राद के निकट शहीद हो गया है।

पिछले कुछ दिनों से गाँव में कभी कहीं से, तो कभी कहीं से पुरुषों की रोने की आवाज़ें आने लगी थीं।—"बोओरूमोइ (मेरे प्यारे भइया)। बोओरूमोई!..."—काठी में बैठे इधर-उधर घूमते हुए वे रोते-चिल्लाते नज़र आते थे। इसके जवाब में उन्हें लोगों से घिरे हुए तम्बू से स्त्रियों का हृदय-विदारक करुण स्वर सुनाई पड़ता था। वे दरवाज़े की ओर पीठ करके बैठ जातीं, नाख़ूनों से अपने चेहरे को नोंचती और इस प्रकार चिल्लातीं—

तेरी चाँदी की लगाम,
शेर की तरह जवान,
अब लगाम ख़ाली टँगी,
मैं सिर ढँकी काले रूमाल से,
तेरा बेटा आकर
लेगा बदला दुश्मन से...।

मोर्चे पर शहीद होनेवालों की याद में औरतें आधी रात तक रोती-चिल्लाती रहती थीं, तब तक जब तक कि थककर चूर नहीं हो जाती थीं और गला बैठ नहीं जाता था। जब भी सारे लोग मातमपुर्सी के लिए सईदा के एकत्र होने की सोचते तो उसकी हालत बड़ी ख़राब हो जाती। उसे गाँववालों के सामने आने में डर लगता था और अनजाने ही वह दूसरों के पीछे जाकर छिप जाती थी। ऐसे शोकपूर्ण दिनों में उसकी इच्छा कहीं पहाड़ों में, किसी निर्जन स्थान में भाग जाने की होती और वहीं एकान्त में रोने-धोने की भी, ताकि कोई न उसे देख सके, न सुन सके।

और अब तोतोई की भी बारी आ गयी थी। उसके घर के निकट भी लोगों की भीड़ जमा होगी, वह भी मातम मनाएगी और नाख़ूनों से अपने चेहरे को नोचेगी। उसके बच्चों को अपने को असली मर्दों की तरह अपने को ज़ंजीरों से बाँधकर बाहर आँगन में छड़ों के सहारे खड़े होकर ज़ोर-ज़ोर से रोकर पुरुषों का स्वागत करना पड़ेगा, 'हाय बप्पा, हाय रे बप्पा!...' बेचारी तोतोई, उसे अभी तक नहीं मालूम कि उसके ऊपर कैसी मुसीबत आ पड़ी है। बाइदाली की मौत का समाचार अभी तक सिर्फ़ मिर्ज़ाकुल तक ही सीमित था। किर्गीज़ लोगों के यहाँ ऐसी बातों को तुरन्त बतलाने का रिवाज़ नहीं है। बतलाने का समय बड़े-बूढ़े निश्चित करते हैं। कलखोज के प्रवन्ध-कार्यालय को प्राप्त हुए मृत्यु-पत्र के साथ रेजिमेण्ट के कमांडर का पत्र भी आया था।

उसने लिखा था कि जब उनकी टुकड़ी ने आक्रमण किया तो पता चला कि वह वोल्गा के तट और सुरंग बिछी तारों की बाड़ के बीच में एक तंग पट्टी में फँस गयी है। कोई उपाय नहीं था। सारे लोग मशीनगनों की गोलियों के शिकार हो रहे थे, किसी को भी साहस नहीं हुआ कि पहल करके सुरंगों के पास पहुँच जाए। उसी समय बाइदाली साहस करके तारों की ओर बढ़ा। एक धमाका हुआ और सुरंगें फट गयीं, बीच में रास्ता बन गया। इस तरह दुश्मन को पीछे खदेड़ दिया गया।

चिट्ठी सुन लेने के बाद, मिर्ज़ाकुल के घर में एकत्रित हुए बड़े-बूढ़ों ने अपने हमवतन के सम्मान में मौन रखा। यह मौन काफ़ी देर तक रहा। मौन रहकर ही उन्होंने दुआएँ दीं।

"आह!" अन्ततः डाकिए कुर्मान ने गहरी साँस भरी और अपनी टोपी आँखों तक खींच ली, "वह पानी तक बर्बाद नहीं करता था, उसके हाथों में कमाल था।...जहाँ बाइदाली पानी डालता, वहाँ हमेशा अनाज पैदा होता।... बिलकुल सच बात है! उसके बच्चे मेरा रास्ता रोककर खड़े हो जाते थे—'कुर्मान

काका, हमारे बप्पा की चिट्ठी कब लाओगे?'—मैं हमेशा मेले के दिन लाने को कहता और वे मान जाते! और अब देखो क्या-का-क्या हो गया!...क्या करें, जनता का वही भाग्य है, जो बतिर[1] का।''

मिर्ज़ाकुल ने बाइदाली की मृत्यु के विषय में बड़े-बूढ़ों की राय जाननी चाही। उनकी सलाह थी—'जब मरने की चिट्ठी आ ही गयी है तो कुछ किया नहीं जा सकता। लेकिन, मिर्ज़ाकुल, तुम हमारी बात सुनो। ऐसे कठिन समय में जबकि तोतोई अपने बच्चों को पिल्लों की तरह लिए-लिए फिर रही है और किसी तरह उनका पेट भर रही है, उसे पति की मृत्यु का समाचार सुनाना उचित नहीं होगा। यदि तोतोई के हाथ ढीले पड़ गये तो उसके बच्चों का क्या होगा? नहीं, उनकी आशा बनी रहनी चाहिए। पतझड़ तक रहने दो—तब तक फ़सल काट लेंगे, खाने को कुछ हो जाएगा। तब अपने इलाके में बतिर के मरने की खबर देंगे और पूरे सम्मान के साथ बाइदाली की मातमपुर्सी करेंगे...।'

पूरे गाँव को बुजुर्गों का यह निर्णय उचित ही लगा। पतझड़ के पहले बाइदाली की मृत्यु के विषय में किसी को कुछ कहने का अधिकार नहीं था। किन्तु तम्बाकू की कोठरी की औरतें अपने को रोक न सकीं और चोरी-छिपे रोने लगीं कि तोतोई को कुछ मालूम नहीं चले।

रात को जब इस्माईल आया तो सईदा ने उसे अपने पड़ोसी बाइदाली का समाचार सुनाया। इस्माईल कुछ नहीं बोला, उसने केवल कंधे उचका दिये। क्या मालूम, वह क्या सोच रहा था? शायद भीतर से उसे बाइदाली पर दुःख हुआ हो, हो सकता है कि नहीं भी हुआ हो।—'मैं बेकार ही छिप रहा हूँ, बेकार ही अपनी जान प्राण बचाने में लगा हूँ। उधर बाइदाली आँख मूँदकर आग में कूद पड़ा और शहीद हो गया। होना भी ऐसा ही चाहिए। नहीं, मैं अभेद्य हूँ, मेरा पता नहीं चल सकता।'

चुपचाप बड़े-बड़े घूँट लेकर गुट-गुट करके शोरबे का भरा प्याला समाप्त करने के बाद इस्माईल अप्रसन्न स्वर में गुर्राया, ''और है?''—'बेचारे को दूसरों के दुःख पर रोने का समय ही कहाँ है? दिन-रात ठंड से सिकुड़े रहते हैं। सबसे आँख बचाकर आना, और फिर खाने को कभी मिला, कभी नहीं...।''—आज इस्माईल की ही तरफ़ से सफ़ाई देते हुए सईदा सोच रही थी।

उसे विदा करते के बाद वह देर तक सो नहीं पायी। वायु के प्रचंड वेग से खिड़की पर बर्फ़ का ढेर जमा हो गया था, कहीं बाहर ठंड के मारे कोई कुत्ता दो-एक बार रोया और फिर नाक से आवाज़ की, 'सीः। सीः।' सईदा काँपने

1. योद्धा।

लगी। उसके लिए यह सोचना तक कितना कष्टप्रद था कि इस समय बाहर खेतों में सरकंडे के झाड़ों में पाले के बीच साँय-साँय करती हुई तेज़ हवा चल रही होगी और ऐसी रात में अकेला इस्माईल अपने आश्रय-स्थल की ओर बढ़ रहा होगा। इतने में बच्चा भी रोने लगा। उस रात नींद अच्छी तरह नहीं आयी।

सवेरे डाकिया कुर्मान आ गया। वह साथ-साथ परिषद के हरकारे का काम भी करता था। उसके फ़र-कोट के कॉलर उड़ रहे थे। वह किसी कारण से बहुत परेशान नज़र आ रहा था।

"सईदा!" दरवाज़ा खटखटाते हुए वह बोला, "ज़िले से भीतरी मामलों के जन-आयुक्त के यहाँ से कोई आया है। तुम्हें पूछ रहा है। जल्दी आओ।"

सईदा झट से बाहर आयी और तुरन्त ही सब कुछ समझ गयी। यह भी नहीं पूछा कि उसे क्यों बुलाया जा रहा है। चुपचाप दाँत पीस दिये।—"प्यारे इस्माईल, अब क्या होगा?"—उसके दिमाग़ में यह सवाल कौंध गया। इतने में असन्ताइ दौड़ा-दौड़ा आया। उसने सोचा होगा कि कुर्मान चिट्ठी लाया है।

"सईदा जान, इस्माईल काका की चिट्ठी आयी है।" वह ख़ुशी के मारे चिल्लाया, किन्तु सईदा के उतरे हुए चेहरे को देखकर बीच ही में रुक गया। जैसे उसने कोई अपराध कर डाला हो। इस तरह उसकी ओर देखते हुए वह बालक एक तरफ़ हट गया। वह या तो ठंड से या शर्म के मारे सिकुड़ा-सा जा रहा था।

"एक और बुरी ख़बर है।" उदास स्वर में कुर्मान बोला। मालूम नहीं ये शब्द किसके लिए कहे गये थे—सईदा के लिए या कि बालक के लिए। इसके आगे एक शब्द भी कहे बग़ैर उसने घोड़े को चाबुक मारी और वहाँ से चल दिया।

सईदा को यह याद नहीं है कि वह ग्राम-परिषद् तक कैसे पहुँची। काँपते हुए हाथ से उसने दरवाज़ा खोला। कुर्सी पर ओवरकोट पहने एक पुरुष बैठा हुआ था। ओवरकोट के एक तरफ़ पिस्तौलदान लटक रहा था। सईदा उससे आँख नहीं मिला सकी, उसे चक्कर आ रहे थे। ज़मीन मानों खिसकी जा रही थी। इधर आते हुए उसे एक ही विचार विह्वल किए हुए था कि 'इस्माईल को पकड़ कर ले जाएँगे।' परन्तु जैसे ही सईदा ने ग्राम-परिषद के दफ़्तर में दाख़िल हुई, उसमें अद्‌भुत दृढ़ता जाग्रत हो गई, जिसमें उसकी सारी हिचक ग़ायब हो गई—'नहीं, मैं इस्माईल को नहीं दूँगी। नहीं दूँगी।' अब सईदा के लिए भय नाम की वस्तु का अस्तित्व समाप्त हो गया और मेज़ के पास खड़ी वह दृढ़तापूर्वक ये शब्द शपथ की तरह दोहराए जा रही थी, 'मैं इस्माईल को नहीं दूँगी। नहीं सौंपूँगी।'

"बैठिये।" आन्तरिक मामलों के जन-आयुक्त के यहाँ से आये अफ़सर ने कहा।

सईदा को जैसे सुनाई नहीं दिया।

"बैठिये!" उसने फिर कहा।

नींद में जैसे सईदा ने स्टूल छूकर ढूँढ़ा और बैठ गयी।

पूछताछ समाप्त करने के बाद वह अफ़सर काफ़ी देर तक लिखता रहा। साथ-साथ कुछ सोचते हुए उसे ग़ौर से देखता भी जा रहा था। फिर उसने सूचित किया कि उसका पति फ़ौजी रेलगाड़ी से भाग गया है। उसके पास राइफ़ल और गोलियाँ भी हैं। अफ़सर ने पूछा, "अब वह कहाँ है?"

"पता नहीं? मुझे कुछ मालूम नहीं है।" सईदा ने उत्तर दिया।

"छिपाओ मत, हम उसे ज़रूर ढूँढ़ निकालेंगे। अगर उसका भला चाहती हो तो उससे कह दो कि खुद हमारे हवाले हो जाए। तुम्हें हमारी मदद करनी ही चाहिए।"

"नहीं मालूम, मैं कुछ नहीं जानती। वह फ़ौज में भर्ती हुए, इसके सिवा मुझे कुछ नहीं मालूम है। वह भागे कि नहीं, मुझे इसका कुछ पता नहीं...।"

अफ़सर अधिक न पूछे या किसी-न-किसी तरह उसे समझाकर राज़ी न कर ले, इसलिए सईदा हर बात का एक ही संक्षिप्त उत्तर देती, "मैं नहीं जानती।" किन्तु मन में सोचती—'मैं स्वयं अपनी शत्रु नहीं हूँ। जो चाहे करो, चाहे मार डालो, मैं कुछ भी नहीं बताने की।'

"मैं कुछ नहीं जानती।" वह एक ही रट लगाये जा रही थी।

पूछताछ पूरी हो जाने के बाद सईदा अपने घर को चल दी—सारी ताक़त बटोरकर, ताकि कहीं गिर न पड़े, सीधे होकर चल सके। जहाँ सड़क खत्म हुई वहाँ उसे मिर्ज़ाकुल मिला। वह बड़ी तेज़ी के साथ घुड़साल से आ रहा था। चलते-चलते ही चुरुट का आख़िरी कश पूरा कर रहा था। आज वह खिंचा-खिंचा-सा और अस्वस्थ दिखाई दे रहा था। चेहरे से दुबला लग रहा था। गालों पर फीका पीलापन छा गया था। ओवरकोट के धुले हुए कपड़े के नीचे से उसका टेढ़ा-मेढ़ा उभरता हुआ हाथकटा कंधा जैसे आगे की ओर निकला आ रहा था, टोपी भौंहों तक खिंच आयी थी।

सईदा को देखकर मिर्ज़ाकुल रुक गया। भौंहें चढ़ाते हुए उसके ऊपर तीखी नज़र डाली। फिर दरवाज़े की ओर इशारा करते हुए पूछा, "वहाँ गयी थी क्या? कुछ कहा?"

"मुझे क्या कहना है? मैं कुछ नहीं जानती।" सईदा ने उत्तर दिया।

"अच्छा, तो यह बात है।" कुछ देर मिर्ज़ाकुल चुप रहा, फिर भयंकर हँसी के साथ उसने चुरुट के अन्तिम टुकड़े को फेंका और अपने जूतों से उसे मसल डाला। फिर अपनी भौंहों को एकदम चढ़ाकर उसने दृढ़तापूर्वक पूछा, "तू सोचती है कि उसकी भलाई कर रही है? लोगों के सामने क्या मुँह दिखाएगी? तू उसे कहाँ छिपाये बैठी है? हम सारे मर्द, दव्ल्येत की सन्तान, हर कोई जिसके सिर पर टोपी है, हम सब गये, एक भी नहीं रहा। चाहे अच्छे दिन हों, चाहे बुरे, जनता के साथ धोखा ख़ुदा न करवाये। हम सबको धिक्कार है। तू यह बात समझती है क्या? जवाब दे मुझे—समझती है कि नहीं?...समय रहते इस्माईल को ले आ। वह भी जहाँ सब लड़ रहे हैं, वहाँ जाकर लड़े।"

सईदा के हाथ गर्दन पर पड़े हुए थे, उसने उन्हें कस लिया। मिर्ज़ाकुल का प्रत्येक शब्द उन अशक्त हाथों से वह सब करवा रहा था, जो कि वह कभी भी नहीं कर सकते थे। बस, एक शब्द की और क़सर है। फिर सब कुछ समाप्त हो जाएगा, वह सहन नहीं कर सकेगी। ज़मीन पर गिर पड़ेगी और सब कुछ स्वीकार कर लेगी...।

"तुम...तुम मेरी अन्तरात्मा को मत कुचलो।" वह उन्माद में चिल्लाई।

इससे अधिक वह कुछ नहीं कह सकती थी। नैराश्य और क्रोध से पागल हुई वह मिर्ज़ाकुल पर टूट पड़ी, "क्या पता वह वास्तव में भागे हों। मुझे क्या मालूम? सबको अपना जीवन प्यारा होता है, हर कोई अपनी रक्षा करना चाहता है। लेकिन इससे तुम्हें क्या लेना? तुम्हारे रास्ते में टाँग तो नहीं अड़ायी। या तुम्हें गाँव में जगह कम पड़ रही है? या तुम चाहते हो कि सभी तुम्हारी तरह अपंग बनकर लौटें?"

मिर्ज़ाकुल स्तब्ध रह गया। उसका कटा हाथ उन्मादवश फड़फड़ा उठा, ओवरकोट की जेब से ख़ाली बाँह बाहर निकल आयी, पीड़ा और क्रोध के मारे चेहरा विकृत हो गया। वह बड़ी देर तक लम्बी साँसें लेता रहा।

"तेरा मतलब है कि मैं अपाहिज़ होकर इसलिए लौटा कि मैं तेरे इस्माईल से ज्यादा बेवकूफ़ हूँ?" मिर्ज़ाकुल एक ओर हट गया, फिर ऐसे झुका कि ज़मीन में कुछ ढूँढ़ रहा हो। फिर सईदा की ओर बढ़ा और चाबुक को सिर के ऊपर ले जाकर सईदा के कंधों पर मारने लगा। वह न चिल्लायी, न पीछे को हटी। सिर के ऊपर चाबुक चमक रहा था, सईदा के ऊपर जैसे जादू कर दिया गया हो—वह उसके कटे हाथ के बाक़ी हिस्से की ओर देख रही थी, वह भी कोट की हिलती हुई बाँह के भीतर से काँपता और फड़कता हुआ दिखाई दे रहा था। एक क्षण को उसे मिर्ज़ाकुल के भयंकर और क्रोध से उबलते हुए नेत्र और चबाये हुए होंठ

दिखाई दिये, जिनसे ख़ून टपकने लगा था। इसके बाद उसे लगा कि मिर्ज़ाकुल चाबुक को घुटने पर रखकर तोड़ने का व्यर्थ प्रयास कर रहा है।

मिर्ज़ाकुल ने हाथ को पूरा घुमा कर चाबुक को छत पर फेंक दिया और स्वयं वहाँ से भाग गया। उस समय वह मुट्ठी में बंद ओवरकोट की बाँह को अपनी छाती से इस तरह लगाये हुए था, जैसे कि वहाँ कोई ताज़ा घाव हो। वह भागा जा रहा था, वह आसपास के मकानों के बग़ीचों, बर्फ़ के ढेरों और नहरों को कूदता-फाँदता भागा जा रहा था, फटा-पुराना लड़ाई का झोला बार-बार उसकी जाँघ से टकरा रहा था।

क्या बात हो गयी?...यह सईदा की समझ में नहीं आया। वह डर के मारे उसकी ओर देखती रही। अब जाकर उसे चाबुक की कंधे पर पड़ी मार की पीड़ा का अनुभव हुआ। अपमान के मारे उसका दम घुटा जा रहा था, उसकी इच्छा हो रही थी कि रोये, गला फाड़-फाड़कर चिल्लाये।

फिर वह सड़क पर चलने लगी किन्तु उसे अपने सामने कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। तेज़ हवा उसके भावहीन अपलक नेत्रों को अन्धा किये दे रही थी, नीची हवा से उसके पाँव उखड़े जा रहे थे। उसके विचार वैसी ही जलन पैदा कर रहे थे जैसी कि गर्दन पर पड़े चाबुक के घावों से हो रही थी। 'इसने मुझे बुरी तरह पीटा, कलंकित किया। मैं इस्माईल से कहूँगी। वह अवश्य बदला लेंगे।'—वह यही रट लगाती रही और उसी क्षण अपना निर्णय बदल भी दिया—'नहीं, नहीं कहूँगी, क्योंकि ऐसा करने से इस्माईल गाँव पर धावा कर देंगे, जिससे कि वह पकड़े जा सकते है। अच्छा यही होगा कि चुप रहूँ। सहन कर लूँगी, पर अंदर से कभी भी इसे क्षमा नहीं करूँगी, मरते दम तक भी नहीं। .. .ठीक ही कहा है—भाई-भाई का दुश्मन होता है। मिर्ज़ाकुल को इस्माईल से इसलिए चिढ़ है कि वह जीवित और सही-सलामत हैं।...किसी तरह यह जाड़ा कट जाए, फिर दर्रा खुल जाएगा—चत्काल चले जाएँगे। वहाँ हम अन्य सब लोगों की तरह रहेंगे, किसी से कुछ छिपाये बिना।....मिर्ज़ाकुल, तेरा नाश हो। अब जो मैंने कभी तुझसे आँखें मिलायीं...।'

घर लौटते ही सईदा ने अपना सिर सास की गोद में डाल दिया और उसे निरुत्तर एवं अवाक् छोड़कर अपने आलिंगन में कसकर रोने लगी, "माँ, मिर्ज़ाकुल ने मुझे मारा...।"

वह बहुत देर तक सिसक-सिसककर रोती रही। उसके रुदन के बीच सास की भर्रायी आवाज़ कुछ-कुछ सुनाई पड़ रही थी, "प्यारी बेटी!...मेरी सारी आशाएँ तुझ पर ही टिकी हैं, तू ही हमारा सहारा है।...मैं सब देखती रहती हूँ,

सब कुछ जानती हूँ। मैं सौ सालों तक तेरे लिए दुआ माँगूँगी।...किसी तरह इस अपमान को पी जा, बेटी! चुप रह जा।...हमारा और मिर्ज़ाकुल का फ़ैसला अल्ला करेगा। मिर्ज़ाकुल हमारे एहसान को भूल गया है... ।''

रात को दर्रे के पास सईदा इस्माईल से मिली। गाँव में गये बिना ही वह अपनी गुफ़ा में लौट आया था।

वसन्त के आते-आते बहुत-से गाँववालों का अनाज समाप्त होने लगा था—बचा-खुचा झाड़ रहे थे। सबकी जबान पर एक ही बात थी—जल्दी से गायें ब्या जाएँ, नयी जौ तक इन्तज़ार करना ही पड़ेगा। फिर कहीं गेहूँ की बारी आएगी। कहना आसान है, करनेवाला ही जानता है इतने इन्तज़ार का मतलब।

''बसन्त में मवेशी कमज़ोर पड़ जाते हैं, हड्डियाँ टूटने लगती हैं। इन्सान को भी कम तकलीफ़ नहीं होती... ।''

सईदा के लिए ये सबसे कठिन दिन थे। जिस दिन उसका सामना मिर्ज़ाकुल से हुआ था, उस दिन से इस्माईल ने घर आना छोड़ दिया था, वह सारा दिन और सारी रात गुफ़ा में ही छिपा रहता । जब सईदा सूखी टहनियाँ इकट्ठी करने जाती तभी उसके लिए भोजन भी ले जाती, यदि दिन में मौक़ा नहीं मिलता तो रात को वहाँ जाती। सब ठीक था परन्तु एक बात की चिन्ता उसे रहती थी—इस्माईल का पेट नहीं भरता था। वह जितना भी खाने का ले जाती सब-का-सब, एक-एक दाना तक, खा जाता, लगता कि पेट भर गया होगा, किन्तु उसकी आँखें वैसी-की-वैसी भूखी और ललचाई रहतीं। वह जानने की कोशिश करते हुए पूछता, ''घर में कुछ रखा भी है क्या या भूख से प्राण निकल जाएँगे? मुझसे कुछ मत छिपा, सच-सच बता दे।''

''ऐसा क्यों कहते हो? तुम किसी तरह से ज़िंदा रहो, जीवित व्यक्ति के लिए एक टुकड़ा रोटी का मिल ही जाएगा... ।'' सईदा अपने पति को झिड़क देती।

अब सईदा पौ फटते ही उठने लगी थी और पिछले साल के खलिहानों को चली जाती थी। वहाँ वह बर्फ़ पर टाट का चँदोवा टाँगकर शाम होने तक धूसी को फटकती और भूसे को अलग करती। पतझड़ की छँटाई में जो भूसे में चला गया था, अब उसी को साफ़ करके उसमें से एक-एक दाना बीनती। दिन भर में दानों का थैला भर जाता था। रात को इन्हीं दानों को चक्की में पीसकर सईदा इस्माईल के लिए रोटी तैयार करती थी। परन्तु इस तरह आख़िर कब तक रहा जा सकता था? सईदा की भी एक हार्दिक अभिलाषा थी—बछिया की। ख़ुदा की

दुआ से यदि गाय ठीक से ब्या जाए तो इस्माईल को दूध भी और मक्खन भी मिल सकेगा। इस्माईल अपने कटघरे में बंद हो गया है। जानवरों-जैसा हो गया है, जैसे कि सारी दुनिया से घृणा करता हो। हमेशा चुप्पी साधे रहता है, एक भी अच्छा शब्द उसके मुँह से सुनने को नहीं मिलता।...उसके दिमाग़ में क्या है? वह किस विचार में डूबा रहता है? यदि मुँह खोलेगा तो एक ही बात करेगा—दर्रे का रास्ता खुलने में अभी और कितना समय बाक़ी है और किस रास्ते जाने में कम ख़तरा होगा।...वह सबसे अधिक भोजन के विषय में बात करता और, निश्चय ही, सिर्फ़ इसी बारे में सोचता था। जब मांस की बात चलती तो उसके मुँह में पानी भर आता और वह गुस्से में भरकर थूक देता। कभी अकारण ही, उदासी में डूबकर, घोषित करता, "मेरा ख़ून ठंडा पड़ गया है—उसमें पानी की मात्रा अधिक हो गयी है।...बहुत अधिक... ।"

उसकी आँखों में कहीं कुछ अशुभ लक्षण प्रकट होने लगते और वह फिर चुप हो जाता। यह मौन काफ़ी देर तक चलता था। इन क्षणों में वह क्या सोचता होगा? इस तरह कहीं बौद्धिक सन्तुलन भी न चला जाए...!

"शायद बच्चे की याद से दुःखी हैं।" एक दिन सईदा ने ऐसा भी सोचा। अगले दिन बच्चे को स्नान कराके साफ़ कपड़े पहनाये और उसे अच्छी तरह लपेटकर बाहर निकली। पड़ोसियों के पूछने पर उसने एक ही उत्तर दिया, "अपने रिश्तेदारों के पास जा रही हूँ, मालये घाटी में।" किन्तु वह गयी इस्माईल के पास। उस दिन बहुत ख़ुश थी। चौबीस घंटे के बाद गाँव वापस लौटी... ।

वसन्त के जल्दी आरंभ होने के लक्षण दिखाई दे रहे थे, सवेरे से ही मौसम सुहावना था। पुराने क़ालीन की तरह बर्फ़ टूट-टूटकर पिघल रही थी, ऐसा लगता था, जैसे जंगल के बीच में खुला मैदान हो। धरती से भाप उठ रही थी। घाटी में बर्फ़ पिघलने के मौसम की हवा चल रही थी। सिंचाई की नालियों में पानी कलकल दौड़ रहा था और इकट्ठे पड़े हुए तथा नमी से फूले बर्फ़ के टुकड़ों को अपने साथ बहाये ले जा रहा था।

खलिहान से लेकर खेत के सिरे तक तीव्र सुगन्ध फैली हुई थी, वहाँ कोई फूस सुखा रहा था—यह सईदा थी। झाड़-झूड़कर जो मिला उसे बोरे में भरकर पहाड़ी की ओर ले चली और सीटी बजा-बजाकर वायु देवता का आवाहन करने लगी। वह गेहूँ के दानों को ऐसे ढूँढ़ रही थी, जैसे कि रेत में सोना ढूँढ़ रही हो। कष्ट की परवाह नहीं थी—चाहे जो भी हो जाए, उसे किसी-न-किसी तरह वसन्त के अन्त तक इस्माईल का पेट भरना ही है। उसके बाद अल्ला ने चाहा तो दर्रा खुल जाएगा।

उस अगम्य शिखर, मनुष्य के पद-स्पर्श से अछूते श्वेत-नील हिम के पार ही तो चत्काल स्थित है।

सईदा को चत्काल परीदेश-सा प्रतीत होता है। वहाँ बारहों महीने चरागाहों में हरियाली रहती है, मवेशी चरते हैं। नदी के किनारों पर भूर्ज वृक्षों के बीच में अंडे जैसे सफ़ेद रंग के तंबू लगे हुए हैं। उसके निकट अलाव जल रहे हैं, मांस के बड़े-बड़े कड़ाह भरे हुए हैं।...लोग एक तंबू से दूसरे तंबू में आ-जा रहे हैं।...जैसे ही दर्रा खुल जाएगा इस्माईल और वे दोनों ऊँचे पहाड़ों के दूसरी ओर स्थित अद्‌भुत इलाक़े को चल देंगे। बहुत पहले इस्माईल वहाँ अपने सम्बन्धियों से मिलने गया था।...वहाँ किसी को पता नहीं चलेगा कि इस्माईल भगोड़ा है, वहाँ कोई उसका पीछा नहीं करेगा, न सताएगा ही। वहाँ मिर्ज़ाकुल जैसे दुष्ट और नीच लोग नहीं रहते हैं।...वहाँ वे काम करेंगे—इस्माईल कलखोज़ में गड़रिये का काम करेगा और सईदा उसकी सहायिका हो जाएगी।

हथेली में रखकर एक-एक दाने को बीनती हुई सईदा कसमसाइट में पड़कर सोच रही थी—"अब तो बहुत कम समय बाक़ी रह गया है। बसन्त भी शुरू हो गया है। इतना सहन कर लिया तो थोड़ा और भी कर लूँगी। बस, किसी तरह इस्माईल बच जाएँ। अच्छा ही है कि गाँव के लोग सोचते हैं कि इस्माईल यहाँ नहीं बल्कि कज़ाखों के इलाके में अपने रिश्तेदारों के पास कहीं छिपे हुए हैं।...बहुत अच्छा है, कहने दो।...बछिया बेच देंगे, रास्ते के लिए आटा रख लेंगे, सास को खच्चर में बिठाकर रात के समय गाँव से निकल पड़ेंगे और चले जाएँगे।...हाँ, यहाँ से हमेशा कि लिए चले जाएँगे... ।"

वसन्त की कुछ-कुछ गर्म हवा मादक प्रभाव डाल रही थी।...यह सोचकर कितना अच्छा लगता था कि कष्ट भूल रहे हैं।

शाम को जब सईदा सत्तू पीस रही थी तो असन्ताइ आ पहुँचा। पिछले दिनों बेचारा बहुत दुबला हो गया था—आँखों के नीचे गहरा, काला दाग़ पड़ गया था, पिता के मोटे कुर्ते की मुड़ी हुई बाँहों के बीच से उसके कोमल हाथ बाहर लटक रहे थे।

"अम्मा ने आग के लिए भेजा है।" वह बोला। उसके क़दम बड़े संकोच के साथ बढ़ रहे थे, वह चक्की के पास पड़े सत्तू को देखे जा रहा था।

बच्चे आख़िर बच्चे ही ठहरे। भूखे बच्चे की भोली-भाली प्रार्थनापूर्ण दृष्टि किसके हृदय का स्पर्श नहीं कर देगी! सईदा ने उसकी मुट्ठी में सत्तू भर दिया। बालक ने सिर पीछे को मोड़कर सारा-का-सारा सत्तू मुँह में भर लिया और अत्यन्त सन्तुष्ट होकर नाक से आवाज़ करने लगा। उसकी इच्छा सईदा को

धन्यवाद देने की हो रही थी। सत्तू से सने उसके होंठों में भोली मुस्कुराहट दौड़ गयी।

"सईदा जान, जब हमारी गइया ब्या जाएगी तो अम्मा हमें दूध का मलाज़ीवा बनाकर देंगी। मलाज़ीवा पनीर जैसा स्वादिष्ट होता है। मैं तुम्हारे अमन्तूर के लिए भी लाऊँगा। अब तो वह खाने लगा है न?"

"मेरे बेटे, तेरी इच्छा ज़रूर पूरी होगी!" उसकी बातों से प्रभावित सईदा ने उसे छाती से लगा लिया और उसके मस्तक को चूमा, "अल्लाह की मर्ज़ी हुई तो मलाज़ीवा भी होगा और लस्सी भी। बस, गइया ब्या ले। तब ले आना हमारे बच्चे के लिए भी। अब तो उसके दाँत भी आ गये हैं।"

उसे ख़याल आया कि न तोतोई को, न उसके बच्चों को ही पिता के वीरगति प्राप्त होने का अभी तक मालूम चला है। वे अभी तक उनके पत्र की प्रतीक्षा करते रहते हैं।

उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि बच्चा जैसे समझ रहा है कि वह क्या सोच रही है। उसने जैसे यूँ ही पूछा, "तेरी अम्मा ठीक है न? कल शायद पानी लाने गयी थी।"

"आज फिर लेटी हैं। सिर दर्द कर रहा है। मैं तो उसकी सहायता के लिए घर में ही रहना चाहता था, किन्तु उसने मना कर दिया। कहा कि अगर दूसरे दर्ज़े में नहीं चढ़ा तो पिता जी जब वापस लौटकर आयेंगे तो बहुत डाँटेंगे।"

"और नहीं क्या? हाँ, डाँटेंगे तो सही। लौटते ही...।"

बच्चा बार-बार अपनी बड़ी-बड़ी आँखें झपका रहा था। एक बार उसने बड़े दुःख और कष्ट के साथ गहरी साँस भरी—वह साँस बच्चों की तरह की नहीं थी। तब सईदा उसे डाँटते हुए बोली, "क्या हो गया है? ऐसे कौन साँस लेता है? तेरे अब्बा ज़रूर लौटेंगे। लेकिन इस तरह साँस मत लिया कर! यह अच्छी बात नहीं है।"

जब बच्चा जलता हुआ उपला लेकर चला गया तो सईदा निःशक्त-सी हुई हाथों को लटकाये देर तक चक्की के पास बैठी रही। इतने छोटे बच्चे की—लगभग शिशु की—उस गहरी साँस ने मानों उसे कँपा दिया था। अभी गेंद के पौधे के बराबर तो मुश्किल से हुआ है, परन्तु समझता सब कुछ है। उदासी में डूबी हुई वह सोच रही थी, 'बेचारा, अनाथ! अवश्य ही तोतोई भी सब समझती है, जान-बूझकर कुछ कहती नहीं है। बेचारी क्या करे? तीन-तीन अनाथ बच्चों को पालना कोई खेल नहीं है। कलखोज़ से कुछ मिल जाता है, इसलिए ही तो किसी तरह चल रहा है। अभी गोदाम से आधी बोरी जई की आयी थी—कुछ नहीं

मिलने से तो यही अच्छा है।...अब उनकी एक ही आशा शेष रह गयी है—वह है उनकी गाय। शीघ्र ही ब्यानेवाली थी, पता नहीं, देर कैसे हो गयी। लगता है कि पिछली गर्मियों में इधर-उधर की घास अधिक खा गयी। रोज़ सुबह तोतोई चिल्लाती हुई सुनाई देती है—'तू मर क्यों नहीं जातीं कितना इन्तज़ार करवाएगी? कब ब्याएगी? बच्चे दूध के बग़ैर तरस गये हैं। किन्तु तुझे कोई मतलब ही नहीं है। व्यर्थ में दाना खाए जा रही है।'—वैसे यह स्थिति ठीक ही है। दूध की प्रतीक्षा तो है, इसमें कष्ट कुछ कम है। लेकिन आगे क्या होगा? तोतोई बहुत चिन्तित रहने लगी है। बाइदाली के ऊपर दया आती है। ख़ुद ही सुरंगों के ऊपर कूदा, मालूम होते हुए भी कि जीवन को ख़तरा है, कूद पड़ा।...उसकी यही राह होगी। ...भाग्य की बात है।...ख़ैर, किसी तरह जी लेंगे, बच्चे बड़े हो जाएँगे, कष्ट तो है ही।...सभी को कुछ-न-कुछ कष्ट सहन करना पड़ रहा है। उन्हें अपना कष्ट है, हमें अपना। चत्काल चले जाने के बाद, देखो, हमारा कष्ट कम हो जाए शायद।...एक दिन तोतोई जैसे अकस्मात ही पूछ बैठी थी—'क्या यह सच है कि इस्माईल भाग गये हैं?'—और मैंने उसे जवाब दिया था—'मालूम नहीं मुझे, शायद भाग ही गये हों, लेकिन हमारे पास तो वह नहीं आए।'—कोई सच मानता है, कोई झूठ।...हाँ।...मिर्ज़ाकुल की नज़रों में नहीं पड़ें, वह नहीं छोड़ेगा, वह दुश्मन है। ख़ुदा बचाये इस मिर्ज़ाकुल से।...' अपने विचारों में डूबी सईदा बड़ी देर तक इसी तरह बैठी रही। जैसे-जैसे क्षण बीतते जाते थे, वैसे-वैसे एक अस्पष्ट-सी चिन्ता का घेरा और संकुचित हो जाता था। वह बच्चा, उसकी बालकों से भिन्न गहरी साँस, भूखी और विनयशील आँखें। आनेवाले संकट की पूर्वानुभूति से उसे पीड़ा पहुँच रही थी।

वह बाहर आँगन में आयी, रात होने तक मौसम ख़राब हो गया था। तेज़, नम हवा पश्चिमी बादलों को उड़ाकर ले जा रही थी। सारे आकाश में बादल उमड़ आए थे और कुछ उदासी-सी छा गयी थी। पहाड़ों की चोटियाँ दिखाई नहीं देती थीं। बादलों के बीच आँखमिचौनी करता हुआ चाँद हवा की उल्टी दिशा में दौड़ रहा था। कभी वह बिलकुल ग़ायब हो जाता और कहीं दूर अँधेरे में जाकर चमकता दिखलाई पड़ता। बादलों की तहों के बीच से उसका चंचल प्रकाश कठिनाई के साथ बाहर निकलता था—'जल्दी ही बर्फ़ गिरेगी।...इस्माईल की वहाँ क्या हालत हो रही होगी?'

सवेरे के समय सईदा दूध लाने गयी। बादलों ने आकाश को पूरी तरह ढँक दिया था, वसन्तकालीन बजरी बड़े-बड़े टुकड़ों के रूप में गिर रही थी। जैसे ही उसने अपने घर की क्यारी को पार किया, उसे तोतोई के आँगन से

रोने-चिल्लाने की आवाज़ सुनाई पड़ी। कीचड़ उछालते हुए घुड़सवार सड़क पर सरपट दौड़ते दिखलायी पड़े। सईदा को चिन्ता होने लगी—'वहाँ क्या घटित हो गया?'—अपनी बाल्टियाँ फेंककर वह तोतोई के घर की ओर दौड़ी।—"बाइदाली के लिए मातम तो पतझड़ में मनाना निश्चित किया गया था। कहीं किसी के मुँह से बात निकल तो नहीं गयी।'—वह ऐसे ही अंदाज़ लगाने लगी।

मिट्टी की बाड़ को पार करके सईदा आँगन में घुसी ही थी कि सहसा ठिठक गयी। लोगों की शोरगुल करती भीड़ के बीच में से तोतोई बाहर निकली। उसके बाल बिखरे हुए थे, बाजू में डला हुआ मिर्जई का लबादा ज़मीन में घिसट रहा था। वह कोठरी के द्वार पर भागी आयी और अत्यन्त करुण स्वर में छाती पीट-पीटकर चिल्लाने लगी, "देख लो, सारा गाँव देख ले, हमारे भाई लोग देख लें। ताला तोड़कर सब कुछ ले गये। हाय, हाय, अल्ला ने मुझे सज़ा दी है। हाय रे!"

कोई उसे समझाते हुए चिल्लाया, "शाम को तूने ही तो उसे बाँधा था? खुद दरवाज़ा बंद नहीं किया था क्या?"

"खुद से तुम्हारा क्या मतलब है, भाई लोगों? थन तक छूकर देखे थे, उनसे दूध दुहा था। बच्चों ने पूरी तरह से घेर लिया था, बस दूध के इन्तज़ार में थे। मैं गाय की देखभाल क्यों नहीं करूँगी, भले ही मैं बीमार थी। हाय, मेरे हाथों में कीड़े पड़ जाएँ!"

जब सईदा की सारी बात समझ में आ गयी तो वह आतंकित हो उठी। उसे याद आया कि कल असन्ताइ दौड़ा-दौड़ा आया था और ब्याई गाय के दूध के विषय में कह रहा था। वह दूध की प्रतीक्षा ऐसे कर रहा था, जैसे कि परीकथाओं में हम किसी अद्भुत आश्चर्य की प्रतीक्षा में रहते हैं। इस समय सईदा की आँखों के सामने असन्ताइ प्रकट हो गया था—दुबला-पतला, पतली-सी गर्दन, अपने पिता की पूरी बाँहोंवाली मिर्जई को ऊपर तक मोड़े हुए खड़ा था, सत्तू से सने उसके होंठों में भोली मुस्कुराहट दौड़ रही थी। सईदा क्रोध में भरकर सोच रही थी, 'किसने ऐसा काम किया होगा? कितना नीच, दुष्ट होगा?'

बजरी वाली बर्फ़ उसके मुँह पर आ आकर गिर रही थी और धार बनकर उसकी गर्दन के रास्ते अंदर को जा रही थी। परन्तु वह खड़ी रही, वहाँ से हटने की हालत में नहीं थी। वह देख रही थी कि तोतोई के बच्चे उकसे लबादे के दामन से चिपके हुए हैं। सबसे छोटा तो शायद बिस्तर से कूदकर आया था। बर्फ़ के कीचड़ में वह अपनी माँ के पीछे-पीछे नंगे पैर ही दौड़ रहा था और वह चिल्ला रही थी, "अगर बाइदाली घर में होते तो किस चोर के बच्चे की हिम्मत थी कि हमारे आँगन में क़दम भी रखता! आदमी के बिना घर भूतों का डेरा है!"

"बच्चे को ठंड लग जाएगी, कैसा नीला पड़ गया है।" सईदा धीमे से बोली। उसकी इच्छा हो रही थी कि दौड़कर उसे पकड़ ले। इतने में भीड़ में से डाकिया कुर्मान प्रकट हुआ। बच्चे को रोककर उसने चुपचाप उसके बर्फ़ और कीचड़ के मारे नीले पड़े पैरों पर दृष्टि डाली, फिर जल्दी से कमरबंद खोला, बच्चे की गठरी जैसी बनाकर और लबादे से उसे अच्छी तरह ढककर अपने घर ले गया। किसी ने ज़मीन पर फेंका हुआ कुर्मान का कमरबंद उठाया और अपनी बाजू से उसे अच्छी तरह पोंछा। जब कुर्मान सईदा के सामने से जा रहा था तो सईदा ने देखा कि वह बच्चे को छाती से लगाये हुए अपनी साँस से उसे गरमी पहुँचा रहा है।

'तुम सबको हम अपने-अपने घर ले जाएँगे, खिलाएँगे-पिलाएँगे, पालेंगे-पोसेंगे। यूँ ही नहीं छोड़ देंगे।' वह अपने आप से कहे जा रहा था। उसकी भींगी दाढ़ी काँपते हुए हिल रही थी, आँखों में आँसू भरे थे।

लगभग सारा-का-सारा गाँव तोतोई के आँगन में जमा हो गया था। ऐसा तो कभी नहीं सुना था। पहले भी कुछ ऐसी घटनाएँ घट जाया करती थीं कि कभी किसी की गाय चोरी हो गयी तो कभी भेड़। हो जाता था, मगर इस बार लोग इसलिए नहीं एकत्र हुए थे कि मवेशी चोरी हुई थी, वे इसलिए एकत्र हुए थे कि इस बार चोर ने गाँव की सबसे पवित्र आत्मा के घर में हाथ डाला था।—"बाइदाली के अनाथ परिवार के घर में हाथ डालने की हिम्मत किसने की?"—लोगों के चेहरों पर एक चुप्प उदासी थी, किन्तु अंदर से सब-के-सब किसी को कोस रहे थे। मिर्ज़ाकुल अपने घोड़े में बैठकर तोतोई के घर के कई चक्कर लगा गया था, सड़क का चक्कर काटकर गड़रिए बार्पी के साथ आख़िर वहीं लौट आया था। अपना ओवरकोट पहने—जिसकी एक बाँह इधर-उधर हिल रही थी—वह बवंडर की तरह अंदर आया और घोड़े की लगाम खींची। मिर्ज़ाकुल चिल्लाकर बोला,'भाइयो, चलो इकट्ठे हो जाओ। जिनके पास घोड़े हैं, वे घोड़ों पर, बाक़ी पैदल ही। एक-एक घाटी को छान डालो, कोना-कोना ढूँढ़ निकालो। गाय तो इतनी बड़ी बात नहीं है। लेकिन उसे चुरानेवाले नीच कुत्ते को अवश्य ढूँढ़ निकालना है।"

"बिलकुल ठीक कहा!" लोगों ने कहा, "चोर ज़्यादा दूर तो क्या गया होगा। अगर गाय को काट दिया होगा तो कहीं उसका मांस तो पड़ा मिलेगा ही। यदि नहीं तो मतलब है, उसने गाय को कहीं किसी पुराने वीरान टीले पर छिपाकर रखा है।"

"तो ऐसा ही रहा। टीलों में ही ढूँढ़ने चलें...।"

रास्ते में मिर्ज़ाकुल ने सीमारक्षकों को आवाज़ देकर अपने पास बुलाया और कहा, "देखो, जवान भाइयो!...तुम्हें एक काम सौंपते हैं—घोड़ों पर बैठकर शहर को जानेवाली सड़क पर नज़र रखो।"

"हम तैयार हैं, मगर घोड़े तो हैं नहीं।"

"घुड़साल से ले लो।" मिर्ज़ाकुल ने आदेश दिया।

"इतनी दूर जाने के लिए घोड़ों को देने की बजाए सभापति अपने को फाँसी लगाना ज़्यादा पसंद करेंगे। अभी तो घोड़ों को जुताई के लिए तैयार किया जा रहा है।"

"सभापनि साले की...! तुम घोड़ों को तुरन्त अभी तैयार करो, ज़िम्मेदारी मेरी।" मिर्ज़ाकुल क्रोध से बौखला उठा। ओवरकोट की बाँह को कँपाते हुए उसका आधा कटा हाथ ऊपर को उठ गया।

औरों के साथ सईदा भी ढूँढ़ने निकली। गाँव से बाहर आने के बाद लोग चारों ओर फैल गये। घोड़े की गर्दन की ओर चील की तरह झुकते हुए मिर्ज़ाकुल पहाड़ी के पार निकल गया और उसकी दूसरी दिशा में अपने भयंकर कंकाल-जैसे मुँह पर फ़र का बड़ा कनटोप डालकर गया गड़ेरिया बार्पी। और इसी क्षण एक भयानक कल्पना ने सईदा को मानो सुन्न कर दिया। इसका उसे पहले क्यों नहीं खयाल आया था?—"अगर कहीं उन्हें वहाँ इस्माईल मिल गये तो क्या होगा?"—पागल-सी हुई वह सरकंडों की झाड़ियों से आच्छादित दूरवर्ती चरागाहों की ओर दौड़ी।

बीमार आदमी की तरह कोहरा सफ़ेद, तरल धुएँ की तरह घाटियों में फैल रहा था, न वह घाटियों से अलग हो सकता था, न ऊपर ही उठ सकता था। पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक रही थी। बजरी से कपड़े भींग गये थे। भींगे कपड़े शरीर से चिपक रहे थे।

चिड़िया जैसे अपने घोंसले की रक्षा करती है, वैसे ही सईदा भी इस्माईल की पनाह के पास सरकंडों की झाड़ियों के निकट चक्कर लगा रही थी कि कहीं कोई वहाँ पहुँच न जाए। बड़ी परेशान और दयनीय हालत में वह चारों ओर घूम रही थी। डर के मारे इधर-उधर दृष्टि दौड़ाती थी कि कोई दिखाई तो नहीं दे रहा, उसके पीछे-पीछे कोई आ तो नहीं रहा है कहीं?

'अल्ला, एक बार और दया कर, एक बार और बचा ले!' अपने हाथों को छाती से लगाकर आकाश की ओर देखते हुए उसने दुआ माँगी, "अल्ला, क्या करूँ मैं? मुझे बताओ। अगर गाय मिल जाए तो इन बच्चों का भला हो जाएगा, लोग भी गाँव को वापस लौट जाएँगे। ऐ मालिक, अनाथ बच्चों को उनकी गैया

लौटा दे, प्रार्थना करती हूँ। मैं भी आख़िर माँ हूँ, मेरे भी एक बेटा है। बेटे की ख़ातिर दुआ माँगती हूँ।''

सईदा एक पहाड़ी से दूसरी पर, एक घाटी से दूसरी घाटी में दौड़ रही थी और साथ-साथ उसके मुँह से खुदा के लिए आग्रहपूर्ण दुआएँ भी निकल रही थीं। अचानक यह विचार उसके दिमाग़ में छा गया कि यदि अभी गाय मिल गई तो लोग गाँव को लौट जाएँगे। केवल इस स्थिति में ही वह बच सकती थी, बस यही एक रास्ता था। यानी कि गाय को अवश्य ढूँढ़ निकालना है, वह भी जल्दी-से-जल्दी क्योंकि प्रत्येक क्षण क़ीमती है।

जोश में आकर वह और आगे दौड़ गयी। वह सरकंडे की प्रत्येक झाड़ी में झाँककर देखती, प्रत्येक चट्टान के पीछे देखती, काँटों के बीच में जाने से उसका फ्राक फट गया था। किन्तु गाय के चिह्न तक कहीं दिखाई न दिये। कहीं दूर कोहरे के बीच में पुराने टीले के खंडहर धुँधले-से दिखायी पड़े। हो सकता है कि गाय वहीं छिपी हो? ज़रा रुको, यह क्या दिखलाई पड़ रहा है? कोई पशु जैसा ही तो है? हाँ, हाँ, बिलकुल वैसा ही। देख तो रहे हो—यह काली, चितकबरी हमारी गय्या ही तो है। या अल्ला, यही तो है वह।

सईदा को सहसा इतनी खुशी हुई कि वह हाँफने लगी। वह रुक गयी, क़दम आगे नहीं बढ़े। उसने तुरन्त यह निर्णय किया—''अभी तुरन्त बड़ी पहाड़ी पर चढ़कर लोगों को बुलाती हूँ। सबको गाँव वापस लौट जाना चाहिए। गय्या को तोतोई के घर पहुँचाकर उसके गोठ में बाँध दूँगी। यह गाय ही होनी चाहिए।...कहीं मुझे धोखा न हो गया हो।''

सईदा एक ही साँस में दौड़कर टीले तक जा पहुँची और...सहसा उसे मुर्दनी छा गयी। यह गाय नहीं, आँगन में मिट्टी की बाड़ का एक हिस्सा गिरा पड़ा था।

कोहरा वैसा-का-वैसा ज़मीन पर सुस्त-सा छाया हुआ था। खंडहरों में वंसतकालीन बर्फ़ ने पिछले साल के पुराने गोखरु के काँटेदार किनारों को ढँक दिया था, हाल ही में निकले हरे-हरे छोटे डंठलों को बर्फ़ ने ऐसे ढँक दिया था जैसे कि उनमें रसौली लग गयी हो।

शाम के समय जब सईदा थकी-माँदी किसी तरह गाँव तक पहुँची तो उसने देखा कि तोतोई के आँगन में गाय के गोठ का टेढ़ा-मेढ़ा दरवाजा पहले की तरह खुला पड़ा है और वहाँ उदास रिक्तता छायी हुई है।

उसके अपने घर में बच्चा गला फाड़-फाड़कर रो रहा था। लगता था कि वह दिन भर रोता रहा है—आँखें सूज गयी थीं, केवल सफ़ेदी दिखाई देती थी,

बीच-बीच में तेज़ हिचकी आ रही थी। इतना कम है कहने को सईदा के दूध से भरे सख़्त स्तनों से कब से दूध भी नहीं निकल रहा था, हालाँकि उन्हें दबा-दबाकर उसने हर तरह से कोशिश कर ली थी। उसकी दशा बेहद थके और जकड़े घोड़े जैसी हो रही थी, जिसे जीन उतारकर पसीने से तर हालत में रात की हवा में छोड़ दिया गया हो। ऐंठने से जबड़े टेढ़े हो गये थे।

वे चुप्पी साधे बैठी रहीं—एक कोने में अपने बेटे के साथ सईदा, दूसरे कोने में बूढ़ी सास। अँगीठी जलाने को भी मन नहीं हो रहा था। शरीर निष्प्राण-सा था और अच्छा नहीं लग रहा था, घर भी वैसा ही निष्प्राण हो रहा था। नींद के मारे सईदा बुरी तरह थकी हुई थी। किसी तरह उसने बच्चे को पालने में लिटाया और फिर स्वयं भी उन्हीं कपड़ों में फ़र्श पर लेट गयी।

रात में खिड़की में किसी के खटखटाने की आवाज़ सुनकर सईदा की नींद खुली, नींद में ही वह ज़ोर से चिल्लाने को थी कि सहसा विचार बदल दिया। वह समझ गयी थी कि इस्माईल आया होगा। उसका भय और भी बढ़ गया—"गाँव में इतनी खलबली मची हुई है। आज ऐसे बुरे मौक़े पर क्यों आये?"

सईदा जल्दी से उठी। दरवाज़ा खोला और फुसफुसाकर जल्दी-जल्दी बोली, "जल्दी करो, गाँव में गड़बड़ी मची हुई है!"

शीघ्रतापूर्वक दरवाज़े की सिटनी लगाकर वह इस्माईल को अँधेरे में ही कमरे के अन्दर ले आयी। उसने खिड़कियों के पर्दे ढक दिये और बत्ती जलाने ही को थी कि सहसा इस्माईल के हाथ से कोई भारी-सी चीज़ छप् से नीचे गिर पड़ी। सईदा सुन्न रह गयी—उसे लगा कि उसका हृदय ही अलग होकर गिर पड़ा है। वह काँपते हुए बैठ गयी। कुछ देर अपने चारों ओर टटोला और उसका हाथ किसी कोमल पीली-सी चीज़ पर पड़ा—यह मांस की थैली थी।

"अच्छा, तो यह कुकृत्य तुमने किया है!" वह दबे स्वर में चिल्लाई। उसके गले में साँस अटक-सी गयी थी।

"चुप! चुप रह, तुझे इससे कोई मतलब नहीं!" इस्माईल सईदा के और पास आ गया और उसके मुँह पर उसने गहरी साँस छोड़ी। उसकी आँखें उस अन्धकार में चमक उठीं।

सईदा कुछ नहीं बोली। उसका सिर भन्ना रहा था, जैसे कि कोई बुरी तरह उसकी छाती पर वार कर रहा हो। वह फ़र्श पर बैठी थी और कहीं मुँह के बल गिर न पड़े, इसलिए हाथों की टेक ले रखी थी। उसकी बस एक ही इच्छा थी कि घर से निकलकर चीख़ते हुए कहीं भी भाग जाए। दुनिया में ऐसे भी लोग हैं—वह यह जानना तक नहीं चाहती थी, न देखना ही। परन्तु उठने की शक्ति

ही नहीं थी। और तो और चिल्लाने तक की ताक़त नहीं थी। उसे होश तब आया जब इस्माईल धीमे से चिल्लाकर बोला, ''बैठी क्या है? बत्ती जला!''

सईदा हिली तक नहीं।

''मैं कहता हूँ—बत्ती जला।''

इस्माईल ने झुककर देखा कि सईदा घुटनों के बल उसकी ओर खिसक कर आ रही है...।

''अगर यही करना था तो हमारी ही बछिया को काट डालते...।''

''बेवकूफ़ कहीं की!'' इस्माईल ने उसे कंधों से पकड़कर अपनी ओर झटका, ''क्या बकती है? तू मुझे सिखाएगी? जब जीवन ऐसा जंगली हो गया है तो खुद को भी जंगली जानवरों-जैसा बनाना ही अच्छा है। सब अपनी-अपनी सोचते हैं।...बस अपना पेट भरा रहे...तुझे दूसरों से क्या मतलब? भूख से मरते हुए को भी कोई दो दाने नहीं देगा! सब-के-सब मतलबी हैं। यहाँ तो जिसकी लाठी, उसकी भैंस का क़ानून चलता है।''

सईदा ने कोई उत्तर नहीं दिया। इस्माईल का हाथ सईदा के कंधों से नीचे आकर उसके फ्रॉक के कालर को छू रहा था, फिर उसने उसे कसकर मसल दिया। उसने ज़ोर से अपनी पत्नी को झटका और कर्कश स्वर में चिल्लाया। उसके मुँह से कच्चे, अधपके मांस की बू आ रही थी।

''चुप क्यों बैठी है? मैं पूछता हूँ चुप क्यों है? अगर मैं अपनी ही बछिया को मार डालता तो तू बच्चे के लिए दूध कहाँ से लाती? या तुझे अपनों से दूसरों के बच्चे ज़्यादा प्यारे हैं? हम चत्काल तक कैसे पहुँचेंगे? इसके बारे में भी सोचा है या नहीं? इने-गिने दिन रह गये हैं। तू चाहती है कि मैं उसी गुफ़ा में भूख से मर जाऊँ? या मेरे मुक़ाबिले तुझे दूसरों से ज़्यादा लगाव हो गया है? बहुत हो गया, सारे जाड़ों भर मैं ठंड से काँपता रहा, अब हो गया।...अब मैं चोरी करके, लूटपाट करके रहूँगा। मैं फ़ौज से इसलिए भागकर नहीं आया था कि यहाँ कुत्तों की तरह मरूँ! मैं इतना बेवकूफ़ नहीं हूँ और न मेरा मरने का ही इरादा है।''

आँगन में मुर्गे ने बांग दी। अब वापस जाने का समय हो गया था। इस्माईल ने खिड़की के पास जाकर कान लगाकर सुना और सिगरेट को मुट्ठी में दबाकर बोला,''मर गयी है क्या? मांस को छिपाकर रख ले, रोज़ रात को उबालना। हड्डियाँ गोशाला में दबा दे। गहरी दबाना, ताकि कुत्ते खोदकर निकाल न लें।'' उसने सिगरेट का एक और कश खींचा। उसके चेहरे के निचले भाग में लाल-सा, अमंगल-सूचक प्रकाश चमका, उस अंधकार में उसके गीले

होंठ और हिंसक नथुने चमक उठे। फिर उसने सिगरेट के टुर्रे को ज़मीन पर फेंक दिया और उसे पैर से कुचलकर बाहर निकल गया।

जैसे-जैसे खिड़की के बाहर उजाला बढ़ता जा रहा था वैसे-वैसे सफ़ेद बालोंवाली युवा स्त्री आँगन की ओर और भी घूरती जाती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि वह सवेरे के उजले प्रकाश में छिपे हुए रात्रि के अंधकार को ढूँढ़ रही है। बच्चे के पालने का आलिंगन करके सईदा खिड़की के बाहर ही देखती रही, वहाँ से उसने अपनी दृष्टि नहीं हटायी। वहाँ, इस खिड़की के उस पार पूरा एक संसार है, गाँव है, लोग हैं। वहीं तो सब रहते हैं—कुर्मान, अपने तीन बच्चों के साथ तोताई, कटे हाथ वाला मिर्ज़ाकुल और इस्माईल भी।...हाँ, इस्माईल भी।...“नहीं, तुम उनके जैसे नहीं हो। जो मुसीबत के समय अपने लोगों का साथ छोड़ देता है वह न चाहते हुए भी एक दिन उनका दुश्मन बन ही जाता है। मैं तुम्हें इस मार्ग पर जाने से रोक न सकी, रोक भी नहीं पाती...।”

तभी किसी के कराहने का गहरा स्वर सुनाई दिया। सईदा का ध्यान सास की ओर अब गया। अपनी ठुड्डी को पतले नुकीले घुटनों में छिपाए वह एक कोने में बैठी हुई थी और उसकी थकी-माँदी और बेहाल नज़र भी खिड़की के बाहर ही ठिठकी थी। निश्चय ही उसने रात को जो घटित हुआ था, सब सुन लिया था।

सईदा चले जाने की तैयारी कर रही थी। उसने एक गठरी में चादरें रखीं, मिर्जई का लबादा पहना और पड़ोसिन तोताई की तरह गठरी पीछे रस्सी से कसकर बाँधी।

“तू क्या अपने मायके जा रही है?” वृद्धा सास ने शान्त स्वर में पूछा।

“हाँ, जा रही हूँ।” सईदा ने उत्तर दिया।

सास ने चुपचाप सिर हिला दिया।

दरवाज़े के पास आकर सईदा रुक गयी और सोच में पड़ गई। बच्चे को उसने गोद में ले रखा था। वह तो सो रहा था, उसे कुछ भी मालूम नहीं था। जब माँ के आँसू की एक बूँद उसके मुँह पर गिरी, तब वह बस सिकुड़ गया और उसने सिर ज़रा-सा हिला दिया। फिर सईदा ने ज़मीन पर से मांस की थैली उठायी, उसे कंधे पर रखा और दृढ़ क़दमों से देहरी लाँघ गयी।

सास अब भी चुप बैठी रही, न उसने सईदा से लौटने की मिन्नत की, न ही उसके पैरों पर जाकर गिरी। कुछ देर बाद सास भी घर से निकल गयी,

दरवाज़े को खुला ही छोड़कर। वह निरुद्देश्य कहीं को चल दी, गाँव से उलटी दिशा में, कहीं बहुत दूर।

सईदा सरकंडों की झाड़ियों के जंगलों में झुरमुट के बीच छिपी पगडंडी से होकर जा रही थी। उसके पीछे-पीछे घोड़े पर सवार मिर्ज़ाकुल और दो राइफ़लधारी सैनिक भी चल रहे थे।

दो घंटे पहले सुरंग की सैनिक सुरक्षा के कमांडरों ने सैनिकों को आदेश दिया था कि वे ग्राम-सभापति के अधीन रहकर साथ वाले गाँव में जाएँ। सईदा मालये घाटी में गड़ेरियों के पास जा रही थी। उसका इस गाँव में फिर कभी लौटकर आने का इरादा नहीं था।

सैनिक आपस में फुसफुसा रहे थे,"देखो, यह वही है जिसकी गाय चोरी हो गयी है।"

"हाँ, लगती तो बिलकुल वैसी ही है।"

"यानी उसे ढूँढ़ ही निकाला। ग़ज़ब की औरत है। लेकिन बच्चे को गोद में लिए कहाँ जा रही है?"

"कौन जाने इसे? अल्ला कसम, ग़ज़ब की औरत है! कब से सभापति इससे कहे जा रहा है—"कहता हूँ घोड़े पर बैठ। तेरे साथ छोटा बच्चा है।" लेकिन यह है कि जवाब ही नहीं देती। मुड़ी और चल दी।...अभिमानी दिखाई देती है... ।"

जब वे सरकंडों और जंगली बेंत से भरी खड़ी चट्टान तक पहुँच गये, तब सईदा नीचे उतरी और एक मोड़ पर आकर ज़रा देर के लिए रुक गयी।

"उधर, उस जगह, सरकंडों के पार।" उसने हाथ से इशारा करके दिखाया। उसके चेहरे पर ख़ून उतर आया था। उसे यह भी ध्यान नहीं रह गया था कि वह क्या कर रही है—ऐसी हालत में गले से फ्रॉक को ढीला करके वह बैठी और बच्चे का मुँह अपने स्तनों से लगा दिया।

सैनिक सावधानी के साथ मिर्ज़ाकुल के पीछे-पीछे आ रहे थे। सरकंडों के पास पहुँचते-पहुँचते मिर्ज़ाकुल ने घोड़े से कूदने के लिए पैर उठाया ही था कि उसी क्षण सामने से आवाज़ आयी, "अरे मिर्ज़ाकुल, पीछे हट जा! मेरा तो अन्त होगा ही, लेकिन तू भी बच नहीं पाएगा। तुझे यहीं ढेर कर दूँगा। नहीं तो हट जा।"

"हैंड्स अप! हथियार डाल दे!" मिर्ज़ाकुल ने चिल्लाते हुए अपना घोड़ा आगे बढ़ा दिया।

घाटी में गोली चलने की आवाज़ गूँज उठी। सईदा उठ खड़ी हुई। उसने मिर्ज़ाकुल को घोड़े की गर्दन पर झुके हुए देखा, एक हाथ के सहारे अयाल से चिपके हुए मिर्ज़ाकुल को देखकर कँपकँपी पैदा होती थी। उस समय उसका दूसरा कटा हुआ हाथ ओवरकोट की बाजू के अंदर से हिल रहा था। इसके बाद मिर्ज़ाकुल का शरीर लटक गया और वह भरे हुए बोरे की तरह ज़मीन पर आ गिरा।

इस बीच सैनिकों ने गोली चलानी शुरू कर दी थी। इस्माईल भी जवाब में तेज़ी से गोलियाँ चलाये जा रहा था। पहाड़ी में प्रतिध्वनि गूँज रही थी।

सहसा एक सैनिक किसी दूसरी ही आवाज़ में चिल्लाया, "ऐ बहन! कहाँ जा रही हो? पीछे हटो, कहता हूँ! पीछे! वह मार डालेगा!"

बच्चे को गोद में लिए सईदा, जिसका स्कार्फ़ कंधे पर सरक आया था, सरकंडों की ओर बढ़े जा रही थी, इस्माईल वहीं बैठा था। वह शान्तिपूर्वक किन्तु दृढ़ता के साथ चल रही थी, ऐसे चली जा रही थी, जैसे कि किसी भी चीज़ का उसे भय न हो।

उसके होंठ कसकर बंद थे, वह आँखें फाड़कर देख रही थी, दृष्टि में दृढ़ता थी। उसके भीतर अपार आन्तरिक शक्ति का आभास हो रहा था। यह वह औरत थी, जिसे न्याय और अपनी सत्यता पर पूरा विश्वास था। एक-एक क़दम करके वह सरकंडों की ओर बढ़ती जा रही थी। सैनिक सम्भ्रम में पड़ गये। किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर वे चिल्लाये, "पीछे! पीछे मुड़ जाओ!"

किन्तु सईदा ने पीछे मुड़कर देखा तक नहीं, जैसे उसे कुछ सुनायी ही न दिया हो।

एक क्षण तक गूँजती हुई गहरी स्तब्धता पहाड़ों को जकड़े रही। सरकंडों के पीछे छिपे सैनिक, एकमात्र बचे हुए हाथ की काँपती और लटकती हुई उँगलियों के साथ ज़मीन पर पड़ा मिर्ज़ाकुल, लटकती हुई चट्टानें और पहाड़ों की दूर तक दिखलाई पड़नेवाली चोटियाँ—एक तनावपूर्ण प्रतीक्षा में सब कुछ थम-सा गया था। इसी क्षण गोली चली नहीं कि यह औरत ज़मीन पर लोटती हुई नज़र आयेगी।

इस भयंकर ख़ामोशी को हवा ने ही तोड़ा। लहर की तरह वह सरकंडों के ऊपर से बहती हुई निकल गयी, सईदा के मुँह पर उसका एक थपेड़ा लगा और उसके कंधे से स्कार्फ़ अलग हो गया। किन्तु फिर भी उसके चेहरे पर कोई शिकन तक नहीं आयी—क्रोध और दृढ़ता के सहारे वह आगे बढ़ी जा रही थी। अपना सिर ऊँचा किये, बच्चे को छाती से लगाये, महान कर्त्तव्य की भावना के साथ वह चली जा रही थी, उसे मृत्यु का भी भय नहीं रह गया था।

"रुको! रुको!" सैनिक निराश होकर चिल्लाये जा रहे थे।

राइफ़लों को दबाये वे सईदा की ओर दौड़े। और उसी क्षण सरकंडों के नीचे से इस्माईल बाहर कूदा। वह भूरे रंग का फटा ओवरकोट पहने हुए था। उसके विकृत, क्लान्त तथा बढ़ी हुई दाढ़ी से भरे चेहरे से मैला पसीना बह रहा था। ग़ुस्से के मारे गहरी साँस खींचते हुए उसने मारने को राइफ़ल उठायी और प्रचंड रूप धारण करके पत्नी की ओर दौड़ा।

उनके बीच का फ़ासला कम होता जा रहा था। शीघ्र ही वे एकदम निकट आ गये—आमने-सामने। लेकिन उसने पहलेवाली सईदा को नहीं पहचाना। यह तो कोई दूसरी, अजनबी औरत थी—पके बाल, खुला सिर, वह उसके सामने निर्भय होकर खड़ी थी, गोद में बच्चे को लिए हुए। इस्माईल को सहसा प्रतीत हुआ कि उसकी पत्नी उससे ऊँचे स्थान पर खड़ी है, अत्यन्त ऊँचे, जिसकी शोकसिक्त महानता उसके लिए असाध्य है तथा उसके सामने वह तुच्छ और असमर्थ है।

इस्माईल पीछे हट गया, अपनी ओर दौड़कर आते हुए सैनिकों के सामने राइफ़ल फेंक दी और हाथ ऊपर कर दिये।



दुनिया का छोर

नताल्या बरान्स्काया

संभवतः यहाँ बहुत शान्ति और सुकून है। "दुनिया के छोर पर ही चला गया होता।"—ऐसा एक बार एक थके-हारे, चिन्ताओं में डूबे और पीड़ाओं से सताए हुए ने कहा था। शायद कोई निराशावादी रहा होगा, जिसमें लड़ने की या सहन करने की शक्ति नहीं रह गई होगी। बहुत पहले यह कहा गया था। तब जब पृथ्वी गोल नहीं थी, बल्कि तश्तरी-जैसी थी और तीन समुद्रों में तैरती हुई तीन ह्वेल मछलियों की पीठ पर टिकी हुई थी। तश्तरी का एक छोर था और वही दुनिया का भी छोर था। जो लोग संघर्ष या सहनशीलता में असमर्थ होते थे, वे पीठ में झोले टाँगकर और थोड़ी-सी शराब लेकर नाक की सीध में चल पड़ते थे। वह रास्ता हमेशा दुनिया के छोर पर पहुँचाता था।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को यह स्वीकारते अजीब-सा लगता था कि अब यानी बीसवीं सदी के सत्तर के दशक में उसे दुनिया के छोर पर चले जाने की इच्छा होने लगी है। "सम्भवत, मैं असफल लोगों की श्रेणी में आती हूँ।"—ऐसा सोचती हुई वह सफ़ाई जैसी दे रही थी। जानकार लोगों के ज़रिये उसे यह मालूम था कि आजकल असफल लोग पहले की अपेक्षा काफ़ी कम होते हैं। तो क्या! इतने तो फिर भी बचे रह गए हैं, जिनमें उसकी भी गिनती होती है।

यह उसे जीवन के अन्त में जाकर पता चला है। अपने अन्तिम दशक में या शायद एक दशक पहले। इतनी देरी से पता चलने पर उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ था--उम्र के साथ-साथ हमारी बहुत-सी कमज़ोरियाँ सामने आने लगती हैं!

उसने अपने को हमेशा भाग्यशाली समझा था। उसके साथ या उसके निकट के लोगों के साथ चाहे कुछ भी क्यों न घटित हुआ हो, उसने कभी-भी

अपने को दुःखी नहीं माना था। महायुद्ध के दौरान अपने परिवार के टूटने की सबसे भयानक दुर्घटना के बाद भी उसका जीवन पहले जैसा चल रहा था। उसने अपने को कभी खंडित महसूस नहीं किया था। पर बहुत सम्भव है कि उसके पति के खंदक में आकर गिरे तोप के गोले की कोई एक किरच आकर उस पर भी पड़ी होगी, यद्यपि वह बहुत ही दूर थी, हज़ार किलोमीटर दूर। एक दरार पड़ गई थी, जो शुरू में ख़ुद उसे भी नज़र नहीं आती थी। फिर वह दरार बढ़ने लगी, फैलती गई, और भी बढ़ती गई। तब येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को लगने लगा था कि दरार को देखा जा सकता है। शीशे में देखने पर उसे वह दिखाई देती थी।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को उसके बेटे-बेटियाँ विश्वास दिलाते रहते थे कि दरार है ही नहीं। उन्हें इतनी फ़ुर्सत ही नहीं थी कि देखते-देखते दरार की आदत उन्हें पड़ जाती। "यह तेरे मन का खयाल है!" दौड़ते-दौड़ते वे उसे समझा-बुझाकर चल देते थे।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना के दो बेटे थे और बहुएँ चार थीं। छह पोते थे। उसे बहुओं पर दया आती थी, विशेषकर छोड़ी हुई बहुओं पर और उनके सामने वह अपने को दोषी महसूस करती थी, क्योंकि उसी के बेटों ने तो उन्हें छोड़ा था।

बेटों ने कम उम्र में शादी कर ली थी—उसके मना करने पर भी वे कुछ सुनने को तैयार नहीं थे। तीन साल बाद दोनों ने तलाक़ ले लिया था। अब फिर शादी-शुदा हैं और दोनों के एक-एक बच्चा है।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना अपनी बेटी के साथ रहती थी। 'सास-जमाई' वाली समस्या उनके यहाँ कभी पैदा नहीं हुई। बेटी भी अकेली रह गई थी। समस्या तो यह थी कि जुड़वाँ बच्चों को कैसे पाला-पोसा जाए।

अब तो कई सालों से येलिज़ावेता निकोलायेव्ना बच्चों को देखने में लगी हुई थी। ठीक पचास साल की उम्र में वह सेवा-निवृत्त हुई थी। उसने एक संगीत-विद्यालय में नौकरी की थी, जहाँ वह अपने पीछे अपनी प्रिय ध्वनि-संग्रह की लाइब्रेरी छोड़कर आई थी। जब बच्चे बड़े हो गए तो ज़्यादा शोर-शरारत करने लगे थे और उनकी देखभाल करना बड़ा मुश्किल हो गया था। जब एक बार येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को दिल का ज़बरदस्त दौरा पड़ा था तब बच्चों को नर्सरी में डाल दिया था। ठीक होने के बाद उसने थोड़ा आराम किया, पर अधिक नहीं। बच्चे अक्सर बीमार रहते थे, पर एक साथ बीमार नहीं होते थे। ऐसा होता था कि लगभग हमेशा वे घर पर ही रहते थे। नानी ने आह भर

कर फ़ैसला किया कि अच्छे-भले घर में ही रहें तो ठीक रहेगा। उन्हें नर्सरी से वापस ले आई। पिछले साल से बच्चे स्कूल जाने लगे थे।

जिस घर में येलिज़ावेता निकोलायेव्ना रहती थी, उसे छोड़कर चार और ऐसे बिन्दु थे, जहाँ वह अपने विचारों और चिन्ताओं को लगा सकती थी। ये थे चार परिवार, जहाँ उसके बाक़ी चार पोते रहते थे। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना हमेशा अपनी किसी-न-किसी सन्तान के बारे में सोचती रहती थी या फिर सबके बारे में एक साथ।

बड़े बेटे के दफ़्तर के झगड़ों के मारे वह भी परेशान रहती थी। छोटे बेटे की पीने की लत से भी वह चिन्तित रहती थी। इस बात का भी दुःख था कि बड़े बेटे की पहली पत्नी उनके बेटे को उससे मिलने नहीं देती थी। वह इस बात को लेकर परेशान थी कि बड़े बेटे की दूसरी पत्नी अपनी पाँच साल की बेटी को ज़बरदस्ती करके स्केटिङ-नृत्य सिखा रही है, कि बड़े वाले पोते ने सिगरेट पीना शुरू कर दिया है और बीचवाला पोता इतना लम्बा हो गया है कि उसके कपड़े छोटे हो गए हैं, मगर उसकी माँ को यह दिखाई नहीं देता है और उसने सब कुछ पिता के भरोसे छोड़ रखा है, जबकि पिता का विचार है कि तलाक़ के बदले इतना ही सम्भरण पर्याप्त है। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना अपनी पेंशन से कम-से-कम इतनी किफ़ायत करने की कोशिश करती थी कि जन्म दिनों के अवसर पर उपहार के लिए कुछ रुपये हो जाएँ मगर पेंशन तो बहुत कम थी, बचत करना आसार नहीं था और इसलिए उपहार वैसे नहीं हो पाते थे, जैसे कि वह चाहती थी।

कुल मिलाकर येलिज़ावेता निकोलायेव्ना के जीवन में शान्ति नहीं थी। सम्भव है कि अगर वह सबकी मदद कर सकती और उनके जीवन में हाथ बँटा सकती तो वह इतना दुःखी नहीं रहती। पर वह सबकी सहायता करने में असमर्थ थी।

इस बीच बेटी ने भी रात को देर से आना शुरू कर दिया था। कहाँ जाती है? जिसके साथ जाती है? इस बार कुछ अच्छा होगा क्या? शायद ही हो। दो बच्चे भी हैं। किसी और के बच्चों को पालना-पोसना कोई आसान काम नहीं है। बेटी और जुड़वाँ बच्चों की चिन्ता भी येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को सताए रहती थी।

विचारों, चिन्ताओं और परेशानियों का बोझ रात की शान्ति के क्षणों में उसके दिमाग़ में सिमटकर वहीं चक्कर काटता रहता था, जिससे उसे नींद भी नहीं आ पाती थी और अगले दिन के लिए बोझ और भी बढ़ जाता था।

रात के क्षणों में सब कुछ और सबके विषय में सोचते-सोचते येलिज़ावेता निकोलायेव्ना इस निष्कर्ष पर पहुँची थी कि उसकी गिनती दुःखी लोगों में होनी चाहिए। अपनी चिन्ता और परेशानी के कारणों को हरगिज़ या लगभग बिलकुल बदल ही नहीं सकती थी। और तब पहली बार उसके मन में यह इच्छा पैदा हुई, इच्छा नहीं बल्कि एक ऐसा सहज और सरल विचार उसके मन में आया कि क्यों न वह दुनिया के छोर पर चली जाए? दुनिया के छोर विषयक अपने विचारों को येलिज़ावेता निकोलायेव्ना कायरता मानती थी, ऐसे विचारों को दूर भगाती रहती थी, ख़ुद अपनी भर्त्सना भी करती थी, परन्तु ऐसे विचार उसके मन में बार-बार लौट ही आते थे।

"लाठी लेकर और पीठ में झोला टाँगे सीमेण्ट के मुद्रिका मार्ग को जैसे ही मैं पार करूँगी, क्या तभी सब कुछ मेरे पीछे से गिर पड़ेगा?" वह इसी तरह या लगभग इसी तरह सोचा करती थी और अपने को इस तरह समझा लेती थी—चार पोते तो उसकी देख-रेख के बग़ैर ही जी रहे है यानी कि यहाँ—बेटी के पास—भी रह ही लेंगे। और तब वह आगामी यात्रा के बारे में ही अक्सर सोचती रहती थी।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना के साथ भी ऐसा ही हुआ। उस दिन कोई विशेष बात नहीं थी। रोज़ की तरह उसने नाश्ता तैयार किया, बच्चों को जगाया, कसरत की और खिला-पिलाकर स्कूल भेजा। दुकान तक दौड़ी गई और आकर सूप तथा कम्पोत[1] को आग पर चढ़ाया। झाड़ू-पोछा किया। फिर नमदे के जूतों के साथ पहनने के लिए पेत्या के मोज़ों में पैबन्द लगाने बैठ गई।

टेलीफ़ोन की घण्टी बजी। छोटे बेटे की पत्नी कह रही थी कि आज फिर रात को यह सोने नहीं आया। इस बार वह फ़ैसला कर चुकी है कि अब वह उससे अलग हो ही जाएगी। उन्होंने थोड़ी देर बात की। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने अपने छोटे लड़के को मनाने की कोशिश नहीं की कि वह उसे भगाए नहीं। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना बहू को शान्त करना चाहती थी। इसलिए वह उससे पोते के बारे में पूछने लगी। पूछा कि उसकी अंग्रेज़ी कैसी चल रही है। कुछ ही समय पहले उसने अंग्रेज़ी सीखना शुरू की थी और उसकी सफलता पर सभी गर्वित थे।

बहू ने बता दिया कि पति को खोजने का उसका कोई इरादा नहीं है और यदि नशे की हालत में वह किसी गाड़ी की चपेट में आ गया है तो ठीक

---

1. सूखे फलों का पेय।

ही हुआ। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने पेत्या का मोजा अलग रखा और बेटे के दफ़्तर का टेलीफ़ोन मिलाया। वह दफ़्तर में नहीं था। काँपते हुए हाथों से नोटबुक के पन्ने पलटते हुए उसके किसी परिचित का नम्बर ढूँढ़ने लगी। किसी नम्बर से उसे जवाब नहीं मिला। फिर से दफ़्तर में टेलीफ़ोन किया। "अभी देखती हूँ।"—किसी महिला का स्वर सुनाई दिया।

वह बहुत देर तक चोंगे को कान से लगाए रही। इतने में किसी ने दरवाज़ा खटखटाया—बच्चे स्कूल से लौट आए थे। आज जल्दी छुट्टी हो गई। पोते ने टेलीफ़ोन के पास आकर उसे बीच में टोक दिया। फटी आवाज़ में उसने कहा—"दूसरों की बातों में दख़ल मत दो।" उसके कहने में सजीवता थी जिसके वह शान्त हो गई और चोंगे को चुपचाप वापस रख दिया। पोती ईरच्का मारे ख़ुशी के चिल्लाई, "आग लग गई! आग!" पेत्या भी पीछे से चिल्लाया, "धुआँ! रसोईघर से धुआँ निकल रहा है!" दो-के-दो कूदने और चीख़ने-चिल्लाने लगे।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना रसोईघर में दौड़ी गई। कम्पोत जल गया था। जलकर कोयला हुए फल जले हुए भगोने से चिपक गए थे। उसने भगोने में पानी डाल दिया।

भोजन का समय हो गया था। उसके बाद सैर का समय था। उसने बच्चों से वादा किया था कि उन्हें चौक पर घुमाने ले जाएगी। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को कम्पोत की बर्बादी की नहीं, इस बात की चिन्ता थी कि भगोना साफ़ भी हो सकेगा या नहीं।

जब सैर को गए तो यही भगोना और छोटा लड़का दिमाग़ में घूमते रहे। फिर सारा दिन भी वह लड़के के बारे में ही सोचती रही। यह कि उसकी परवरिश सही ढंग से नहीं की।

असफलताओं के लिए वह स्वयं तैयार नहीं थी। बड़ा लड़का और बड़ी लड़की पढ़ाई में बुरे नहीं थे और अपने सामान्य ढंग से बढ़ रहे थे।...छोटा बेटा बिगड़ गया था। उसके लिए येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने क्या-क्या नहीं सहा। बड़ों की—जो कि ठीक-ठाक थे—छोटे वाले के साथ हिलने-डुलने की और माँ की मदद करने की इच्छा नहीं हुई। घर का कुछ काम कर भी देते थे तो अनिच्छा से, बस किसी तरह जल्दी-से-जल्दी पूरा करके अपने को अधिक रोचक कामों में लगाने की इच्छा रहती थी।

बड़े बेटे को रेडियो इंजीनियरी का शौक़ था और वह अच्छा-ख़ासा इंजीनियर बन गया था। बेटी की रुचि संगीत में थी पर बात कुछ भी नहीं बन सकी थी—संगीत विद्यालय में गई तो थी, मगर पढ़ाई पूरी नहीं की, बल्कि कर ही

नहीं पाई। नए सिरे से स्टेनो-टाइपिस्ट का प्रशिक्षण प्राप्त किया। दफ़्तर के बाद क्लब की संगीत-कक्षा में जाती थी, जिसका संचालन एक पियानो-वादक करता था, जो कि संगीतज्ञ बुरा नहीं था। तभी उसके जुड़वाँ बच्चे पैदा हुए। पेत्या को सुर की पहचान थी। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने पियानो-वादक से बात करने का निश्चय किया। मगर पियानो-वादक तो अपनी पत्नी से इतना डरता और काँपता था कि उससे बात करने का ही मन नहीं हुआ। बच्चे उससे दूर हट गए और बाद में जाकर उन्हें उसकी कभी याद ही नहीं आई।

छोटा लड़का स्कूल पास करने के बाद तीन-तीन कालेजों में घूम आया था। फ़ेल होने के कारण सब जगह से निकाला गया था। उसने फ़ैक्ट्री में भी काम करके देखा था और अपना धन्धा भी किया था। आख़िरकार उसे सफलता मिली विज्ञापन के क्षेत्र में। आकर्षक चित्रों और कविता की सीधी-सादी पंक्तियों के द्वारा होनेवाली उसकी कमाई किसी इंजीनियर से कम नहीं थी। पर आधे रुपये तो उधार देने और लौटाने में और शराबख़ोरी में ही उड़ जाते थे। उसे लोगों ने बहुत समझाया कि किसी गम्भीर काम में अपनी शक्ति लगाए—कार्टून फ़िल्में हैं, बच्चों की किताबें हैं। लेकिन वह किसी अपरिचित स्थान में अपरिचित लोगों के पास नहीं जाना चाहता था। अपनी आदतों में बेशर्म होते हुए भी अजीब बात थी कि वह बेहद शर्मीला था। केवल उसकी माँ को ही इसका पता था।

छोटे बेटे के बारे में उसके सोच-विचार क्रम से आ रहे थे, काम भी अपने क्रम से चल रहा था और दिन समाप्ति की ओर था। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने भोजन समेटकर बर्तन धोए और बच्चों के साथ सोफ़ा पर बैठ गई—पढ़ने को।

इसी समय बेटी आई और गलियारे में से ही असन्तुष्ट स्वर में बोली—"यहाँ कुछ जल गया है।" येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को तुरन्त भगोने की याद आई। "कम्पोत जल गया था।"—उसने लज्जित होकर स्वीकार कर लिया। बेटी ने झिड़कते हुए कहा, "तू हमेशा कुछ-न-कुछ जला बैठती है। वैसे भी..." उसके इन आख़िरी शब्दों से येलिज़ावेता निकोलायेव्ना सबसे ज़्यादा नाराज़ हुई। बहुत बुरा मान गई। "वैसे भी" का क्या मतलब हो सकता था? इसका कुछ भी अर्थ लगाया जा सकता था। इसका अर्थ यह भी निकलता था कि उसके हाथों में ही कोई दोष था, वह कोई कोशिश भी नहीं करती थी और बच्चों की भी देखभाल नहीं करती थी।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना बेटी के लिए खाना गरम करने रसोई में गई और भगोना भी साफ़ करने में लग गई। बेटी ने भगोना उसके हाथ से छीन

लिया और बोली, "भगोना तो गया, अब इसे रगड़ने से क्या होगा।" हो सकता है कि बेटी दफ़्तर में झगड़कर आई हो या व्यक्तिगत स्तर पर कुछ हो गया हो। पता नहीं क्यों वह इतनी चिड़चिड़ी हो रही थी।

रात को येलिज़ावेता निकोलायेव्ना इसी बारे में सोचती रही। अपने को समझाती रही कि ये सब कुछ तुच्छ बातें हैं, जिनको याद करते भी शर्म आती है। पर इन तुच्छ विचारों से, झल्लाहट में कहे गए बेटी के शब्दों से और उसके स्वर से वह अपने को अलग कर ही नहीं पा रही थी।

'दुनिया के छोर पर चले जाना चाहिए।' "येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने मन-ही-मन सोचा और गहरी साँस ली। वह उसी तरह आह भरती रही। और भी जल्दी-जल्दी। साँस भरते समय उसे ऐसा लगता था कि जैसे घर में दम घुटा जा रहा है, हवा की कमी है, साँस लेने को कुछ भी नहीं है। और तब वह खिड़की को ज़रा-सा खोलने के लिए उठी।

बर्फ़ीली हवा कमरे के अन्दर घुस आई। उसने पर्दे को पकड़कर येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को उसमें लपेटा और ऊपर कर फेंक डाला। कोई चीज़ घड़घड़ाती और झनझनाती हुई टकराकर फ़र्श पर गिर पड़ी। घर में कोई चिल्लाने लगा और बाहर भी कुछ गुर्राने और गूँजने लगा। गूँज और शोरगुल आकर मिल गए और येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को उड़ाकर दूर अनजान जगह में ले गए।

"तो यह बात है, अब ये हालत है...।" बिना कुछ बोले उसके मन में यह विचार आया।

सच भी यही है। हमारे राकेट युग में कहाँ की शराब और कहाँ का झोला। हम तो बहुत आगे जा चुके हैं।

दुनिया के छोर पर शान्ति और उजाला था। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने आँखें खोलीं। उसे यह महसूस हुआ कि वह गहरी नींद सोई थी और ख़ूब अच्छा सोई। पर अभी भी उठने की इच्छा उसे नहीं हो रही थी।

उसके पलंग के सामने की खिड़की कुछ खुली हुई थी। खिड़की के सामने एक छोटा-सा पेड़ उगा हुआ था। उसकी टहनियों में हल्के हरे रंग की पत्तियाँ दिखाई दे रही थीं, जो अभी ज़रा-सा खिली थीं। डाल पर चिड़िया बैठी हुई थी, जो चार नोट के स्वर में चहचहा रही थी। थोड़ी दूरी पर टेढ़ी छत और लकड़ी की दीवार में बनी दुछत्ती की खिड़की नज़र आ रही थी। 'ज़रूर यहाँ सब लोग लकड़ी के मकानों में रहते होंगे और यहाँ तक कि जाड़ों में भी कलियाँ खिलती होंगी।'—येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने मन-ही-मन सोचा।

वातावरण शान्त था। मकान की छत पर सवेरे की लालिमायुक्त धूप पड़ रही थी। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को याद आया कि दुनिया के छोर पर कहीं की जल्दी नहीं करनी चाहिए। उसने आँखें मूँद लीं।

अपने नए जीवन के दूसरे दिन येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने देखा कि खिड़कीवाला पेड़ सफ़ेद फूलों से ढक गया है। अब चिड़िया दूसरी तरह से चहचहा रही थी—लम्बे और गूँजते हुए स्वर में। तेज़ और गरम धूप खिड़की से सीधे अन्दर आ रही थी।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने उठने का प्रयास किया, मगर उठ नहीं पाई। इस बात से उसे विशेष चिड़चिड़ाहट नहीं हुई। वह लेटी-लेटी खिले हुए पेड़ को देखे जा रही थी, पक्षी का गान सुन रही थी और दौड़-धूप से अलग रहने के शान्तिपूर्ण सुख का अनुभव कर रही थी। उसने अपने आप को बहुत ही हल्का महसूस किया। ऐसा उसके साथ पहले कभी नहीं हुआ था। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि भारहीनता यही होती होगी।

इसके बाद उसे नींद आ गई। जब फिर से उसकी आँखें खुलीं, तब पेड़ पर गहरे हरे पत्तों के बीच में से उसे लाल-लाल चेरियाँ दिखाई दीं। डालों पर कूदते-फाँदते पक्षी चेरी का मज़ा ले रहे थे। इस तरह दुनिया के छोर का उसका तीसरा दिन शुरू हुआ।

सफ़ेद वस्त्र धारण किए शान्त महिलाएँ आईं, जो देवदूती-जैसी दिखाई दे रही थीं। उनकी चाल ऐसी थी कि वे फ़र्श से ज़रा-सा ही छू रही थीं। उनकी आपस की बातचीत सुनाई नहीं पड़ रही थी। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को वह कुछ कर रही थीं; क्या कर रहीं थीं—यह वह महसूस नहीं कर पा रही थी। इसके बाद अस्फुट स्वर में वे फिर से कुछ कहने लगी थीं। उनके जाने के बाद येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने याद करने की कोशिश की कि वह यहाँ तक कैसे आ पहुँची थी, लेकिन उसे कुछ भी याद नहीं आया।

वे महिलाएँ फिर लौट आईं और येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को लम्बे-चौड़े वस्त्रों में लपेटने लगीं। उनका कोमल स्वर उसे अच्छा लग रहा था, यद्यपि शब्द उसकी समझ में नहीं आ रहे थे। इतने में वह अचानक रो पड़ी। आँसू गालों से होकर बहते हुए वक्ष पर टपक रहे थे। उन महिलाओं ने उसे समझाकर शान्त करने की कोशिश की, मगर उनकी बातों का आशय उसकी समझ में ही नहीं आया। वह कोशिश कर रही थी कि कहीं बहुत दूर छोड़ी हुई कोई प्रिय और कोमल बात को याद करे।

कुछ छोड़ा तो था पर क्या, क्या? उसे याद नहीं आ सका और वह और भी ज़ोर से रो पड़ी—सिसकियाँ भर-भरकर और काँपते हुए। महिलाओं ने उसे सुगंधित पेय का चषक दिया, जिसे वह पी गई और एक बार फिर उसे शान्ति मिली। स्पष्ट था कि यहाँ—दुनिया के छोर पर—कोई उसे चिन्ताओं में नहीं पड़ने देगा और न छोड़ी हुई बातों को लेकर उदास ही होने देगा।

छोड़ी हुई बातों पर...कौन-सी? पर इस समय उसके चिन्तन में व्यग्रता नहीं थी, इस समय उसके विचार शान्त और अशक्त होकर हिल रहे थे और उनींदे-से धीरे-धीरे दबते जा रहे थे।

कुछ समय बाद येलिज़ावेता निकोलायेव्ना बाहर बाग़ में जाने लगी। पक्षियों द्वारा कुतरी हुई चेरी के अतिरिक्त बग़ीचे में और भी अनेक पेड़-पौधे थे। वृक्ष, फूल और घास। पुराने लिण्डन वृक्षों की टहनियाँ घने छायापथों पर छाई हुई थीं, घास के उजले मैदानों में मेपल के नए वृक्ष और सफ़ेद छालवाले पतले भूर्ज वृक्ष उगे हुए थे। रास्ते आगे जाकर पगडण्डी में बदल जाते थे और काईवाली घास से ढँकी हुई पगडण्डियाँ एल्डर की झाड़ियों में या वैनीला की सुगंध देने वाले बड़े-बड़े सफ़ेद फूलों की झाड़ियों में विलीन हो जाती थीं। बाग़ बहुत बड़ा था, उसके छोरों पर बनी हरी झोंपड़ियों से उसकी सीमा ढँकी हुई थी। लगता था कि बाग़ का कोई अन्त नहीं है।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को वहीं कुछ और औरतें भी दिखाई दीं। उनमें से भी कुछ ऐसी थी, जिन्हें अपने पहले के जीवन की कोई याद नहीं रह गई थी। अन्य महिलाओं को कुछ याद तो था, पर उसके बारे में वह बात नहीं करना चाहती थीं। लगता था कि पुरानी बातों को याद करना और उस बारे में पूछताछ करना यहाँ का रिवाज नहीं है।

क्या सम्भवतः संसार के छोर पर असफल महिलाएँ आकर जमा हो गई थीं? दुखियारी, जैसी कि वह स्वयं थी? एक दिन उसकी इच्छा हुई कि गिन कर तो देखे कि कितनी हैं। कुल मिलाकर तीस थीं या शायद कुछ कम। इसलिए कि किसी को उसने शायद दो बार गिन दिया होगा। "तीस दुखियारी—यह तो बहुत कम हुआ।" उसे खुशी हुई, उसकी इच्छा नहीं थी कि उनकी संख्या अधिक हो।

कुछ समय बीत गया। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना को मालूम नहीं था कि कितना समय बीता है। लेकिन पता नहीं क्यों, उसे कोई याद सताने लगी थी। "यहाँ शान्ति है। यहाँ शान्ति है।" वह अपने से कहे जा रही थी। जैसे कि

अपने को मना रही हो। पर अधिकतर यही विचार मन में आता था कि यहाँ उतना अच्छा नहीं है कि यहाँ आने की तीव्र इच्छा हो।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना लकड़ी के एक छोटे मकान को लेकर चिन्तित थी, जिसमें सामने एक ऊँचा बरामदा था और जिसका दरवाज़ा ताले से बन्द था और जिसके पर्दे हमेशा ढके रहते थे। वह मकान सोये हुए ग्रीष्म-आवास जैसा लगता था। कुछ धुँधले-से विचार मन में पैदा होते थे—ग्रीष्म-आवास, ग्रीष्म ऋतु, बच्चे। सवेरे के समय बच्चे दौड़कर घर से बाहर आ रहे हैं। ग्रीष्म-आवास के पास खेलते, हँसते और चिल्लाते हुए बच्चे उछल-कूद कर रहे हैं। बीच-बीच में उनमें से कोई रोने लगता है। तब येलिज़ावेता निकोलायेव्ना की आँखें दया से भर आती थीं। पर बच्चे फिर से हँसने लगते थे और उसके आँसू सूख जाते थे।

ये किसके बच्चे हैं? येलिज़ावेता निकोलायेव्ना ने याद करने की कोशिश की, मगर याद नहीं आया। उसे उनके नाम मालूम नहीं थे। या हो सकता है कि कभी जानती रही हो, पर अब भूल गई थी। उसे बस इतना याद था कि उनकी संख्या तेरह थी—छह लड़के और सात लड़कियाँ।

दुनिया के छोर पर बहुत ही शान्ति थी। शान्ति। बिलकुल शान्त और उदास।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना की पुण्यतिथि पर उसके घर में एकत्र होने का फ़ैसला किया गया। बेटी को समझ नहीं आ रहा था कि भाइयों की पत्नियों—पहले की और अभी की—के साथ क्या किया जाए। फिर बोली कि वे ख़ुद फ़ैसला कर लें, जिसकी इच्छा हो, आ जाए।

सब आ गए थे। ठीक समय पर। केवल छोटा लड़का वहाँ नहीं पहुँचा था। दूसरी पत्नी से तलाक़ लेने के बाद अब वह इस कार्यक्रम को भूल ही सकता था।

येलिज़ावेता निकोलायेव्ना के उत्तराधिकारी बैठक की और रसोईघर की दो मिलाई हुई मेज़ों में बड़ी मुश्किल से समा रहे थे। लोग बढ़ जो गए थे। बेटी की मदद के लिए एक चश्माधारी युवक वहाँ था—देखने में सुन्दर तो नहीं था, पर आकर्षक ज़रूर था। यह वह दामाद था, जिसकी येलिज़ावेता निकोलायेव्ना प्रतीक्षा करती रहती थी और जिससे डरती भी थी। दीवान पर खर्राटे भरते हुए लँगोट में लिपटा बड़े बेटे का छोटा बच्चा सो रहा था—यह नया, सातवाँ पोता था। बड़े बेटे की पहली पत्नी नए पति को लेकर आई थी—सिर्फ़ यही दिखाने के लिए नहीं कि वह पहलेवाले से अधिक सुन्दर है और क़द में लम्बा है।

नहीं, स्वयं उसी को आने की इच्छा हो गई थी। पोते बड़े हो गए थे। सबसे बड़े पोते को चौदह साल पूरे हो गए थे। अब सभी स्कूल जाते थे। सबसे छोटी वाली स्केटिङ्ग-नर्तकी पहली क्लास में जाने लगी थी। बच्चों को—दीवान पर सोते हुए नएवाले को छोड़कर—दादी की याद थी।

सब शान्ति के मूड में थे और थोड़ा-सा शोकाकुल थे। भाग्यवश आकर मिली, छोटे बेटे की दो पत्नियाँ साथ-साथ बैठी बतिया रही थीं।

गृहिणी ने घड़ी देखकर कहा, ''आप लोग बैठिए। वह भूल गया होगा।'' दामाद और मृतका का बड़ा बेटा मदिरा और फलों के रस को चषकों में डालने लगे थे। चषकों को भरने के बाद बड़ा बेटा उठ खड़ा हुआ। सब उसके बोलने की प्रतीक्षा में थे।

बाक़ी सब भी खड़े हो गए।

''तो हम अपनी माँ को याद करते हैं, जो बहुत बढ़िया इन्सान थी और ईमानदारी से अपना काम करती थी और...''

इतने में दरवाज़े की घण्टी बजी।

''रुको, वह आ गया है।'' गृहिणी ने ज़ोर से कहा, ''बच्चो, दरवाज़ा खोलो।''

जुड़वाँ बच्चे गलियारे की तरफ़ दौड़े गए। उनके पीछे-पीछे छोटे लड़के के बेटे और बाक़ी बच्चे भी गए।

बच्चों से घिरा हुआ छोटा बेटा कमरे में प्रविष्ट हुआ। उसके बाल ठीक-ठाक कटे हुए थे और वह कुछ व्याकुल लग रहा था। उसके पीछे लम्बे और चमकीले बालोंवाली एक लड़की छिपी हुई थी। छोटे बेटे ने सब बच्चों का बारी-बारी से चुम्बन किया और फिर उस लड़की की तरफ़ मुड़कर उसका हाथ पकड़ लिया। जब वह वहाँ अपनी काली भौंहों को छिपाए हुए खड़ी हुई थी, सबने उसकी सीधी नाक और कमर से कसे हुए पैण्टनुमा सूट को देख लिया था।

''ये है मेरी गाल्या।'' छोटे बेटे ने आवाहन के-से स्वर में कहा।

लड़की ने अपनी भूरी आँखें ऊपर कीं और सब लोगों पर शान्त तथा दृढ़ दृष्टि डाली। गृहिणी ने अभी-अभी आए हुओं को झट से बिठाया और अपना चषक अप्रतीक्षित अतिथि को थमा दिया। दो और चषक भरे गए।

''तो चषक उठाओ माँ की याद में।'' बड़े बेटे ने फिर से उठकर कहा।

सब उठ गए। पर छोटे बेटे ने बीच में कुछ कहना चाहा। वह ज़ोर से बोला, ''हाँ, हमारी दादी असली इन्सान थी। ईश्वर से प्रार्थना है कि हम सब...'' उसने गहरी साँस ली। स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि उसे सन्देह था कि वे सब

कर भी पाएँगे या नहीं, "कि हम सब या जो हमारे बाद रहेंगे... ।" मेज़ पर नज़र घुमा कर उसने कहा, "बच्चो, कोशिश करते जाओ!"

सबने चषक उठाए—आयु के अनुसार किसी में मदिरा थी और किसी में फलों का रस। येलिज़ावेता निकोलायेव्ना की याद में सबने अपना-अपना चषक पीया।

बेटी दहाड़ मारकर रोने को थी, परन्तु गृहिणी के कर्त्तव्य के कारण अपने को रोक लिया। महिलाओं ने आँखों से इशारा करके रूमालों को आँखों और होंठों पर लगाया। पुरुषों ने सिगरेटों पर हाथ मारा, लेकिन पत्नियों ने पीने नहीं दी। गृहिणी ने सबको भोजन ग्रहण करने को कहा और वह तश्तरियों में सलाद डालने लगी। बच्चों का शोर और बड़ों की गपशप शुरू हो गई। दीवान में सोए हुए बच्चे ने सिर घुमाया और रोना शुरू करने से पहले गुस्से से गुर्राया।

ऊपर से—बड़ी की हुई फ़ोटो में से—एक अधेड़ महिला उन सबको देख रही थी। कोमल नाक-नक़्श, झुर्रियों के जाल से घिरी कुछ फैली हुई आँखें जैसी कि शौकिया खींची गई तस्वीरों में हमेशा होती हैं। ...उसकी दृष्टि में कुछ खोयापन-सा था—या तो आश्चर्यपूर्ण या चिन्ताग्रस्त या सम्भवतः, दोनों एक साथ।

फिर भी वह मुस्कुराए जा रही थी।



छँटनी

अलेक्सान्द्र खूर्गिन

तुलीशिन को जो काम मिला हुआ था, वह अच्छा ही था। शारीरिक दृष्टि से, यदि आदत न हो तो, भारी-भरकम था, पर था आसान। काम के दाम भी अभी कुछ समय पहले तक अच्छे मिल जाते थे, जो बसर करने के लिए पर्याप्त थे। इसलिए कि तुलीशिन की गिनती मज़दूर वर्ग के प्रतिनिधियों में होती थी या जैसा कि भूतपूर्व समाजवाद के दिनों में कहते थे, उसे 'कामगार' जैसी उच्च पदवी प्राप्त थी। बचपन और किशोरावस्था में उसने मिडिल स्कूल की आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई बड़ी मुश्किल से दस वर्षों में पूरी की थी और वहाँ से यानी स्कूल से सीधे फ़ैक्ट्री में लग गया था और इस तरह वह श्रमिक होकर समाज का पूर्ण सदस्य बन गया था। इस फैक्ट्री में इक्कीस साल कैसे निकल गए—उसे पता तक नहीं चला। बिना हटे एक ही खराद पर काम करता रहा था। हुँ-अ, एक नहीं, दो खरादों पर। इसलिए कि एक बार उसकी खराद के बदले नई खराद आ गई थी, जो उसी नम्बर और डिजाइन की थी—2स170, ड्रिलिङ खराद। तो इसी खराद पर तुलीशिन ने 'श्रेष्ठ श्रमिक' के रूप में काम किया था। सच, केवल काम पर रहते हुए ही उसे ऐसा अर्थात् 'श्रेष्ठ श्रमिक' माना जा सकता था, परन्तु जीवन में तथा आचरण की दृष्टि से वह ऐसा नहीं था। बाहर उसका आचरण अधिकांश लोगों जैसा ही था—वेतन मिलते ही शराब के लिए दौड़ना और उसके बाद बिना उचित कारण के काम से ग़ैर-हाज़िरी; राजनीति के प्रति वह उदासीन था, उसके कोई स्थिर विचार नहीं थे। वह अख़बार तक नहीं पढ़ता था, उसमें वह केवल यही देखता था कि आज टीवी में क्या-क्या प्रोग्राम हैं। पर अपना काम वह पूरी ईमानदारी और निष्ठा से करता था, पादरी कार्लो की तरह, कड़ी मेहनत के साथ। इसीलिए तो उसे कई वार प्रशंसा प्रमाण-पत्र

मिल चुके थे, पुरस्कार-स्वरूप नक़द रुपये भी मिले थे और सन् 1988 में 'सम्मान-पदक' भी प्राप्त हुआ था।

तुलीशिन के काम में निम्नलिखित बातें आती थीं—ढेरी में से वह सोलह किलोग्राम वज़न का अस्तर नाम का पुर्ज़ा उठाता, उसे जुगत में डालता, फिर स्टार्ट का बटन दबाकर बीस सेकेण्ड इन्तज़ार करता, तब तक खराद अस्तर में छह छेद करके ऊपर उठकर अपनी मूल स्थिति में आकर बन्द हो जाती। इसके बाद तुलीशिन छेदोंवाले अस्तर को निकालकर दूसरी ढेरी में रख लेता। इसी तरह इक्कीस सालों से वह यही काम बिना किसी विशेष परिवर्तन के करता आ रहा था—एक पाली में सात सौ बार तक। क्योंकि तुलीशिन को फ़ौज में भी नहीं लिया गया था। इसलिए कि उसे कोई गम्भीर बीमारी थी। नहीं, वह था तो, कुल मिला कर, स्वस्थ। निश्चय ही। परन्तु आरम्भ से ही उसके कानों में कोई दोष था। स्कूल में भी उन्हीं—अभागे कानों—की वजह से उसकी पढ़ाई बहुत लम्बी चली थी। उसकी बीमारी की इस लम्बी कहानी का अन्त इस तरह हुआ कि उसके सिर में छेद करके कानों से मवाद निकाली गई। इस आपरेशन की कृपा से वह ठूँठ की तरह बहरा हो गया। कान में चिल्लाकर कहने से तो वह सुन लेता था, परन्तु सामान्य स्वर में बोलने से उसे कुछ भी सुनाई नहीं देता था। सैनिक मेडिकल बोर्ड के कनाक (कर्ण-नासिका-कण्ठ) विशेपज्ञ ने उसके श्रवण-स्तर की हर तरह से जाँच की और कान के छेदों का निरीक्षण करके अन्त में यह लिख दिया कि वह यानी तुलीशिन किसी काम का नहीं है और सेना में नौकरी के लायक़ है ही नहीं। कुछ सालों में तुलीशिन के कानों में सुधार तो हुआ, मगर वे पूरी तरह से फिर भी ठीक नहीं हुए। कभी-कभी तो उसकी श्रवण-शक्ति शून्य तक पहुँच जाती थी, पर हर बार फिर से ठीक हो जाती थी। यानी ऐसा हुआ कि तुलीशिन ने मातृभूमि को अपनी उँगलियों पर नचा दिया और अपने पावन कर्तव्य को पूरा करने के बजाय अपनी जगह जम कर देश की आवश्यकता के लिए अस्तरों में ड्रिलिङ करता रहा। और, आगे चलकर, वहीं अपनी पत्नी से शादी कर ली। पहले ही प्रयास में जुड़वाँ बच्चे पेदा करने के बाद दो बच्चों का बाप बनकर फिर से उस ओर आकर्पित नहीं हुआ। इस तरह अस्तर ड्रिल करना उसकी प्रमुख विशेपज्ञता और जीवन का ध्येय हो गया। उसने और कोई धन्धा नहीं सीखा था। उसे ऐसी कोई आवश्यकता या ज़रूरत थी भी नहीं। वह अपने इसी, वर्तमान धन्धे से, पूरी तरह सन्तुष्ट था। वेतन की दृष्टि से भी और अन्य सब तरह से भी।

तो अब हुआ यह कि छँटनी के सिलसिले में उसकी भी छुट्टी हो गई, क्योंकि तीन में से दो पालियाँ—गिनकर—बन्द कर दी गईं। अर्थात् पहले की

तरह नहीं—जब छँटनी की मार या तो किसी सफ़ाईवाली पर या दफ़्तर के किसी ग़ैर-ज़रूरी और दोयम दर्जे के इंजीनियर पर पड़ती थी। इस बार मैनेज़र ने मज़दूरों की बैठक में ज़ोर से बोलते हुए यह घोषणा की कि सुधारों के परिणामस्वरूप उनकी फ़ैक्ट्री के उत्पादों को कोई मुफ़्त में तक नहीं ख़रीद रहा है, इसलिए वेतन देने का कोई साधन नहीं है और इसलिए, उसने कहा, उत्पादन को कम करना ज़रूरी हो गया है। तदनुसार, उसने कहा, लोगों की संख्या कम करना भी आवश्यक हो गया है।

तुलीशिन ने उस स्मरणीय बैठक में अपनी जगह से ही मैनेजर से पूछा था, "तो अब हम क्या करें? कहाँ जाएँ?"

मैनेज़र ने उससे उसका नाम लेकर कहा, क्योंकि उसे वह अनुभवी और सम्मानित कामगार के रूप में व्यक्तिगत रूप से जानता था, "तुलीशिन, तुम तो काम करनेवाले आदमी हो!"

"हाँ, काम करनेवाला तो हूँ।" तुलीशिन ने कहा।

"यही तो मैं भी कह रहा हूँ।" मैनेज़र ने कहा।

यह सब पता चलने पर तुलीशिन की पत्नी बोली, "बहुत गहरे लोग हैं ये। अपने लिए कोई काम ढूँढ़ लेना।"

"कौन-सा काम? कहाँ है?" तुलीशिन ने उससे पूछा।

वह बोली—

"हुँ...अ, मुझे नहीं पता! लोग कहीं-न-कहीं काम पर तो लगे ही हैं।

यह सुन कर तुलीशिन ने सोचा, हाँ, कहने वाले के लिए तो बड़ा आसान है कि तुम्हें नौकरी से हटाया जा रहा है, और फिर वह पत्नी पर नाराज़ हो गया। वह कुपित तो हुआ, पर बाहर से किसी भी तरह प्रकट नहीं होने दिया।

तभी जाने कहाँ से बेटियाँ भी आ धमकीं। दोनों-की-दोनों बहुत उत्तेजित दिखाई दे रही थीं।

"पैसे चाहिए।" दोनों चिल्लाकर कहने लगीं और शीशे के सामने खड़ी होकर बालों पर फटाफट कंघी करती हुईं और कंधे हिलाती हुईं वे चिल्लाकर बोलीं, "पैसे चाहिए।"

तुलीशिन ने कहा, "मैं अभी देता हूँ तुम्हें, मेरी प्यारी बेटियो।"

बेटियों ने कहा, "न दोगे और न हमें चाहिए!" और फिर आगे बोलीं, "हम ख़ुद कमा सकती हैं। औरों से कम नहीं कमाएँगी।"

उन्हें शीशे के पास से खींचकर तुलीशिन ने चिल्लाकर कहा, "इससे अच्छा तुम स्कूल की तैयारी करतीं, अपनी किताबों को दोहरा लेतीं।"

बेटियों ने पलट कर कहा, "क्या?"

पूरी ताकत लगा कर दरवाज़े को धड़ाम से बन्द करके वे मटरग़श्ती करने निकल पड़ीं। और आधी रात के बाद वापस आईं।

जब तुलीशिन सवेरे उठा तो हल्की ठण्ड थी। जैसे ही वह घर से बाहर निकला और ताज़ा हवा में लिपटा कि उसके पूरे शरीर में झुरझुरी दौड़ गई और रोंगटे खड़े हो गए, विशेष कर हाथ के। फिर उसने अपनी चाल तेज़ कर दी और उसके शरीर में गर्मी आ गई। कोई बात नहीं। अपनी सीमा को तोड़ कर लोगों से खचाखच भरी हुई ट्रॉलीबस के भीतर उसे अपने स्वीडकोट में गरम लगने लगा। उसे पसीना आ गया। वह सोच रहा था कि ये लोग तो, निश्चय ही, काम पर जा रहे हैं और मैं नहीं जा रहा हूँ। वह काम पर नहीं जा रहा था, यद्यपि वह भी फ़ैक्ट्रियों और कारख़ानोंवाले इलाक़े की ओर ही जा रहा था अर्थात् शहर के औद्योगिक क्षेत्र की ओर। इसलिए कि जीवन के अवसर प्रदान करनेवाले तरह-तरह के उद्यम उसी क्षेत्र में स्थित थे और उसे भरोसा था कि वहीं कहीं उसे काम मिल जाएगा। निश्चय ही वह इस बात से चिन्तित था कि अब तक कभी भी कोई नौकरी उसने स्वयं नहीं पाई थी। तब यानी इक्कीस साल पहले, कहना चाहिए कि उसकी सगी माँ उसका हाथ पकड़कर उसे फ़ैक्ट्री तक लाई थी, जहाँ वह स्वयं क्रेन-आपरेटर का काम करती थी। उसी ने उसकी नौकरी लगवाई थी। वह अपने आप से ऐसा कह रहा था—"इसमें क्या बात है, मैं कार्मिक विभाग में जाकर कोई-न-कोई नौकरी अपने लिए निकाल ही लूँगा।"

इस तरह तुलीशिन के कार्मिक विभागों के चक्कर लगने शुरू हुए। पहले एक में गया, फिर दूसरे में, फिर तीसरे में। हर जगह वह रटाए हुए तोते की तरह बस एक ही बात दोहराता था, "क्या आपको ड्रिलर की आवश्यकता है?"

और हर जगह उसे एक ही जवाब मिलता था, "नहीं। अपनों के लिए तो जगह है नहीं।"

खाद्य-सांद्रण की फ़ैक्ट्री में तो उसे यह उत्तर मिला, "क्या तुम्हारी अक़्ल तो नहीं मारी गई है? आज के ज़माने में ड्रिलर कौन बनेगा?"

प्रश्न के रूप में मिले इस प्रकार के अन्तिम उत्तर मिलने पर तुलीशिन ने अपने लिए यह निष्कर्ष निकाला कि इस तरह घूमना बेकार है, व्यर्थ है। उसने सोचा कि अगर उसके पास कई विशेषज्ञताएँ होतीं, या मान लें कि कहीं कोई मोटी-ताज़ी जान-पहचान होती, तो अलग बात थी। इस तरह तो व्यर्थ ही है या, जैसा कहते हैं, शून्य-का-शून्य है।

पर उसकी जान-पहचान कहाँ से हो सकती थी? वह तो अपनी वर्कशॉप के साथियों को छोड़कर और किसी को ठीक से जानता तक नहीं था। और

वे भी वैसे ही थे जैसा कि वह स्वयं था। वे ख़ुद भी इन दिनों अपने वास्ते कुछ ढूँढ़ रहे थे—जीवन में अपनी जगह की तलाश कर रहे थे। तुलीशिन की पत्नी डाकघर में साधारण डाकिये की नौकरी करती थी। इस मामले में वह भी उसकी कोई ढंग की मदद नहीं कर सकती थी।

उद्योगों के क्षेत्र में इस तरह के निष्फल प्रयास कर चुकने के बाद तुलीशिन को याद आया कि, सच, लोगों को रोज़गार दिलानेवाला एक विशेष दफ़्तर भी तो है। उसने उसके बारे में कहीं उड़ते-उड़ते सुन रखा था। यह तब की बात है, जब अर्थव्यवस्था तथा उद्योगों को काम करनेवाले लोगों की कमी पड़ती थी और हर जगह उनकी माँग रहती थी। उनकी वर्कशाप में भी इसी दफ़्तर के ज़रिए ही तो किसी को काम पर लिया गया था। और फिर तुलीशिन ने खाद्य फैक्ट्री के कार्मिक विभाग में जाकर इस दफ़्तर के बारे में पूछा और जानना चाहा कि वह है कहाँ।

वहाँ के लोगों ने उससे पूछा, "तुम्हें रोज़गार दफ़्तर चाहिए क्या?"

तुलीशिन ने जवाब दिया, "हूँ, शायद वही।"

उन लोगों ने उसे वहाँ का सही-सही और डाक का पूरा-पूरा पता बता दिया और यह भी समझा दिया कि वहाँ सिटी ट्रान्सपोर्ट की कौन-सी बस जाती है। उन्हें धन्यवाद देकर वह तुरन्त उनके द्वारा बताई गई दिशा की ओर चल पड़ा।

इस समय तुलीशिन, यों कहना चाहिए, अपने शानदार शहर में चला जा रहा है, जहाँ से उसकी आँखों के सामने से होकर अगस्त का महीना निकल रहा है और तुलीशिन को ऐसा लग रहा है, जैसे कि वह हमेशा के लिए जा रहा हो। तुलीशिन की आन्तरिक दशा कुछ ऐसी हो गई थी। शायद, उदासी उसके भीतर बैठ गई थी। सम्भवतः यह उदासी नहीं, भय की भावना थी। यह किसी चीज़, किसी निश्चित बात का भय नहीं था। यह सामान्य क़िस्म का भय था जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता था। तुलीशिन ने सोचा—"यह भय शायद अगले दिन की अनिश्चितता से पैदा हुआ है और इस बात से भी कि मुझे कुत्ते की तरह नौकरी से निकाल दिया गया है। यह भी नहीं देखा और न ध्यान में रखा कि मैंने इक्कीस साल तक कैसी निस्स्वार्थ सेवा और मेहनत की है।"

इस बीच शहर की सड़कों पर उसके चारों ओर जीवन की कुछ सामान्य और साधारण घटनाएँ घट रही थीं। दोपहर की इस घड़ी में बहुत-से लोग कुछ भी काम नहीं कर रहे थे, यों कहना चाहिए कि बेकार में इधर-उधर चक्कर लगा रहे थे और सामने पड़नेवाली हर किसी दुकान में घुसकर वहाँ से कुछ

ला कर अपने-अपने घरों को ढोकर ले जा रहे थे। कुछ अन्य लोग छायापथों और चौक पर लगे फट्टेवाले बेंचों पर और सड़कों के स्टॉलों की छतरियों के नीचे बैठ हुए थे; उन्हें कोई जल्दी नहीं थी और वे आराम से शीतल और अन्य प्रकार के पेय पी रहे थे और साथ में धीरे-धीरे कुछ खा भी रहे थे। इतने सारे निठल्ले लोगों को देखकर तुलीशिन की कुछ समझ में नहीं आ रहा था और वह मन-ही-मन अपने आपसे यह पूछ रहा था—'क्या सचमुच ये सारे लोग कहीं काम नहीं करते हैं?' या, उसे लगा, हो सकता है कि ये लोग दूसरी या फिर रात की पाली में काम करते हों और बारी-बारी से उनकी छुट्टी होती हो। या इन सब लोगों ने अपनी छुट्टियाँ ले रखी हैं और ख़ाली समय होने के कारण शहर में मटरगश्ती कर रहे हैं। इस तरह दिन में काम के समय इन्होंने सड़क में भीड़ बढ़ा रखी है।

परन्तु दूसरी ओर, काम करनेवाले, बल्कि कहना चाहिए, काम पर उपस्थित लोग भी यहाँ पर आवश्यकता से अधिक थे। ये वे लोग थे, जो कुछ बेच रहे थे। ख़रीदने को रुपये होने चाहिए थे। वैसे तुलीशिन के पास रुपये थे भी नहीं, जो उसकी परिस्थिति को देखते हुए आश्चर्यजनक नहीं था। वैसे, जब वह ड्रिलर की नौकरी करता था, तब भी उसके पास इतनी धनराशि नहीं हुआ करती थी कि सड़क की दुकानों और स्टालों से ख़रीदारी करे—साधारण लोगों के लिये उनके दाम बहुत ऊँचे और नक़ली होते थे। और अब तो सपने भी नहीं लिए जा सकते। तुलीशिन ने ऐसी किसी चीज़ का स्वप्न भी नहीं देखा और उन दुकानों की अनावश्यक वस्तुओं की ओर देखा तक नहीं। ये चॉकलेटें और चुइंगम जैसी चीज़ें और उन्हीं के साथ की शराबें और शैम्पेन जैसी मदिराएँ उसके लिए बहुत दूर की चीज़ें थीं और उसका मन उनकी ओर आकर्षित नहीं हो रहा था। इस समय वह वोदका अवश्य पी सकता था, जो समझ में आनेवाली बात थी। वोदका की उसे तीव्र चाह हो भी रही थी। अब तो तनख़्वाह से लेकर भी नहीं पी जा सकती थी, क्योंकि अब उसे तनख़्वाह देनेवाला कोई नहीं था और न कोई होनेवाला था और उसने अपने आख़िरी रुपये—आख़िरी हिसाब-किताब के तथा सेवामुक्ति-वेतन के रूप में मिले रुपये—बिना कुछ घटाए पत्नी को सौंप दिए थे।

जहाँ तक उस तरह काम करने की बात थी जैसे कि ये विक्रेता और व्यापारी कर रहे थे तो तुलीशिन उनका स्थान नहीं लेना चाहता था। हर तरह की वस्तुओं की चोर बाज़ारी करनेवाले ये लोग उसे पसन्द नहीं थे, उनके प्रति उसके मन में कोई श्रद्धा नहीं थी। वह कहता था कि इन सब दुष्टों को बिना कोई दया दिखाए हवालात में बन्द कर दिया जाना चाहिए और इनके उस्तादों

को गोली से उड़ा दिया जाना चाहिए। यदि वह अपनी इच्छा के विरुद्ध उनकी श्रेणी में शामिल होना भी चाहता तो कोई उसे आने ही नहीं देता—इसलिए कि उसमें केवल अपने लोगों को ही लिया जाता है, जिनके बारे में पूरी जानकारी होती है, सड़क में चलते-फिरते लोगों को कोई नहीं लेता है। या फिर रुपये देकर उनकी ज़मात में शामिल हुआ जा सकता है। दिन भर ताज़ा हवा में खड़े रहने को तैयार इच्छुक लोगों की कमी नहीं है। वस्तुतः, और कुछ न करके केवल रुपये बटोरना, खरीदारों को फँसाना, और अधिक रुपये वसूलना और अपनी मर्ज़ी से माल की क़ीमत बढ़ा-चढ़ा कर बताना—यही इनका काम है।

यह कार्यालय यानी अस्थायी रूप से बेरोज़गार नागरिकों के लिए बना रोज़गार-दफ़्तर शहर के मध्य भाग के निकट पड़ता था। जैसा कि कहते हैं—बस, दो क़दम पर था, जहाँ पहुँचने के लिए त्सेन्त्राल्नाया स्टेशन तक ट्राम या ट्रॉलीबस से जाना होता था। वहाँ से पैदल रास्ता था, जो किसी नए अपरिचित व्यक्ति के नाम पर रखे गए अमुक पथ से होकर जाता था—तुलीशिन इस नए व्यक्ति के विषय में कुछ नहीं जानता था कि वह कौन है और कभी उसके बारे में उसने सुना भी नहीं था। पहले, शहर के इस विशाल प्रमुख पथ का नाम 'लेनिन पथ' था। फिर राजकीय बैंक के पास से लेनिन मार्ग की ओर मुड़ना होता था जिसका नाम बदला नहीं गया था। लेनिन मार्ग के अन्त तक जाकर वहाँ से ग्वार्देइस्की गली में कोई सोलह मीटर की दूरी पर मकान नं. 11 में शहर का यह रोज़गार-दफ़्तर होना चाहिए था जिसका प्रवेश पिछले अहाते से था।

तो इस तरह तुलीशिन पैदल चलकर और गाड़ी में बैठ कर, जैसा कि उसे समझाया गया था, त्सेन्त्राल्नाया के बस-स्टॉप तक पहुँच गया, फिर उसी पथ पर यानी पुराने नामवाले लेनिन पथ पर उतर गया और राजकीय बैंक की तरफ़ चल दिया। उसने सही रास्ता पकड़ा, पर कोई जल्दी नहीं दिखाई। वह ऐसे धीरे-धीरे और बेमन से चल रहा था, जैसे अपने किसी महत्वपूर्ण व्यक्तिगत काम के लिए नहीं, बल्कि काम से फ़ुर्सत मिलने पर जैसे कि सैर को निकला हो। इसलिए कि उसे पहले से ही अनुमान हो गया था और उसे अपने अस्तित्व के प्रश्न के विषय में किसी सार्थक उत्तर की आशा नहीं थी—जिसका यह मतलब था कि वह विलम्ब करके उसे कुछ देर के लिए टालना चाह रहा था। यहाँ तक कि उसने वहीं कुछ देर आगे-पीछे चक्कर लगाए और एक जगह खड़ा भी रहा। कुछ और करने को न होने के कारण वह ठीयों और किताबों के कियोस्कों के शीशों के अन्दर झाँकता रहा और लोगों को भी देखता रहा। फिर किसी वज़ह से, पता नहीं किस वज़ह से, वह एक बूढ़े के पास गया जो एक इमारत की कुर्सी पर कोहनी टिकाए खड़ा हुआ था—यह वह चौराहा था, जहाँ

सबसे अधिक भीड़-भाड़ और चहल-पहल थी। बूढ़े के पास आकर उसने कहा, "बाबा, नमस्ते!"

"नमस्ते!" वृद्ध ने कहा।

बूढ़ा और कुछ नहीं बोला, एक शब्द भी नहीं। उसने अपना सिर तक तुलीशिन की ओर नहीं मोड़ा। वह एक सजीव मूर्ति की भाँति खड़ा रहा। उसने अपने दुबले हाथ मूठवाली लाठी पर टिका रखे थे, जो उसके कद की तुलना में ऊँची थी। वह अपने हाथों से ऊपर को दृष्टि उठाकर सामने देख रहा था।

वह खड़ा-खड़ा अपने सामने से गुज़रते हुए लोगों को देख रहा था, जो भीड़ में एक-दूसरे को पछाड़ते हुए, जगह बनाते हुए और रास्ते में पड़नेवाले लोगों से टकराते हुए चलते चले जा रहे थे—जैसे कि ट्रामगाड़ियाँ अपने पहियों से धूल बिखराती और चिंचियाती हुई, जैसे कि दाँत पीसती हुई छायापथ से होकर जा रही थीं, जैसे कि लाल बत्ती देखकर कारें चुपचाप रुक जाती हैं और जब लाल की जगह हरी बत्ती जलती है तो वे झट एक दूसरी को पीछे छोड़ती हुई आगे निकल जाती हैं।

पहली बार में देखते ही यह समझा जा सकता था कि वह बूढ़ा व्यक्ति अपने पास से गुज़रनेवाले लोगों से भीख माँगता है, कि वह भीख माँग कर ही जीता है। तुलीशिन के मन में यही विचार आया और नमस्कार करने के बाद वह बूढ़े व्यक्ति से यह कहने को हुआ कि अगर उसके पास पैसे होते तो वह बिना कंजूसी किए उसे दे देता, कि वह यानी तुलीशिन कंजूस नहीं है और केवल कठोर भाग्य की इच्छा के कारण वह जीविका तथा रोज़गार से वंचित हो गया है। अच्छा ही हुआ कि तुलीशिन ने बूढ़े से ऐसा कुछ नहीं कहा, क्योंकि उसके पाँवों के पास तारकोल पर कोई फ़र-कैप या टोपी नहीं पड़ी थी और उसके हाथ छड़ी के साथ जुड़े हुए थे, जिसका यह मतलब था कि वह भीख तो क़तई नहीं माँग रहा था, कि वह भिखारी नहीं था। वह तो अपनी इच्छा से वहाँ खड़ा हुआ था। सम्भवतः, वह घर में अकेले बैठे-बैठे ऊब गया हो और आज की नई पीढ़ी के लोगों को देखने का आनन्द उठाने को घर से बाहर निकला हो, सामान्य शब्दों में कहें तो अपने वंशजों को देखने को।

तुलीशिन जिस कार्यालय की ओर जा रहा था और जहाँ वह आख़िरकार पहुँच भी गया था, उसका प्रवेश-द्वार, जैसा कि उसे बताया गया था, अहाते की ओर से था। वह गयारह नम्बर का मकान अपनी बनावट में भद्दा और नाटा-सा था, सड़क से, किसी भी तरफ़ से वह नज़र नहीं आता था। तुलीशिन सोच में था कि वहाँ की लाइन राशन की लाइन से छोटी तो क्या होगी, क्योंकि

अकेले उसी की फ़ैक्ट्री से कितने सारे लोगों की छँटनी हुई है। पर यहाँ तो कोई था ही नहीं। पूरे अहाते में वह अकेला था।

कमरे में बस एक इकलौती लड़की बैठी हुई थी, तरह-तरह के रंगों में रँगी हुई। अपनी जगह पर बैठी हुई वह नाख़ूनों के अन्दर से कुछ निकाल रही थी और ऐसा दिखाई दे रहा था कि वह किसी बात से असन्तुष्ट थी—हो सकता है कि या तो अपने असफल जीवन से, या काम से, या फिर ऐसी ही किसी बात से। अपनी नुकीली ठोड़ी बाहर निकालकर और उसी से यानी ठोड़ी से इशारा करती हुई वह बोली,

"इस महीने की पहली तारीख़ को शहर की फ़ैक्ट्रियों में ख़ाली होनेवाले स्थानों की लिस्ट उधर लगी हुई है।"

तुलीशिन ने उसकी ठोड़ी की दिशा में देखा—मेज के कोने पर एक रजिस्टर पड़ा हुआ था, जो घर की बनाई सुतली से सिला हुआ था और लाल ईंट जितना मोटा था। तुलीशिन ने उसे खोला ही था कि वह लड़की बोली, "यहाँ नहीं, वहाँ। गलियारे में जाकर देखो। ऐसे अगर तुम सारे ही यहाँ जमा होने लगे तो मुझे तो पागल कर दोगे।"

तुलीशिन उस फटे हुए भारी-भरकम रजिस्टर को उठाकर बेरोशन गलियारे में ले गया। उसने उसे फिर से खोला और उसमें जो लिखा था उसे पढ़ने के लिए आँखों के पास लाया। पहले पृष्ठ पर उसने पढ़ा कि कहीं पर एक अनुभवी चीफ़ अकाउन्टेन्ट की आवश्यकता है, कहीं पर एक सप्लाई ऑफ़िसर और एक प्रोग्रामर चाहिए, कहीं पर खरादिये की ज़रूरत है तथा कहीं कोई और भी आदमी चाहिए, जो तुलीशिन नहीं था और जो काम वह कर ही नहीं सकता था। दूसरे पृष्ठ पर भी ड्रिलरों की आवश्यकता किसी को नहीं थी, तीसरे और चौथे पृष्ठों पर भी उनकी कोई आवश्यकता नहीं थी। और उसने यह सोचकर रजिस्टर बन्द कर दिया कि अपनी इस रफ़्तार से तो रजिस्टर को पढ़ने में वह दो साल लगा देगा। उसने धीमे से दरवाज़े पर दस्तक दी और कमरे की देहली लाँघ कर रजिस्टर को वापस रख दिया।

वह लड़की बोली, "छाँट लिया?"

"नहीं। कुछ नहीं छाँटा।" तुलीशिन ने उत्तर दिया।

उस लड़की ने पूछा, "आपका पेशा क्या है?"

"मैं ड्रिलर हूँ। मुझे श्रमवीर पदक भी मिला हुआ है।"

"इसके अलावा और कुछ?" लड़की ने ऐसे पूछा, जैसे कि वह किसी प्रदर्शनी में बैठी हुई हो।

उस लड़की के पास कुछ देर चुप खड़े रहने के बाद तुलीशिन बोला, "इसके अलावा और कुछ नहीं हूँ।"

इसके बाद तुलीशिन ने यह नहीं देखा कि उस लड़की ने कंधे झटकाए और एक हुंकार भरी, क्योंकि अपनी बात कह चुकने के बाद उसके कमरे का दरवाज़ा बन्द करके वह बाहर आ गया था।

जब तुलीशिन रोज़गार-कार्यालय से होकर वापस जा रहा था और रास्ते में मिलनेवाले स्त्री-पुरुषों को देख रहा था, तब उसका यह विचार और धारणा बन रही थी कि उन सब लोगों का सब कुछ पूरी तरह अच्छा और ठीक-ठाक चल रहा है—उनमें से हरेक का। वह अकेला ही ऐसा है, पूरे शहर में वही एक अकेला है, जिसकी हालत पूरी तरह से ख़राब और निराशाजनक है क्योंकि आजकल ड्रिलर का पेशा फ़ैशन में नहीं है और उसकी कोई माँग नहीं है। उसे तो कभी अपने सामने, तो कभी दूर को देखता हुआ अपनी जगह पर खड़ा वह बूढ़ा भी उल्लसित, सजीव और निश्चिन्त दिखाई दिया।

वैसे रास्ते में तुलीशिन को एक पूरी तरह उदास व्यक्ति भी मिला था—वह एक महिला थी। हथेलियों से अपना मुँह ढाँपे वह छायापथ के बेंच पर बैठी हुई थी। तुलीशिन को लगा कि उसके जीवन में भी शायद कोई बुरी घटना घट गई है और, क्या पता, उसे भी बिना कारण नौकरी से निकाल दिया गया हो, जैसे कि तुलीशिन को। तुलीशिन उस बेंच के निकट आया, जहाँ वह बैठी हुई थी और अभाग्य की उस सहभागी आत्मा के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के उद्देश्य से बोला, "क्या आपके साथ कुछ घटित हुआ है?"

तुलीशिन की उपस्थिति और शब्दों की ओर ध्यान दिए बिना वह बैठी रही और ऐसा लग रहा था कि हथेलियों से मुँह ढाँपकर बिना आवाज़ निकाले वह अन्दर-ही-अन्दर रो रही थी।

तुलीशिन ने उसके कन्धे का स्पर्श करते हुए कहा, "क्या आपको उत्पादन की कमी और छँटनी के कारण नौकरी से निकाल दिया गया है? आजकल तो बहुतों की छँटनी हो रही है।"

उस महिला ने मुँह से हथेली हटाकर रोते-रोते उससे अपमानजनक स्वर में कहा, "परे हट, मूर्ख कहीं का!" और फिर बोली, "मेरे पीछे क्यों पड़ गया है?" तुलीशिन को बाध्य होकर उसे बेंच पर अकेली छोड़कर चले जाना पड़ा। वह ट्रालीबस के स्टॉप की ओर चल दिया। घर जाने के लिए। वैसे भी वह और कहीं जाने का इच्छुक भी नहीं था, कहीं और जाने को था भी नहीं।

घर में तुलीशिन को न पत्नी मिली, न बेटियाँ। पत्नी अभी तक, लगता था, काम से वापस नहीं लौटी थी और बेटियाँ कहाँ जा सकती हैं—उसे कभी

पता ही नहीं चला। तुलीशिन रसोईघर में बैठे पत्नी के आने की प्रतीक्षा करता रहा और पत्नी ने आते ही सबसे पहले एक ही सवाल पूछा, "नौकरी मिली?"

"नहीं, नहीं मिली।" तुलीशिन ने उसे उत्तर दिया।

"भूख लगी है?" पत्नी ने वैसे ही पूछा जैसे कि वह हमेशा काम से वापस लौटने पर पूछती थी।

पर तुलीशिन चुप रहा, क्योंकि उसे लगा कि अब वह परजीवी हो गया है और उसकी गर्दन का बोझ बन गया है।

पत्नी ने भोजन तैयार कर दिया और उन्होंने खाना खाया।

"इतना कम क्यों खा रहे हो? क्या बात है?" पत्नी ने पूछा।

"और नहीं चाहिए। बहुत खा लिया।" तुलीशिन ने कहा।

उसके बाद, भोजन कर लेने के बाद, सब कुछ सामान्य था—जैसा कि लगभग कल था, परसों भी था और जैसा कि उनके सम्मिलित जीवन के अधिकांश दिनों में होता आया था। वे दोनों टीवी चुप्पी धारण करके सामान्यत: देर रात तक देखते थे। यदा-कदा पत्नी बीच में वही घिसे-पिटे शब्द बोल देती थी, "हमारी राक्षसियाँ कहाँ होंगी?"

"मटरगश्ती कर रही होंगी।" तुलीशिन कह देता।

बहुत देर हो गई और बेटियाँ नहीं आईं। पत्नी ने कहा कि जाने दो, कहाँ जाएँगी। वह बोली कि बहुत इन्तज़ार कर लिया, कल जल्दी भी उठना है।

"हाँ।" तुलीशिन ने सहमति प्रकट करते हुए पत्नी का समर्थन किया, यद्यपि उसका सवेरे जल्दी उठे बिना भी काम चल सकता था। 'नीले पर्दे'—टीवी—के आगे बैठे-बैठे वह तिरछी नज़रों से पूरी एकाग्रता के साथ देख रहा था कि पत्नी बिस्तर बिछाने में लगी हुई है और वह सोच में डूबा हुआ है। पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब उसे...पत्नी के साथ...कैसे, क्या करना होगा? क्योंकि वह अब कुछ कमा ही नहीं रहा था और घर में कुछ लाता नहीं था। वह सोच रहा था—"क्या रात को यह मेरे साथ रहा करेगी, चाहे जो भी हो, या कि मना कर देगी?"

तुलीशिन यह भी सोच रहा था कि अँधेरा अपेक्षाकृत जल्दी होने लगा है, जबकि कुछ ही दिन पहले अँधेरा इतनी जल्दी नहीं होता था। और अब दिन, मानों, बहुत शीघ्र और तेज़ी से समाप्त होने लगा है, इतनी जल्दी और ऐसी तेज़ी से कि जैसा पिछले कुछ सालों में कभी भी नहीं हुआ।



लकड़ी के घोड़े

फ्योदोर अब्रामोव

बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना—मक्सीम की माँ—के आगमन के विषय में चर्चा आज पहले ही दिन नहीं हुई थी। उसके आगमन की न केवल चर्चा ही हो रही थी, बल्कि उसके लिए तैयारियाँ भी हो रही थीं। स्वयं मक्सीम को, जो अधिकांश निस्संतान पुरुषों की तरह अपनी गृहस्थी के प्रति काफ़ी उदासीन रहता था, पिछली छुट्टी के दिन कमर सीधी करने तक की फ़ुरसत नहीं मिली थी—हमामघर के चूल्हे को ठीक-ठाक किया, घर के आसपास की बाड़ को सुधारा, वसंत के समय से खिड़की के नीचे पड़े देवदार के लट्ठों के छोटे-छोटे टुकड़े किए और सबसे बाद में बरामदे के पास एक फट्टा बिछा दिया, ताकि माँ को सवेरे-सवेरे ओस से भीगी घास पर तैर कर न जाना पड़े।

मक्सीम से भी अधिक मेहनत उसकी पत्नी येव्गेनिया ने की। उसने सब जगह धुलाई और घिसाई कर डाली—घर के अंदर, गलियारों में, ऊपर के कमरे में। सुंदर रंग-बिरंगे ग़लीचे बिछा दिए। ताँबे के पुराने वाशबेसिन और सिंक को भी चमका दिया गया।

कुल मिलाकर मेरे लिए यह कोई रहस्य नहीं था कि कुछ ही देर में घर में एक नया व्यक्ति आनेवाला है। फिर भी बूढ़ी दादी का आगमन मेरे लिए एकदम आकस्मिक घटना थी।

उस समय जब मिलेन्त्येवा और उसके छोटे बेटे इवान, जिसके पास वह रह रही थी—को लेकर नाव गाँव के तट पर आकर लगी, मैंने दूसरी ओर जाल बिछा दिया।

कुछ-कुछ अँधेरा हो चुका था, दूसरे तट पर कोहरा छाया हुआ था और वहाँ क्या घटित हो रहा है, इसका अनुमान मुझे आँखों से उतना नहीं हो रहा था, जितना कि कानों से।

हमारी भेंट कोलाहलपूर्ण थी।

स्वाभाविक ही है कि सबसे पहले पड़ोसी का छुटका कुत्ता झूका नदी की ओर दौड़ कर आया। उसकी आवाज़ में एक असाधारण गूँज थी। किसी भी इंजन की आवाज़ सुनकर वह बाहर दौड़ा आता है। उसके बाद घण्टी की तरह टनटनाता हुआ, लोहे के छल्ले का परिचित स्वर कानों में गूँजा—यह था मक्सीम, जो फाटक को ज़ोर से खोलकर तेज़ी से घर से बाहर निकल पड़ा था। उसके बाद मुझे सुनाई पड़ा येव्गेनिया का पतला, रुआँसा स्वर, "ओ, ओ! कौन आया है हमारे द्वार!..." इसके बाद और भी स्वर सुनाई पड़े—मारा दादी का, बूढ़े स्तेपान का और प्रोख़ोर का। तो कुल मिलाकर ऐसा लग रहा था, जैसे कि सारा-का-सारा पिझ्मा गाँव मिलेन्त्येव्ना के स्वागत में बाहर निकल आया हो। संभवतः मैं अकेला ही था, जो उसके आगमन को कोस रहा था।

पता नहीं कब से, कितने सालों से मैं किसी ऐसी जगह की तलाश में था जहाँ सब कुछ हाथों-हाथ हो जाए—शिकार भी, मछली पकड़ना भी, खुम्भियाँ और जंगली बेर इकट्ठा करना भी। साथ ही वहाँ असाधारण शांति भी रहे, जहाँ सड़कों पर ज़बरदस्ती बजनेवाले ये लाउडस्पीकर न हों। अब तो शायद ही कोई ऐसा गाँव होगा, जहाँ सुबह से ही इन लाउडस्पीकरों का बजना शुरू न हो जाता हो, जहाँ लोहे की गाड़ियों का शोर न होता हो, जिनसे मैं शहर में ही आज़िज़ आ चुका हूँ।

पिझ्मा में मुझे यह सब आवश्यकता से कुछ अधिक मात्रा में प्राप्त हुआ। गाँव में कुल मिलाकर सात मकान हैं, पास में बड़ी नदी है, चारों तरफ़ जंगल-ही-जंगल है। देवदार का घना जंगल है जिसमें तरह-तरह के जानवर मिल जाएँगे। चलेरी (चीड़ का जंगल) है, जिसमें ढेरों खुम्भियाँ उगती हैं। चलते ही जाओ, बस, आलस मत करो।

एक बात ज़रूर है कि मौसम मुझे अच्छा नहीं मिला—शायद ही कोई दिन था, जब बारिश न हुई हो। पर मैंने भी किसी तरह का आलस नहीं किया। मैंने अपने लिए एक काम ढूँढ़ लिया था और वह था वहाँ के मालिक का घर।

वाह, घर भी कमाल का था। उसमें आवास के लिए ही चार जगह प्रबन्ध था—एक था जाड़ों का मकान, दूसरा था गर्मियों का, एक बुर्ज था और उसके साथ था तराशा हुआ छज्जा, बाहर की ओर अलग से एक कमरा और भी था। इसके अतिरिक्त उसमें एक रोशनीदार गलियारा था, जिसकी सीढ़ी बरामदे को निकलती थी। एक गोदाम था और अलग से कोई पंद्रह मीटर लम्बी छतदार

जगह भी थी, जहाँ कभी-कभी दो घोड़ोंवाली गाड़ी में भी जाया करते थे। इस छतदार जगह का विस्तार इतना अधिक था कि उसकी छत के नीचे के अहाते में कई सारे गोट और बथान थे।

दिन में जब मालिक लोग घर में नहीं होते थे (दोपहर के समय वे हमेशा काम पर ही होते थे) मेरे लिए इससे अधिक ख़ुशी की बात क्या हो सकती थी कि मुझे इस आश्चर्यजनक मकान में अकेले घूमने का मौक़ा मिल जाता था। नंगे पाँव घूमना और वह भी बिना किसी हड़बड़ी के, झूमते हुए। इस तरह से कि न केवल दिल और दिमाग से बल्कि पाँवों के पंजों से भी पुराने ज़माने का अहसास हो सके।

अब वृद्धा के आगमन के साथ ही घर के इस तरह चक्कर लगाने बंद करने पड़ेंगे—यह बात मुझे स्पष्ट थी। अपने संग्रहालय के शौक़ को भी मुझे अब रोकना पड़ेगा—मुझे किसानों के पुराने सामान और उनके पुराने बर्तनों को इकट्ठा करने का शौक़ था, जो सारे घर में इधर-उधर बिखरे पड़े थे। अब क्या मेरे लिए यह संभव होगा कि मैं भूर्ज की लकड़ी से बने ढक्कन वाले धूलभरे बर्तन को घर के अंदर लेकर आऊँ और बूढ़ी मालकिन के सामने उसे इधर-उधर करते हुए उसका मुआयना करूँ? अपनी बाक़ी आदतों और मनोरंजनों जैसे दोपहर के समय बिस्तर पर लेटे-लेटे काग़ज़ चिपकाकर सिगरेट तैयार करने के बारे में तो सोचा तक नहीं जा सकता था। भूल जाओ! इतनी हिम्मत मत करना! दादी घर में आ गई है।

2

मैं बहुत देर तक तट के साथ आकर लगी नौका पर बैठा रहा।

कोहरे ने पूरी नदी को ही ढँक दिया था और नदी की दूसरी तरफ़ गृहस्वामियों के घर में जल रही रोशनी धुँधले पीले धब्बे-जैसी नज़र आ रही थी। आसमान में तारे छिटक गए थे (हाँ, सब कुछ अचानक ही हो गया था—कोहरा भी और तारे भी)। और मैं बैठा-बैठा बस उत्तेजित ही होता रहा।

मुझे पुकार लगाई जा रही थी। मुझे मक्सीम बुला रहा था, मुझे येव्गेनिया बुला रही थी और मैं था कि बंसी को दाँत से चबाने लगा। मुँह से एक शब्द नहीं निकला। एक बार तो मेरे मन में ऐसा विचार आने लगा था कि मैं रात के लिए रुसिख़ा भाग जाऊँ। रुसिख़ा एक बड़ा गाँव था। नदी-मार्ग से जाएँ तो कोई तीन-चार किलोमीटर होगा, पर साथ ही कोहरे में भटकने का डर भी था। इस समय तो ऐसा हो रहा था कि न केवल मेरे जैसा बाहर का व्यक्ति,

बल्कि कोई स्थानीय निवासी भी इस समय चरागाह में शायद ही रास्ता ढूँढ़ पाता।

मैं नाव में उल्लू की तरह उदास बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। मैं इस इन्तज़ार में था कि कब दूसरी तरफ़ की रोशनी बुझेगी। मैं यह चाह रहा था कि बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना के साथ होने वाली मुलाक़ात को चाहे कुछ समय के लिए ही सही, कल तक, कल सुबह तक टाल दूँ।

मुझे मालूम नहीं है कि नाव में मैं कितनी देर तक बैठा रहा। हो सकता है कि दो घण्टे बैठा रहा था, हो सकता है–तीन या चार घण्टे। जो भी हो, मेरी गणना के अनुसार इतने समय में आराम से भोजन किया जा सकता था और एक से अधिक बार कुछ पीया भी जा सकता था। फिर भी नदी की दूसरी तरफ़ रोशनी बुझाने की किसी ने नहीं सोची और वह नीला धब्बा पहले की तरह ही कोहरे के बीच में लगातार नज़र आ रहा था।

मुझे भूख लग रही थी। बहुत देर से भूखा था, क्योंकि जंगल से आने के बाद मुझे मछली पकड़ने की इतनी जल्दी हुई थी कि मैंने खाना ही नहीं खाया था। मेरा शरीर नमी और रात की सर्दी के कारण काँप रहा था और आख़िर मैंने हार न मानते हुए चप्पू थाम ही लिया।

दूसरे तट पर जल रही रोशनी से मुझे बहुत अधिक लाभ पहुँचा। उस रोशनी की सहायता से मैंने कोहरे में भटके बिना, आसानी से नदी पार कर ली और फिर उतनी ही आसानी से पगडण्डी के रास्ते पुराने हमामघर के सामने से होते हुए क्यारी-क्यारी ऊपर घर तक पहुँच गया।

मुझे आश्चर्य हुआ कि घर में शांति व्याप्त थी। उस समय यदि खिड़की में से तेज़ रोशनी न दिखाई दी होती तो ऐसा भी सोचा जा सकता था कि सब लोग सो रहे होंगे। मैं कुछ देर खिड़कियों के नीचे खड़ा कान लगाकर सुनता रहा। मैंने फ़ैसला किया कि मकान के अंदर न जाकर ऊपर सीधे अपनी अटारी पर चले जाऊँ।

पर मकान के अंदर जाना पड़ ही गया। हुआ यह कि फाटक खोलते समय लोहे की ज़ंजीर के कारण मुझसे इतना अधिक शोर हो गया कि उसकी गूँज से सारा घर ही काँप उठा।

"मिल ही गया?" मुझे चूल्हे के ऊपर से आवाज़ सुनाई दी, "चलो, भगवान का शुक्र है। मैं तो लेटे-लेटे यही सोच रही थी कि ठीक-ठाक तो होगा ही।"

"ठीक कैसे नहीं होता!" येव्गेनिया ने गुस्सा होकर कहा। लगता है कि

वह भी सोई नहीं थी, बिस्तर पर यूँ ही लेटी हुई थी। उसने निकल की पॉलिशवाली चौड़ी चारपाई की पीठ के पीछेवाले खिड़की के दासे पर रखे हुए दीपक की ओर इशारा करके कहा, "मैंने तुम्हारे लिए यह रोशनी कर रखी थी कि इतने घने कोहरे में कहीं रास्ता न भूल बैठो। हमारे आगन्तुक एक तरह से बच्चे ही तो होते हैं। अपने आप ठीक से कुछ समझ नहीं पाते हैं।"

"यह बात नहीं है, कुछ भी हो सकता है।" चूल्हे के ऊपर सोई हुई वृद्धा ने फिर से कहा, "कुछ साल पहले मेरा आदमी रात भर नदी में भटकता रहा था, बड़ी मुश्किल से किनारे तक पहुँच पाया था। तब भी ऐसा ही घना कोहरा था।"

मुझे भोजन कराने के लिए येव्गेनिया आह भरती हुई और भौंहें सिकोड़ती हुई चारपाई पर से नीचे उतरने लगी। परन्तु उस समय तो मेरा ध्यान भोजन की ओर था ही नहीं। लगता है कि अपनी नासमझ उत्तेजकता के लिए ऐसी शर्मिन्दगी मैंने जीवन में कभी भी महसूस नहीं की थी और मैं अपनी आँखें ऊपर को उठाने की हिम्मत नहीं कर सका, उधर को जिधर वृद्धा मिलेन्त्येव्ना लेटी हुई थी। मैं मकान से बाहर निकल आया।

3

सवेरे मैं जल्दी जाग जाता था, ठीक उसी समय जब घर के मालिक लोगों का चलना-फिरना शुरू हो जाता था। परन्तु आज इसके बावजूद कि लकड़ी के इस पुराने मकान के सारे धरन और छत के लट्ठे हिल और काँप रहे थे, मैं आठ बजे तक लेटा ही रहा। कम-से-कम आज तो मैं इस वृद्धा के सामने निर्दोष रह सकूँ कि जो इतनी लम्बी यात्रा के बाद, स्वाभाविक है, आराम करना चाहती है। परन्तु उस समय मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, जब मैंने ऊपर की मंज़िल से नीचे आकर देखा कि मकान में येव्गेनिया के अतिरिक्त और कोई है ही नहीं।

"मेहमान कहाँ चले गए?" मैंने मक्सीम के बारे में नहीं पूछा। मक्सीम तो एक दिन की छुट्टी के बाद हफ़्ते भर के लिए अपनी डामर की फ़ैक्ट्री में चला गया था, जहाँ वह फ़ोरमैन का काम करता था।

येव्गेनिया ने मज़ाक़िया ढंग से जल्दी-जल्दी बोलते हुए कहा, "मेहमान लोग आकर चले भी गए। इवान अपने घर चला गया है। उसके इंजन की आवाज़ तुम्हें सुनाई नहीं दी थी क्या? अम्मा तो वही 'गूबि' खुम्भियाँ इकट्ठा करने चली गई है, जिन्हें नमक लगाकर रख दिया जाता है।"

"क्या कहा? मिलेन्त्येव्ना दादी 'गूबि' इकट्ठा करने गई है?"

"तो क्या हुआ?" येव्गेनिया ने घास की रस्सी से बँधी पुरानी घड़ी पर नज़र डाली, जो सामनेवाली दीवार पर चेरी के रंगवाले बर्तनों की अलमारी के साथ टँगी हुई थी, "जब वह निकली तब पाँच भी नहीं बजे थे। जैसे ही उजाला शुरू हुआ, निकल पड़ी।"

"अकेली गई है क्या?"

"चली गई। अकेली ही सही। तुम भी क्या कहते हो? मुझे यहाँ रहते कितने साल हो गए हैं? आठवाँ साल होगा। एक साल भी ऐसा नहीं रहा होगा, जब वह इन दिनों हमारे पास न आई हो। ढेरों चीज़ें ले आती है। 'गूबि' और 'अबाब्कि' खुम्भियाँ, तरह-तरह की झड़बेरियाँ। नास्त्या के मज़े हैं।" यहाँ आकर येव्गेनिया का बोलना तुरन्त फुसफुसाहट में बदल गया। औरतों की तरह इधर-उधर नज़र डालकर वह बोली, "नास्त्या तो इवान के साथ उसी के कारण रह रही है। सच कहती हूँ! बसन्त की बात है, उसने खुद ही बताया था, तब वह इवान को शराब के इलाज़ के लिए शहर ले गई थी। रो-रोकर कह रही थी, 'इस राक्षस के साथ एक दिन भी जो रह पाती। बस, अम्मा पर दया आती है।' तो ऐसी है हमारी मिलेन्त्येव्ना।" येव्गेनिया ने कुरेदनी को हाथ में लेकर गर्व के साथ कहा, "जब वह आती है, तब मैं और मक्सीम तो बहुत ही ख़ुश हो जाते हैं।"

यह बात सही भी थी। मैंने येव्गेनिया को कभी भी ऐसा हल्का और फुर्तीला नहीं देखा था। वास्तव में सवेरे के समय वह पुराने और घिसे हुए ऊनी जूते और रूईवाली मिर्जई पहने घर में दोड़-धूप करती नज़र आती थी, बीच-बीच में मारे पीड़ा के कराहती रहती थी और पाँवों और कमर में दर्द की शिकायत भी करती रहती थी। उसका जीवन बहुत कठिन रहा था, वैसे गाँव की सभी औरतों का जीवन ऐसा ही था, क्योंकि जवानी के दिन तो युद्ध के समय चौकसी रखने में चले गए थे, जब हाथ में सिर्फ़ क़िश्ती का काँटा लिये वह अकेले ही नदी के ऊपर से लेकर उसके मुहाने तक तेरह-तेरह चक्कर लगा डालती थी।

इस समय तो मैं अपनी नज़र येव्गेनिया पर से हटा ही नहीं पा रहा था। जैसे कि कोई आश्चर्य घटित हो गया हो। जैसे कि उस पर कोई सजीव जल छिड़क दिया गया हो। लोहे का करछुल तो उसके हाथ से चल नहीं रहा था, बल्कि नाच रहा था। चूल्हे की आँच उसके साँवले और जवान मुँह पर दौड़ रही थी और उसकी गोल काली आँखें, जो हमेशा सूखी और कठोर रहती थीं, अब कोमल मुस्कुराहट से चमक रही थीं।

मेरे अंदर भी एक अद्‌भुत उत्साह आ गया था। मैंने जल्दी से मुँह धोया, रबर के जूते डाले और झट से बाहर निकल पड़ा।

भयानक कोहरा छाया हुआ था। अब जाकर मुझे समझ आया कि खिड़कियां की यह सफ़ेदी पर्दों के कारण नहीं थी। नदी के दोनों किनारे पानी में डूबे हुए थे। और तो और नदी-तट के देवदार के वृक्षों की चोटियाँ तक ओझल हो रही थीं।

मैंने कल्पना की कि उधर कहीं, नदी के पार, इस गीले और ठण्डे कोहरे में बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना अपना टोकरा लिये घूम रही होगी। मैं दौड़कर सायबान में लकड़ी काटने चला गया। इसलिए कि ठण्ड खाई हुई बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना के लिए शायद चूल्हा गरम करने की आवश्यकता पड़ सकती है।

4

मैं सवेरे तीन बार नदी की ओर दौड़कर गया था और शायद इतनी ही बार येव्गेनिया भी गई होगी। परन्तु हम मिलेन्त्येव्ना को ढूँढ़ नहीं पाए। वह अचानक ही प्रकट हुई। उस समय मैं और येव्गेनिया नाश्ता कर रहे थे।

पता नहीं कैसे, या तो शायद इसलिए कि उस समय बरामदे का फाटक बंद नहीं था, या फिर इसलिए कि मैं येव्गेनिया के साथ बातों में कुछ ज़्यादा ही मशगूल रह गया था कि एकदम अचानक ही दरवाज़ा पीछे को हुआ और सामने दिखाई पड़ी ऊँचे क़दवाली मिलेन्त्येव्ना, जो भीगी हुई हालत में थी। उसकी फ्राक का घेरा किसान महिलाओं की तरह ऊपर को खोंसा हुआ था और उसके हाथों में भूर्ज के बने दो बड़े-बड़े टोकरे थे, जो खुम्भियों से भरे हुए थे। इन टोकरों को लेने के लिए मैं और येव्गेनिया झट से मेज़ पर से उठ खड़े हुए। स्वयं मिलेन्त्येव्ना धीरे-धीरे क़दम रखती हुई चूल्हे के पास रखी बेंच पर जा बैठी।

वह निश्चय ही थक गई थी। उसके दुबले-पतले चेहरे में उसकी थकान स्पष्ट दिखाई रही थी, जो इन दिनों के घने कोहरे से ऐसे धुल गया था, जैसे कि उसका रंग ही उड़ गया हो और उसकी सिर कँपाती हुई गर्दन उसकी थकान को साफ़ दिखा रही थी। परन्तु साथ ही उसकी ज़रा-सी बंद नीली आँखों में कैसी अद्‌भुत संतुष्टि तथा प्रशांत आनन्द का भाव दिखाई दे रहा था! यह एक वृद्धा का आनन्द था, जिसने अच्छी तरह और जी भर कर मेहनत की थी और जिसने बार-बार स्वयं को तथा लोगों को भी यह सिद्ध करके दिखा दिया था कि वह इस संसार में व्यर्थ ही नहीं जी रही है। तभी मुझे अपनी स्वर्गीया माँ

की याद आ गई, जिसकी आँखों में भी इसी तरह की संतुष्टि की चमक और आभा दिखाई देती थी, तब वह खेत में काम करके या घास कटाई करके थककर चूर हुई शाम को देर से घर लौटती थी।

येव्गेनिया ने आह भरते हुए कहा, "हमारी दादी भी क्या ख़ूब है! हम तो यहाँ बैठे-बैठे पेट भर रहे हैं और यह इतना सारा काम करके आ गई है।" यह कहकर वह झट से काम में लग गई। जैसा कि किसी आदर्श बहू को करना चाहिए। वह सायबान में से एक हल्का टब ले आई, जिसे उसने धो-धाकर खुम्भियों में नमक लगाकर रखने के लिए पहले से ही तैयार करके रखा हुआ था। वह दौड़कर गोदाम में से नमक भी ले आई और फिर बग़ीचे में लगी ताजा, सुगंधित काली किशमिश की झाड़ी की बहुत सारी लकड़ी तोड़ी। इसके बाद जब मिलेन्त्येव्ना थोड़ा सुस्ताने के बाद घर के दूसरे भाग में कपड़े बदलने गई, तब वह मकान के बीच के भाग में पड़ी रंग-बिरंगी ऊनी दरियों को लपेटने में लग गई, जिससे कि नमक लगी खुम्भियों को फैलाने की जगह बन सके।

"तुम सोचते होगे कि अभी दादी खाने-पीने की फ़िक्र करेगी? बिलकुल भी नहीं! पुराने कठोर अनुशासनवाली महिला है यह। जब तक खुम्भियों का काम पूरा नहीं कर लेगी, तब तक खाने की बात भी न करना।" येव्गेनिया ने मुझे समझाते हुए कहा कि वह सबसे पहले अपनी सास के लिए नाश्ते की फ़िक्र क्यों नहीं कर रही है।

हम सीधे ही नंगे फर्श पर बैठ गईं, पास-पास सट कर। हमारी चारों ओर सूरज के छोटे-छोटे धब्बे नज़र आ रहे थे, खुम्भियों की सुगंध मकान की गर्मी के साथ आकर मिल रही थी और ऐसे में बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना को तथा उसके साँवले और उभरी हुई नसोंवाले हाथों को देखने में अद्भुत आनन्द आ रहा था, जिसने अपने कपड़े बदलकर छींटवाली फ़्राक ली थी। बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना अपने हाथों को बारी-बारी से टोकरी में, टब में, एनेमलवाले भगोने में, जिसमें नमक पड़ा हुआ था, डाल रही थी। नमक लगाने का काम वह स्वयं ही करती थी।

खुम्भियाँ छाँटकर लाई गई थीं और सब-की-सब ठोस थीं। पीली, कोमल सिरोयेझ्का खुम्भी, जिसके मीठे डण्ठल को उत्तर के लोग मूली की तरह खाते हैं, सफ़ेद, सूखी कन्योक खुम्भी, रीझिक, वल्नूष्का नामवाली खुम्भियाँ और एक खुम्भी का नाम था 'घी की लच्छी' (मास्लिनी ग्रूज़्द) जो नमक में सनी खुम्भियों की रानी कहलाती थी और आज के दिन, जब धूप खिली हुई थी, उसका यह नाम उचित ही था, क्योंकि ऐसा लग रहा था, जैसे कि खुम्भी की तश्तरी में घी के डले पिघल रहे हों।

मैं टोकरी में से हर बार एक-एक खुम्भी को धीरे-धीरे, बहुत सावधानी के साथ उठा रहा था और हर बार ही उसमें लगी घास-फूस को निकालने से पहले उसे रोशनी के पास ले जाकर देख रहा था। तब येव्गेनिया ने मुझसे पूछा, "क्यों, क्या ऐसा सोना पहले कभी नहीं देखा है?" उसके पूछने में व्यंग्य अवश्य था और उसका संकेत इस बात की ओर था कि जंगल से लाई गई खुम्भियों में मेरा योगदान बहुत ही कम था। वह बोली, "हुँ! घूमते तो उसी जंगल में हो, पर अच्छी-सी खुम्भी नहीं ढूँढ़ पाते हो। हैरान मत होओ। नदी पार के इस देवदार के जंगल के साथ दादी की तो शादी की पहली रात से ही दोस्ती चल रही है। इन खुम्भियों के पीछे तो इनकी जान भी जा सकती थी।"

मैंने येव्गेनिया की ओर इस तरह देखा जैसे कि पूछ रहा हूँ कि उसके कहने का मतलब क्या है। उसे बहुत ही हैरानी हुई और वह बोली, "क्या? क्या तुमने कभी नहीं सुना? क्या यह कभी नहीं सुना कि पति ने एक बार अम्मा पर गोली ही चला दी थी? अम्मा, बताओ तो, क्या हुआ था।"

मिलेन्त्येव्ना ने गहरी साँस लेकर कहा, "इसमें बताने का क्या है। अपने लोगों के बीच आपस में तो बहुत-कुछ होता रहता है।"

"अपने लोगों के बीच...। परन्तु यह अपना तो ऐसा था कि बस तुम्हें मारने से रह गया।"

"रह गया, इसीलिए तो उसकी कोई गिनती भी नहीं है।"

येव्गेनिया की काली सूखी आँखें गुस्से के मारे लाल हो गईं।

"अम्मा, मुझे नहीं मालूम कि तुम...। मामला इतना सीधा और सरल नहीं है। तुम शायद यह भी कह दोगी कि कभी कुछ हुआ ही नहीं। शायद तुम्हारे सिरदर्द का कारण भी यह नहीं है?"

येव्गेनिया ने सामने को निकल आए अपने बालों को हथेली की उल्टी तरफ़ से कान में खोंस दिया, जिसमें झड़बेरी की शक्ल का छोटा-सा बुन्दा लटक रहा था और फिर, साफ़ तौर पर यह निश्चय करके कि सास से इसकी अपेक्षा करना ही व्यर्थ है स्वयं ही बताने लग गई, "हमारी मिलेन्त्येव्ना को सोलह साल की उम्र में ब्याह दिया गया था। शायद इसकी छाती भी नहीं निकली होगी। सच कहती हूँ, मेरी तो इस उम्र में नहीं निकली थी। पर पहले के ज़माने में भला कौन इन बातों की सोचता था कि लड़की कैसे करके रहेगी? पिता तो केवल यह देखता था कि बस वर मिल जाए। घर में एक ही लड़का है, अच्छा रहेगा। पर अच्छा कहाँ से हो, जब सारा गाँव ही जँगलियों जैसा हो।"

मिलेन्त्येव्ना ने आपत्ति करते हुए कहा, "शायद सारा गाँव तो ऐसा नहीं है।"

"बचाव मत करो, मत करो बचाव। चाहे किसी से भी पूछ लो। जँगली हैं, जँगली! हाँ, मुझे भी याद है। किसी त्यौहार के मौक़े पर हमारे गाँव में उनका झुण्ड-का-झुण्ड आ जाता था। ब्याहे, अनब्याहे सब आ धमकते थे। कुछ दाढ़ीवाले होते थे, कुछ बिना दाढ़ी के। चीख़ते-चिल्लाते आते थे। हर किसी को चिढ़ाते थे। सारा वातावरण गंदा कर देते थे, सारे गाँव में गोलीबारी हो जाती थी। अपने घर में—जहाँ कोई नहीं देखता था—उससे भी बढ़कर होता था। कोई साराफ़ान पहने औरतों की तरह दौड़ता था, कोई मार्तिन्कोचीझिक बनकर स्की पहनकर पानी लाने नदी की ओर जाता था, कोई गर्मी के मौसम में ऊनी फ़रकोट पहने घूमता था और इसाक पेत्रोविच तो बिशप ही बन जाता था। बताते हैं कि उसे शाम होने का इंतज़ार रहता था, सामने के मकानों में रोशनी के लिए चीड़ की टहनी जला देता था, फिर छापेवाला नीला चोग़ा पहनकर घर-घर जाकर भजन सुनाता था। मैंने ठीक ही तो कहा है न, अम्मा? झूठ तो नहीं बोल रही हूँ मैं?"

"निष्पाप लोग हैं ही नहीं।" मिलेन्त्येव्ना ने टालू जवाब दिया।

"निष्पाप नहीं हैं! सोलह साल की उम्र में आपके ऐसे कौन-से पाप हो सकते थे कि गोली चलानी पड़ गई? नहीं, ये लोग हैं ही ऐसे। सौ साल जंगल में, लोगों से दूर रहने पर चाहे-अनचाहे स्वयं भी जंगली और पागल ही तो बन जाएँगे। बच्ची को सोलह साल की उम्र में ऐसे चिड़ियाघर में धकेल दिया था। चाहे जीए, चाहे मरे—उसकी मर्ज़ी।"

हमारी अम्मा ने निश्चय किया कि सबसे पहले सास-ससुर को अपनी तरफ़ करेगी। उनकी सेवा करके। परन्तु उस ज़माने में उन बूढ़ों को अपनी तरफ़ कैसे किया जा सकता था? अपने काम से।

अन्य नवविवाहित तो पहली रात को अपना आनन्द उठाते हैं, प्रेम करते हैं। लेकिन वसीलिसा मिलेन्त्येव्ना तो पहली रात को ही मुँह अँधेरे उठी और चल दी नदी पार खुम्भी लाने। अम्मा, शरद ऋतु में इन्हीं दिनों ही तो तुम्हारा विवाह हुआ था ना?

"शरद में ही हुआ होगा" मिलेन्त्येव्ना ने बेमन से उत्तर दिया।

"हुआ होगा नहीं, हुआ था।" येव्गेन्यिया ने पूरे विश्वास के साथ कहा। "गर्मियों में तो जंगल में पेड़ों को नुकसान पहुँचाने वाली सिर्फ़ 'गुबा' खुम्भी उगती है। तुमने तो एक घण्टे में ही टोकरी भर ली थी। तुम्हें जंगल में घूमने का मौका ही कब मिला होगा क्योंकि घर में पति जो इंतज़ार में बैठा रहता था?"

तो इस तरह अम्मा जंगल से लौटकर आ रही थी। खुश थी। गाँव के ऊपर कहीं भी कोई धुआँ नहीं था, सब लोग अभी सो रहे थे और वह अभी से खुम्भियाँ लेकर चली आ रही थी। सोच रही थी कि उसकी तारीफ़ होगी। खूब तारीफ़ हुई! जैसे ही उसने नदी पार की और नाव में से एक कदम आगे बढ़ाया ही था कि उसके मुँह पर गोली आकर लगी - गुस्सैल पति ने इस तरह अपनी पत्नी का स्वागत किया।...

बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना की झुर्रीदार गर्दन की नसें रस्सी की तरह खिंच गईं और उसकी झुकी हुई कमर सीधी हो गई—वह अपनी कँपकँपी को रोकना चाहती थी, जो स्पष्टतः बढ़ गई थी। परन्तु येव्गेनिया ने यह सब कहाँ देखा था। उस बहुत पुरानी सुबह को घटी घटनाओं की पीड़ा उसे अपनी सास से कम महसूस नहीं हो रही थी जिनके बारे में उसने केवल सुन ही रखा था और उसके साँवले चेहरे में इस समय खून खौल रहा था।

"अम्मा को मौत के मुँह से भगवान ने बचा लिया। बगीचे से हमाम तक की दूरी जरा सी ही तो थी। अम्मा अभी हमाम तक ही पहुँची थी कि उसने अपनी बंदूक उसके सामने कर दी। पर हुआ यह कि नशे के कारण हाथ काँप गया, नहीं तो निशाना ठीक बैठता। हमाम के दरवाज़े पर गोली का निशान अभी भी है। देखा नहीं है क्या?" येव्गेनिया ने मेरी ओर मुड़ कर पूछा। "देखो तो सही। मेरा पति जब मुझे पहली बार लेकर आया तो पता है सबसे पहले कौन-सी जगह दिखाई थी? क्या वह मुझे अपनी अटारी में ले गया था? क्या उसने अपने खजाने की डींग हाँकी थी? नहीं, वह इस बदकिस्मत हमाम को दिखाने लाया था। 'मेरे पिता ने मेरी माँ को यहीं अपनी सीख दी थी।...' ऐसे दुष्ट बैठे हैं! यहाँ तो सब-के-सब ऐसे हैं। हरेक को हवालात में बंद होना चाहिए।..."

मैं देख रहा था कि बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना इन बातों से बहुत देर से परेशान थी। हमारी मुखर कड़वाहट उसे अच्छी नहीं लग रही थी। पर यह बात भी तो थी कि इस असाधारण किस्से में पूरी तरह डूबे होने के कारण अपने आप को रोक पाना आसान नहीं था। मैंने पूछा, "अच्छा, यह बताओ कि यह सब हुआ कैसे?"

"तुम्हारा मतलब गोली चलाने की घटना से है क्या?" येव्गेनिया को सब कुछ अपने शब्दों में कहना पसन्द था। "यह सब उस गंजे वान्का की वजह से हुआ था। वह दुष्ट, माफ़ करना, हे भगवान, अपने ससुर के लिए ऐसा कहना ठीक तो नहीं है, सवेरे से ही अपनी धुन में सवार हो जाता था।... अम्मा, तुम

कहाँ सो रही थी? छप्पर के नीचे? इधर-उधर हाथ मारा, कहीं नहीं मिली। दौड़ कर बाहर निकला। वहाँ जाकर मिली, नई बहू। नदी पार से आ रही थी। बस, तभी भड़क गया। इस तरह क्या वह उस गंजे वान्का के पास गई थी? क्या उससे मिलना तय कर रखा था?''

अब तक मिलेन्त्येव्ना, निश्चय ही, अपने को सँभाल चुकी थी और उसने बिना किसी व्यंग्य के सवाल किया, ''क्या तुम्हें यह भी मालूम है कि तुम्हारे ससुर के मन में क्या विचार था?''

''बिल्कुल मालूम है। कैसे नहीं मालूम होता? लोग झूठ नहीं बोलने देंगे। गंजा इवान शराब के नशे में इस तरह बोलता था – 'भाइयो, मैं जवानी से ही दो गाँवों का रहा हूँ – मेरा शरीर तो घर में है और आत्मा पिझ्मा में।' मरने तक ऐसा ही कहता था। बड़ा ही रँगीला आदमी था।''

ओफ़, कब तक इसी की रट लगाएँ! दूल्हे की लगाम अम्मा के पास थी। सुंदरता के लिए ही तो उसे लिया गया था। देख लो, इसे अब भी ब्याहा जा सकता है–येव्गेनिया ने अपनी सास को खुश करते हुए कहा। ऐसा लगा कि अपने पूरे बखान में वह पहली बार मुस्कुराई।

उसके बाद दिखावटी ढंग से, अपनी काली अप्रसन्न आँख मार कर वह कहने लगी, ''अम्मा, मैं तो तुम्हारी भी तारीफ़ नहीं कर रही हूँ। तब चाहे तुम छोटी रही हो, पर इतनी तो समझ होनी चाहिए थी कि शादी क्यों की जाती है। चाहे जो भी कहो, यह भी कोई बात हुई कि पहली ही रात को खुम्भी इकट्ठी करने निकल पड़ी।...''

इस समय बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना की आँखों में आई चमक देखने लायक़ थी। जैसे कि बाहर तूफ़ान आया हो, जैसे कि वहाँ तपता हुआ गोला फट पड़ा हो। येव्गेनिया तुरन्त ही बड़ी उलझन में पड़ गई, उसका सिर झुक गया और मुझे भी समझ नहीं आ रहा था कि अपनी नज़रों को कहाँ छिपाऊँ।

कुछ देर तक सब चुप बैठे रहे और विशेष प्रयास के साथ खुम्भियों में से घास-फूस साफ़ करने में लगे रहे। सबसे पहले मिलेन्त्येव्ना ने ही सुलह करने के बहाने बोलना शुरू किया, ''आज मैं अपने जीवन की पिछली बातों को याद कर रही हूँ। जंगल में से जाते हुए वास्तव में मैं मन-ही-मन पीछे रह गए मार्ग को पटकती जा रही हूँ। सत्तर पार कर चुकी हूँ।...''

मैंने ठीक करके कहा, ''सत्तर साल तो पिझ्मा में ब्याह दिए हो चुके हैं।''

मिलेन्त्येव्ना ने हल्का मखौल करते हुए कहा, ''ब्याह दिए नहीं, जबरदस्ती फेंक दिए हो चुके हैं। येव्गेनिया ने ठीक ही कहा कि जवानी तो मैंने देखी ही

नहीं। आज की भाषा में कहूँ तो मुझे अपने पति से कोई प्यार नहीं था।...''

तभी येव्गेनिया तीव्र उल्लास के साथ चिल्लाई, ''देखा! अब मान गई ना! बस मैं ही मुँह बंद करके रखूँ। ऐसे नहीं बोलना, वैसा ठीक नहीं है।''

मिलेन्त्येव्ना और भी अधिक शांत स्वर में बोली, ''जब किसी घाव पर चोट की जाती है तो बूढ़ा पेड़ भी कराह उठता है।''

खुम्भियों की सफ़ाई लगभग पूरी हो रही थी। खाली टोकरी को घुटनों पर रख कर येव्गेनिया खुम्भियों के कूड़े में से झड़बेरियाँ छाँटने में लग गई। वह अभी भी गुस्से में थी। वैसे बीच-बीच में वह उत्सुकतावश अपनी सास पर नज़र भी डाले जा रही थी। सास ने फिर से पुरानी बातें शुरू कर दीं।

''बूढ़े लोग पुराने जमाने की तारीफ़ करना पसन्द करते हैं।'' मिलेन्त्येव्ना धीमे स्वर में समझदारी के साथ बोल रही थी। ''परन्तु मैं ऐसा नहीं कर रही हूँ। आजकल लोग पढ़े-लिखे हो गए हैं, अपना हित-अहित जानते हैं, लेकिन हमको बचपन से ही स्वतंत्रता नहीं थी। मेरी शादी सिर्फ़ फ़रकोट और शाल के मारे कर दी गई थी—आज के ज़माने में ऐसी बात सुन कर हर कोई हँस पड़ेगा।''

''सच कह रही हो क्या? मैंने तो ऐसा सुना ही नहीं था।'' येव्गेनिया ऐसे चिल्ला पड़ी जैसे कि भयानक रूप से उत्तेजित हो गई हो। अभी कुछ देर पहले उत्पन्न हुआ उसका क्रोध काफ़ूर हो गया। स्त्रीसुलभ तीव्र उत्सुकता जो उसके स्वभाव में गहरी पैठी हुई थी अन्य सभी भावनाओं पर हावी हो गई और और उसकी उत्तेजित दृष्टि सास पर केन्द्रित हो गई।

मिलेन्त्येव्ना बोली, ''तो बात ऐसी थी कि उन दिनों हमारे पिता मकान बनवा रहे थे। एक-एक कोपेक की कीमत थी और मैं भी उम्र में बढ़ रही थी। यह बड़े अपमान की बात होती यदि युवा महोत्सव में बेटी बिना फ़रकोट और शाल के जाती। तभी पिझ्मा से ऐसा संवन्ध आया कि वे लोग बिना फ़रकोट और शाल के लड़की लेने को राजी हो गए जिस पर पिता जी तुरन्त सहमत हो गए।''

येव्गेनिया अपने को रोक न सकी और उसने फिर से टोक दिया, ''बाकी भाई कहाँ बैठे थे? अम्मा के भाई बहुत अच्छे थे। कैसी दया दिखाई उन्होंने बहन पर! मोमबत्ती की तरह उसे हाथ में लेकर गए। उसकी तो शादी हो गई, भाइयों के अपने-अपने मकान थे ही, सभी ने उसकी मदद की।...''

मिलेन्त्येव्ना ने कहा, ''भाई उस समय जंगल में थे। जंगल लकड़ी काटने गए हुए थे।''

येव्गेनिया ने सिर हिलाया और बोली, "अच्छा, तो अब सब कुछ स्पष्ट हो गया। मैं यों ही सिर खपा रही हूँ कि ऐसे कैसे भाई निकले। गाँव में सबसे पहले उन्हीं का स्थान होता है। अम्मा तो इतने अच्छे घर से थी और ये भाई अपनी बहन की रक्षा नहीं कर सके। तो यह बात थी– जब तुम्हारी शादी पक्की हुई थी तब भाई घर पर थे ही नहीं।..."

इसके बाद जैसे-जैसे नई-नई बातें स्पष्ट होती गई जो अभी तक येव्गेनिया को मालूम ही नहीं थीं। वह सारी बात को अपनी मुट्ठी में समेटने लगी। शीघ्र ही सारी बात का यह अंत हुआ कि मिलेन्त्येव्ना का धीमा स्वर पूरी तरह शांत हो गया। येव्गेनिया की सास के साथ कई साल पहले जो घटित हुआ था उसे येव्गेनिया स्वयं महसूस कर रही थी। उसने हाथ फैला कर कहा–

"बहुत बुरी बात है कि ऐसा भी हो सकता है। भाइयों ने जब सुना कि दामाद ने उनकी बहन पर गोली चलाई तो वे घोड़ों पर सवार होकर वहाँ पहुँच गए। बंदूकें लेकर। 'बहन, बस एक बार कह दे, ऐसी की तैसी कर देंगे।' बड़े टेढ़े थे। इतनी ताकत थी कि भालू को मोड़ कर रख देते, आदमी की तो बात ही क्या! तभी अम्मा ने उनसे कहा–'अरे भाइयो, तुम्हें शर्म नहीं आती? बेकार में शोर मचा रखा है, अच्छे-भले लोगों के पीछे पड़े हो। हमारे मालिक ने अपनी बंदूक़ की जाँच की थी, शिकार में जाने के लिए। पता नहीं, तुम लोग कहाँ से आ टपके हो।...' "

तो ऐसी समझदार-अकलमन्द थी मिलेन्त्येव्ना। सोलह साल की आयु में थी ऐसी। - येव्गेनिया ने अभिमान के साथ अपनी सास की ओर देखा जो सिर झुकाए बैठी हुई थी। नहीं, अगर मक्सीम ने मेरे ऊपर हाथ उठाया होता तो मैं भी अपने आप को रोक नहीं पाती। उसके ऊपर मुक़दमा चला कर उसे उसकी जगह पहुँचा कर ही छोड़ती। उसने सिर हिला-हिला कर अपने भाइयों को समझाया था–'तुम बीच में क्यों पड़ते हो? तुम्हारे बुद्धि भी है कि नहीं? अब मुझे वापस नहीं लिवाया जा सकता, बहुत देर हो चुकी है। मेरा सिर अब ढक चुका है। अब मुझे यहीं रहना और दिन काटने हैं।' तो इस तरह उसने सारे घटना-क्रम को एक नया ही मोड़ दे डाला।

येव्गेनिया अचानक फफक-फफक कर रोने लगी, वह अंदर से बहुत भली थी। बोली, "इनके ससुर इसीलिए तो इनके पाँव तक चूमने को तैयार रहते थे। तुम भी कैसी हो, कोई खून-खराबा हो सकता था। भाई आग-बबूला हो रहे थे। मिरोन पर हाथ उठाना उनके लिए कोई मुश्किल काम नहीं था। मैं तो बहुत छोटी थी, ओनिक इवानोविच की मुझे ठीक से याद भी नहीं है। पर

बूढ़े लोग अभी भी याद करते हैं। कहीं से भी क्यों न आएँ, चाहे कोई भी जगह क्यों न हो, अपनी पुत्रवधू के लिए हमेशा कुछ-न-कुछ लेकर आते थे। अगर कहीं दूर निकल जाते और लोग उनसे रात को रुकने के लिए कहते तो उनका एक ही जवाब होता था—'नहीं, भाई, मैं नहीं रुक सकता। घर ही जाऊँगा। मुझे अपनी वसीलिसा सुंदरी की याद आ रही है।' जब कभी उन्हें शराब चढ़ जाती तो उसका यही नाम लिया करते थे।''

''हाँ, यही नाम लिया करते थे।'' मिलेन्त्येव्ना ने गहरी साँस लेकर कहा। मुझे ऐसा लगा कि उसकी बूढ़ी और अनुभवी आँखें नम हो गई हैं। संभवतः येव्गेनिया का ध्यान भी इस ओर गया था। उसने कहा—

''ओनिक इवानोविच के बारे में अच्छी बातें अवश्य ही याद आती हैं। शायद पूरे गाँव में सच्चा इंसान उनके अलावा और कोई था ही नहीं। यहाँ तो सब-के-सब मौक़ा देखते हैं—उर्वाइ हैं। पिंझ्मा में सबका कुलनाम भी एक ही है—उर्वायिव। मेरे ससुर—ओनिक इवानोविच—भी मौक़ा देखने वाले हैं। पर उनमें औरों से फ़र्क है। उनकी जगह और कोई होता तो ऐसे काण्ड के बाद, मालूम है, कैसा व्यवहार करता? मुँह में पट्टी बाँध लेता। परन्तु ये महाशय काफ़ी टेढ़े थे—चल दिए खोज-ख़बर लेने।''

मिलेन्त्येव्ना ने सिर ऊपर को किया। वह शायद अपने पति के पक्ष में कुछ कहना चाह रही थी। परन्तु येव्गेनिया फिर से उत्तेजित हो गई थी और उसने मिलेन्त्येव्ना को बोलने का अवसर ही नहीं दिया।

''बात बनाने से कुछ नहीं होगा। हर कोई जानता है कि वह कैसा था। अगर भला आदमी होता तो क्या दस साल तक तुम्हें पिंझ्मा से बाहर नहीं आने देता? हमारी अम्मा कभी कहीं नहीं गई—न अपने माता-पिता के पास, न कहीं घूमने। कताई भी वह अकेली ही करती थी, न कि शाम को, जब सब औरतें इकट्ठी होती थीं। किसी को हो सकती है उससे ईर्ष्या?''

येव्गेनिया ने हाथ झटक कर आगे कहा, ''क्या-क्या कहा जाए? बहुत कुछ कहा जा सकता है। अब क्या इसके लिए भी पत्नी दोषी होगी कि सारे बच्चों की शकल माँ से मिलती है, न कि पिता से। इस पर उसे आपत्ति थी और पूछ बैठता, 'मेज़ पर ये किसका बिटवा बैठा है?' नशे की हालत में हमेशा इस तरह की बातें करता था। शायद और कुछ पूछने को था ही नहीं। वह स्वयं देखने में साँवला था, धुँधला, धुआँए हुए ठूँठ जैसा, चेहरे दाग़ीला, चेचक हुई थी उसे, ऐसा लगता था जैसे भेड़ों के खुर उग आए हों।... यह तो खुशी की ही बात है, भगवान का शुक्र है कि बच्चे उसके जैसे नहीं हुए।''

पता नहीं, या तो मिलेन्त्येव्ना को बहू की बातें अच्छी नहीं लगीं कि वह उसके अतीत को लेकर इस तरह बोले जा रही थी या फिर पुराने ढंग की किसान औरत होने के कारण उससे बिना कुछ काम किए खाली नहीं बैठा गया और वह अचानक उठ खड़ी हुई जिससे हमारी बातों का सिलसिला वहीं टूट गया।

5

पिझ्मा में अकेले मक्सीम का ही मकान ऐसा बना है, जिसका मुँह नीचे नदी की धारा के सामने है। बाक़ी सारे मकान नदी की ओर पीठ किए हुए हैं। इसे येव्गेनिया इस तरह समझाती थी, "उर्वाइ हैं! अपने भद्दे चूतड़ों को नदी की ओर करके लोगों का भला क्या करेंगे!" पिझ्मावासियों के प्रति येव्गेनिया के मन में वैसे भी कोई दया-भाव तो था नहीं। परन्तु मकान की इस तरह की बनावट का कारण कुछ और ही था। पिझ्मा, वस्तुतः, नदी के दक्षिणी तट पर स्थित था और ऐसे में सूरज को भला कैसे छोड़ सकते थे जबकि वहाँ के इस जंगल वाले इलाके में धूप वैसे ही वहुत कम आती थी।

मुझे यह शांत गाँव पसन्द था। पूरे गाँव में नई जौ की सुगन्ध फैली हुई थी क्योंकि जौ के भरे-भरे गुच्छे बनाकर उन्हें लकड़ी के डण्डों में बँधी रस्सियों में टाँगा हुआ था। मुझे पुराने कुएँ और उनकी ऊँची उठी हुई ढेंकलियाँ भी अच्छी लग रही थीं। ऊपर से शंक्वाकार कटे हुए खम्भों पर खड़े वहाँ के बड़े-बड़े अन्नागार भी मुझे अच्छे लग रहे थे जिन्हें ज़मीन से ऊपर इसलिए बनाया जाता था कि नुक़सान पहुँचाने वाले मच्छर वहाँ तक न पहुँच सकें। परन्तु मुझे विशेष रूप से अभिभूत करते थे पिझ्मा के मकान—लकड़ी के लट्ठों के बड़े-बड़े मकान जिनकी छतों पर लकड़ी के घोड़े बने हुए थे।

वैसे, देश के उत्तरी भाग में घोड़े वाले मकान होना अपने आप में एक आम बात है। लेकिन अभी तक मैंने एक भी ऐसा गाँव नहीं देखा था जहाँ हर एक मकान के ऊपर घोड़े बने हों। पिझ्मा में हर मकान घोड़े वाला था। मकानों की दीवारों के साथ सटी हुई सँकरी पगडण्डी से जाते हुए लकड़ी के सात घोड़े आपकी ओर नज़र किए हुए दिखाई दे जाएँगे। गाँव की कम आबादी के कारण पगडण्डी में घास उगी आई थी।

"पहले हमारे यहाँ ये घोड़े और भी अधिक होते थे। हमारे लकड़ियों के इस झुण्ड में बीस घोड़े तो थे ही।" मेरे साथ चलते हुए मिलेन्त्येव्ना ने कहा।

इन चौबीस घण्टों में उसने मुझे कई बार आश्चर्य में डाल दिया था।

मैं तो यह सोचे बैठा था कि नाश्ता करने के बाद—बूढ़ी होने के कारण —सबसे पहले वह आराम करेगी, शांति चाहेगी। लेकिन वह तो मेज़ पर से उठ खड़ी हुई, हाथ से क्रास बनाया, फिर ओसारे में से भूर्ज की बनी टोकरी ले आई और पुराने फटे तौलिये में से टुकड़े निकाल कर उनकी रस्सी टोकरी में बाँधने लगी। मैंने उत्सुकतावश पूछ ही लिया—

"दादी, अब कहाँ की तैयारी है? क्या फिर से खुम्भियाँ इकट्ठी करोगी?"

"नहीं, यह तैयारी खुम्भियों के लिए नहीं है। रुसिखा जाने की तैयारी कर रही हूँ, बड़ी बेटी के पास।" मिलेन्त्येव्ना ने पुरानी भाषा में कहा।

"तो फिर यह टोकरी किसलिए है?"

"टोकरी इसलिए है कि पहले से तैयारी कर लूँ। कल सवेरे-सवेरे जंगल को निकल जाऊँगी। ग्वालिनें दूध दुहने के लिए निकलेंगी और मुझे भी साथ ले चलेंगी। मुझे अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहिए। इस बार मैं कम समय के लिए आई हूँ, सिर्फ़ हफ़्ते भर के लिए।"

येव्गेनिया ने अभी तक हमारी बातों में कोई दखल नहीं दिया था क्योंकि वह अपने काम पर जाने की तैयारी कर रही थी। परन्तु अब वह अपने को रोक नहीं पाई और बोली, "क्या कहने, कम समय के लिए आई हो! हमेशा ऐसा ही होता है। न आराम करोगी, न खाली बैठोगी। ना बाबा ना, मेरी मर्जी होती तो सारा दिन लेटी रहती। और क्या? क्या इन्सान सिर्फ़ इसलिए पैदा होता है कि सवेरे से शाम तक पिसता ही रहे?"

मैंने मिलेन्त्येव्ना को घाट तक छोड़ आने की पेशकश की पर पता चला कि घोड़ेवाला कहीं टहलने निकला हुआ था। अब मिलेन्त्येव्ना को मदद की ज़रूरत थी। मेरे अलावा देखते-ही-देखते मिलेन्त्येव्ना की सहायता करने को और लोग भी आ पहुँचे। गाँव के एक किनारे पर खेत में स्थित टूटे-फूटे खलिहान में बनाए गए अस्तबल तक हम अभी पहुँचे ही थे कि वहाँ से भयंकर सीटी बजाते और शोर मचाते हुए प्रोख़ोर उर्वायेव तेज़ी से बाहर निकल कर आया। उसकी खड़खड़ाती हुई और मैली-कुचैली घोड़ागाड़ी में ग्रोमोबोइ घोड़ा बँधा हुआ था। पूरे पिड़्मा में यही एकमात्र जीवित घोड़ा था।

किसी जमाने में यह ग्रोमोबोइ, कहना होगा, सरपट दौड़ता था। पर अब बुढ़ापे के मारे चलता-फिरता कंकाल जैसा रह गया था और हर्पीस की बीमारी के कारण उसकी त्वचा सड़ रही थी। इस कंकाल की पुरानी हड्डियों में जान डालने की योग्यता केवल प्रोख़ोर में थी—पिड़्मा में बचे रह गए तीन पुरुषों में

एक वह था। प्रोखोर आदतन नशे में था—उससे सस्ते यूडीकोलोन की गंध आ रही थी। पास आते हुए वह चिल्लाया, "काकी, काकी, मुझे तुम्हारा काम याद है। मैं सवेरे से ग्रोमोबोइ के साथ ड्यूटी कर रहा हूँ। मुझे पता चल गया था कि तुम्हें लेकर जाना है। यही बात है न? मैंने ठीक कहा न?"

मिलेन्त्येव्ना ने भतीजे की सेवा को अस्वीकार करना उचित नहीं समझा और शीघ्र ही प्रोखोर की घोड़ागाड़ी मिलेन्त्येव्ना को लेकर कटी घास वाले मैदान पर दौड़ती हुई दूर पीली-सी दिखाई देती हुई सँकरी रेती की पट्टी की ओर बढ़ती जा रही थी। घाट वहीं पर था।

मैं घर लौट आया। येव्गेनिया घर पर नहीं थी। वह खेत में मटर इकट्ठी करने में औरतों की मदद करने को चली गई थी। मुझे भी इसी समय अपने कुछ आवश्यक काम करने को थे—नदी पार का जाल अनदेखा पड़ा हुआ था और खुम्भियों के लिए जंगल भी जाना था। इतना अच्छा दिन और कब मिल सकता था? मैं ख़ाली मकान के अंदर दाख़िल हुआ। कुछ देर दहलीज़ के पास अस्थिर खड़ा रहा और फिर झोंपड़े में चला गया। इस झोंपड़े से मेरा परिचय सबसे पहले मक्सीम ने कराया था (मैं शुरू में सायबान में ही सोना चाहता था)। मुझे याद है कि उस जगह को देख कर मैं तो हैरान रह गया था। वह तो पूरा कृषक संग्रहालय ही था!

सींग वाली घिरनी, खड्डी, तकली, मेज़्येन के रंगीन चर्खे, फटके, चीड़ के रेशों की और भूर्ज की बनी पिटारियाँ, भूर्ज-पत्र और जड़ों से बनी तरह-तरह की टोकरियाँ, गुल्लखें, लकड़ी के सादे कप जिनको लेकर पहले के जमाने में जंगल में और दूर घास काटने जाया करते थे, चीड़ की लकड़ी को जला कर ले जाने के लिए आतिशदान, बत्तख़ की शकल की नमकदानियाँ, तथा और भी कई तरह के बहुत-से बर्तन, साज़ो-सामान तथा औज़ार वहाँ पर ढेर बना कर इस तरह रखे हुए थे जैसे कि अनावश्यक कूड़ा हो।

"इस सारे सामान को फेंक ही देना चाहिए। अब यह सब किसी काम का नहीं है। बस, फेंकने को हाथ नहीं उठता है – मेरे माँ-बाप इसी सामान पर पले थे।"

उस दिन के बाद से शायद ही कोई दिन ऐसा रहा हो जब मैंने उस झोंपड़े में झाँका न हो। इसलिए नहीं कि ये सब बीती हुई चीज़ें मेरे लिए नई थीं—मैं स्वयं लकड़ी तथा भूर्ज की इन वस्तुओं के बीच बड़ा हुआ था। वस्तुतः *तराशी हुई लकड़ी की* और भूर्ज की सुंदरता में मुझे नयापन दिखाई दिया था। पहले इसकी ओर मेरा ध्यान ही नहीं गया था।

भूर्ज की बनी फटकनी मेरी माँ के हाथ में सारी ज़िन्दगी रही थी। यह वह फटकनी थी जिससे लिनेन की घास को फटका जाता था। पर क्या कभी मेरा ध्यान इस ओर भी गया था कि वह फटकनी लिनेन के ही रंग की थी—उसी की तरह कोमल, सुस्त-धुँधली-सी, जिसमें चाँदी की सी चमक दिखाई देती थी। और भूर्ज की पिटारी। उसकी सुनहरी चमक को मैं भला कैसे भूल सकता हूँ? यह वह पिटारी थी जो हर बार हमारी भूखी मेज़ पर ऐसे आती थी जैसे कि बहुप्रतीक्षित सूरज। मुझे बस इतना याद है कि उसमें क्या, कब रहता था।

इस तरह जिस चीज़ को भी मैंने उठाया और जिस चीज़ पर भी मेरी नज़र गई—चाहे वह पुराना, ज़ंग लगा हँसिया हो जिसका फाल पालिश करके चमकाया हुआ था, चाहे वह भूर्ज की ठोस लकड़ी से तराशा हुआ कोमल-सा मधुप्रद कप हो—सभी कुछ मेरे लिए ऐसा था जैसे कि सौन्दर्य का नया संसार मेरे सामने खुल रहा हो। यह वह सौन्दर्य नहीं था जिसे रूसी में भद्दा सौन्दर्य कहा जाता है, इसमें तो एक संकोच का भाव था और जिसका निर्माण कुल्हाड़ी और चाकू से हुआ था। परन्तु आज इस मकान की बूढ़ी मालकिन के साथ परिचय होने के बाद मुझे एक और नई बात पता चली।

आज अचानक मेरी समझ में आया कि इस सौन्दर्य के कारीगर एक अदद कुल्हाड़ी और चाकू ही नहीं हैं। इन सब फटकों, हँसियों, टोकरों, हलों में असली धार और चमक खेतों और चरागाहों से आई है (हाँ, धनुषाकार टाँगों वाली बहुत बूढ़ी अन्द्रेयेव्ना भी वहाँ होती थी जो एक अँधेरे कोने में खड़ी रहती थी)। किसानों के हाथों में पड़े हुए छालों ने ही इनमें यह असली धार और चमक पैदा की है।

6

अगले दिन सवेरे से ही तेज़ बारिश पड़नी शुरू हो गई थी और मैं फिर से घर में ही रह गया। कल की तरह आज भी मुझसे और येव्गेनिया से देर तक मेज़ पर बैठा नहीं गया। ऐसा लग लग रहा था कि मिलेन्त्येव्ना किसी भी समय आ सकती है। येव्गेनिया कह रही थी, "आज तो उसे कहीं दूर नहीं निकलना चाहिए। छोटी बच्ची तो है नहीं।"

समय बीतता जा रहा था। बारिश रुक नहीं रही थी। नदी के दूसरे तट पर—मैं खिड़की के पास से ज़रा भी नहीं हिला था - कोई भी नज़र नहीं आ रहा था। आखिर मैंने बरसाती पहनी और हमाम को गरम करने चल दिया।

जंगल की इस सर्दी से सीधे गर्म जगह में पहुँचना अच्छा ही होगा। पिझ्मा के हमाम काले रंग के हैं और उनमें पत्थर लगा है; नदी से ज़रा-सी दूरी पर हैं, बगीचों के नीचे वाली जगह पर और उन्हें देख कर ऐसा लगता है कि जैसे वे स्वयं टीले पर खड़े होकर तप रहे हों।

वसन्त के दिनों में जब बाढ़ आई होती है हमामों को तपाया जाता है और ऊपर की तरफ़ से हर एक हमाम के सामने लकड़ी के लट्ठों के पाये गाड़ दिए जाते हैं जिससे कि तेज़ी से बह कर आते हुए हिमखण्ड रुक जाएँ और उनके टुकड़े हो जाएँ। इसके अलावा इन पायों से लेकर हमामों तक भूर्ज की पत्तियों की बनी मज़बूत रस्सियाँ भी बाँध दी जाती हैं मानों कि हमामघर लंगर डाले हुए हों।

एक बार मैंने मक्सीम से पूछा था कि इतना सब ताम-झाम किसलिए करना पड़ता है? क्या ऊपर टीले पर ही हमाम नहीं बनाए जा सकते थे, उस जगह जहाँ बगीचे हैं? मक्सीम अपने उर्वाइ ढंग से ठहाका मार कर हँस दिया और ऐसे बोला जैसे कि येव्गेनिया बोल रही हो, "इसलिए कि जीवन का कुछ आनन्द तो मिले। पता है, वसन्त के दिनों में बर्फ़ के इन बड़े-बड़े हिमखण्डों पर हम किस तरह गोलीबारी किया करते हैं! आ-हा-हा! सारी बन्दूक़ें एक साथ चलने लगती हैं।"

धुएँ से काले पड़े हमामघर के पुराने दरवाज़े पर बचे रह गए गोली के निशान पिझ्मा में रहते हुए शुरू के दिनों में ही मुझे दिखाई दे गए थे। उसमें जगह-जगह छेद बने हुए थे। इस समय हमाम को गरम करने के बाद और येव्गेनिया की कल की कहानी याद करके मैं अब मिलेन्त्येव्ना के पति की बंदूक़ से छूटी गोली के निशान को ढूँढ़ने की कोशिश करने लगा जो उसने अपनी युवा पत्नी पर चलाई थी। परन्तु मेरा प्रयास निष्फल रहा। साफ़-साफ़ कहूँ तो इस समय मुझे इसकी फ़ुरसत ही नहीं थी। इसलिए कि मेरे दिमाग़ में लगातार मिलेन्त्येव्ना ही बैठी हुई थी। बात यह थी कि इस समय जंगल का मौसम बहुत ही खराब हो रहा था। येव्गेनिया को भी सास की चिन्ता लगी हुई थी। उससे घर में नहीं बैठा गया और वह मेरे पास चली आई। हताशा में सिर हिलाती हुई वह बोली, "कुछ समझ नहीं आ रहा है; क्या किया जाए? वह बोगात्का में रह गई होगी। है भी तो ऐसी, बहुत ही ज़िद्दी बुढ़िया है! कुछ कहो, चाहे ना कहो। इतनी उम्र में ऐसी तेज़ बारिश में जंगल की राह पकड़ना कहाँ की बुद्धिमानी है भला!"

येव्गेनिया ने अपने मुँह को साँवले हाथों से टोपी की तरह ढका और

नदी की ओर देख कर वह और भी दृढ़तापूर्वक कहने लगी, "वहीं गई होगी, वहीं गई होगी। और कहाँ जा सकती है? परके साल भी ऐसा ही हुआ था। हम इंतज़ार में बैठे हुए थे, देखते-देखते आँखें थक गई थीं और वह थी कि अपने बोगात्का को चली गई थी।"

मुझे बोगात्का के बारे में मालूम तो था—यह चरागाह की जगह थी जो नदी के ऊपर की ओर पिड़्मा से तीन-चार कोस की दूरी पर थी। लेकिन मैंने ऐसा कभी नहीं सुना था कि वहाँ खुम्भियाँ और झड़बेरियाँ खूब होती हैं। मैंने इस बारे में येव्गेनिया से जानना चाहा। उसने अपनी आदत के अनुसार, जब उसे सब कुछ बिल्कुल स्पष्ट होने लगा, अपनी काली आँखों को गोल घुमाया और फिर कहा, "क्या कहने! बोगात्का में खुम्भियाँ कहाँ होती हैं? हो सकता है कि अब होने लगी हों—सब जगह जंगल-ही-जंगल हो गया है, पहले तो वहाँ चरागाह होते थे। अकेले ओनिक इवानोविच—अम्मा के ससुर—वहाँ पर भूसे के सौ ठेले रखा करते थे। इसीलिए वह हर साल वहाँ चली जाती है। इस बोगात्का की शुरुआत इसी से हुई थी। सारे कामों की शुरुआत करने वाली वही है। माँ के पिड़्मा में आने से पहले ऐसा शब्द तक हमने नहीं सुना था। जितने चरागाह थे सब यहीं थे।"

येव्गेनिया ने गाँव की ओर सिर हिला कर कहा, "छतों पर लकड़ी के घोड़े तो देखे होंगे? कितने थे? सारे रुसिख़ा में इतने घोड़े नहीं मिलेंगे। अच्छा, यह बताओ कि क्या सामने के फाटक को कोई पहले रँगता था? केवल अमीर लोग ऐसा करते थे, गाँव का कोई बड़ा आदमी ही ऐसा करता था। पर यहाँ पिड़्मा में तो ऐसे कई घर मिल जाएँगे। कभी ऐसा होता था कि सूरज डूबने के समय उस पार के तट के सामने से होकर जाते हुए डर जैसा लगता था क्योंकि ऐसा लगता था जैसे सारे पिड़्मा में आग लग गई हो। तो ऐसा सब इनके यहाँ बोगात्का से शुरू हुआ था। वहाँ का ख़ज़ाना इनके लिए मिलेन्त्येव्ना ने खोला था।"

मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि येव्गेनिया किस ख़ज़ाने की बात कर रही है। उसकी बातों में कितनी सच्चाई थी और कितना मनगढ़न्त? सायबानों में से निकलते गहरे धुएँ के कारण हमको छोटी खिड़की की तरफ़ को हट जाना पड़ा। वहाँ हम एक बेंच पर जाकर बैठ गए जिसके पास भूर्ज के पत्तों के बने नए-नए झाड़ू पड़े हुए थे।

धुएँ के मारे खाँसती हुई येव्गेनिया ने पति को खूब सुनाई जिससे उसे बड़ा आराम मिला—चूल्हा बहुत अच्छा जलाया—और फिर अकेले ही गाँव के

अन्य निवासियों की ख़बर ली, "यहाँ सब-के-सब उर्वाइ हैं! कल मैंने माँ की ख़ातिर ओनिक इवानोविच की तारीफ़ कर दी थी, वैसे, सच कहा जाए, तो वह भी उर्वाइ ही है। उर्वाइ कैसे नहीं है! बूढ़ा होने तक अपनी बुढ़िया से कहता था कि रात को वह सबसे अच्छे कपड़े पहना करे। और लोग तो कहीं बाहर जाने को या किसी त्यौहार पर अच्छे कपड़े पहन कर निकलते हैं, पर उसके लिए तो रेशमी कपड़े रात के लिए थे। कैसी सोच थी उसकी! उस उजड्ड मुझिक को इस बात का कोई ध्यान नहीं था कि घर में जहाँ देखो छेद-ही-छेद हो रहे थे। एक अम्मा ने ही तो उन सबको ढंग का इन्सान बनाया था। उसके रहते उर्वाइ तरक्की करने लगे थे।..." येव्गेनिया ने विश्वास के साथ अपनी बात कही।

"पर कैसे?"

"सबको ढंग का इन्सान कैसे बनाया था? बोगाल्का के रास्ते से। सफ़ाई के रास्ते से। बहुत पुराने ज़माने में ही उत्तरी भाग सफ़ाई पर ही तो टिका है। जिसने जितने अधिक चरागाह और खेत साफ़ किए उसके पास उतना ही अधिक अनाज और उतने ही अधिक मवेशी मिलेंगे। अम्मा के पिता, मिल्येन्ती येगोरोविच, पूरे रुसिख़ा में सफ़ाई के काम में सबसे आगे थे। उनके चार बेटे थे, सोचो, कितने हाथ थे काम करने को!"

परन्तु पिझ्मा में इन उर्वाइयों का सब उलट-पुलट हो गया। उनका पहला काम हो गया शिकार करना और मछली पकड़ना। खेती की ज़मीन में कोई बढ़ोतरी नहीं हुई। बाप-दादों ने जितनी ज़मीन साफ़ करके तैयार की उसी से गुज़र करते रहे। अपना उगाया अनाज नए साल तक भी हमेशा पूरा नहीं पड़ता था। ठीक ही तो है कि जब फ़सल जानवरों के भरोसे छोड़ दी जाए और जब जंगल नंगे पड़े हों तो भूखे ही तो रहेंगे।

इस तरह अम्मा ने कष्ट के साथ कई साल काट दिए। फिर समझ आया कि इस तरह काम नहीं चलने का। ज़मीन को देखना ही पड़ेगा। अपने ससुर के दिल तक का रास्ता उसके मन में बना ही हुआ था। विवाह की उस रात से ही। वह पीछे पड़ गई—बापू, ज़रा दिमाग़ से काम लो, अब इस ज़मीन के सहारे ही जीएँगे।...

ठीक है। वह सहमत हो गए। ससुर बहू के साथ उतना सहमत नहीं हुए थे, मुख्य बात यह थी कि उन्होंने कोई रुकावट नहीं खड़ी की। माँ ने अपने भाइयों को बुला लिया। भाइयो, ऐसी-ऐसी बात है, अपनी बहन को बचा लो। उनका तो मालूम ही था—अपनी बहन के लिए धरती को तक उठा लेने को

तैयार थे। जितनी ज़मीन चाहिए थी उसकी जगह छाँट ली, जंगल जाए भाड़ में, जो काटने का था काट लिया, जो जलाने का था, जला दिया और उसी साल शरद ऋतु में 'रई' बो दी।

इस तरह उर्वाइ तो सिर ही खुजलाते रह गए। ऐसी बढ़िया फ़सल हुई थी—समझ लो कि देवदार के पेड़ों जितनी ऊँची। गजब का उत्साह पैदा हो गया था। शिकार और मछली पकड़ना बंद हो गया। हाथों में कुल्हाड़ियाँ आ गईं।

सब काम में लग गए। मुझे खुद तो याद नहीं है, मैं तब छोटी थी। पर हमारी अम्मा ने बताया है कि उसी बोगात्का में उन्हें काम करते हुए उसने देखा था।—"एक बार मैं जंगल के रास्ते से जा रही थी—गइया को ढूँढ़ने निकली थी। अचानक मुझे आग-ही-आग दिखाई दी, इतनी बड़ी आग थी कि आसमान को छू रही थी। इस आग के चारों ओर बिना कपड़ों के मुझिक उछल-कूद कर रहे थे। मैं तो देखते ही दंग रह गई, मेरे क़दम रुक गए। ये ज़रूर कोई भूत होंगे, और कौन हो सकता है? या उर्वाइ होंगे, जंगल की सफ़ाई कर रहे होंगे। गर्मी से बचने के लिए कमीज़ें उतार रखी हैं। मुझे कुल्हाड़ी का खेद था—आज के ज़माने की बात नहीं है।

"बच्चों को तंग कर रखा था। मेरे मक्सीम को कभी-कभी कुछ याद आता है तो मुझे विश्वास नहीं हो पाता है। क्या कभी कोई सोच सकता है कि कोई बच्चा कुत्ते के पिल्ले को रस्सी से बाँधेगा? वे लोग ऐसा करते थे। कप में दूध डाल कर उसे ज़मीन पर रख देते और रस्सी से बँधा कुत्ता दिन भर वहीं पड़ा रहता था जब तक कि माँ-बाप काम पर होते थे। पता है, उन्हें डर था कि बच्चे कहीं मकान में आग ही न लगा दें।" येव्गेनिया ने फिर से जोर देकर कहा, "इस तरह की जंगली हरकतें होती थीं इन उर्वाइयों की। और क्या? उन्होंने कभी काम तो किया नहीं था, बस चिड़ियों का शिकार करते थे—सोच लो कि उनके पास कितनी ताक़त रही होगी।"

ओफ़, अम्मा, हमारी अम्मा।... वह तो भला करना चाहती थी पर हुआ बुरा ही। जब कलख़ोज़ का ज़माना आया तब उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार किया गया।...

यह सब सुन कर मैंने न आह भरी, न ऊह। अब हमारे जमाने में इन पुराने किस्सों को सुन कर भला कौन आश्चर्य करेगा—जब अनाज फटकते हैं तब भूसा तो उड़ता ही है! पर येव्गेनिया को मेरी चुप्पी अच्छी नहीं लगी। उसने इसे मेरी बेरुखी समझा और बुरा मानते हुए उसने कहा—

"पुराने जमाने की अब कोई कद्र नहीं रही। सब लोग भूल चुके हैं कि कलख़ोज़ों के बनने की क्या कहानी है और लड़ाई के दिनों में कैसी भुखमरी थी। जवान लोगों को मैं कोई दोष नहीं देना चाहती, उनके बारे में तो मालूम ही है—उन्हें तो आगे जीना है, पीछे मुड़ कर देखने की उन्हें फ़ुरसत ही नहीं है। लेकिन आजकल की बूढ़ी औरतें भी तो बदल गई हैं। देखो, जब ये रुसिख़ा में पेन्शन लेने जाती हैं तब एक-से-एक मोटी और तंदुरुस्त दिखाई देती हैं। युद्ध में जान दे चुके उनके बच्चों की तो अब हड्डियाँ तक नहीं बची होंगी परन्तु इनकी जीने की इच्छा बढ़ती जा रही है, ताकि और युद्ध न हो। इन्हें इस बात की कोई परवाह ही नहीं है कि इनके खेतों और चरागाहों में जंगली घास-फूस और झाड़ उग आए हैं। पेट भरा रहता है। हर रोज पेन्शन टपकती रहती है।"

तभी मैंने मारा आपा से पूछा कि उसकी आँखों में दर्द तो नहीं है क्या? कुछ चुभता तो नहीं है क्या? पहले खिड़की से देखती थी तो खेत दिखाई देते थे और अब नज़र आते हैं झाड़। उसने हँसते हुए कहा, "बेटी, यह भी अच्छा ही है। जलावन पास में ही मिल जाती है। ज़रा सोचो कि बूढ़े व्यक्ति के मन में क्या है। एकदम उर्वाइ है, सही माने में उर्वाइ है। मेरा मक्सीम भी ऐसा ही है। बस, हँसी-मख़ौल ही करता रहता है, चाहे बाढ़ ही क्यों न आ जाए।"

येव्गेनिया कुछ देर चुप रही और फिर गहरी साँस लेकर बोली, "नहीं, आजकल के जमाने के लायक मैं नहीं हूँ। मुझे बस चिंताएँ और दुख लगा रहता है। बात-बात पर मुझे तनाव हो जाता है। अपनी सास के कारण तो मेरा दिल ही फट गया था। तुम भी क्या कहते हो? कितना भी काम क्यों न किया, गलती सारी मेरी थी। ऐसा था हमारा ज़माना! अम्मा कहती थी—'मैं तो सब सहन कर सकती थी। पर लोगों को जेल भेजने का क्या मतलब था?' "

"किन लोगों को?"

येव्गेनिया तेज़ी से मेरी ओर को मुड़ी। उसकी काली, खुली हुई आँखों में खून उतर आया था। वह बोली—"पाँच गृहस्थियों को ख़ाली कर दिया था। तुम्हें क्या पता कि उनके वहाँ गृहयुद्ध के दिनों में भी अनाज के भण्डार भरे हुए थे। सब कुछ, पूरा-का-पूरा कलख़ोज़ों को चला गया था। ऊपर से उर्वाइ भी थे। सब एक-से-एक बढ़ कर। शांति से भी हो सकता था, तब शायद कोई उन्हें नहीं छूता। कौन नहीं जानता कि उनका इरादा क्या रहा होगा? जब कलख़ोज़ के लिए उनका नाम दर्ज करने को आए तो उन्होंने कह दिया कि हम नहीं चाहते। हमारी गृहस्थी तो वैसे ही कलख़ोज़ जैसी है। इस पर अफ़सरों को गुस्सा आ गया, उन्हें नापसन्द किया गया। सच बात तो यह है कि चार

मुझिकों को तो बाद में लौटा दिया गया और मेरे ससुर यानी अम्मा के पति मिरोन ओनिकोविच भी वापस आ गए, चाहे बीमार ही क्यों न लौटे। लेकिन ओनिक इवानोविच वहीं-के-वहीं रह गए।''

उस ज़माने में जो भी हुआ बहुत पीड़ादायक था। कितनी ही बार अम्मा ये सारी बातें बता चुकी थी जिन्हें सुन कर मुझे बड़ा दुख होता था। मुझे गुस्सा आ गया। येव्गेनिया ने ज़ोर से नाक से आवाज़ निकाली और आँखों को रूमाल से पोंछा।

''तुम सोचो तो सही कि कभी-कभी ज़िन्दगी किस तरह करवटें लेती है। एक बार अम्मा खलिहान में 'रई' को कूट रही थी कि तभी बिजली कड़की। हाँ, खलिहान में।'' ज़रा देर सोच कर उसने सिर हिलाया। ''उसे खुशी ही हुई। उसने सोचा कि भगवान ने फिर से अन्न दिया है। बहुत अच्छी और बड़ी-बड़ी 'रई' उगी थी। शायद पूरी ज़िन्दगी में 'रई' की ऐसी अच्छी फ़सल कभी नहीं देखी थी। तभी अचानक बच्ची दौड़ी-दौड़ी आई और बोली—'माँ, जल्दी से घर जाओ। बापू और दादा को पकड़ कर ले जा रहे हैं।' ''

अम्मा ने बताया कि उसे मालूम था कि दौड़ कर जाना चाहिए। मामला बिगड़ रहा था, ज़रा-सी देरी का मतलब था—हमेशा के लिए विदा। परन्तु उसके तो पाँव ही मानों अटक गए थे। अपनी जगह से हिल ही नहीं सकी। किसी तरह फाटक तक घुटनों के बल रेंगती हुई पहुँची। भयानक दृश्य था। एक उसकी वजह से बदला लिया जा रहा था। अगर उसने ससुर को जंगलों की सफ़ाई के लिए उकसाया न होता तो उर्वाइयों को भला कौन हाथ लगा सकता था? सारी ज़िन्दगी कष्टों में ही रहे।''

तो, ससुर ने अम्मा को अपने भय से नहीं मारा था, मारा था अपने अच्छे शब्दों से। अपनी तरफ़ से तो अम्मा हर बात के लिए तैयार थी, किसी भी दण्ड के लिए वह तैयार थी। ऐसे क्षण में मनुष्य कुछ भी कर सकता है। अचानक उसने देखा कि उसका ससुर घुटनों के बल खड़ा हो रहा है। सब ईमानदार लोगों के सामने उसने कहा—'धन्यवाद, वसीलिसा मिलेन्त्येव्ना, तूने हम बेवकूफ़ों को मनुष्य बना दिया है। तू कुछ और मत सोचना, तेरे लिए हमारे मन में कोई बुरी भावना नहीं है। जीवन भर, आख़िरी साँस तक तुझे आशीर्वाद देता रहूँगा।...' ''

येव्गेनिया रोने लगी और अपने आँसू रोक कर उसने अपनी बात पूरी की, ''*अम्मा फिर भी ओनिक इवानोविच से विदा नहीं ले सकी। वह वहीं बेहोश* होकर गिर पड़ी।...''

7

मिलेन्त्येव्ना दोपहर तीन बजे के बाद अधमरी-सी जंगल से लौटी। खुम्भियाँ लेकर तो आई ही थी। भूर्ज की भारी टोकरी उसके चलने से चरमरा रही थी। सच कहूँ तो टोकरी की इस चरमर से ही मुझे पता चला कि मिलेन्त्येव्ना उस पार देवदार के पेड़ों के नीचे वन झोंपड़े के पास तक पहुँच गई है। मुझसे रुका नहीं गया और मैं नदी पार करके उधर ही चला गया।

अभी हमने मकान की दहलीज़ पार ही की थी कि येव्गेनिया ने अपनी सास को कोसना शुरू कर दिया जैसे कि वह कोई नासमझ बच्ची हो। असल में इंतज़ार करते-करते वह मुझसे भी अधिक परेशान हो चुकी थी। मारा आपा ने भी उसका समर्थन कर दिया।

हट्टी-कट्टी लाल मुँह और भूरी तथा चतुर आँखों वाली मारा आपा और प्रोख़ोर हमसे मिलने आज पहली बार ही नहीं आए थे। दोनों कुछ ज़्यादा ही उत्तेजित थे और हर बार एक ही बात पर ज़ोर दे रहे थे कि मेहमान कहाँ है? उसे लोगों से छिपाकर क्यों रखा है?

मिलेन्त्येव्ना पूरी तरह भीगी हुई थी, वह ठण्ड के मारे नीली पड़ गई थी और पुरानी खुम्भी की तरह सिकुड़ रही थी। येव्गेनिया ने सबसे पहले उसका गीला स्कार्फ़ और गीला ओवरकोट उतारा, फिर चूल्हे पर रखी गरमाई हुई जूतियाँ लेकर उनके ऊपर लाल खोल चढ़ा दिया।

"भीगे हुए बूट भी तो जल्दी उतारो, फिर हमाम में जाना है।"

"दादी, हमाम में ही तो तुझे नहीं जाना है।" प्रोख़ोर ने ज़ोर देकर कहा। वह छोटे चूल्हे के पास बैठा उसे फूँक रहा था।

"बैठे रहो।" येव्गेनिया ने उस पर चिल्ला कर कहा। "वे पानी के गुब्बारे डालेंगे। पता नहीं, क्या-क्या कूटेंगे।"

"क्या पता नहीं है? इलाज की बात है।"

"इलाज! क्या इलाज के लिए हमाम में जाना मना है?"

"तो क्या? अगर इसे निमोनिया हुआ तो?"

येव्गेनिया उलझन में पड़ गई। असमंजस में पड़ कर उसने मिलेन्त्येव्ना की ओर देखा जो गहरी साँस लेती हुई चूल्हे के पास वाले बेन्च पर बैठी हुई थी। फिर उसने मेरी ओर देखा। दवाइयों का मेरा ज्ञान उससे भी कम था। अंततः उसने कोई जोखिम न उठाने का ही फ़ैसला किया। तो आखिर में मिलेन्त्येव्ना को हमाम में स्नान कराने के बदले चूल्हे पर ही सुला दिया गया।

जब तक येव्गेनिया और प्रोख़ोर के बीच हमाम को लेकर विचार-विनिमय

चलता रहा मारा आपा मख़ौल के साथ अपना बड़ा-सा सिर हिलाती रही जिसे उसने लाल साटन की टोपी से ढक रखा था। वह बोली, "अच्छा बताओ, कहाँ गई थी और क्या-क्या देखा?"

"जो ज़रूरी था, वही देखा।" मिलेन्त्येव्ना ने चूल्हे पर से धीमे स्वर में जवाब दे दिया।

"हमें बताओ तो सही कि क्या किया? ज़रूर बोगात्का में ख़ज़ाना ढूँढ़ने गई होगी।" मारा आपा व्यंग्य के साथ बोली।

"ठीक है, बता दो। वहाँ क्या ढूँढ़ा—इससे हमें कोई मतलब नहीं है। देखो, कितनी मुश्किल से वापस पहुँची है। साँस फूल रही है।"

मारा आपा ठहाका मारकर हँस दी। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उसके सारे-के-सारे दाँत हैं और अच्छे मज़बूत भी हैं।

"प्रोख़ोर, तू तो कह रहा था कि चरागाहों को सहकारी किसानों को दिया जा रहा है, उन चरागाहों को जिनमें झाड़ियाँ उग आई हैं। लेकिन सफ़ाई के बारे में तो हमारे लोगों ने कुछ भी नहीं बताया है।"

इस तरह सफ़ाई और कल्लर ज़मीन के बारे में फिर से लम्बी और व्यर्थ की बात चल पड़ी।

प्रोख़ोर के अनुसार मैं गाँव के जीवन के साथ सरोकार रखने वाले बड़े अफ़सरों के साथ शहर में रहता था और इसलिए वह मुझसे स्पष्ट रूप से यह जानना चाहता था कि ऐसा क्यों है कि देश के दक्षिणी भागों में तो कल्लर जमीन को फिर से जोता जा रहा है जबकि हमारे यहाँ इसका उलटा ही हो रहा है—ऐस्प और ऐल्डर जैसे पेड़ लगवाए जा रहे हैं? (उसने ऐसे ही शब्दों में अपनी बात कही थी।)

मैंने कुछ अनिश्चित ढंग से कहना शुरू किया कि घोर जंगली इलाक़ों में खेती-बाड़ी करना लाभप्रद नहीं है। स्वाभाविक था कि मेरी बात सुन कर प्रोख़ोर ने मुझे निरुत्तर कर दिया और ऐसी आवाज़ में जो उसकी अपनी आवाज़ नहीं बल्कि किसी स्थानीय वक्ता की आवाज़ थी वह ज़ोर से बोला, "हाँ, ठीक ही है, अब फ़ायदेमंद नहीं है ना? लड़ाई के दिनों में क्या था, भाई साहब? तब फ़ायदेमंद था? यही तो मैं पूछ रहा हूँ। क्योंकि तब महायुद्ध चल रहा था। मालूम है कि तब हमारी औरतें अकेली ही बच्चों को साथ में लेकर बुआई करती थीं और रत्ती भर भी ज़मीन ख़ाली नहीं छोड़ती थीं।..."

प्रोख़ोर की बात में झट से मारा आपा भी शामिल हो गई—पता नहीं क्यों, उसे मुझे चिढ़ाने में हमेशा मज़ा आता था। आख़िर, मैंने भी अनुमान लगा

ही लिया कि किस प्रकार अपने विरोधियों को हराया जा सकता है—इसके लिए 'स्तोलीच्नाया' वोद्का की ज़रूरत थी।

वास्तव में तो बिन बुलाए मेहमानों को इस तरह से विदा करना येव्गेनिया जैसी घरेलू और किफ़ायती महिला को अच्छा नहीं लगा। परन्तु जब वे लोग बोतल ख़ाली करके गाने गाते हुए और परस्पर आलिंगनबद्ध होकर घर से बाहर निकल गए तो उसने राहत की साँस ली। इन मटरगश्ती करनेवालों के बारे में येव्गेनिया ने अपने अंतिम विचार तब व्यक्त किए जब वह मेज़ साफ़ करने लगी—किसी भी प्रकार की अव्यवस्था और बेढंगापन वह सहन नहीं कर सकती थी।

"नहीं, दिखाई तो दे रहा है कि न केवल खेत ही जंगलों में तब्दील हो रहे हैं, इन्सान भी जंगली होता जा रहा है। हे ईश्वर, क्या पहले कभी सुना था कि पियक्कड़ उर्वाइ मिलेन्त्येव्ना के घर में आए हों? नदी की धारा चाहे मुड़ जाए पर ऐसा नहीं हो सकता था। कभी ऐसा होता था कि जब अम्मा आ रही होती तब बच्चे बड़ों के पास ऊधम मचा रहे होते—'चुप हो जाओ, पगलो! वसीलिसा मिलेन्त्येव्ना आ रही है।' और जब वह आगे निकल जाती तब कहते—'अब मचा लो अपना ऊधम। चाहे सर पर चढ़ जाओ!' इतनी इज़्ज़त थी पहले अम्मा की।" येव्गेनिया ने सास से पूछा, "खाना कैसे खाओगी? नीचे आओगी क्या? या फिर वहीं चूल्हे पर ही दे दूँ?"

"नहीं, ज़रूरत नहीं है। बाद में खाऊँगी।" मिलेन्त्येव्ना ने इतने धीमे स्वर में कहा कि मुश्किल से ही सुनाई दिया।

"बाद में कब? सवेरे से कुछ भी नहीं खा रखा है। खाओ तो सही। आज मछली का बढ़िया सूप बना है, मिर्च के साथ।"

"नहीं, मेरा पेट भरा हुआ है। मेरे पास छोटी डबल रोटी तो थी।"

येव्गेनिया अपनी सास को खाने के लिए मना नहीं पाइ और फिर से वह चिंतित हो गई, "यही तो बुरी बात है। मैं तुम्हारा क्या करूँ? अम्मा, तुम्हारी तबियत तो ख़राब नहीं है क्या? डाक्टरनी के पास चलें?"

"नहीं, सब ठीक है। थोड़ा गर्मा लूँ. फिर उठ जाऊँगी। तुम लोग खुम्भियों को साफ़ कर देते तो अच्छा रहता।

येव्गेनिया ने बस सिर हिला दिया और बोली, "अम्मा, तुम भी कैसी हो! इस समय तुम्हें खुम्भियों की पड़ी है। लेटी रहो, भगवान के नाम पर। अभी दिमाग से इन जंगली चीज़ों को निकाल दो।..."

इतना कहने के बाद भी येव्गेनिया ने खुम्भियों से भरी भूर्ज की टोकरी

उठा ली और हम मकान के दूसरे भाग में चले गए ताकि बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना शांति से लेटी रहे।

8

इस बार इकट्ठी की हुई खुम्भियाँ कोई ख़ास नहीं थीं—लाल सिरोयेझ्का, पुरानी वोल्नूख़ा, भूरी कन्योक, और मुख्य बात यह थी कि उनकी कोई शकल ही नहीं थी—आधी तो घास-फूस थी और भीग-भाग कर सब गड्ड-मड्ड हो गया था। पैनी समझ रखने वाली येव्गेनिया ने इससे निराशापूर्ण निष्कर्ष निकाला, "बड़ी बुरी बात है। असल में हमारी मिलेन्त्येव्ना बीमार हो गई है। ऐसी घटिया खुम्भियाँ वह कभी नहीं लाई थी।"

उसने अर्थपूर्ण गहरी साँस ली और आगे बोली, "हाँ, यही बात है। अब हमारी अम्मा की सेहत गिरने लगी है। मैं तो सोचती थी कि वह लोहे की बनी है। कुछ भी नहीं ले रही है। ओफ़, जैसा उसका जीवन रहा है उसे देख कर आश्चर्य की बात नहीं है कि अब वह लड़खड़ाने लगी है। ज़रा सोचो कि अभी तक कैसे रह रही थी। पति का तो जैसे दिमाग़ ही ख़राब हो गया था—तीन बार बंदूक़ चला चुका था। कितना सहा! पति को दफ़नाया तो युद्ध शुरू हो गया। दो बेटे लड़ाई में काम आए। तीसरा यानी मेरा पति कितने साल तक तो गायब ही रहा था। उसके बाद सान्का का फन्दा माँ पर पड़ गया।... कितने सारे कष्ट बुढ़ापे में इन्हें झेलने पड़े हैं। अगर दस लोगों के कंधों पर डालें तब भी पूरे नहीं पड़ेंगे। यहाँ तो सारा बोझ एक ही कंधे पर पड़ा था।"

"ये सान्का कौन है—बेटी है क्या?"

"हाँ, बेटी है। क्यों, कभी सुना नहीं?" येव्गेनिया ने चाकू को अलग रख दिया जिससे वह खुम्भियाँ साफ़ कर रही थी और आगे बोली, "अम्मा के कुल बारह बच्चे पैदा हुए थे जिनमें से छह जिन्दा बचे। बड़ी बेटी थी मार्फ़ा जिसकी ससुराल रुसिख़ा में थी। उसके बाद पैदा हुए वसीली और येगोर—दोनों युद्ध में शहीद हुए। उनके बाद है मेरा पति। फिर हुई सान्का। और उसके बाद हुआ ये पियक्कड़ इवान।

"तो इस तरह मिलेन्त्येव्ना ने अपने बेटों को युद्ध में भेजा और साल भर बाद सान्का की भी बारी आ गई। उसे नदी में लकड़ी बहाने के काम में लगा दिया गया। यह भी युद्ध जैसा ही काम था।... ओह, देखने मे कितनी सुन्दर थी वह! मानो कि मैंने जीवन में कभी भी इतनी सुन्दर कन्या देखी ही ना हो। लम्बी और गोरी, उसकी चुटिया पूरी पीठ तक, घुटनों तक आती थी।

लोग कहते थे कि एकदम माँ पर गई है, बल्कि शायद उससे भी अधिक सुन्दर रही हो। इतनी शांत कि पानी को तक गँदला न करे। हमारी तरह नहीं थी, रोड़ों जैसी। अपने इस शांत स्वभाव की आड़ में ही उसने कुछ फैसला कर लिया और किसी नीच के चक्कर में फँस गई और पेट से हो गई।

"मुझे कोई हैरानी नहीं है, ऐसी नीचता पर कोई आश्चर्य नहीं है कि इस तरह सब कुछ घटित हो गया। ऐसा कौन होगा जिसने सारी जिन्दगी अपने माँ-बाप की काँख में बिताई हो और कहीं भी न गया हो? आह भरने दो! मैं तेरह साल की उम्र में जंगल गई थी और मैंने बहुत-कुछ देखा है। कभी ऐसा होता था कि जंगल से लौटते-लौटते शाम हो जाती थी, पाँव मुश्किल से टिक पाते थे। और ये राक्षस कोई शर्म नहीं करते थे, दिन भर आँखें गड़ाए रहते थे और झपट पड़ते थे। न जूते उतारने हुए, न कपड़े— सीधे एक कोने में खींच ले जाते थे।...

"हो सकता है कि अम्मा की सान्का को भी रास्ते में कोई ऐसा ही राक्षस मिल गया हो। उसका क्या कर सकती वह? अगर उसके दाँत होते तो ऐसे काटती और उनका ऐसा निशान बना छोड़ती कि कुछ कहते नहीं बनता। मुझे याद है कि त्यौहार के दिन लडाई लगने से कुछ पहले वह हमारे यहाँ रुसिखा में आई थी। ग़ज़ब की सुन्दर लग रही थी—औरतों की नज़रें उसी पर टिक गई थीं, लगता था जैसे कि कोई परी सामने खड़ी हो। लड़के भी शरारत पर उतर आए थे, उनकी भीड़ जमा हो गई थी। हो सकता है कि अम्मा ने उसे बाहर भेजते समय चेता दिया होगा कि बेटी, पराई जगह चाहे और कुछ खो आना पर अपनी इज़्ज़त मत खोकर आना। अच्छे परिवारों में ऐसे ही निर्देश दिए जाते थे।

"मुझे पता नहीं, क्या कुछ घटित हुआ। अम्मा से इस बारे में न पूछना ही अच्छा होगा। दुश्मन से भी बुरा होगा उससे पूछना।"

येवोनिया ने सब कुछ ध्यान से सुना और फिर उत्तेजित स्वर में कहने लगी, "लोगों से छिपाना चाहती थी। सुनते हैं कि किसी को भी मरी हुई बेटी के पास तक आने नही दिया। अकेले, खुद ही गाँठ खोली, खुद ही स्नान कराया और खुद ही क़ब्र में लिटाया। पर क्या लोगों से पेट को छिपाया जा सकता है? जो लड़कियाँ उसके साथ नदी की रोक पर थीं स्वयं उन्होंने ही बताया था। सुनते हैं कि सान्का की आँखें फूलने लगी थीं। येफ़ीम्को-मल्लाह ने उससे कहा भी था, 'सान्का, तू कुछ बदली-बदली नज़र आने लगी है।' सान्का ऐसा क्यों करेगी जबकि उसे मालूम है कि क़यामत के दिन उसे भी अंतिम फ़ैसले

के लिए जाना होगा ही।'' बेटी, अपनी माँ के साथ आँखें तो मिला, बता कि नदी की दूसरी तरफ़ जाकर तूने अपनी इज़्ज़त बचाई कि नहीं।''

चिन्ता में डूबी सान्का अपने घर तक आई थी परन्तु बरामदे से आगे बढ़ने की हिम्मत उसमें नहीं हुई। देहली पर बैठ गई, सारी रात वहीं बैठे-बैठे गुज़ार दी। जब उजाला होना शुरू हुआ तब वह खलिहान की तरफ़ भाग गई। दिन का उजाला उससे देखा नहीं गया, माँ से आँखें मिलाना तो बहुत दूर की बात थी।

येव्गेनिया ने फिर से सब कुछ ध्यान से सुना और अपनी काली भौंहों को ऊपर उठाया। कुछ कहना तो था ही, इसलिए उसने फिर से फुसफुसा कर कहा, ''शायद सो रही होगी। कुछ देर और सोएगी, शायद। मैंने अम्मा से पूछा था कि उसके—अम्मा के—मन में कोई अंदेशा नहीं हुआ था क्या? 'हुआ तो था। उस रात मैं तीन बार बाहर सायबान में गई थी और पूछा भी था कि बरामदे में कौन है। जब उजाला हुआ तब मेरा माथा ठनका। जैसे चाकू लगा हो।' उसने मुझे सब कुछ बता दिया था, छिपाया नहीं था। और उसने यह भी बताया था कि बरामदे में उसने बूट भी देखे थे।''

सोचो, कैसी लड़की थी वह। अपने आप तो मर ही रही थी, जवानी में अपना जीवन बर्बाद कर दिया और माँ को याद भी करती है। तुम्हें पता ही है कि लड़ाई के दिनों में जूतों की क्या हालत थी। लकड़ी बहाने की जगह में हम नंगे पाँव ही चले जाते थे। तब नदी में जमी हुई बर्फ़ तैर रही होती थी। ऐसे ही किसी समय में सान्का ने जीवन से विदा ली होगी, अपनी माँ को भूली नहीं होगी, उसे आख़िर तक माँ की चिंता रही होगी। दण्ड भुगतने को नंगे पाँव ही गई होगी। उसके पाँवों के निशान देख-देख कर अम्मा खलिहान तक जा पहुँची थी। जल्दी तो नहीं थी, बर्फ़ की तह जमे दूसरा दिन था और बर्फ़ पर पड़ी टहनियाँ साफ़ दिखाई देती थीं।

दौड़ कर आ तो गई थी पर उससे क्या होना था, मदद कैसे करती? सान्का तो ठण्डी पड़ी हुई थी। घर के बने कपड़े से बँधी लटक रही थी और वहीं एक तरफ़ उसकी मिर्जई अच्छी तरह तह करके रखी हुई थी और उसके ऊपर गरम स्कार्फ़ पड़ा हुआ था। मेरे बाद पहन लेना, माँ, मुझे याद करते रहना, अभागिन को!...

बाहर बारिश बंद नहीं हुई थी। फ़्रेम में बँधे पुराने रंगीन शीशे चेतन जीव की तरह सिसक रहे थे और मुझे लगातार ऐसा लग रहा था जैसे कि खिड़की के बाहर कोई धीरे-धीरे रोते हुए कुटकुटा रहा हो। येव्गेनिया ने मेरे अंदर के

विचारों को जैसे कि भाँप लिया हो और वह बोली, "मुझे इस मकान में रहते बहुत डर लगता है। अब मैं यहाँ रात को अकेली नहीं रह सकती। मैं अम्मा नहीं हूँ। जाड़ों में सभी चूल्हों और पाइपों से आवाज़ आती रहती है और जब बरामदे का छल्ला झनझनाता है तो बस पागल ही कर देता है। पहले तो मैं मक्सीम को मनाती रही कि घर में आकर रहो। दूसरी तरफ़ हमने क्या-क्या नहीं देखा है? अब तो बहुत हो गया रहते-रहते। जाड़ों में हमारे यहाँ से लोगों के पास जाने का रास्ता तक बंद हो जाता है। रुसिखा भी स्की में जाते हैं।...

9

मिलेन्त्येव्ना दो दिन ऐसे ही पड़ी रही और तब मैं और येव्गेनिया गंभीर रूप से सोचने लगे कि महिला कम्पाउण्डर को बुलाना चाहिए। इसके अलावा हमने यह भी फ़ैसला किया कि मिलेन्त्येव्ना की बीमारी की ख़बर उसके बच्चों को दे देनी चाहिए। पर अच्छा ही हुआ कि इस सबकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। तीसरे दिन मिलेन्त्येव्ना खुद ही चूल्हे से नीचे उतर आई। वह नीचे ही नहीं उतरी बल्कि हमारी सहायता के बिना मेज़ तक भी आ गई।

"अम्मा, कैसी हो? ठीक हो गई क्या?"

"पता नहीं। शायद पूरी तरह ठीक नहीं हुई हूँ। पर आज मुझे घर जरूर जाना है।"

"घर जाना है? आज?"

"हाँ, जाना है। आज मेरा बेटा इवान मुझे लेने आने वाला है।" मिलेन्त्येव्ना ने शांत स्वर में उत्तर दिया।

इस ख़बर से येव्गेनिया को मुझसे कम बुरा नहीं लगा।

"ऐसी बारिश में इवान क्यों कर निकलेगा? बाहर देखो ज़रा, कैसा हो रहा है? अम्मा, तुम्हारी अकल घास चरने गई है क्या?... अभी तो तुमने खुम्भियों को तक सँभाला नहीं है।"

"खुम्भियों के लिए रुका जा सकता है। कल स्कूल खुल रहे हैं। कातेरीना स्कूल जाएगी।"

"तो क्या तुम कातेरीना की ख़ातिर जाने की तैयारी कर रही हो?"

"ज़रूर जाना है। मैंने वचन जो दे रखा है।"

येव्गेनिया आश्चर्यचकित हो गई और बोली, "किसको वचन दिया है? अम्मा, तुम्हारे भी क्या कहने! कातेरीना को वचन दे रखा है। तुम्हारी ये

कातेरीना कुल मिला कर एक दस्ताने जितनी है। अभी तो उसकी नाक बहती है। बसन्त में यहाँ आई तो थी। किसी कोने में छिप जाती थी और बुलाओ तो आती ही नहीं थी।''

मिलेन्त्येव्ना ने मेरी ओर मुड़ कर कहा, ''जैसी भी हो, जाना तो है ही क्योंकि वचन दे रखा है। मेरी पोती बड़ी चुलबुली है। बस, उसकी आँखें, बदकिस्मती से, बहँगी हैं। ऊपर से पड़ोसिन ने बच्ची को डरा भी दिया, 'किधर चल दी? कहीं रास्ते में मर मत जाना।' बेचारी तभी रो पड़ी थी। रात भर दादी के गले से लिपटी रही थी।...''

एक-एक मिनट बेटे की प्रतीक्षा में मिलेन्त्येव्ना दिन भर खिड़की के पास बैठी रही। वह नहीं चाहती थी कि उसकी वजह से ज़रा-सी भी देरी हो, इसलिए वह पूरी तरह तैयार बैठी थी—बूट पहने, गरम ऊनी शाल डाले और हाथ में गठरी लिए। पर इवान नहीं आया।

मैंने और येव्गेनिया ने घबरा कर एक दूसरे की ओर देखा। बाहर बारिश हो रही थी, फ्रेम मढ़े शीशे पानी के बुलबुलों से फूल गए थे। वह स्वयं पूरी तरह बीमार थी। नदी पार की बड़ी सड़क में बीच-बीच में गाड़ियाँ आती-जाती दिखाई दे रही थीं।... अब इस तरह जाने की धुन सवार होने लगना आत्महत्या जैसा ही तो है, मृत्यु को बुलावा है, समझो।...

येव्गेनिया ने अपनी सास को जितना हो सका मनाने की कोशिश की। उसे डराया, रोई, हाथ जोड़े। मैं स्वयं भी तो चुप नहीं रहा था।

सारे प्रयास व्यर्थ ही रहे। मिलेन्त्येव्ना अड़ी-की-अड़ी रही। वह न तो चिल्लाई, न उसने हमसे बहस की, उसने चुपचाप सिर हिलाते हुए अपना ओवरकोट लेकर पहन लिया, अपने सामान की गठड़ी को एक बार फिर से बाँधा और अपने मकान से विदा लेते हुए चारों ओर दृष्टि दौड़ाई।...

बस, इन्हीं कुछ क्षणों में, लगता है कि पहली बार, मुझे समझ में आया कि युवा मिलेन्त्येव्ना ने किस तरह से पिझ्मा जैसी जंगली जगह को अपने वश में कर लिया था। नहीं, इसमें केवल उसकी विनम्रता और असाधारण धैर्य का ही योगदान नहीं था बल्कि उसकी अपनी मज़बूती और चारित्रिक दृढ़ता की भी उतनी ही बड़ी भूमिका रही होगी। बीमार वृद्धा को नदी पार पहुँचाने मैं अकेला ही गया। येव्गेनिया तो इतना अधिक भावुक हो गई थी कि बरामदे तक नीचे आने की स्थिति में तक नहीं थी।

बारिश होने में थी। इतने दिनों में नदी का पानी काफ़ी चढ़ गया था और हमें उस शहतीर से कोई बीस मीटर नीचे की तरफ़ जाना पड़ा जिसमें

आकर नावें आम तौर पर लगती थीं। पर सबसे बड़ी कठिनाई तो जंगल में आने वाली थी जब हम वहाँ की पगडण्डी पर निकले। बारिश न हो तब भी इस पगडण्डी में तो पाँवों के नीचे कुछ छप्-छप्, चप्-चप् होती रहती है। सोचिए कि तीन दिन की मूसलाधार बारिश के बाद वहाँ कैसा हो रहा होगा?

मैं धीरे-धीरे चल रहा था, रास्ते में पड़ते दलदल में पाँवों को फँसने से बचाते हुए गीली झाड़ियों को पकड़-पकड़ कर आगे बढ़ रहा था और हर क्षण मुझे भय था कि कहीं कुछ घटित न हो जाए, कि कहीं बूढ़ी मिलेन्त्येव्ना दम न तोड़ दे।... पर भगवान की कृपा से सब कुछ ठीक हो गया। मिलेन्त्येव्ना अपनी सच्ची सहायिका—ऐस्प की लकड़ी की बनी हल्की लाठी—का सहारा लेकर सड़क पर निकल आई। सड़क पर आने के बाद वह सीधे ट्रक में जा बैठी।

इस ट्रक के साथ हमारी क़िस्मत असाधारण रूप से अच्छी रही। जैसे कि कोई आश्चर्य घटित हुआ हो। अभी हम सड़क पर पहुँचने को ही थे कि गाड़ी का इंजन चालू हो गया। मैं उतावला होकर और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाता हुआ दौड़ कर इस तरह आगे गया जैसे कि हमला करने जा रहा हूँ। ट्रक रुक गया। पर खेद की बात थी कि उसकी केबिन में ड्राइवर के साथ वाली सीट खाली नहीं थी। उस जगह उसकी निस्तेज पत्नी बैठी हुई थी जिसकी गोद में नवजात शिशु था। परन्तु मिलेन्त्येव्ना ने एक क्षण को भी ऐसा विचार नहीं किया कि पीछे खुले में बैठ कर जाए कि नहीं। लोहे का बना ट्रक का पिछला हिस्सा बहुत बड़ा था और ऊँचा था। मिलेन्त्येव्ना उसमें ऐसे जा बैठी जैसे कि कुएँ में कूद पड़ी हो। दोनों ओर घने देवदारों से घिरी सड़क पर से जाते हुए ट्रक के पीछे मुझे एक सफ़ेद चिह्न हिलता हुआ दिखाई पड़ रहा था। यह मिलेन्त्येव्ना का स्कार्फ़ था, जिसे वह गड्ढों और ऊबड़-खाबड़ सड़क पर उछलते हुए ट्रक में से स्वयं भी धक्के खाती हुई विदाई स्वरूप हिलाती जा रही थी।

10

मिलेन्त्येव्ना के चले जाने के बाद मैं पिझ्मा में तीन दिन भी नहीं रह सका क्योंकि अचानक ही सब कुछ मुझे अप्रिय लगने लगा था, सब कुछ एक खेल जैसा प्रतीत होने लगा था जो वास्तविक जीवन से दूर ही था—चाहे जंगल में शिकार के लिए मेरा भटकना हो, चाहे मछली पकड़ना हो और चाहे कृषक-जीवन के अतीत के प्रति मेरा आकर्षण ही क्यों न हो।

मेरी तीव्र इच्छा हुई कि शोर-शराबे वाली किसी बड़ी जगह में जाऊँ, कि कुछ ऐसा काम करूँ जिससे लोगों का भला हो सके। इस तरह काम करूँ जैसे कि वसीलिसा मिलेन्त्येव्ना करती है और आगे भी अपने अंतिम क्षण तक करती रहेगी। उत्तरी क्षेत्र के घने जंगलों में रहनेवाली यह अज्ञात और बूढ़ी किसान महिला अपने कर्म से कितनी महान है!

मैं जिस दिन पिझ्मा छोड़ कर जा रहा था उस दिन अच्छी धूप निकली हुई थी, मौसम गरम था। सूखते हुए लट्ठों के मकानों से भाप उठ रही थी। बूढ़े ग्रोमोबोइ से भी भाप निकल रही थी जो घुड़साल के पास खड़ी घोड़ागाड़ी के निकट ठूँठ की तरह जड़वत् खड़ा हुआ था। उसके सामने से जाते समय मैंने उसे आवाज़ दी। ग्रोमोबोइ ने अपनी बूढ़ी गर्दन मेरी ओर आगे को कर दी लेकिन उसके मुँह से कोई आवाज़ नहीं निकली।

लकड़ी के घोड़ों ने भी मुझे इसी तरह से विदाई दी—जो निःशब्द, उदास और लकड़ी के फट्टों वाली छत से सिर लटकाए हुए थे। लकड़ी के घोड़ों का पूरा झुण्ड था, जिन्हें वसीलिसा मिलेन्त्येव्ना ने पाला था। मेरी आँखें भर आई और अचानक ही मेरी इच्छा हुई, प्रबल इच्छा हुई कि इन घोड़ों की हिनहिनाहट को सुनूँ। चाहे एक बार ही सही, वास्तव में नहीं, तो सपने में ही सही। उनकी वह तेज़, युवा हिनहिनाहट, जिससे ये घोड़े किसी ज़माने में यहाँ के वन्य प्रदेश को गुंजायमान रखते थे।



1969

कुछ विशिष्ट शब्द

इकाने	धार्मिक चित्र।
इल्या दिवस	3 अगस्त (पुराने कैलेण्डर की 20 जुलाई) को पड़नेवाला एक धार्मिक त्यौहार।
कम्पोत	सुखाए फलों को उबालकर बनाया गया ठण्डा पेय।
कलख़ोज	सहकारी खेत।
कश्येइ	रूसी लोककथाओं का एक दुबला-पतला बूढ़ा। दुष्ट पात्र, जिसे दीर्घ जीवन का तथा खज़ानों का रहस्य मालूम होता है।
किताब-कबाड़ी	(रूसी-बुकिनीस्त) पुरानी किताबों का विक्रेता।
चूल्हा	पुराने रूसी मकानों में ईंटों का बना आयताकार चूल्हा, जिसमें ऊपर सोने की जगह भी होती थी और जिसका प्रयोग जाड़ों में किया जाता था।
जिगीत	(किर्गीज़) पारम्परिक कुशल घुड़सवार।
ताइगा	साइबेरिया के घने जंगल।
दाचा	शहर के बाहर (देहात में) बना ग्रीष्म-आवास।
दोमिनो	लूडो जैसा एक खेल।
पिरष्की	गोभी, मांस, आदि का भरवाँ पकवान।
बतिर (किर्गीज़)	योद्धा।
मुझिक	किसान; देहाती; गँवार; पुरुष; पति।
बुज़ा	जौ, कुटू और बाजरे का बना हल्का मादक पेय।
लाप्ति	बान की बनी जूती।
वोदका	अनाज से बना रूसी मादक पेय।
सच्येल्निक	प्राचीन रूसी नववर्ष की पूर्वसंध्या।
समावर	चाय का पानी उबालने का टोंटीदार विशिष्ट रूसी पात्र।
सराफ़ान	महिलाओं की लम्बी पोशाक।
स्व्यात्कि	प्राचीन रूसी नववर्ष—7 से 19 जनवरी का समय।

लेखक परिचय

फ़्योदोर अलेक्सान्द्रोविच अब्रामोव—आपका जन्म आर्खान्ग्येल्स्क ज़िले के वेर्कोला नामक गाँव में 29 फ़रवरी 1920 को हुआ। आपने 1948 में लेनिनग्राद विश्वविद्यालय से अपनी शिक्षा पूरी की। पचास के दशक में वहाँ विभागाध्यक्ष भी रहे। आपका पहला उपन्यास 'भाई और बहनें' (ब्रात्या इस स्यौस्त्रि) 1958 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में महायुद्ध के दिनों के उत्तरी क्षेत्र के गाँवों का चित्रण किया गया है। 1961 में प्रकाशित आपके उपन्यास 'पितृहीनता' (बेज़ोओत्सोव्शिना) और 1962 में प्रकाशित 'उत्तरी धरती पर' (ना स्येवेर्नोइ जेम्ल्यें) कहानी-संग्रह में आधुनिक कलखोज़ों का चित्रण है। आपके उपन्यास 'दो शीत ऋतुएँ और तीन गर्मियाँ' (द्वे जिमी इ त्री ल्येता) में युद्धोत्तर काल के जीवन को दिखाया गया है। 1978 में प्रकाशित आपका उपन्यास 'घर' (दौम) अत्यंत चर्चित रहा है। आपका कथा साहित्य रूस के बदलते हुए जीवन की उत्कृष्ट प्रस्तुति है। आपका देहान्त 1983 में हुआ।

यूरी पाव्लोविच कज़ाकोव—आपका जन्म 8 अगस्त 1927 को में मास्को में हुआ। आपकी शिक्षा मास्को को गोर्की साहित्य संस्थान में हुई। आपकी पहली रचना 1952 में प्रकाशित हुई। पहला कहानी-संग्रह 'छोटे स्टेशन पर' (ना पोलुस्तान्क्य) 1958 में प्रकाशित होते ही चर्चा में आ गया था। आपके अन्य उल्लेखनीय कहानी-संग्रह हैं—1958 में प्रकाशित 'नीला और हरा' (गोलुबोये इ ज़िल्यौनोये), 1965 में प्रकाशित 'रास्ते में' (पो दोरोग्ये), 1965 में प्रकाशित 'रोटी की गंध' (ज़ापाख़ ख़्ल्येबा), 1966 में प्रकाशित 'दिसम्बर में वे दो' (द्वोये व् देकाब्रे)। आपको मनुष्य के चरित्र की गहरी परख है। आपकी कहानियाँ ग्रामीण और शहरी जीवन के विरोधाभास को भी प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती हैं। आपका देहान्त 1982 में हुआ।

फ़ाज़िल अब्दुलोविच इस्कन्दर—आपका जन्म 6 मार्च 1929 को सुखुमी में हुआ। आपने 1959 में मास्को स्थित गोर्की साहित्य संस्थान से अपनी शिक्षा पूरी की। आपका सृजनात्मक कार्य कविता से आरम्भ हुआ और पहला कविता-संग्रह 'पहाड़ी रास्ते' (गोर्नियें त्रोपी) 1957 में निकला। 1962 में आपने गद्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। अब तक आपके कई कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'निषिद्ध फल' (जप्रेत्नी प्लोद) शीर्षक कहानी-संग्रह 1966 में प्रकाशित हुआ। 1966 में ही एक और भी कहानी-संग्रह 'हर्कुलिस का तेरहवाँ कारनामा' (त्रिनात्साती पोद्विग गेराक्ला) प्रकाशित हुआ। आपकी कहानियों में काकेशस स्थित अबख़ाज़िया के जीवन और रीति-रिवाजों का चित्रण मिलता है। व्यंग्यात्मक शैली आपकी कथा-भाषा की विशिष्टता है।

यूरी वलेन्तीनोविच त्रीफ़ोनोव—आपका जन्म 1925 में मास्को में हुआ। आपने 1942 में ताशकन्द में माध्यमिक शिक्षा पूरी की जहाँ द्वितीय महायुद्ध के दौरान उनके परिवार को—दादी और बहन को—जाना पड़ गया था। 1944 से 1949 तक आपने मास्को के साहित्य संस्थान में अध्ययन किया। 1950 में आपका उपन्यास 'छात्र' (स्तुद्येन्ति) प्रकाशित हुआ, जिसमें युद्धोत्तर काल के कालेजों के युवावर्ग के जीवन को दर्शाया गया है। 1965 में प्रकाशित पुस्तक 'आग की चमक' (ओत्ब्ल्येस्क कोस्त्रा) में आपने अपने पिता के जीवन के बारे में लिखा है, जिन्हें 1937 में संभवतः राजनीतिक कारणों से मौत के घाट उतार दिया गया था। आपकी मृत्यु के छह साल बाद 1987 में जब तत्कालीन सोवियत संघ में खुलापन (ग्लास्नोस्त का ज़माना) आ गया था आपका उपन्यास 'लोप' (इस्वेज़्नोव्येनिये) प्रकाशित हुआ, जिसमें तीस के दशक में हुई कतिपय घटनाओं को दिखाया गया है। आपकी कहानियों में शहरी जीवन के विविध पक्ष देखने को मिलते हैं। आपका देहान्त 1981 में हुआ।

व्लदीमिर गेर्मानोविच लीदिन—आपका जन्म 15 फ़रवरी 1894 को हुआ। पहली रचना 1915 में प्रकाशित हुई। आपने 1915 में मास्को विश्वविद्यालय के विधि संकाय से अपनी शिक्षा पूरी की। पहला कहानी-संग्रह 'क्या फ़र्क़ पड़ता है' (त्रिन-त्रावा) 1916 में प्रकाशित हुआ। तीस के दशक में आपने रूस का व्यापार भ्रमण किया और 1930 में अपनी पुस्तक 'यात्री' (पूत्निक) प्रकाशित की। आपके उपन्यासों में से 1950 में प्रकाशित 'दो जीवन' (द्वे झीज़्नि) और 'महान और शांत' (विलीकी इ तीखी) का उल्लेख किया जा सकता है। आपकी कई कहानियों का विषय द्वितीय महायुद्ध से संबंधित है। पचास के दशक से आपको लेखन जीवन के शाश्वत मूल्यों की ओर मुड़ जाता है। आपका देहान्त 1983 में हुआ।

व्लदीमिर सोलोऊख़िन—आपका जन्म सन् 1924 में व्लदीमिर ज़िले के ओल्येपिनो नामक गाँव में हुआ। आपकी शिक्षा मास्को के गोर्की साहित्य संस्थान में हुई। पहली पुस्तक 'स्तपी में वर्षा' (कविता-संग्रह) 1953 में प्रकाशित हुई। आपने कई उपन्यास और कहानी-संग्रह बहुत लोकप्रिय हुए हैं। आपका देहान्त 1997 में मास्को में हुआ।

बसीली इवानोविच बेलोव—आपका जन्म 23 अक्टूबर 1932 को वोलोगोदूस्काया ज़िले के तिमोख़िना नामक गाँव में हुआ। आपने 1964 में गोर्की साहित्य संस्थान से अपनी शिक्षा पूरी की। पहली रचना 1956 में प्रकाशित हुई। आपने कलख़ोज़ों और यूराल की फ़ैक्ट्रियों में काम किया है। 'मामूली-सी बात' (प्रिविच्नोये द्येलो) 1966 और 'बढ़इयों की कहानियाँ' (प्लोत्नित्स्किये रस्काज़ि) 1968 आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ है। 1982 में प्रकाशित संग्रह 'संवाद' (दिआलोग) की कहानियाँ हास्य का पुट लिए हुए हैं। उपहास-रहित व्यंग्य आपकी रचनाओं में प्रायः रहता ही है। आपकी देहाती जीवन के कथाकर हैं। आपकी रचनाएँ नए और पुराने का अंतर्द्वन्द्व प्रस्तुत करती हैं।

बलेन्तीन ग्रिगोर्येविच रस्पूतिन—आपका जन्म 15 मार्च 1937 को इर्कूत्स्क जिले में ऊस्त-उदा नामक गाँव में हुआ। आपने इर्कूत्स्क राजकीय विश्वविद्यालय के भाषा और साहित्य संकाय से अपनी शिक्षा पूरी की। आपने पत्रकार के रूप में भी काम किया है। आपकी गिनती आधुनिक रूसी साहित्य के श्रेष्ठतम उपन्यासकारों में होती है। आपके अत्यंत चर्चित उपन्यास हैं—'अंतिम घड़ी' (पोस्ल्येदूनी स्रोक) 1970 और 'मत्योरा से विदाई' (प्रश्शानिये स् मत्योरोइ) 1976। साहित्य-रचना के अतिरिक्त आप पर्यावरण के प्रति भी बहुत सजग हैं और उसकी रक्षा के लिए आवाज़ उठाते रहते हैं। आप निवास-स्थान इर्कूत्स्क और मास्को में है।

बोरीस पेत्रोविच येकीमोव—आपका जन्म 19 नवम्बर 1938 को क्रास्नोयार्स्क क्षेत्र के इगार्का शहर में हुआ। आपकी पहली रचना 1965 में प्रकाशित हुई। आपका निवास स्थान वोल्गोग्राद में है। आपने व्यापक रूप से लिखा है। कहानी-संग्रह 'सकुशल पहुँची' (दोय्येखाला बलागापलूच्नो) 1980 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास 'माता-पिता का घर' (रदीतेल्स्की दौम) 1987 में प्रकाशित हुआ। इनके अतिरिक्त आपकी और भी कई गद्य-रचनाएँ हैं। आपके लेखन में रूस के ग्रामीण-जीवन के विविध पक्ष उभर कर सामने आए हैं।

चिंगीज़ आइत्मातोव—आपका जन्म किर्गीज़िया के एक गाँव में सन् 1928 में हुआ। आप रूसी और किर्गीज़ दोनों ही भाषाओं में समान रूप से लिखते हैं।

पहली रचना 1952 में प्रकाशित हुई आपने 1953 में पशुविशेनज्ञ में रूप में किर्गीज़िया के कृषि संस्थान में शिक्षा पूरी की। आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'जमीलिया' (जमीलिया) 1958 'पहला अध्यापक' (प्येवी उचीत्येल) 1962 'दंतकथा के बाद-सफ़ेद स्टीमर' (पोस्ल्ये स्काज्कि—ब्येली परोख़ोद) 1970 'शताब्दी से भी लम्बा दिन' (इ दोल्षे व्येका द्लीत्सा द्येन) 1981 'मुट्ठी' (प्लाख़ा) 1986, 'कसान्द्रा दाग़' (ताव्रो कसान्द्रि) 1994 आदि। विशुद्ध यथार्थवादी लेखन से आरम्भ करके आपकी रचनाएँ जादुई यथार्थवाद की ओर अग्रसर होती गई हैं।

अनातोली अन्द्रेयेविच किम—आपका जन्म 1939 में हुआ। आप कोरियाई मूल के रूसी लेखक हैं। 1976 में 'नीला द्वीप' (गोलुबोइ ओस्त्रव) और 1984 में 'गिलहरी' (ब्येल्का) नामक उपन्यास प्रकाशित हुए। आपके कहानी-संग्रहों में से 1980 में प्रकाशित 'बुलबुल की प्रतिध्वनि' (सोलोवीनोये एख़ो) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपके कथा-साहित्य में लोककथाओं और दंतकथाओं का सम्मिश्रण रहता है और यही आपकी कथा-शैली की विशिष्टता है।

व्याचेस्लाव अलेक्स्येयेविच पेत्सूख़—आपका जन्म मास्को में 18 नवम्बर 1946 को हुआ। आपने इतिहास की शिक्षा पाई है। परन्तु कई तरह की नौकरियाँ की हैं। हाइड्रोइलैक्ट्रिक पावर स्टेशन में फ़िटर का काम किया, सोने की खान में भी काम किया। आप 1991 से 1995 तक 'द्रूइबा नरोदोव' पत्रिका के प्रधान संपादक रहे। पहली रचना 1978 में प्रकाशित हुई। आपका उपन्यास 'मास्को का नया दर्शन' (नोवाया मोस्कोव्स्काया फ़िलोसाफ़िया) दोस्तोयेव्स्की के उपन्यास 'अपराध और दण्ड' को नए ढंग से प्रस्तुत करता है। आपके चर्चित कहानी-संग्रह हैं—'वर्णमाला' (अल्फ़ावीत) और 'ख़ुशी के दिन' (वेस्योलिये व्रेमेना)। आपकी कहानियों की विशेषता है उनमें छिपा व्यंग्य।

विक्तोरिया समोइलोव्ना तोकारेवा—आपका जन्म 20 नवम्बर 1937 को मास्को में हुआ। आपने मास्को के संगीत महाविद्यालय और फ़िल्म संस्थान में शिक्षा ग्रहण की है। आपके कई कहानी-संग्रह निकल चुके हैं—'विशेष कुछ नहीं' (निचेवो असोबेन्नेवो) 1983, 'गुलाबी गुलाब' (रोज़ोवियें रोज़ि) 1999, 'चिकना चेहरा' (ग्लादकोये लीचिको) 1999 आदि। आपकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। सपाटबयानी, जो आपकी रचनाओं में सोवियत काल से ही दिखाई देती आ रही है। आपकी निगती आज के सबसे अधिक लोकप्रिय रूसी कथाकारों में होती है। फ़िल्मों की पटकथा लेखिका के रूप में भी आपको उतनी ही प्रसिद्धि प्राप्त हुई है।

नताल्या व्लदिमीरोव्ना बरान्स्काया—आपका जन्म 12 दिसम्बर 1908 को पीटर्सबर्ग (लेनिनग्राद) में हुआ। आपने 1930 में मास्को विश्वविद्यालय के इतिहास और वाङमय विभाग से अपनी शिक्षा पूरी की। आप आरम्भ से ही मास्को के पूश्किन संग्रहालय में कार्यरत हैं। आपका लेखन आलोचना से शुरू हुआ। पहली पुस्तक 1952 में प्रकाशित हुई। 1960 से आपका रचनात्मक साहित्य में पदार्पण होता है। आपके उपन्यास और कहानियाँ युवावर्ग को केन्द्र में रखकर लिखी गई हैं। कामकाजी महिलाओं के जीवन पर लिखी आपकी लम्बी कहानी 'सप्ताह ही सप्ताह' (नेद्येल्या काक नेद्येल्या) बहुचर्चित हुई है। द्वितीय महायुद्ध में भाग लेनेवाली महिला सैनिकों के जीवन पर लिखा आपका उपन्यास 'याद का दिन' (द्येन पमिनोव्येनिया) भी बहुत चर्चित रहा है।

ग्रिगोरी अलेक्सान्द्रोविच पेत्रोव—आपका जन्म 14 अप्रैल 1939 को कीरोवोग्राद ज़िले के कोसोरि नामक गाँव में हुआ। आपने 1967 में मास्को विश्वविद्यालय के वाङमय संकाय से अपनी शिक्षा पूरी की। आपकी पहली रचना 1991 में प्रकाशित हुई। 1994 से आप मास्को के एक संस्थान के अंतःअनुशासनिक विभाग में ग्रन्थपाल के रूप में कार्यरत हैं।

अलेक्सान्द्र जिनोव्येविच खूर्गिन—आपका जन्म 1952 में मास्को में हुआ। पहली रचना 1977 में प्रकाशित हुई। शिक्षा से आप इंजीनियर हैं। आपकी कहानियाँ रूस की श्रेष्ठ पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होती रहती हैं। आपके चर्चित उपन्यास हैं, 1995 में प्रकाशित 'कोई बकवास' (काकाया-तो येरुन्दा) और 2001 में प्रकाशित 'रात का काउबाय' (नोच्नोइ काउबोय)। आपकी रचनाओं में व्यंग्य का पुट विद्यमान रहता है। आप स्थायी रूप से युक्रेन के दूनेप्रोपेत्रोव्स्क नामक शहर में रहते हैं।

□□□

बीसवीं शताब्दी का साहित्य

के अन्तर्गत अकादेमी द्वारा हिन्दी में अनूदित एवं प्रकाशित पुस्तकें

खण्ड 1

साहित्य और सौंदर्यशास्त्र

खण्ड 2

मक्सिम गोर्की : चुनी हुई रचनाएँ

खण्ड 3

मिख़ाइल शोलोख़ोव : चुनी हुई रचनाएँ

खण्ड 4

ज़मीन के लिए आज़ादी के लिए संघर्ष

पराजय (अलेक्सांद्र फ़देयेव), ***इकतालीसवाँ*** (बोरीस लव्रेन्योव)

अश्वसेना (इसाक बाबेल) और ***बख़्तरबंद रेल*** '14-69(सेवोलोद इवानोव)

खण्ड 5

देश मेरा

यायावरी के दिन (कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्स्की)

जिन्सेंग और ***सूरज का ख़ज़ाना*** (मिख़ाइल प्रीश्विन)

खण्ड 6

अनुपम और क्रूर संसार

मिख़ाईल बुल्गाकोव और आन्द्रेई प्लातोनोव की कहानियाँ

खण्ड 7

तनी हुई प्रत्यंचा (बीसवीं सदी की रूसी कविता)

इक्कीस रूसी कवियों की कविताएँ

खण्ड 8

तीन रूसी उपन्यास : वलेन्तीन ग्रिगोर्येविच रस्पूतीन

अंतिम घड़ी, आग और ***मत्योरा से विदाई***